मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य
का
लोकतात्त्विक अध्ययन

मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य
का
लोकतात्त्विक अध्ययन

(आगरा विश्वविद्यालय द्वारा डी० लिट्० उपाधि के लिए स्वीकृत परिवर्द्धित शोध प्रबन्ध)

डा० सत्येन्द्र एम० ए०, पीएच० डी०, डी० लिट्०

क० मु० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान-विद्यापीठ,

आगरा विश्वविद्यालय, आगरा

विनोद पुस्तक मन्दिर

हास्पिटल रोड, आगरा

प्रकाशक
राजकिशोर अग्रवाल
विनोद पुस्तक मन्दिर
हॉस्पिटल रोड · आगरा

प्रथम संस्करण
सन् १९६०
मूल्य १५)

आगरा विश्वविद्यालय

के

उपकुलपति

कर्नल कमाण्डेण्ट श्री कालकाप्रसाद भटनागर

को

उनके सरक्षण में मुकुलित मेरी अपनी साहित्यिक साधना

का

यह नूतन पत्र-पुष्प

सादर सभक्ति समर्पित

अकिंचन

सत्येन्द्र

मध्ययुगीन हिंदी साहित्य का लोकतात्त्विक अध्ययन

भूमिका

लोक-साहित्य, लोकवार्ता, लोकतत्त्व, लोकजीवन आदि की सामग्री का शास्त्रीय अध्ययन करने वाले विद्वानो मे सत्येन्द्रजी हिन्दी क्षेत्र के चक्रवर्ती हैं। उन्होने सर्व प्रथम ब्रजक्षेत्र के लोक-साहित्य की सर्वविध सामग्री का सकलन करके उसे शास्त्रीय धरातल पर प्रतिष्ठित किया। उनका वह कीर्तिशाली शोध-निवन्ध अनेको के लिये मार्गदर्शक हुआ है। सत्येन्द्रजी ने अपनी उस अध्ययन परम्परा को उच्चतर धरातल पर आगे बढ़ाते हुए प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना की है। इसकी सामग्री उनकी सूक्ष्म समीक्षा का परिचय देती है। महाभारत में सनत्सुजात ने धृतराष्ट्र से एक सूत्र मे लोकजीवन के प्रति ज्ञानी या लोक-विधानवेत्ता मुनि के दृष्टिकोण का उल्लेख किया है—

प्रत्यक्षदर्शी लोकाना सर्वदर्शी भवेन्नर ।

(उद्योग पर्व ४३।३६, पूना)

जो लोको का प्रत्यक्ष दर्शन करता है, लोक-जीवन मे प्रविष्ट होकर स्वय उसे अपने मानस-चक्षु से देखता है, वही व्यक्ति उसे पूरी तरह समझता-बूझता है। केवल पुस्तकस्थ विद्या से लोकतत्त्व का तल-स्पर्शी परिचय नही प्राप्त किया जा सकता। साहित्य और लोकतत्त्व ये एक ही जीवन-रथ के दो चक्र हैं। दोनो के सतुलित विवेक से ही जीवन की व्याख्या की जा सकती है। भारतीय साहित्य और सस्कृति के विषय मे तो यह तथ्य अक्षरश. सत्य है। 'लोके वेदे च' यही भारतीय जीवन का प्रतिष्ठा-सूत्र है। सस्कृति, धर्म, दर्शन, अध्यात्म, कला, साहित्य, समाज, आचार—इस सप्तक का जहाँ कही से उद्घाटन करने लगें तो भारतीय आकाश के नीचे युग-युगो तक वेद और लोक इन दोनो की समन्वित और सयुक्त सरणि हमे उपलब्ध होती है। ब्रह्म के समान यदि भारतीय जीवन को चतुष्पात् माना जाय, तो उसके एक पाद की प्रतिष्ठा वेद या शास्त्रीय चिन्तन मे और त्रिपाद की अभिव्यक्ति लोक के क्रियाशील जीवन मे पाई जाती है। अतएव भारतीय शास्त्र की व्याख्या का सर्वोत्तम क्षेत्र यहाँ का वास्तविक

लोक-जीवन ही है। आज भी लोक के जीवन का वार्षिक नत्र अनेक मगलात्म विधानो और आचारो से सम्पन्न है। लोक मे भरे हुए पर्व और उत्सव, लोक-नृत्य, लोकगीत, लोककथाएँ, व्रतो की अवदान-कहानियाँ, सवत्सर का रूप सँवारने वाले अनेक व्रत और उपवास, देव-यात्राएँ और मेले आदि से भारतीय सस्कृति अपना अमिट स्पन्दन प्राप्त कर रही है। लोक की भाषा आकाश-गगा के समान आज भी अपनी पावनी शक्ति से भूतल के प्राणियो को उज्ज्वल बना रही है। उसी शक्ति से साहित्य और जीवन की कल्याण-परम्पराएँ अस्तित्व में आ रही हैं। नए भारत का निर्माण उसकी प्राचीन संस्कृति का श्रेयाश लेकर बन रहा है—

नवो नवो भवति जायमान ।

यही दुर्धर्ष नियम जीवन को आगे बढा रहा है। किन्तु इस प्रगति की अक्षय पद्धति प्राचीन सस्कृति से प्राप्त होती है और उसके साथ जुडी है।

यहाँ नूतन का पूर्व के साथ मेल है। किन्तु पूर्व नूतन को कुण्ठित नही करता, उसे निर्मलता प्रदान करता है। पूर्व और नूतन के श्वास-प्रश्वास से ही भारतीय सस्कृति अपना शाश्वत जीवन स्पन्दन प्राप्त करती रही है। इसे ही दूसरे शब्दो मे लोक और वेद का समवाय कह सकते हैं। भारतीय सस्कृति की रचना चतुर्भुजी स्वस्तिक के समान है। यह उस मण्डल या वृत्त के समान है जिसके उदर मे चार नवतियों के चार समकोण प्रतिष्ठित हैं। इन्ही से यहाँ के जीवन का सुदर्शन चक्र नित्य घूम रहा है। इस सस्कृति की पहली महती भुजा स्वय अनन्त प्रकृति है। यह विश्व को पोषण देने वाली कामदुधा धेनु है। यही जीवन की अदिति गौ है। इसकी रचना आदि-अन्त से परे है। समस्त विश्व ही इस केवली गौ का वत्स है। अनन्त वैचित्र्यो से परिपूर्ण, समस्त रहस्यो की धात्री यह देवमाता भारतीय मनीषियो के लिये प्रथम वन्दनीय है। यह जैसी पहले थी, आज भी है, और आगे भी रहेगी। इसकी नाभि मे सोम या अमृत से भरा हुआ जो मगल कलश है उसका रस हम सब को सींच रहा है। वही मानव का नित्य उपजीव्य है। वैशाख शुक्ल की अक्षय तृतीया को मानो उसका आरम्भ होता है और कार्तिक शुक्ल की अक्षय नवमी को पूर्ण विकास। इन्ही दोनो शाश्वत बिन्दुओ के मध्य मे उसका कालात्मक व्यक्त स्पन्दन स्फुट हो रहा है। यह अदिति धेनु पूर्व और पश्चिम, भूत और भविष्य सब के पोषण का हेतु है। इसे केवली गौ कहें या ज्येष्ठ ब्रह्म, शब्दो की विचित्रता मात्र है। अतएव इस महती मातृदेवी या प्राणशक्ति की व्याख्या भारतीय ज्ञान का सदा से लक्ष्य रहा है। इसे ही इस सस्कृति ने अपना प्रणाम-भाव अर्पित किया है। यह प्रकृति किसी अमृत देव की आत्मशक्ति से सचालित

है। यह जैसी है वैसी है—'याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधात् शाश्वतीभ्यः समाभ्यः' यही इसका निजी अविचाली अधिकार है।

इस स्वय विधात्री शक्ति का जैसा रूप इस देश के मानवो की प्रज्ञा ने जान पाया उसे प्रत्नतम काव्यरूप वैदिक मन्त्रो मे कहा गया है। वेद और वेदानुकूल विकसित शास्त्रीय साहित्य और काव्य भारतीय सास्कृतिक स्वस्तिक की दूसरी भुजा है। इसके अनुसार लोकमानस की सृष्टि स्वस्तिक की तीसरी प्रवृत्ति रही है। यह कार्य अधिकाश मे पुराण साहित्य के द्वारा सम्पन्न हुआ जिसके अनुयायी अनेक आगम, तन्त्र, सहिताएँ आदि हैं। उनके विकास की परम्परा आज तक हमे प्राप्त है। एक ओर जहाँ वेद की शास्त्रीय प्रतिष्ठा अस्तित्व मे आती है, वही दूसरी ओर लोकमानस मे उसका पुराणानुसारी रूप अवतीर्ण होता है। बालक का सरल मन लोकमानस का प्रतिनिधि है। उसका पोषण कथा कहानियो के स्थूल तन्तुओ से होता है। मानव-जाति कितनी भी उन्नति करे उसे हर पीढी मे बाल-मानस की आराधना करनी ही होगी, अन्यथा भय है कि उसके मस्तिष्क की उर्वरा शक्ति या नवीन विकास ही अवरुद्ध हो जायगा। इस तथ्य को पहचान कर भारतीय सस्कृति ने अपने ज्ञान-विज्ञान की रचना के साथ-साथ देव और असुरो की असख्य कहानियो की भी रचना की। यही 'दैवासुरम्' कथाकोश भारतीय लोकमानस के महापात्र मे परिपूर्ण है। साहित्य हो या धर्म दोनो को इस तत्व ने प्लावित किया है। उसकी मात्रा और स्वरूप का विश्लेषण वर्तमान जागरूक अनुसधान का क्षेत्र और विषय है। उसका एक स्पृहणीय निदर्शन प्रस्तुत निबन्ध मे प्राप्त होता है। भारतीय सस्कृति के स्वस्तिक की चौथी भुजा वह लोकजीवन और आचार है जिसका निर्माण पहले तीन प्रभावो ने मिलकर किया है। जीवन ही तो महनीय तत्त्व है। उसी के लिये तो अन्य सब प्रयत्न और दृष्टियाँ हैं। अतएव प्रकृति का विज्ञान, वेदों का ज्ञान, पुराणो का सामान्य ज्ञान-विज्ञान, सब कुछ, भारतीय जीवन को अर्पित करने या उसमे ढाल देने की परिपाटी और दृष्टि ऋषियो ने स्वीकार की। उदाहरण के लिये प्रकृति या विश्व रचना मे सूर्य की सत्ता है। वह सविता देवता विश्व के चैतन्यमय स्पन्दन या प्राण का स्रोत है। उसी की प्राणात्मिका शक्ति सावित्री है। मानव मात्र को वह मिल रही है। जन्म और मृत्यु उसी स्पन्दन के दो विन्दु हैं। विश्व के इस रहस्य को वेदो की सावित्र विद्या के रूप मे कहा गया। यह सावित्री वेदो का सार है। सूर्य से पृथिवी की ओर आने वाली महाशक्ति सावित्री है और वही पृथिवी से प्रतिफलित होकर जब सूर्य की ओर स्पन्दित होती है तब उसे गायत्री कहा जाता है। सावित्री-गायत्री दोनो एक ही प्राणात्मक स्पन्दन के समष्टिगत और

व्यष्टिगत रूप हैं। वैदिक परिभाषा मे समष्टि या विराट् यज्ञ को अश्वमेध और व्यष्टि या पिण्डात्मक यज्ञ को अर्क कहते हैं। द्युलोक मे सूर्य रूपी अश्व या स्पन्दनात्मक प्राण तप रहा है। उसी के तप से पृथ्वी पर आक का पौधा उग रहा है। यही अर्काश्वमेध व्यष्टि समष्टि जीवन है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार 'इयं वै गायत्री' यह पृथिवी गायत्री है। माता भूमि की जितनी शक्ति है उतनी ही गायत्री की शक्ति है। वहीं कहा है 'गायत्री वा एषा निदानेन' (शतपथ १।४।७।२६), अर्थात् निदान विद्या या प्रतीकात्मक शब्दावली मे कहना चाहे तो पृथिवी ही गायत्री है, गायत्री का जितना स्वरूप है सब पृथिवी की मातृत्व शक्ति के प्राणात्मक स्पन्दन मे देखा जा सकता है।

इसी वैदिक सावित्रतत्व को पुराणो ने लोकमानस के प्रशिक्षण के लिये सावित्री-सत्यवान् की कथा के रूप मे उपबृंहित किया। सूर्य ही सत्यवान्। इस सौर मडल मे सूर्य ही सत्यात्मकसत्ता या केन्द्र है। वह सत्यनारायण है। सूर्य के द्वारा ही सवत्सर का निर्माण होता है। सूर्य ही सवत्सरात्मक काल है। अतएव कथा के सत्यवान् को सावित्री के साथ एक वर्ष का जीवन मिलता है। सावित्री शक्ति के साथ ही सत्यवान् की अमरता ध्रुव है। जब तक सावित्री है तब तक सत्यवान् की आयु अक्षय है। केवल सावित्री को उसकी रक्षा के लिये उग्र यम प्राण को प्रसन्न करना आवश्यक है। प्राण ही यम और प्राण ही शिव है। उसके रुद्र रूप को इसी शरीर में शिव बनाना होगा। सूर्य प्राणात्मक अश्व है। गति और स्पन्दन का वही एकमात्र विराट् स्रोत है। कहानी का सत्यवान् भी अपने बचपन मे घोडो से खेलने का शौकीन है। इसी स्वस्तिक का चौथा रूप वट-सावित्री का व्रत है जो लोक के आचार मे जन-जन मे प्रचलित है और सावित्र विद्या को लोकजीवन के साथ जोडने का एक स्मरण हमारे सामने ले आता है। सृष्टि की सावित्र अग्नि, वेद की सावित्र विद्या, पुराण की सावित्री कथा, और आचार का वट-सावित्री व्रत ये एक ही स्वस्तिक की चार दिशाए हैं। इन दिगन्त बिन्दुओ के क्षेत्र में भारतीय सस्कृति विकसित होती है। इन्हें पहचानना ही साहित्य का सच्चा लोकतात्विक अध्ययन है। यह विषय बुद्धि का कुतूहल नही, यह तो सस्कृति के निर्माणात्मक एव विधायक तत्त्वों की छानबीन है जिसका जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। यही सनत्सुजात के शब्दों में लोकदर्शन से सर्वदर्शन की ओर जाना है। सर्व का दर्शन या अनुभव ही अक्षर तत्त्व की सप्राप्ति या साक्षात्कार है।

विषय को और स्पष्ट करना हो तो लोक-जीवन की पृष्ठभूमि से करक-चतुर्थी या करवा-चौथ के व्रत को समझने का प्रयत्न करें। यह व्रत भी घर-घर में प्रचलित है। इसमे करवा क्या और चौथ क्या ? यह समस्त विश्व और जीवन

ही जल से भरा हुआ करवा है। वैदिक भाषा मे यह जलपात्र ही चमस कहा गया है। मूल रूप मे एक चमस था। उसे ही सृष्टि के लिये ऋभुओ ने चार चमसो के रूप मे विभक्त कर दिया। जो गुणो से परे था वही तीन गुणो के रूप मे प्रकट हो गया। गुण उसी मे भरे थे, कहीं बाहर से नही आए। यही उनका अव्यक्त 'प्रधान' रूप है। 'प्रधान' का शब्दार्थ ही है प्रकृष्ट रूप से आधान। अव्यक्त अवस्था मे गुणो का आधान ही उनका 'प्रधान' रूप है। एक चमस का चार होना ही सृष्टि या जीवन है—

एक चमस चतुर कृणोतन।

(ऋग्वेद १।१६१।२)

व्यकृणोत चमस चतुर्धा।

(ऋ० ४।३५।३)

एक के चार और चार का फिर एक होना ही जीवन का स्पन्दन है। बुद्ध को लोकपालो ने चार भिक्षापात्र दिए तो बुद्ध ने अपने अनुभाव से इन्हे एक कर दिया। चार मे विभक्त तत्व को एक जानना ही बुद्धत्व है। करक या करवा, चमस या भिक्षापात्र—एक ही तत्व के प्रतीक है। लोकजीवन को उस चमस तत्व से अवगत कराने के लिये कहानी और व्रत की परिपाटी प्रचलित हुई। अवश्य ही इस व्रत की कथा की रचना किसी अत्यन्त प्राचीन वैदिक युग मे हुई होगी। कहानी का ठाठ स्पष्ट इसका सकेत देता है। सात अछरामाई ही शक्ति के सात रूप है, वे सात बहनें हैं या सप्तमातृकाएँ हैं जो मूलभूत एक ही देवमाता के सात रूप हैं—

सप्त स्वसारो अभिसेनवन्ते

(ऋ० १।१६४।३)

सात बहने मिलकर स्तुति के गीत गारही हैं। उनका सम्मिलित गान ही जीवन है। वे गाती जाती हैं और यह जीवन रथ चलता चला जाता है।

विद्वान् लेखक ने लोक-साहित्य की तात्त्विक समीक्षा को एक नवीन उच्च धरातल पर प्रतिष्ठित किया है। हिन्दी साहित्य मे उन तत्त्वो की छानबीन नया प्रयास है। निर्गुण सम्प्रदाय, प्रेम गाथा, सगुण भक्ति काव्य, रामशाखा ये हमारे वाङ्मय की जानी-पहचानी चार बडी चौपाल हैं। लेखक ने प्रत्येक की गोष्ठी मे प्रविष्ट होकर सहृदयता से उनकी वार्ता का रसपान किया है। उनके तन्तुओ के स्रोत तक पहुँचने का प्रयत्न किया है। भले ही हिन्दी साहित्य की परम्परा का आदिकाल निर्गुणी सन्तो से प्रारम्भ हो, पर हिन्दी के उदय की पृष्ठभूमि तो वहाँ तक है जहाँ ठेठ वैदिक एवं प्राक् वैदिक या प्रागैतिहासिक भारतीय मानव ने विचार और कर्म के नाना तन्तुओ से जीवन का पट

बुनना शुरू किया था। उस बहुरंगी ताने-बाने की समग्र कहानी ही हिन्दी साहित्य को उत्तराधिकार मे मिली है। उदाहरण के लिये, प्राचीन भारत मे देवो की पूजा को मह कहते हैं। लोक मे इस प्रकार के कितने ही देवो की मान्यता थी और उनके लिये मेले लगते थे जिन्हे 'यात्रा' कहा जाता था। हिन्दी का 'जात' शब्द उसी से बना है। इस प्रकार के कितने ही 'मह' उस युग मे प्रचलित थे और उनकी परम्परा प्रागैतिहासिक युग तक चली जाती है। जैसे, इन्द्रमह, चन्द्रमह, सूर्यमह, यक्षमह, नदीमह, नागमह, सागरमह, गिरिमह, वृक्ष-मह, स्कन्दमह, धनुर्मह, रुद्रमह, भूतमह, सुपर्णमह, ब्रह्ममह आदि। नदीमह का रूप ही गगाजी का बडा मेला है। यक्षो की पूजा तो लोक मे आज तक प्रचलित है। इस समय उन्हे बीर-बरह्म देवता कहते हैं। हमारे चारो ओर काशी में बीर-बरह्म के थान या चौरे भरे हुए हैं। 'गाँव-गाँव का ठाकुर गाँव-गाँव का वीर' यह उक्ति यहाँ प्रसिद्ध है। हनुमान जी की 'महावीर' संज्ञा किसी समय उनके यक्ष-रूप का सकेत करती है। दीपावली यक्षरात्रि है। वही हनुमान जी का जन्मदिन है। जायसी ने हनुमान को वीर कहा है—

ततखन पहुँचा आइ महेसू।
वाहन बैल कुस्टि कर भेसू ॥१॥
औ हनिवत वीर सँग आवा।
धरे वेष जनु बदर छावा ॥६॥

(पदमावत दो० २०७)

साहित्य और लोकवार्ता दोनो मे यक्षपूजा की इतनी अधिक सामग्री है कि उस पर अलग ग्रन्थ ही लिखा जा सकता है।

इस निबन्ध में हिन्दी साहित्य की स्पृहणीय परिक्रमा करते हुए लोक-धर्मानुसारी तत्त्वो का बहुत ही अच्छा विश्लेषण किया गया है। लेखक का दृष्टिकोण विकसित है। और सामग्री के सकलन का क्षेत्र विस्तृत है। सस्कृत, पाली, प्राकृत, सब परम्पराओं से लोक साहित्य के सूत्रो की व्याख्या करने की सामग्री का सचयन किया गया है। आशा है इस अनुसन्धान से हिन्दी साहित्य के अध्ययन को नयी चक्षुष्मत्ता प्राप्त होगी और लोकवार्ता शास्त्र का सग्रह करने वाले कार्यकर्ताओ को भी नयी प्रेरणा मिलेगी। सत्येन्द्रजी के ज्ञान की कौस्तुभमणि से नवीन अध्ययन की रश्मियाँ प्रस्फुटित हो यही हमारी आकांक्षा है।

काशी विश्वविद्यालय
वैशाख शुक्ल ११, स० २०१७
[७ मई १९६०]

—वासुदेवशरण

पूर्व पीठिका

पी-एच० डी० के लिए ब्रज-लोक-साहित्य का अध्ययन प्रस्तुत करते समय लोक-साहित्य और हिन्दी-साहित्य के पारस्परिक प्रभाव की ओर ध्यान गया था।* उसी समय से यह विषय मन मे रम रहा था कि हिन्दी-साहित्य की लोक-वार्ता-विषयक पृष्ठभूमि को और अधिक स्पष्ट किया जाय। हिन्दी साहित्य के अनेको प्रकार के अध्ययन आज तक हुए हैं पर लोक-वार्ता के तत्वो की ओर विशेष ध्यान नही दिया गया। यो समय समय पर इस वात का उल्लेख विविध विद्वानो ने अपने भाषणो अथवा निवधो मे अवश्य किया है। किसी ने किसी रचना की लोकभूमि पर किंचित प्रकाश डाला है, तो किसी ने मात्र किसी लोकपरम्परा से सम्बन्ध वताकर ही सतोष कर लिया है। कथानक-रूढियो की चर्चा या विषय और छन्दो मे लौकिकता भी कही-कही दिखायी गयी है। आवश्यकता यह प्रतीत हो रही थी कि लोकतत्व की दृष्टि से हिंदी-साहित्य की व्यवस्थित परीक्षा की जाय। अत मैं इस अनुसधान मे प्रवृत्त हुआ और आज गुरुजनो की कृपा और आशीर्वाद से यह एक मौलिक अध्ययन हिन्दी को समर्पित है।

इस अध्ययन को केवल प्रेमगाथा-काव्य और भक्ति-काव्य तक ही सीमित रखा गया है। सभी साहित्य लोक-क्षेत्र मे जन्म लेकर आगे वढते और ऊँचे उठते हैं। हिन्दी-साहित्य के मध्य काल के रीतियुग से पूर्व तक लोक-तत्व प्रवल रहा, यह इस अध्ययन से भली प्रकार सिद्ध होता है। हिन्दी-साहित्य के इतिहास को ठीक ठीक समझने के लिए यह एक नया तत्व उद्घाटित हुआ है और अव इसकी अवहेलना नही की जा सकती।

मुझे भरोसा है कि जिस प्रकार व्रज लोक-साहित्य के अध्ययन का आदर हुआ है वैसा ही और उससे कुछ अधिक ही इस अध्ययन का भी होगा।

* देखिए व्र० लो० सा० अ० पृ० ५७२ (प्रथम सस्करण)

इस अध्ययन में लोकवार्ता और लोक-मानस का जो विवेचन किया गया है वह भी हिन्दी के साहित्य के अध्ययन के लिए लोकतत्व की दृष्टि से वैज्ञानिक प्रणाली प्रदान करता है। क्योकि केवल यह बताना कि यहाँ लोकतत्व है पर्याप्त नही माना जा सकता, यह भी बताया जाना चाहिये कि वह लोकतत्व क्यो है ? लोक-मानस के अस्तित्व का उद्घाटन स्वयमेव एक महत्वपूर्ण अनुसधान है, किन्तु सभ्य से सभ्य मानव मे उसके उत्तराधिकारक अवतरण की स्थापना इस प्रवन्ध की अपनी देन है। वह मनीषी मानस की साहित्यिक अभिव्यक्ति में कैसे उतरता है, यह हिन्दी साहित्य के इस अध्ययन से स्पष्ट हो जायेगा। इसमे लोकतत्वो की पृष्ठभूमि को ऐतिहासिक विकास के साथ दिखाया गया है और उनकी तात्विक व्याख्या भी दी गयी है।

लोक-मानस की कई भूमियाँ होती है। पहली भूमि लोक-व्याप्त सामान्य प्रवृत्ति से सबधित होती है। विशिष्ट-अविशिष्ट इस प्रवृत्ति मे हाथ मे हाथ दिये प्रचलित देखे जाते हैं। यह भूमि घोर विरोधी तत्वो के लिए भी एक सामञ्जस्य ढूँढ लेती है। यह लोक-मानस की अत्यन्त साधारणीकृत भूमि है, जो सर्वत्र सभी कालो मे विद्यमान मिलती है। दूसरी भूमि वस्तुगत लोकमानसिक परिणतियो की होती हैं। इस भूमि मे वस्तुगत मूल विन्यास तो लोकमानस से सीधा सम्बन्ध रखता है, पर उस विन्यास मे व्यक्ति और स्थान ऐतिहासिक और भौगोलिक क्रम से अपना नाम बदलते मिलते हैं। इनसे ही लोकमानस की परपरा सिद्ध होती है। तीसरी भूमि इस ऐतिहासिक लोकमानस तथा सामन्य लोक-प्रवृत्ति गत मानस के समीकरण की होती है। इसीभूमि पर इतिहास ऐतिहासिक लोक-मानसिकता ग्रहण कर सामान्य लोक प्रवृत्ति मे ढल जाता है। चौथी भूमि शुद्ध लोक-मानस के तत्वों और उनकी परम्परागत प्रक्रियाओ और विकास-श्रेणियो से सम्वन्घित होती है। इस भूमि का नृतात्विक क्षेत्र से घनिष्ठ सम्बन्ध देखा जा सकता है। माइथालाजी, ऐनिमिज्म, एनिमेटिज्म, फेटिश, टेवू, टोटेमिज्म, मैजिक आदि इस भूमि के साधारण तत्व हैं। पाँचवी भूमि का सम्बन्ध आदि मूल मानसिकता (Primordial Psyche) के अनुसधान से होता है। हिन्दी साहित्य मे उसके मध्ययुग तक इन सभी भूमियों का अनुसधान और उद्घाटन इस प्रबन्ध मे करने का प्रयत्न किया गया है। यह भूमि सर्वथैव नयी है अत्यन्त विशाल तथा अतीत-मूल तक पहुँची हुई है, हिन्दी-साहित्य के महान इतिहास का इस दृष्टि से पूर्ण विश्लेषण एक प्रबन्ध मे सभव नही हो सकता। इसके लिए तो प्रत्येक कृति का पृथक पृथक अध्ययन अपेक्षित होगा। फिर भी मैंने अपनी क्षुद्र बुद्धि से अपना मार्ग आप बनाते हुए इन सभी भूमियो का स्वरूप और उनकी प्रक्रियाएँ

दिखाकर इस दिशा मे एक नमूना प्रस्तुत करने का भरसक प्रयत्न किया है। मेरी अपनी क्षुद्रताओ और सीमाओ, अभावो और अज्ञान सबके कारण इस प्रबन्ध मे अनेक दोष और त्रुटियाँ रह गयी होगी, पर विद्वान और उदार पाठक मेरे दोषो को क्षमा कर, सार को ग्रहण करने की कृपा करेंगे।

इसके प्रूफ मैंने देखे हैं फिर भी बहुत सी भूलें रह गयी हैं, जिन्हे अक्षम्य कहा जा सकता है। उनके लिए मैं लज्जित हूँ। परिशिष्ट २ मे ऐसी भूलो मे से कुछ का उल्लेख पूर्वक सशोधन कर दिया गया है। इसी परिशिष्ट मे ग्रन्थ मे उद्धृत अग्रेजी अशो का हिंदी अनुवाद तथा कुछ आवश्यक अन्य टिप्पणियाँ भी दी गयी हैं।

इस ग्रन्थ के प्रस्तुत करने मे अनेको देशी-विदेशी विद्वानो की कृतियो का उपयोग किया गया है जिनका उल्लेख यथास्थान ग्रन्थ मे कर दिया गया है। मैं उनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। क्योकि—'मेरा मुझ मे कुछ नही जो कुछ है सो तोर'

इस प्रबन्ध के कुछ अश समय समय पर प्रकाशित किये जाते रहे हैं। ऐसे प्रकाशित अश ये हैं —

१—लोक-वार्ता-तत्व और लोक-मानस —भारतीय साहित्य
२—हिन्दी के विकासक्रम मे लोकवार्ता-तत्व —आलोचना
३—पद्मावती मे लोक-कथा —सम्मेलन पत्रिका
४—साहित्य के रूप —नई धारा
'—लोक-तत्व और कबीर —भारतीय साहित्य

हिन्दी के इन उच्चकोटि के पत्रो का भी मैं एतदर्थ ऋणी हूँ।

'ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन' 'साहित्य की झाकी' और 'सूर की झाकी' नामक अपने ग्रन्थो से भी कुछ अश आवश्यक सशोधन पूर्वक इसमे लिये गये हैं, क्योकि वे अश इस प्रबन्ध मे भी उतने ही आवश्यक थे।

कितने ही मित्रो ने कई प्रकार से इस प्रयत्न मे मुझे सहयोग प्रदान किया है। मैं उन सब का आभार मानता हूँ।

कलकत्ता विश्वविद्यालय के केन्द्रीय पुस्तकालय, नेशनल लाइब्रेरी, एशियाटिक सोसाइटी, (कलकत्ता), आगरा विश्वविद्यालय के केन्द्रीय पुस्तकालय, सेठ सूरजमल जालान पुस्तकालय [कलकत्ता], नागरी प्रचारिणी सभा पुस्तकालय [आगरा] के पुस्तकालयो से मुझे पूरा पूरा सहयोग मिला है। इनके सहयोग के बिना यह रचना प्रस्तुत हो ही नही सकती थी।

मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता की अजलि श्रद्धापूर्वक समर्पित करता हूँ—

डा० नगेन्द्र तथा डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव को, जिन्होंने इस प्रबंध के अनुसधान की रूपरेखा की सस्तुति की—

क० मु० हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ के सचालक आचार्य विद्वद्वर डा० विश्वनाथ प्रसाद को तथा आगरा विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार (अब रिटायर्ड) डा० एल० पी० माथुर, डी-एस० सी० को, जिनकी प्रोत्साहक दृष्टि और प्रेमपूर्ण कृपा इस काम को सम्पन्न करने में प्रतिक्षण सबल बनी रही है, और जिनके आदेश से ही मैं यह प्रबन्ध इतनी तन्मयता से पूर्ण कर सका—

आगरा विश्वविद्यालय की 'रिसर्च डिगरी समिति' को तथा अन्य अधिकारियो को, जिन्होंने इस अनुसधान मे प्रवृत्त होने की मुझे स्वीकृति प्रदान की—उन समस्त लेखको तथा प्रकाशको को तथा उन सभी पुस्तकालयो के व्यवस्थापकों को जिनके ग्रन्थो अथवा निबन्धो का मैंने इस अनुसधान मे उपयोग किया है—

अपने सहयोगी और मित्र विद्वान प० उदयशकर शास्त्री को जिनके निजी ग्रन्थ-भडार से, अन्यत्र दुर्लभ प्रकाशित तथा अप्रकाशित मूल ग्रन्थ-रत्न मुझे प्राप्त होते रहे, तथा जिनकी प्रेरणा इस प्रबन्ध के प्रकाशन मे अत्यन्त प्रेरक रही, तथा जिनके परामर्शों ने मुझे उनका अत्यन्त ऋणी बनाया—

अपने परम हितैषी अनुसधान-मार्तंड श्री अगरचन्द नाहटा (बीकानेर) को जिनके प्रकाशित कितने ही निबन्धो से प्राप्त नव-नव सामग्री का मैंने निस्सकोच उपयोग किया है—

आचार्य प्रवर डा० प० हजारीप्रसाद द्विवेदी को जिनकी साहित्य में लोकतात्विक दृष्टि उनकी साशीर्वाद कृपा की भाँति सदा मेरे अनुसधान मे प्रकाश देती रही—

मुझे अत्यन्त स्नेह से 'चिर मित्र' सबोधन करने वाले पर मेरी साहित्य-साधना और आराधना के आदर्श गुरुवत् डा० वासुदेवशरण अग्रवाल को, जिनकी लोक-वदमयी ज्ञान-गर्भा वाणी के प्रोत्साहन ने इस प्रबन्ध के प्रकाशन के लिए आवश्यक आस्था प्रदान की, और जिन्होंने इस अकिंचन के इस प्रबन्ध-तृण को विद्वत्तापूर्ण 'भूमिका' से ऊपर उठा इसको साहित्य-देव की पूजा मे चढ़ा दिया है—

आगरा विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री कालकाप्रसाद भटनागर को, जिनके जीवन का प्रत्येक पल शिक्षा और शिक्षार्थी की कल्याण कामना मे तपस्वी की भाँति बीता है और बीत रहा है, जो उच्च अर्थशास्त्री हैं, पर जिन्हें अपने शायर पूर्वजो से साहित्य प्रेम दाय मे मिला है, जिन्होंने हिन्दी की मौलिक सपन्नता के लिए क० मु० हिन्दी विद्यापीठ को अनवरत कर्म-

निष्ठता से एक दृढता प्रदान की है, जिनके उपकुलपतित्व मे ही इस प्रबध को डी० लिट्० की उपाधि के योग्य समझा गया, और जिन्होने अत्यन्त कृपापूर्वक इस अकिंचन की प्रार्थना पर इस ग्रन्थ का समर्पण स्वीकार किया है—

तथा विनोद पुस्तक मंदिर आगरा को, जिन्होने आग्रहपूर्वक यह ग्रन्थ छापा है, जो अन्यथा अभी न जाने कब तक यो ही पडा रहता,

और,

अन्त मे जिन प्रथम वन्दनीय महानुभाव का मुझे सादर स्मरण करना है वे हैं विश्व विश्रुत विद्वान श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी भूतपूर्व राज्यपाल उत्तर प्रदेश तथा भूतपूर्व चांसलर (कुलपति) आगरा विश्वविद्यालय, जिन्होने प्रत्यक्ष तथा परोक्ष, मौखिक तथा लिखकर, निजी रूप से तथा कुल पति के पत्रो द्वारा मुझे अनुसंधान में प्रवृत्त देख प्रसन्नता प्रकट की तथा इस प्रबध के शीघ्रातिशीघ्र पूर्ण करने की बलवती प्रेरणा प्रदान की।

—सत्येन्द्र

मध्ययुगीन

हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन

विषय-सूची

(विषय निर्देश के साथ वडे कोष्ठक मे पृष्ठ सख्या दी गयी है)

प्रथम अध्याय : लोक साहित्य

दूसरा अध्याय

निर्गुण सम्प्रदाय के तत्व

तृतीय अध्याय

प्रेमगाथा

—विकास-दृष्टि और योगी—काम कथाएं [३५६-३५७]—कामकथा का स्थान [३५८] योगी कथा—सिद्ध कथा—वीरकथा [३५६]—वीरकथा [३६०] —वणिक कथा—इन कथाओं मे न्तर [३६१-३६२]।

चतुर्थ अध्याय

सगुण भक्ति काव्य

पाँचवा अध्याय

राम-शाखा

छठवाँ अध्याय

काव्य-रूपों मे लोक-तत्वों की प्रतिष्ठा

सातवाँ अध्याय

लोक-विश्वास

उपसहार

परिशिष्ट—१

परिशिष्ट—२

परिशिष्ट—३

परिशिष्ट—४

परिशिष्ट—५

—:०:—

प्रथम अध्याय : तर्क साहित्य

प्रथम अध्याय

लोक-साहित्य

परिभाषा

लोक-साहित्य आज एक पारिभाषिक शब्द हो गया है। यह स्पष्टत दो शब्दों से बना है। 'लोक' और 'साहित्य'।

साहित्य शब्द से सभी परिचित है। लोक-विशेषण से विशेषित साहित्य शब्द 'साहित्य' के सामान्य अर्थ से कुछ भिन्न अर्थ देने लगेगा, इसमे कोई सदेह नही। वह अर्थ क्या है और हम आज लोक-साहित्य से क्या समझते हैं, यह जानना आवश्यक है। इसके लिए, लोक, शब्द के अभिप्राय को हमे ठीक ठीक समझना होगा।

लोक—शब्द-कोषों मे 'लोक' शब्द के कितने ही अर्थ मिलेंगे।[1] जिनमे से साधारणत दो अर्थ विशेष प्रचलित हैं। एक तो वह जिससे इहलोक, परलोक, अथवा त्रिलोक का ज्ञान होता है। वर्तमान प्रसग मे यह अर्थ अभिप्रेत नही।

---

१. हिंदी विश्वकोष—१. लोक (स० पु०) लोक्यते इति लोक—घञ। भुवन। लोक सात हैं; सप्तलोक भूर्लोक, भुवर्लोक, स्व मह ''जन' तप : सत्य (अग्नि पु०)। सुश्रुत मे लोक दो स्थावर,जंगम,'''एकमात्र पुरुष इन सब लोको के अधिष्ठाता। (सुश्रुत सूत्रस्था १ अ०)'''२. जन, आदमी ३ स्थान, निवास स्थान, ४, प्रदेश, दिशा, ५, समाज, ६, प्राणी, ७, यश, कीर्ति।

दूसरा अर्थ 'लोक' का होता है 'सामान्य जन'। इसी का हिन्दी रूप 'लोग' है। इसी अर्थ का वाचक "लोक" शब्द साहित्य का विशेषण है। किन्तु इतने से 'लोक' का वह अभिप्राय विदित नहीं हो पाता जो साहित्य के विशेषण के रूप मे वह प्रदान करता है।

वास्तव मे साहित्य को यह एक नया विशेषण मिला है। भाषा की दृष्टि से साहित्य का भेद हमे विदित है। हम हिन्दी साहित्य, बँगला साहित्य, अँग्रेजी साहित्य कहने और समझने के अभ्यस्त हैं। वैसे ही स्थल-भेद मे भी साहित्य हमारे लिए अपरिचित नही, भारतीय साहित्य, यूरोपीय साहित्य आदि। भाषा और स्थल के भेद भौगोलिक हैं किंतु यह लोक-साहित्य किस प्रकार का साहित्य है, 'लोक' विशेषण किस अन्य प्रकार के साहित्य की सभावना मानता है, ये प्रश्न हैं। भारतीय साहित्य में तो हमें परम्परा से 'लोक' और 'वेद' का कुछ विभेद विदित होता है। लोक-परिपाटी और वेद-परिपाटी जैसे दो पृथक परिपाटियाँ हो।*

लोक-वेद का यह पुराने काल से चले आने वाला अन्तर यह बताता था कि जो वेद मे स्पष्टत नही है, वह यदि लोक मे हो, अथवा जो वेद मे है उसके अतिरिक्त भी यदि और कुछ लोक मे हो तो वह लौकिक है। 'लोक' अथवा 'लौकिक' शब्द साहित्य में किसी अवहेलना अथवा उपेक्षा का 'भाव' प्रकट नही करते थे। किंतु लोक-साहित्य का 'लोक' वेद से इस भिन्नता को प्रकट करता हुआ भी उस अर्थ को प्रकट नही करता जो वह लोक-साहित्य में करता है। वहाँ वैदिक से भिन्न शेष समस्त बातें लौकिक कहलायेंगी। कालिदास का 'शकुन्तला' नाटक, भारवि, माघ, भवभूति की रचनाएँ सभी लौकिक कोटि की होंगी, किन्तु ये 'लोक-साहित्य' नहीं।

वस्तुत इसके लिए हमें अन्यत्र देखना होगा। क्योंकि लोक-साहित्य शब्द अँग्रेजी का अनुवाद है। यह अँग्रेजी के जिस शब्द का अनुवाद है वह है 'फोक लिटरेचर'। 'फोक' का पर्याय लोक है और लिटरेचर का 'साहित्य'।

इस 'फोक' के विषय में 'ऐनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका' ने बताया है कि आदिम समाज में तो उसके समस्त सदस्य ही लोक (फोक) होते हैं और विस्तृत अर्थ मे तो इस शब्द से सभ्य से सभ्य राष्ट्र की समस्त जन-सख्या को भी अभिहित किया जा सकता है। किंतु सामान्य प्रयोग मे पाश्चात्य प्रणाली

---

* महाभारत में लोक-वेद-विधि के विरोध को बताने वाले कई वाक्य मिलते हैं। वेदाश्रो, वेदिका, शब्दा, सिद्धा लोकाश्चा लौकिका, प्रियताहिता दाक्षिणात्या यथा लोके वेदे चेतिप्रयोक्तामे यथा लौकिक वेदिकेविति प्रयुंजते। भगवद्गीता मे "अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथत पुरुषोत्तम" आदि।

की सभ्यता के लिए [ऐसे संयुक्त शब्दों में जैसे 'लोकवार्ता' ('फोकलोर') 'लोकसंगीत' (फोक म्युजिक) आदि में इसका अर्थ] संकुचित होकर केवल उन्हीं का ज्ञान कराता है जो नागरिक संस्कृति और सविधि शिक्षा की धाराओं से मुख्यतः परे हैं, जो निरक्षर भट्टाचार्य हैं अथवा जिन्हें मामूली-सा अक्षर ज्ञान है · ग्रामीण और देहाती।

हम अपनी दृष्टि से यह कह सकते हैं कि 'लोक' मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो आभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना अथवा अहंकार से शून्य है और जो एक परंपरा के प्रवाह में जीवित रहता है। ऐसे लोक की अभिव्यक्ति में जो तत्व मिलते हैं वे लोक-तत्व कहलाते हैं।

लोक-साहित्य

ऐसे लोक का साहित्य ही लोक-साहित्य है। साहित्य शब्द भी कुछ जटिल ही है। संस्कृत में इसका अर्थ वह नहीं था जो आज इसका अर्थ है। वहाँ पहले इसका अर्थ काव्य-शास्त्र लिया जाता था। आज यह शब्द अँग्रेजी लिटरेचर का पर्याय है। लिटरेचर का संबंध लैटर्स से है। फलत लिटरेचर के पर्यायवाची 'साहित्य' शब्द के अन्तर्गत ऐसी कृतियाँ ही आ सकेंगी जिन्हें लिखा-पढ़ा जा सके। किंतु सभी जानते हैं कि लिटरेचर अथवा साहित्य की आत्मा लिपि की वर्ण-माला से बँधी हुई नहीं है। साहित्य की कोटि की कोई भी सार्थक शब्दावली साहित्य का माध्यम हो सकती है—एक गीत महादेवी वर्मा लिखती या गाती है, एक गीत गाँव की एक बुढ़िया केवल गाती है। दोनों गीत हैं। आज की साहित्य की परिभाषा में दोनों को ही स्थान देना होगा। कबीर बे-पढ़े-लिखे थे। सूरदास अंधे थे, पढ़-लिख नहीं सकते थे। इनकी रचनाएं साहित्य के अन्तर्गत बहुत समय से मानी जाती रही हैं। अत. साहित्य का अर्थ विस्तृत होगया है। साहित्य के इस विस्तृत अर्थ में आज मनुष्य की वह समस्त सार्थक अभिव्यक्ति सम्मिलित मानी जायगी जो लिखित हो या मौखिक हो, किंतु जो व्यवसाय-क्षेत्र की न हो। ऐसी समस्त लोकतत्व युक्त अभिव्यक्ति लोक-साहित्य के अन्तर्गत होगी।

अत. लोक-साहित्य की परिभाषा यह हो सकती है

परिभाषा . 'लोक-साहित्य' के अन्तर्गत वह समस्त भाषागत अभिव्यक्ति आती हैं जिसमें (अ) आदिम मानस के अवशेष उपलब्ध हो,[1]

---

१. ऊपर जो 'लोक' की परिभाषा दी गयी है उसमें 'परंपरा के प्रवाह' का उल्लेख इसी अवशेष की ओर संकेत करता है। सोकोलोव ने 'रशन फोकलोर' नामक पुस्तक मे लोकवार्ता की प्रवृत्ति पर विचार करते हुए लिखा

(आ) परंपरागत मौखिक क्रम से उपलब्ध भाषागत अभिव्यक्ति हो*
जिसे किसी की कृति न कहा जा सके, जिसे श्रुति ही माना जाता हो,
और जो लोक-मानस की प्रवृत्ति में समायी हुई हो।

है कि "लोक-वार्ता की वस्तु और रूप मे प्राचीन संस्कृतियों के अवशेषों की उपस्थिति न मानना असंभव है।" दूसरे शब्दों मे सोकोलोव यह स्वीकार करते हैं कि लोकवार्ता में पूर्वकालीन संस्कृतियों के अवशेष अवश्य होते हैं। अत: लोक-साहित्य मे प्राचीन संस्कृतियों का अवशेष पहला तत्व है। हमने यहाँ संस्कृति के स्थान पर 'मानस' शब्द का प्रयोग किया है, क्योंकि लोक-साहित्य वाणीगत अभिव्यक्ति है। वाणीगत अभिव्यक्ति मे संस्कृति की छाप को सुरक्षित रखने वाला स्थूल तत्व प्राय नहीं होता। हाँ, उस संस्कृति से जिस मानस का तादात्म्य रहता है, वाणी मे वह मानस अवश्य प्रकट होता है। उसी मानस के अनुकूल लोक-साहित्य की वस्तु और रूप प्रकट होते हैं। इसीलिए 'आदिम मानस' के अवशेष कहना विशेष उपयुक्त है। आदिम शब्द भी निजी अर्थ रखता है। वह अंग्रेजी के "प्रिमिटिव" शब्द का स्थानापन्न है। इस आदिम का अभिप्राय केवल ऐतिहासिक दृष्टि से आदिम अथवा आदिम मानव नहीं वरन् यह शब्द केवल उन गुणों और विशेषताओं तथा धर्मों का द्योतक है जो ऐतिहासिक दृष्टि से आदि मानव में होंगे और जो आज भी आदिम जातियों मे प्रत्यक्षत: तथा सभ्य से सभ्य जातियों मे अप्रत्यक्षत: मिलते हैं। किसी अंग्रेजी कहावत मे बताया गया है कि आदमी को जरा खुरचिये तो आपको पशु दिखायी पड़ जायगा। आज का सभ्य से सभ्य मनुष्य भी अपने आदिम संस्कारों के बीजों को नष्ट नहीं कर सका है। आदिम मानस से लोकवार्ता (फोकलोर) का घनिष्ठ संबंध है. यह ओरेलियो एम० एसपिनोजा ने एक ही वाक्य में स्पष्टता से प्रकट कर दिया है "Folklore may be said to be true and direct expression of the mind of primitive man."

* As it approaches the level of the illiterate and subliterary folklore constitutes a basic part of our oral culture in the proverbial folksay and accumulated mother wit of generations that bind man to man and people to people with traditional phrases and symbols. Folklore derives its integrity and servival value from a direct response to and partcipation in group experience, and the fusion of the individual and the common sense B. A Botkin (P. 399 the Standard Dictionary of Folklore etc,) राल्फ स्टोले वौगस ने भी लिखा है कि:—

(इ) कृतित्व हो किन्तु वह लोक-मानस के सामान्य तत्वो से युक्त हो कि उसको व्यक्तित्व के साथ सम्बद्ध करते हुए भी लोक उसे अपने ही व्यक्तित्व की कृति स्वीकार करे।

लोक-साहित्य का क्षेत्र इस दृष्टि से लोक-साहित्य का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो जाता है। अभिजात्य साहित्य तो प्राय समस्त ही लिपिबद्ध रूप मे प्रस्तुत होता है, और अबतक वही आदर की वस्तु माना जाता था। यह समस्त साहित्य भी विशाल विश्व और उसकी परम्परा को देखते हुए बहुत थोडा है। और इसका क्षेत्र बहुत सीमित है। यह बात लोक-साहित्य के सम्बन्ध मे नही।

लोक-साहित्य मे लोकाभिव्यक्ति होती है। उस लोकाभिव्यक्ति के सामान्यत दो भेद तो हमे स्पष्ट ही दिखायी पडते हैं। यथार्थत तो इसके तीन भेद हैं —

पहली —शरीर-तोपिणी व्यवसाय-प्रधान—ऐसी अभिव्यक्ति जो जीवन की आवश्यकताओ की पूर्ति-मात्र के उपयोग मे आती है। भोजन, आच्छादन, शरण और भोग सम्बन्धी।

दूसरी —मनस्तोपिणी—ऐसी अभिव्यक्ति जो मन को तोप प्रदान करे। आदिम अवस्था मे मन के तोप की अभिव्यक्ति भी व्यावसायिक कोटि की होती थी। मन मे दो भाव मौलिक हैं—आश्चर्य का और भय का। ये प्रकृति-सम्पर्क-जात हैं, पर-प्रेरित-प्रकृति-विपयक। इनमे भिन्न एक मौलिक भाव सहज होता है, निज-प्रकृति-प्रेरित—यह है 'रति' का। यह स्तन-पान का प्रारभिक रूप ग्रहण करता है। प्रकृति-सम्पर्क-जात दो भावो मे से आश्चर्य का परिणाम था 'ज्ञान' और साधन था उत्साह अथवा वीर भाव। भय का आधार था 'अज्ञान'। इसी भय के निवारण के लिए जो अभिव्यक्ति का स्वरूप हुआ वह मनस्तोपी ही कहा जायगा। इसने अनुष्ठान का रूप धारण किया। आज के भी टोटके-टमन्ने-लोक-विधि आदि इसी मनस्तोपिणी अभिव्यक्ति के रूप हैं।

तीसरी —तीसरी अभिव्यक्ति मनस्तोपिणी से आगे मनोमोदिनी भी होती है। यह वह अभिव्यक्ति है जिसका मनुष्य की 'मोद' वृत्ति से सम्बन्ध है "तोपण" से नही। मानव की तीन ही प्रधान वृत्तियाँ दिखायी पडती हैं—

"But fundamentally to the Folklore, their currency must be or have been in the memory of man bequeathed from generation to generation by word of mouth and imitative action rather than by the printed page.

पोषण की, तोषण की तथा मोदन की। पोषण, तोषण और मोदन की लोक-अभिव्यक्तियो का वाणी-रूप लोकसाहित्य के अन्तर्गत है।[1]

इस साहित्य की ऊपरी सीमा शिष्ट साहित्य को स्पर्श करती है और निचली सीमा घोर जगली अभिव्यक्ति को।

आज का मानव समाज केवल ऐतिहासिक दृष्टि से ही भूत से सुसम्बद्ध नहीं, उसका आज का विश्वरूप भी भूत को वर्तमान किये हुए हैं। मनुष्य का इतिहास उसके स्थापत्य-शिल्प-तत्वों मे ही निहित नही, जङ्गली मानवो से शिष्ट मानवो तक मे विद्यमान मौखिक अभिव्यक्तियो की परम्पराओ मे भी है। इस परम्परा के प्रवाह को छोड कर पूर्ण अह-चैतन्य[2] से युक्त होकर जो साहित्य निर्मित किया जाता है, वही लोक-साहित्य से भिन्न कोटि का होता है।*

इस प्रकार लोक-साहित्य का क्षेत्र बहुत विशद है। अत्यन्त आदिम जगली अभिव्यक्तियो से लेकर शिष्ट साहित्य की सीमा तक पहुँचने वाली समस्त अभिव्यक्ति लोक-साहित्य के अन्तर्गत है।

लोक-साहित्य के प्रकार निर्माता मे अह-चैतन्य आकस्मिक ही उदय नहीं होता। अह-चैतन्य का एक क्रम समाज में विद्यमान है। जङ्गली अवस्था मे अह-चैतन्य नितान्त शून्य होता है। आत्यन्तिक सभ्य अवस्था मे यह चैतन्य पराकाष्ठा पर होता है। इस चैतन्य का कुछ सम्बन्ध जीविका-साधन से है, ऐसा विदित होता है। यह सिद्धान्त नितान्त निराधार तो नही माना जा सकता कि सभ्यता का विकास उत्पादन के साधनो के विकास से सम्बद्ध है।

---

१. आदिम काल मे शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी कुछ ऐसी शाब्दिक अभिव्यक्तियाँ होती थीं जिनके उच्चारण से यह विश्वास किया जाता था कि वाछित वस्तु प्राप्त हो सकती है। इसी मूल से जादू-टोने और आगे तत्र-मन्त्र का विकास हुआ जो आज भी विद्यमान है और समाज में एक विशेष स्तर पर अपना आतक जमाये हुए है। ऐसा साहित्य लोकसाहित्य तो है ही विशेषत लोक-वार्ता साहित्य है।

२. अह-चैतन्य व्याख्या चाहता है। निर्माता मे निर्माण के अह का चैतन्य जब जागृत रहता है तब ही वह साहित्य लोकेतर साहित्य की कोटि मे आता है।

*हीन मेधा द्वारा लिखी गयी अहं-चैतन्य से निर्मित रचनाएँ लोकसाहित्य मे परिगणित नहीं होंगी जैसे 'चन्द्रकान्ता' के अनुकरण पर लिखे गये सूर्य-कान्ता आदि।

इस सिद्धान्त के आधार पर प्रत्येक ऐसा वर्ग जो किसी साधन-विशेष से जीविकोपार्जन करता है एक विशिष्ट अह्-चैतन्य का प्रतिनिधि माना जायगा। आज भी ऐसे वर्ग हैं जो किसी-न-किसी ऐतिहासिक साधन को जीविका का आधार बनाये हुए है। इतिहास से मानव-विकास के क्रम मे हमे विदित होता है कि मनुष्य आरम्भ मे शिकार पर निर्भर करता था, शिकार एक उद्योग था। फल और घास भी मिलते थे पर इन्हे उद्योग नही कहा जा सकता था। क्योंकि ये तो सहज ही उपलब्ध थे। शिकार के उपरान्त पशुपालन, तब कृषि * और तब मशीन-उद्योग। आज शिकार करने वाली जातियाँ भी है। ये बहुधा जङ्गलो मे हैं। पशु-पालन और कृषि का सम्बन्ध गाँवो से है, मशीन-उद्योग से नगर स्थित हैं। फलत मोटे रूप मे अह्-चैतन्य की तीन अवस्थाएँ ही होती हैं—जङ्गली, ग्रामीण तथा नागरिक। अह्-चैतन्य की इस क्रमस्थिति मे कितनी ही अन्य स्थितियाँ भी होना स्वाभाविक ही है

---

*. यद्यपि फ्रान्ज बोआजनें लिखा है कि : "With this we are led to a question of fundamental importance for the theory of unilinear evolution : What is the chronological relation between agriculture and trading. When we approach this question from a psychological view-point the difficulty arises that we are no longer dealing with one single type of occupation carried on by the same group but that we have two occupations distinct in technique and carried on by distinct groups The activities leading to the domestication of animals have nothing in common with those leading to the cultivation of plants. There is no bond that makes plausible a connection between the chronological development of these two occupations. It is missing because the persons involved are not the same and because the occupations are quite distinct. From a psychological point of view there is nothing that would help us to establish a fine sequence for agriculture and trading"

अहं-चैतन्य की अवस्थाएँ
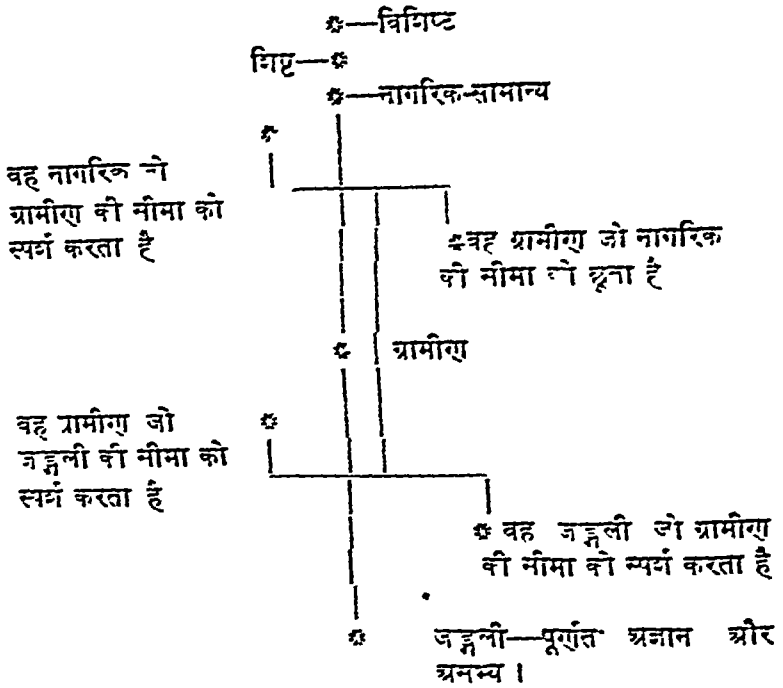
ये सभी स्थितियाँ आज के जटिल समाज में किसी न किसी रूप में पृथक पृथक वर्गों में ही नहीं, एक ही वर्ग में एक साथ ही स्थित मिल जाती हैं।[1]

किन्तु लेखक एक बात पर ध्यान देना भूल गया है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण का सर्वथा अभाव कभी नहीं हो सकता। पशु-पालन और कृषि के ऐतिहासिक क्रम को समझने के लिए आज हमें कोई इतिहास या पुरातत्व के पदार्थ नहीं मिल सकते पर मनोस्थिति को हम आज भी समझ सकते हैं। कृषि के लिए स्थायी निवास और प्रतीक्षा या धैर्य की अपेक्षा है। जैसा वोग्राञ ने स्वयं बताया है कि कृषि का सम्बन्ध स्त्रियों से होना चाहिए, पशुपालन का पुरुषों से; यह आंशिक सत्य है, पूर्ण सत्य नहीं। कृषि की आदिम अवस्था 'फ्रूटगैदरिंग' फल-संग्रह से स्त्रियाँ सम्बन्धित मानी जा सकती हैं पर कृषि से नहीं। कृषि एक कठिन कर्म है और जटिल भी। पशु-पालन एक साधारण सरल व्यापार है, जिसमें पशु स्वयं भी पालक को सहायता पहुँचाता है। कृषि ऐसा व्यापार नहीं। यह स्थायी निवास और धैर्य तथा जटिल साधनों का उपयोग अधिक समय चाहता है। अतः यह पशु-पालन से संस्कृति के विकास-क्रम में आगे ही उपस्थित हो सकता है।

१. लेवी ब्रूहल नाम के विद्वान ने आदिम मनोवृत्ति नामक

पृथक पृथक वर्गो की बात तो निर्विवाद और सहज मान्य है। शिकारी जगली जातियाँ आज भी पहाडो और घने जगलो मे हैं। पशु-पालन के लिए घूमने वाले अथवा पशु-पालन मे ही दक्ष जातियो के वर्ग शहरो और गाँवो के छोरो पर मिल जाते हैं। इनके अतिरिक्त भी अन्य कितनी ही घुमक्कड जातियाँ आज यहाँ विद्यमान हैं। अत आज की समाज यो जटिल है। किन्तु सब से अधिक जटिलता वहाँ दिखायी पडती है, जहाँ एक ही वर्ग मे विभिन्न स्थितियाँ एक साथ चलती दिखायी पडती हैं। भारत के किसी घर मे प्रवेश करके उसमे होने वाले प्रत्येक कृत्य और सस्कार पर ध्यान दीजिये तो एक अनोखा वैविध्य दिखायी पडेगा।

भारतीय घर और समाज :—भारतीय घर और समाज मे एक अनोखा वैषम्य अथवा वैविध्य मे सामजस्य मिलता है। उसमे प्रत्येक अनुष्ठान मे कितने ही तत्वो का सयोजन मिलता है। एक सामान्य भारतीय घर का अध्ययन करके ही एक प्रकार से भारत की सस्कृति के पर्तों का अनुमान लगाया जा सकता है। भारतीय घर की ही भाँति समस्त समाज का रूप बनता है। भारतीय घर के इन पर्तों पर दृष्टि डालें तो पहला स्तर टोने-टोटको का मिलेगा। किसी भी प्रकार का अनुष्ठान हो, कोई सस्कार हो, कोई उत्सव हो, एक-न-एक टोना या टोटका उसके साथ लगा हुआ होगा। दूसरे स्तर पर दई-देवताओं की भावना। इन दई-देवताओं मे पितरो की मृतात्माएँ, भूत-प्रेत-हवाए, सन्त-फकीरो की मृतात्माए, मसान, विविध देवियाँ, तथा अनेको

पुस्तक मे आदिम विकार के दो तत्वो को स्वीकार किया था। उसने माना था कि आदिम मानस विवेकपूर्वीय होता है और रहस्यशील होता है। विवेक-पूर्वीय वह इसलिए होता है कि वह विषमीकरण के नियम (law of contradiction) से अबोध रहता है, फलत वह दो विषम विचारो या भावो को एक साथ स्वीकार करने मे भी हिचकता नहीं और उनमे उसे कोई असंभावना नही प्रतीत होती। वह रहस्यशील इसलिए होता है कि अनुभव की बातों की व्याख्या वह अधिकाशत पराप्राकृत के द्वारा करता है, प्राकृतिक कारणों से नहीं। फ्रेजर ने 'गार्नर्डशीव्स' मे लेवी ब्रूहल की इस मान्यता को स्वीकार कर लिया है कि आदिम मानव की विशेषता है कि वह विवेकपूर्वीय और रहस्यशील होता है किंतु उसने साथ ही यह टिप्पणी भी दी है कि इसके अर्थ यह नहीं हैं कि शिष्ट मानव इन दोनों से मुक्त होता है। आदिम मानस और शिष्ट मानस मे केवल कोटि-क्रम (degree) का ही अन्तर है, प्रकार का अन्तर नहीं।

अन्य देवता सम्मिलित हैं। इनमे से एक पर्त्त पर दई-देवताओं को निवारण करने के टोटके रहते हैं। दूसरे पर्त्त पर उनकी पूजा रहती है। इनके ऊपर सामान्य धार्मिकता का वातावरण रहता है, तब शास्त्रीय धार्मिक आनुष्ठानिकता का सत्कार होता है। उसके ऊपर एक ही घर मे वह जागरूक धार्मिक मतवाद मिलेगा जो दार्शनिक सिद्धान्तो को ग्रहण करता है। इसी से सघर्ष करता हुआ सुधारवृत्ति का सस्कार भी पनपता दिखायी पडेगा, जो प्राचीन मान्यताओं और विश्वासो के मूल तात्पर्य और रूप की तो रक्षा करेगा, पर उसे पोशाक समय की प्रवृत्ति के अनुकूल पहना देगा। इसी घर मे आपको एक ओर वैज्ञानिक विचारशील और विवेकशील स्तर भी मिल सकता है।

भारतीय घर

भारतीय घर मे प्रत्येक स्तर के अनुकूल चित्र-रचना, मूर्तविधान, कथा-कहानी, सगीत तथा नृत्य, पूजा-पाठ, मत्र-पाठ, यज्ञ, पौरोहित्य, भोजन-व्यवस्था आदि तत्व भी मिलेंगे। यो प्रत्येक अनुष्ठान के साथ जीवन की अभिव्यक्ति के प्रत्येक रूप की किसी न किसी विधि से प्रतिष्ठा होगी। और उसमें प्रत्येक स्तर के स्वरूप का अपना अलग इतिहास झाँकता दिखायी पडेगा।

भारतीय घर की गहरायी मे प्रथम स्तर आनुष्ठानिक टोने-टोटको का मिलेगा। जीवन के सस्कारो से इनका अनिवार्य सम्बन्ध है। यो तो जीवन के सोलह सस्कार माने गये हैं पर प्रमुख तीन ही है—जन्म, विवाह और मृत्यु। इन तीनों अवसरो पर भारतीय घर जटिल अनुष्ठानो का आकर बन जाता है, घर का प्रत्येक घडी-पल इन अनुष्ठानों से परिपूर्ण हो जाता है। इसमे आप को आदिम चित्रकला के प्रतीक मिलेंगे और वैसे ही गीत भी। इन अनुष्ठानों को विधि-पूर्वक सपन्न करने का ही विशेष ध्यान रहता है, किसी श्रद्धा आदि का भाव नहीं रहता। एक भय यह व्याप्त रहता है कि कोई विधि या अनुष्ठान छूट न जाय, अन्यथा कुछ अशुभ हो सकता है। इसी घर में आप को जीवन-मगल के उत्सव और त्यौहार दिखायी पडेंगे, जिनकी रीढ तो आदिम भावना से युक्त होगी,[1] जिनमे यजमान-पुरोहित प्राय स्त्री ही होगी, किन्तु

[1]—किसी भी त्यौहार को लिया जा सकता है। उसका वह आनुष्ठानिक अश जो स्त्री के द्वारा सम्पादित होता है, रीढ़ होगा और उसमे आदिम भावना का बीज होगा। दिवाली को चित्रित करना, साहू पूजा, गौर पूजा और दौज की कहानी दिवाली के त्यौहार की रीढ हैं। इसी प्रकार प्रत्येक हिन्दू त्यौहार में यह रीढ़ दिखायी पडेगी।

जिनमे रक्तमांस ऋषि अथवा द्रष्टा (seer) ने अपने दर्शन से चढाया होगा। यह दर्शन भी वह होगा जो आदिम मानव की भावना के गर्भ मे से अर्द्धस्फुट होता विदित होगा, जिसके चारो ओर एक विवेक-पूर्वीय और रहस्यशील आवरण आवृत्त होगा।[1] इन अनुष्ठानो मे एक उल्लास और उमग का समावेश रहता है, एक मंगल और समृद्धि की भावना विद्यमान रहती है। इन उत्सवो मे विविध दृष्टिकोणो और साम्प्रदायिक भावनाओं का अद्भुत सम्मिश्रण मिलेगा। इनमे एक ओर शकटचौथ (सकटचौथ) गणेश-पूजा से सम्बन्ध रखनेवाली होगी, तो दूसरी ओर नागपूजा होगी, अनन्त-पूजा होगी, कही व्रत और उपवास होंगे, कही रात्रि-जागरण, कही जुआ-खेलना, और मदिरा-सेवन तक। यही जीवन-शोधन की नयी प्रणालियाँ भी साथ-साथ मिलेंगी और पदार्थवादी दर्शन और बौद्धिकता मे विश्वास, नये से नये विचारक के साथ चाय पार्टियाँ और सिनेमा-दर्शन, टेबिल-कुर्सी सब कुछ। अत अहचेतन्य के विविध स्तरो का एक ही केन्द्र पर अद्भुत समीकरण यहाँ दिखायी पडता है।

लोक-साहित्य का कोटिक्रम

इस दृष्टि से लोक-जीवन की अभिव्यक्तियो का अध्ययन क्षितिजीय (horizontal) ही नही होना चाहिए, तलगामी (perpendicular) भी होना चाहिये। यो जब हम देखेंगे तो लोकाभिव्यक्ति के वाणी-रूप साहित्य को क्रमश कुछ इस कोटि-क्रम में पायेंगे। (देखिये पृष्ठ १२ का चित्र)

१–दिवाली पर लक्ष्मी, सरस्वती, गणेश आदि की पूजा को स्थान देना तथा मंत्र-यज्ञ से उनकी पूजा इसके उपलक्षण हैं।

अहं-चैतन्य और साहित्य के रूपों का क्रम
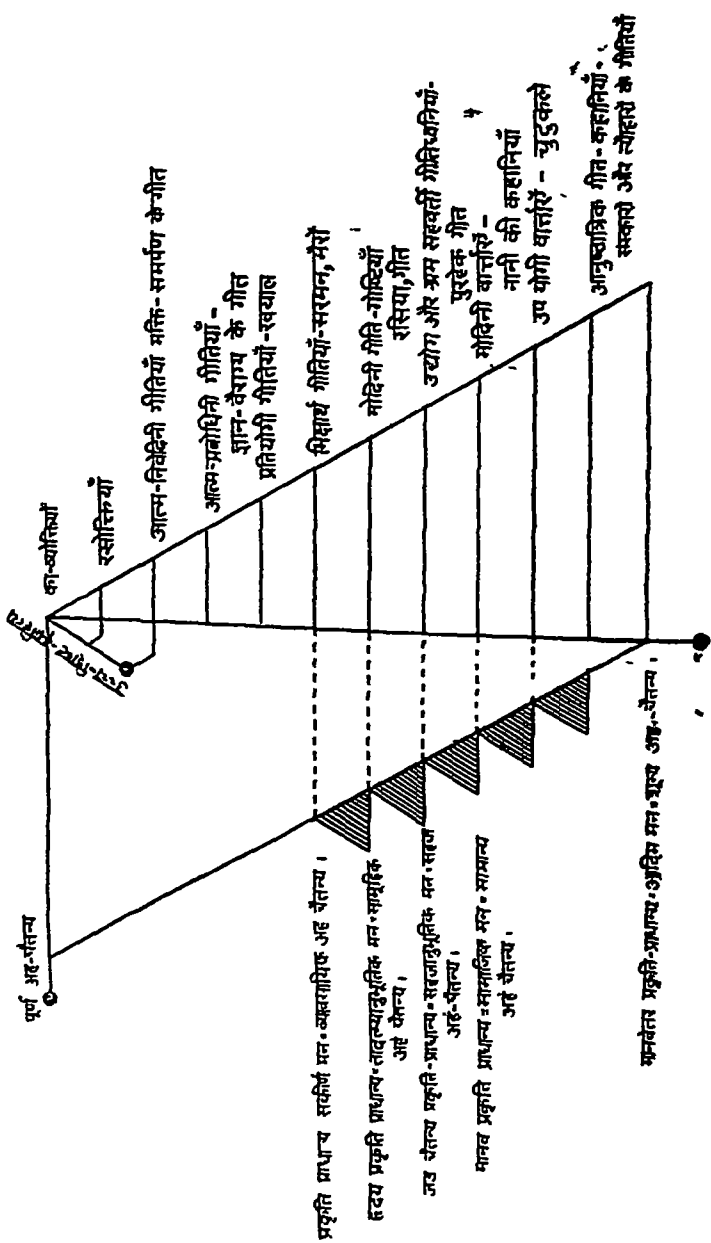
इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि आज भी हमें आदिम से लेकर शिष्टतम मनोवृत्ति से निस्रत साहित्य एक साथ प्राप्त है। साहित्य में अहंचैतन्य के इस कोटिक्रम पर दृष्टि डालने से एक आंशिक अहंचैतन्य की सतत अवस्थिति का पता चलता है। इस अहंचैतन्य में चैतन्य का कोई न कोई प्रकार रहता ही है। किन्तु वह पूर्ण 'अहचैतन्य' तक अवैज्ञानिक रहता है। अवैज्ञानिक अहचैतन्य में लोक-तत्व किसी न किसी रूप में अवश्य समाविष्ट हो जाता है। लोक-तत्व जहाँ प्रधानता से विद्यमान है वहाँ 'लोक-साहित्य' को विद्यमान मानना ही होगा। लोक-तत्व का तो यो किसी न किसी मात्रा में प्रत्येक युग के उच्च साहित्य मे,जैसे यूनानी 'ईलियड' तथा 'ओडेसी',भारतीय रामायण,किरातार्जुनीय, रघुवंश, मेघदूत, शिशुपाल वध आदि, अंग्रेजी के पैरेडाइज लास्ट, शेक्सपीयर के नाटक, गेटे की प्रसिद्धकृति, आदि सभी में, लोक-तत्त्व का समावेश है। भारत में तो इसकी और भी प्रबलता है। किन्तु ऐसे उच्च शिष्ट साहित्य मे लोक-तत्त्व प्रेरणा अथवा आधार का काम देता है, प्रधानता ग्रहण नही करता।

अभिव्यक्ति के अंग

किसी भी अभिव्यक्ति के निम्नलिखित अंग होते हैं

(१) सामग्री (२) सामग्री का विन्यास (३) विन्यास-शिल्प (४) अभिप्राय-ग्रथन (५) अर्थ-द्योतन (६) कथन शैली। (अ) प्रतिपादक शैली, (आ) भाषा शैली, (७) व्याप्त मनोस्थिति अथवा मानस। उदाहरणार्थ रामायण मे—

१, रामचरित्र सामग्री है, २, उस चरित्र का ढाँचा कैसा हो, यह विन्यास है, ३, उस ढाँचे मे सौष्ठव कैसे लाया, जाय यह विन्यास-शिल्प है, ४, उस ढाँचे में किन घटनाओ, तत्वों अथवा अभिप्रायो (motifs) को किस प्रकार कहाँ रखा जाय, यह अभिप्राय-ग्रथन है, ५ इसके द्वारा क्या अर्थ प्रकट करना है, यह अर्थ-द्योतन है, ६ समस्त सामग्री और अर्थ को किस विधि से अधिकाधिक उत्कर्ष युक्त प्रेषणीयता प्रदान की जाय, यह कथन-शैली का धर्म है, ७ इस समस्त क्रम मे एक मनोस्थिति व्याप्त रहना अनिवार्य है।

वस्तुत यह व्याप्त मनोस्थिति ही सब से प्रमुख तत्व है। इससे कला का रूप तो नही निर्धारित होता, साहित्य का प्रकार निर्धारित हो सकता है। साधारणत इस व्याप्त मनोस्थिति से ही शेष समस्त अंग प्रभावित हो जाते हैं। फिर भी अन्य साहित्यिक रचना मे विन्यास-शिल्प, अर्थ-द्योतन और कथन-शैली मे लोक-साहित्य से भिन्नता दीख पड़ती है। इन्ही मे 'अह-चैतन्य'

की परिपूर्णता दिखायी पड़ती है, शेष में तो उनमें लोकप्रियता की दृष्टि से लोक-साहित्य की सामग्री का उपयोग करना आकर्षक प्रतीत होता है।

हमें लोक-साहित्य के यथार्थ स्वरूप-ज्ञान के लिए इन सभी अङ्गों में व्याप्त मनोस्थिति अथवा 'मानस' को भी समझना आवश्यक है। लोक-साहित्य एक अंग है लोक-वार्ता का। लोक-वार्ता में भी लोक-मानस की व्याप्ति रहती है।

लोकवार्ता के तत्व तथा लोक-मानस

लोक-वार्ता[1] के अन्तर्गत वह समस्त अभिव्यक्ति आती है जिसमें आदिम मानस के अवशेष आज भी दिखायी पडते हैं।[2] आज की वैज्ञानिक दृष्टि यह

१. मैरेट ने गोम्मे के एक उद्धरण के द्वारा फोक्लोर के क्षेत्र का स्वरूप बहुत ही स्पष्ट प्रस्तुत किया है, वह उद्धरण यों है —"Folklore may be said to include the culture of the people, which has not been worked into the official religion and history. but which is and has always been of self-growth'--Psychology and Folklore by R.R. Marett. P, 76

2 (I) Modern researches into the early history of man, conducted on different lines have converged with almost irresistible force on the concluison, that all civilized races have at some period or other emerged from a state of savagery resembling more or less closely the state in which many backward races have continued to the present time, and that long after the majority of men in a community have ceased to think and act like savages, not a few traces of the old ruder modes of life and thought survive in the habits and institution of the people Such survivals are included under the head of folklore, which, in the broadest sense of the word, may be said to embrace the whole body of a peoples traditionary beliefs and customs so far as these appear to be due to the collective action of 'the multitude' and can not be traced to the individual or great man—Frazer : Man, God and Immortality (1927) p p 42.

(II) Myth arose in the savage condition prevalent in remote ages among the whole human race· it remains comparatively unchanged among the

मानती है कि विश्व की प्रत्येक मानव जाति ने अपनी यात्रा का आरम्भ आदिम वर्बर अवस्था में किया है। मनुष्य की दैवी उद्भावना और दिव्य महत्ता-युक्त आरम्भ में विश्वास करना आज मूर्खता समझी जाती है।[१] वर्बरावस्था से विकसित होकर मनुष्य ने आज की सभ्यता उपार्जित की है। जैसे विकसित होने पर भी मनुष्य आदिम मनुष्य का ही रूपान्तर है उसी प्रकार मनुष्य की अभिव्यक्तियों में भी आदिम अभिव्यक्ति के अवशेष रह ही जाते है। वे अवशेष लोकवार्ता हैं और लोकवार्ता-शास्त्र के अध्ययन की वस्तु हैं। किन्तु लोकवार्ता जिन अवशेषों का अध्ययन करती है, वे अवशेष केवल मूल आदिम मनुष्य के हैं इस बात को निश्चय पूर्वक आज किसी भी शास्त्र अथवा विज्ञान को कहने का अधिकार नहीं है। क्योंकि आरम्भिक आदिम मनुष्य इतना प्राग्ऐतिहासिक है और मनुष्य के अनुमान के भी इतने परे है कि उसके संबंध में निश्चय रूप से कुछ भी कहना अवैज्ञानिक माना जायगा। वस्तुतः लोकवार्ता के अवशेषों के अध्ययन का अर्थ है कि उस आदिम लोक-प्रवृत्ति को समझा जाय जिसके परिणामस्वरूप लोकवार्ता प्रस्तुत होती है—यह लोक-प्रवृत्ति जब जहाँ-जहाँ जिस मात्रा में विद्यमान मिलेगी, वहाँ तब-तब उसी परिमाण

---

modern rude tribes who have departed least from these primitive conditions. while even higer and later grades of civilisation, partly by retaining its actual principles, partly by carrying on in its imperfect result in the form of ancestral tradition, have continued it not merely in toleration but in honour"—

Tylor, Primitive Culture Vol. 1. p. 213 quoted in Poetry & Myth. : Prescott at P. 13.

(III) Folklore means the study of survivals of early customs, beliefs, narrative and art—An Introduction to Mythology by Lewis Spence, p 11

१ Indeed the notion that man began with pure moral and religious ideas and a sensible language but gradually became possessed by a licentious imagination and so formed untrue and unlovely conceptions, has been quite given up; and we see instead that he began with the crudest dreams and fancies, which were by a long, natural and (in general) healthy growth, gradually elevated and refined.—Poetry and Myth by Prescott p. 101

मे लोकवार्ता भी मिलेगी। विश्वामित्र और वशिष्ठ, राम और कृष्ण, विक्रमादित्य तथा गोरखनाथ के सम्बन्ध मे हमे अनेक लोकवार्ताएँ मिलती हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से ये व्यक्ति और इनसे सम्बन्धित ये लोकवार्ताएँ आदिम मनुष्य के द्वारा उद्भावित नहीं। विश्वामित्र तथा वशिष्ठ की लोकवार्ताएँ वैदिक काल की देन हैं, राम-कृष्ण की पौराणिक काल की। विक्रम की कहानियाँ डेढ दो हजार वर्ष पूर्व आरम्भ हुई होंगी और गोरख की साल सौ आठ सौ वर्ष पूर्व। ये सभी लोकवार्ताएँ हैं, आज इनका इसी रूप मे लोकवार्ता के अध्येता उपयोग करते हैं। फलत लोकवार्ता की वस्तु की नहीं, लोकवार्ता की प्रकृति की विशेषताएँ समझने की आवश्यकता है, और इसी प्रकृति में हमे आदिम मानव की प्रवृत्ति के अवशेष देखने को मिलेंगे। प्रत्येक वार्ता मे दो बातें स्पष्टत. मिलती हैं :[1] एक कोई न कोई आधार तथ्य, दूसरे इसका गृहीत स्वरूप। तथ्य तो तथ्य है, सूर्य तो सूर्य है, पर उसका गृहीतस्वरूप क्या है? प्राकृतिक विज्ञानवेत्ता के लिए वह एक अग्निपिंड है और उसका मात्र भौतिक स्वरूप ही उसे मान्य है। पर लोकवार्ताकार के लिए वह सूर्य एक मनुष्य की भाँति है, उसके माँ है, उसके स्त्री है, स्त्री फूहड है[2] आदि। तथ है कि गोरखनाथ एक योगी हुए हैं, और उन्होंने एक प्रबल सम्प्रदाय भारत मे चलाया। किन्तु गोरखनाथ के उस ऐतिहासिक तथ्य को लोकवार्ता ने एक अद्भुत स्वरूप दिया है। लोकवार्ता का मूल रहस्य इस स्वरूप में ही है, यह स्वरूप ही उस प्रवृत्ति का परिणाम है, जिसे लोक-प्रवृत्ति कहते हैं। इस लोक-प्रवृत्ति मे ही हमे आदिम मानव की प्रवृत्ति के अवशेष मिलते हैं, इन्हीं अवशेषो के परिणामो का अध्ययन लोकवार्ता के अध्ययन का विषय होता है। आधुनिक लोकवार्ता-वेत्ता इस लोकवार्ता-प्रवृत्ति का ही अध्ययन विशेषत करते हैं। लोकवार्ता को जन्म देने वाली

---

१ "Every tradition, myth or story contains two perfectly independent elements—The fact upon which it is founded and the interpretation of the fact which its founders have attempted' (Gomme: Folklore as an Historical Science Page 10) यह प्रत्येक कला के सम्बन्ध मे हो कहा जा सकता है। Thomas Craven ने अपनी 'Famous Artists: their Models' नामकी भूमिका मे लिखा है "It needs to be said again that the art business has two sides to it. First the subject, and second the way in which the subject is treated P X

२ ब्रज की एक लोकवार्ता जो सूर्यनारायण के व्रत पर रविवार को कही जाती है।

लोक-प्रवृत्ति को लोक-मानस या जन-मानस से संवंधित माना जा सकता है। यह लोकसानस या जनमानस उस प्रवृत्ति से बिलकुल भिन्न और अद्भुत होता है, जो सभ्य तथा सस्कृत मनीपिता को प्रकट करती है, और जिसे 'मुनि-मानस' से सवधित माना जा सकता है। इस दृष्टि से समस्त मानव समुदाय के मानसिक स्वरूप को तीन भागो मे बाँट सकते हैं। प्रथम लोक-मानम, द्वितीय जन-मानस, तृतीय मुनि-मानस। लोक-मानस वह मानसिक स्थिति है जो आज आदिम मानव की परपरा मे है, उसी का अवशेप है। आज के सभ्य समाज के मानसिक स्वरूप मे इसे सवसे नीचे का धरातल माना जा सकता है। मुनि-मानस वह मानसिक स्थिति है जो मानव-समाज ने सभ्यता के विकास के साथ साथ उपार्जित की है। यह आज के समाज के मानसिक स्वरूप का सवसे ऊँचा धरातल माना जा सकता है। मध्य की स्थिति जन-मानस की है। लोक-मानस से लोकवार्ता का जन्म होता है। मुनि-मानस से दर्शन, शास्त्र तथा विज्ञान और उच्च कलाओ का। जन-मानस साधारण व्यवसायात्मक वुद्धि से सवध रखता है। यह केवल व्यवहार मे ही परिणति पाता है, और व्यवहार मे ही विलीन हो जाता है, कोई अन्य मूर्त अभिव्यक्ति इससे नही होती। फलत. यदि हम लोकमानस को समझ लें तो हम लोकवार्ता की विशेपताओ को भी समझ लेंगे।[1]

लोक-मानस—लोक-मानस लोक-साहित्य के निर्धारण मे सव से प्रमुख तत्व है। अभी कुछ समय पूर्व तक मनोविज्ञान केवल चेतन-मानस को ही स्वीकार करके चलता था। फ्रायड ने अपने अनुसधान से अवचेतन मानस का अनुसधान अथवा उद्घाटन किया। यद्यपि फ्रायड के मत मे अनेको सशोधन हुए हैं फिर भी अवचेतन मानस की सत्ता मे अव सदेह नही रह गया। फ्रायड ने अवचेतन मानस के निर्माण के कारण स्वरूप 'कुण्ठा' को स्वीकार किया था। किन्तु "प्राणिशास्त्र" उत्तराधिकरण को असिद्ध नही कर सका है। हमारे पूर्वजो का दाय हमे हमारे जन्म के साथ मिला है। हमारी प्रवृत्तियाँ इसी दाय का परिणाम हैं। ये प्रवृत्तियाँ उस दाय का परिणाम है जो हमारे निर्माण के

१ फोकलोर तथा साइकालोजी पर विचार करते हुए R. R. Merett ने Psychology and Folklore मे लिखा था : The business of this Society (अभिप्राय है Folklore Society से) is to seek to know the folk in and through their lore so that what is outwardly perceived as a body of custom may at the same time be inwardly apprehended as a phase of mind' P. 12.

मूल-स्वरूप का आधार हैं। इन प्रवृत्तियो का स्थान भी तो मानस में ही होगा। चेतन-मानस मे तो ये विद्यमान मिलती नही, ये तो अवचेतन मानस की भाँति मनुष्य के समस्त व्यक्तित्व को ही प्रेरित और निर्माण करने वाली हैं। फलत' दाय मे प्राप्त मानस का स्थान अवचेतन मानस मे ही हो सकता है। इस प्रकार अवचेतन मानस के दो भेद स्वीकार करने होंगे। एक सहज अवचेतन, दूसरा उपार्जितावचेतन। यह सहज अवचेतन ही लोक-मानस है। हम नही कह सकते कि इस मानस के सबध मे अवचेतनवादियो ने कितना विचार किया है, किन्तु इस मानस की सत्ता मे सन्देह नही किया जा सकता है। आज के मानव को आदिम मानवीय बातो से क्यो रुचि है ? क्यो आज का महान् वैज्ञानिक और घोर बुद्धिवादी भी असंभव तथा अद्भुत लोक-कहानियो मे आकर्षण अनुभव करता है ? क्यो आज भी हम किसी न किसी रूप मे किसी न किसी प्रकार के ऐसे विश्वासो को प्रचलित पाते हैं जिनकी वैज्ञानिक व्याख्या नही हो सकती, जो बौद्धिकता के लिए सहज ही अमान्य हैं ? आज बीसवी सदी के उत्कृष्टतम मनुष्य मे भी हम जब वह रगत देख पाते हैं जो स्पष्ट ही आदिम मानव की वृत्ति का अवशेष ही कहा जा सकता है, तो लोक-मानस की उपस्थिति स्वीकार ही करनी पडती है। श्री हर्बर्ट रीड जैसे साहित्यशास्त्री ने भी ऐसे मानस की सत्ता की ओर सकेत किया है, यद्यपि उन्होंने उसे यह नाम नही दिया है। रीड महोदय का कहना है कि

Such lights come of course, from the latent memory of verbal images in what Freud calls the preconscious state of mind or from still obscurer state of the unconscious in which are hidden not only the neural traces of repressed sensations but also those inherited patterns which determine our instinct (Form in Modern Poetry, P. 36–7)

यह 'इनहैरिटेड पैटर्न' ही हमारा लोक-मानस है। इस लोक-मानस की सत्ता का उद्घाटन करने का श्रेय लोकवार्ताविदो को देना पडेगा। मैरेट महोदय ने लिखा है—

"ठीक जिस प्रकार भीड (क्राउड) का मनोविज्ञान होता है उसी प्रकार उस समूह का भी मनोविज्ञान हो सकता है जिसे सर जेम्स फ्रेजर 'मानव राशि' (Multitude) अथवा कम प्रिय शब्दों में 'लोक' (फोक) कहेंगे।" इन शब्दो से प्रकट होता है कि १९२० के लगभग इस लोक-मनोविज्ञान की संभावना की ओर संकेत ही किया जा रहा था। इस लोक-मानस की स्थिति के विषय मे मैरेट ने आगे कहा

"भीड तो मनुष्य के स्थायी और अनियमित सघ को कहते हैं । ऐसी (सघ) दशा मे यह (भीड) कुछ विशिष्ट प्रकार के कार्यों और आवेशो को प्रदर्शित करती है, इन (विशिष्ट कार्यों और आवेशो) की व्याख्या और विश्लेषण काफी सफलता से किया जा चुका है। अत इसी प्रकार मनुष्य-राशि तो मानो एक स्थायी भीड है और एक ऐसी भीड है जो अपनी सामूहिक प्रवृत्तियों की परपरा के रूप मे चिरगामी रह सकती है, और इस परपरा मे वह विशेष प्रकार के आचरण को प्रकट करती है जो निश्चय ही पृथक रूप से अध्ययन करने योग्य है"......आदि ।

मैरेट ने यही बताया है कि इस दिशा मे कुछ प्रयत्न हुए हैं। उसने एम० लैवी ब्रूह्ल का नाम लिया है जिसने 'सामूहिक मानस' अथवा 'असभ्य जाति" की मनोवृत्ति पर लिखा है। दूसरा नाम मि० ग्रैहम वैलेस का लिया है, उन्होंने उसी दृष्टि से आधुनिक राष्ट्र के जन-मानस का वर्णन किया है। किन्तु साथ ही उन्होंने इस बात पर खेद प्रकट किया है कि—

"हमारे पास बहुत सी विस्तार-व्यापी सामग्री के रहते हुए भी (अभी तक) लोक के मनोजीवन के विशद चित्रण तक का किंचित उद्योग नही हुआ है, फिर उसको (मनोवैज्ञानिक को) वह सामान्य विश्लेषण प्रस्तुत करने के लिए कैसे कहा जाय जिसके द्वारा यह स्पष्ट किया जाता है कि अपनी स्पष्ट अभिव्यक्तियो मे वह प्रत्यक्षत इतना सामाजिक सघशील (gregarious) कैसे और क्यो है (पृ० १२४) ।

अत १९२० के लगभग से इधर लोक-मनोविज्ञान की ओर विद्वानो का ध्यान आकर्षित हुआ । लोकवादियो ने लोक-मानस की सत्ता को स्थापित किया । आज 'लोक मनोविज्ञान' 'साइकीलोजी' एक महत्वपूर्ण मानस-विज्ञान है, जिसकी परिभाषा 'कोप' मे इस प्रकार मिलती है ·

"लोक मनोविज्ञान—जनो का मनोविज्ञान जिसको लोगो (पीपिल्स) के, विशेषत. आदिमो के विश्वासो, रिवाजो, रूढियो आदि के मनोवैज्ञानक अध्ययन मे काम मे लाया जाता है, तुलनात्मक अध्ययन भी इसमे आ जाता है ।" [1]

लोक-मानस की सत्ता का यह उद्घाटन वैज्ञानिक अथवा ज्ञान के क्षेत्र मे एक महत्वपूर्ण घटना है, और उसने इस समय तक की विविध घातक सामूहिक

---

1. Folk psychology—psychology of people applied to the psychological study of the beliefs, customs conventions etc. of people, especially premitive, inclusive, of comapratıve study—(A Dictionary of Psychology by James Drever p. 98)

मनोविज्ञान-विषयक अवैज्ञानिक मान्यताओ और सिद्धान्तो को हटाकर एक शुद्ध वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रदान किया है। यह बात फ्रीज बोग्राज (Franz Boas) की पुस्तक 'दी माइण्ड आफ प्रिमिटिव मैंन मे दिये गये तद्विषयक इतिहास से भली प्रकार समझी जा सकती है। उसे यहाँ सक्षेप मे दिया जाता है।

"सामूहिक मनोविज्ञान मे जातीय मनोविज्ञान (Racial Psychology) का बहुत जोर रहा है। 'लिन्ने' ने 'जातीय रूढरूपो' (Racial Types) का वर्णन करते हुए प्रत्येक जाति के विशेष मानसिक लक्षणो का उल्लेख किया। ऐसे मनोवैज्ञानिक उद्योगो के मूल मे यही स्थापना काम कर रही थी कि उच्च मानसिक उपलब्धियो के लिए उच्च वश परम्परा होती है। बूलेन विल्लियर्स (१७२७), जोहल वेड्डो, तथा ए० ब्लूज ने भी विविध जातियो के मानसिक लक्षणो का निर्धारण किया है।

गोवीन्यू ने इसी सिद्धान्त को पुष्ट करते हुए शरीराकार और मानसिक क्षमता का सम्बन्ध स्थापित किया। प्रत्येक जाति (Race) की शारीरिक विशेषता होती है, और उसी के अनुसार मानसिक सस्थान का निर्माण होता है।

गोवीन्यू ने 'जातीय मानस' के सिद्धान्त को सर्व प्रथम ठोस वैज्ञानिक प्रणाली का आधार प्रदान किया। इस सिद्धान्त ने प्रभाव भी बहुत डाला। इसके समस्त वैज्ञानिक अध्ययन के चार निष्कर्ष थे —

१—जगली जातियो की जो स्थिति आज है वही सदा से रही है और ऐसी ही रहेगी, भले ही वे कितनी ही ऊची सस्कृतियों के सपर्क मे क्यो न आयी हो।

२—जगली जातियाँ जीवन के किसी भी सभ्य ढर्रे में रहती चली जा सकती हैं, यदि वे जन जिन्होने जीवन के उस ढर्रे को निर्मित किया, उसी जाति की श्रेष्ठतर शाखा के हैं।

३—ऐसी ही अवस्थाओं की तब आवश्यकता है जब दो सभ्यताएँ एक दूसरे से आदान-प्रदान करती हैं, और अपने तत्वों से मिलाकर एक नयी सभ्यता का निर्माण करती हैं। दो सभ्यताओं का सम्मिश्रण कभी नही हो सकता। (वे मिलकर एक नयी सभ्यता का निर्माण कर सकती हैं)

४—जो सभ्यताएँ ऐसी जातियो मे उद्भूत हुई हैं जो एक दूसरी के लिए विजातीय हैं, उन (सभ्यताओ) के पारस्परिक सम्पर्क बहुत ऊपरी होते हैं, वे एक दूसरे मे कभी भिद नहीं सकती, और अलग अलग ही रहेंगी।

क्लैम्म (१८४३) ने मानव-जाति के दो भेद स्वीकार किये हैं। एक

कर्तृत्वशील या 'पुरुषअर्द्ध' और 'रम्य' (पैसिव) या 'स्त्री-अर्द्ध'। यह विभाजन सांस्कृतिक आधार पर किया गया था। पारसी, अरब, यूनानी, जर्मन, रोमन जातियाँ, तुर्क, तारतार, चेरकंस (Tcherkess), पेरू के इन्का और पालिनिसिया निवासी—'पुरुष' पक्ष वाली जातियाँ हैं—मगोल, नीग्रो, पापुअन, मलायी, अमेरिकन, इ डियन, आदि 'स्त्री' पक्ष वाली जातियाँ है। पुरुष जातियो का पोपण हिमालय प्रदेश मे हुआ, वही से विश्व मे फैली। इनकी मानसिक विशेपताएं हैं---प्रवल सकल्प-शक्ति, शासन की इच्छा, स्वाधीनता, स्वच्छन्दता, क्रियाशीलता, चचलता, विस्तार की भावना, तथा यात्रा-प्रियता, हर क्षेत्र मे विकास, खोज और परीक्षा की ओर स्वाभाविक रुचि, घोर हठ तथा सदेह। वुत्के ने भी क्लैम्म के मत को स्वीकार किया।

कार्ल गुस्तव केरस (१८४९) ने वताया कि इस पृथिवी की जातियो मे अपने ग्रह (Planet) के ही लक्षण प्रतिविम्वित होने चाहिये—अपने ग्रह (पृथिवी) पर रात होती है, दिन होते हैं, प्रात होता है और साय भी। इसी प्रकार यहाँ चार जातिया हो मकती है। दिवस जाति—यूरोप-निवासी तथा पश्चिमी एशिया निवासी, रात्रि जाति—नीग्रो लोग। प्रात जातियाँ—मगोल। साय जातिया—अमेरिकन इण्डियन। दिवम जातियो की खोपडी वडी होती है। रात्रि जातियो की छोटी। प्रात -साय वाली मध्यम। केरस विविध जातियो का आकृति-निदान भी करता है। केरस ने समस्त जातियो मे तीन को विशेप महत्व दिया है सत्य के निर्माता हिन्दू, सौन्दर्य-निर्माता मिस्री, मानवीय प्रेम के निर्माता यहूदी। अमेरिकन लेखको मे सैम्युल जी० मोर्टन का नाम उल्लेखनीय है। इस लेखक ने विविध जातियो के अध्ययन के वाद यह मत स्थापित किया कि मानव-समूह का जन्म एक से नही अनेक स्रोतो से हुआ है और प्रत्येक जाति की जातीय विशेपताएँ उनकी शारीरिक गठन से घनिष्ठ सम्वन्ध रखती हैं। इस सिद्धान्त को जे० सी० नौट्ट तथा जार्ज आर० ग्लिडन ने नीग्रो लोगो की गुलामी को पुष्ट करने के लिए काम मे लिया। उन्होंने इस वात पर जोर दिया कि नीग्रो जाति का उद्‌भव ही गुलामी के लिए हुआ है।

हाउस्टन स्टीवार्ट चैम्वरलेन ने वताया कि जातियो के मूल उद्‌भव तक जाने की आवश्यकता नही। आज भी तो जातियो के भेद विद्यमान है, इस यथार्थ की उपेक्षा नही की जा सकती। हमे तो केवल यह जानना है कि यह जातिगत भेद क्यो है और कैसे है ? तव वह इंगलिश जाति को यूरोप मे सवमे वलवान जाति वताता है और उसके कारणो पर भी प्रकाश डालता है, गोवीन्यू और चैम्वरलेन का प्रभाव मैडिसन ग्राण्ट पर भी पडा। उसने विश्व

की महान विभूतियो को नौर्दिक रक्त का परिणाम वतलाया है, और कहा है कि विश्व मे मनुष्य मे विकार नीग्रो तथा काली आँखो वाली जातियो से होगा।

लोथ्राप स्टोडुार्ड ने स्थापित किया कि जब दो जातियों से मिश्रित सतति होती है तो उत्तम विशिष्टताओ का ह्रास ही होता है।

ई० वान ईक्स्टेट (E Von Eickstedt) ने जातीय मनोविज्ञान (Race psychology) की नींव डालने की चेष्टा की। वह आधुनिक गेस्टाल्ट- मनोविज्ञान से प्रभावित है, और यही मानकर चलता है कि जब जातीय भेद प्रत्यक्ष है तो उनके मनोविज्ञान तत्व भी स्पष्ट ही दिखायी पडते हैं। इन तत्वो का शारीरिक गठन से सबध होगा ही, क्योंकि शारीरिक गठन और मानसिक आचार से मिलकर ही जातीय इकाई बनती है।

आधुनिक काल मे मनोवैज्ञानिको के कई सम्प्रदाय मिलते हैं

१—वह सम्प्रदाय जो यह मानता है कि जाति ही मानसिक आचार और सस्कृति का स्वरूप निर्धारित करती है। यह दृष्टिकोण प्रबल भावनामूलक मूल्यो के कारण है। इस युग मे राष्ट्रीय भावना के स्थान मे जातीय भावना को महत्व मिल रहा है।

२—वह सप्रदाय जिसे शारीरिक मनोविज्ञान मे विश्वास है। यह मानता है कि शरीर के विन्यास के अनुरूप ही मानसिक स्वरूप होता है। इसका परिणाम यह है कि आज यह विश्वास किया जाता है कि मनोवैज्ञानिक परीक्षण से मनुष्य की सहज बुद्धिमत्ता, भावना-प्रवणता, सकल्प-शक्ति के रूप को जाना जा सकता है।

३—वह सम्प्रदाय जो उत्तराधिकरण (heredity) को मान्यता देता है। इसका सिद्धान्त है सस्कार नही, प्रकृति (Nature not nurture)। दूसरे और तीसरे सम्प्रदाय का परिणाम यह हुआ है कि लोग परिस्थितियो के प्रभाव को नगण्य समझने लगे हैं, समस्त मानसिक निर्माण का मूल उत्तराधिकरण मानते हैं।

४—वह सम्प्रदाय जो परिस्थितियो के प्रभाव को भी स्वीकार करता है, फिर भी यूजेन फिशर की भाँति यह मानता है, कि उत्तराधिकरण से प्राप्त जातीय भेद भी उन परिस्थितियो के विकारो मे व्याप्त रहते हैं।[1]

१. To a great extent the form of mental life as we meet it in various social groups is determined by environment, historical events and conditions of nature further impede the development of

५—वह सम्प्रदाय जो हर्डर के साथ यह मानता है कि इन समस्त प्राणि-शास्त्रीय (Biological) सास्कृतिक अन्तरो का मूल कारण प्राकृतिक परिस्थितियाँ ही हैं।

कार्ल रिट्टर ने भौगोलिक प्रभाव को और भी अधिक पुष्ट किया है।

६—वह सम्प्रदाय जो न जातिवाद को मानता है, न परिस्थितियों को वरन् जो विश्व भर मे मानव की समान स्थिति को स्वीकार करता है। और केवल 'ऐतिहासिक सास्कृतिक' भेद स्वीकार करता है। यह दृष्टिकोण हर्बर्ट स्पेंसर, ई० बी० टेलर, एडाल्फ बास्टिग्रन, लीविस मोर्गन, सर जेम्स जार्ज फ्रेजर के उद्योगों का परिणाम है, जिन्हे आधुनिक काल मे दरखीम तथा लेवी ब्रुहल ने और परिपुष्ट किया है। वुट ने 'फोकसाइकालोजी' मे भी ऐसे ही दृष्टिकोण को बल दिया है। इस मत से विश्व भर मे मानव-मानस की मौलिक समतत्रता (sameness) सिद्ध होती है, वह चाहे किसी जाति का क्यो न हो। इस प्रकार विश्वव्यापी एक मानव-मानस की स्थिति मे विश्वास इस 'लोक-मानस' के सिद्धान्त के द्वारा पुष्ट हुआ है। (यहाँ तक बोआज की पुस्तक के आधार पर)

इस ऐतिहासिक दृष्टिबिन्दु से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह लोक-मानस की उद्भावना सामूहिक-मनोविज्ञान के क्षेत्र मे एक यथार्थवादी, वैज्ञानिक और सबसे महत्वपूर्ण स्थापना है जो ऐतिहासिक क्रम मे आज उपलब्ध हुई है।

यहाँ हमे यह भी समझ लेना चाहिये कि जब हम मानव-मानस मे आज 'लोक-मानस' की स्थिति का उल्लेख करते हैं तो हमारा अभिप्राय उस उत्तराधिकरण के सिद्धान्त से नही जो जातीय दृष्टि से उसे ग्राह्य मानते हैं। मानव ने जन्म लेते ही अपनी आदिम अवस्था मे जो मानसिक उपलब्धियाँ प्राप्त की वे उसकी सहज मानवीय प्रकृति बन गयी। वे ही निरन्तर मानव की परम्परा मे मानव को मानव बनाने के लिए सूत्र रूप मे उत्तराधिकरण के रूप मे, युग-युग मे मानव-मानव मे अवतरित होती चली जाती है। और आदिम दाय के रूप मे अवचेतन के अन्तर्गत कही मूल मानसिक प्रकृति बन कर सभ्यातिसभ्य मानव मे भी विद्यमान रहती है।

---

innate characteristics. Nevertheless, we may certainly claim that there are racially hereditary differences Certain traits of the mind of the Mongol, the Negro, the Melanesian and of other races are different from our own and differ among themselves" (The Mind of Primitive Man p. 31)

लोकमानस के तत्व

फ्रेजर ने यह स्थापित किया था कि 'लोक-मानस' के दो प्रधान लक्षण हैं—१—लोकमानम विवेकपूर्वी होता है। उसने प्रिलौजिकल (prelogical) कहा है लौजिक अथवा कार्य-कारण के यथार्थ क्रम को समझ सकने वाले मानस के उद्घाटित होने से पूर्व की स्थिति मे सबध रखने वाली मन की प्रकृति। किन्तु जैसा कि 'विफोर फिलासफी' नाम की पुस्तक मे कहा गया है, "Scholars who have proved at length that primitive man has a prelogical mode of thinking are likely to refer to magic or religious practice, thus forgetting that they apply the Kantian categories, not to pure reasoning but to highly emotional acts "P. 19. क्योंकि वस्तुत वे तर्क तो कर सकते थे। कार्य-कारण-क्रम की आवश्यकता वे समझते थे। पर समवत किसी भी क्रम को ही वे कार्य-कारण समझ लेते थे, कार्य कारण मे व्याप्त यथार्थ कारणत्व और कार्यत्व का तारतम्य उनके लिए महत्व नही रखते थे। अत लोक-मानस को विवेकपूर्वी नही कहा जा सकता। फ्रेजर महोदय ने तो प्रिलाजीकल उसे इसलिए माना है कि वह मानस उनकी व्याख्या मे विरोधी तत्वों अथवा विषम-तत्वों (contradictions) का समीकरण करता है।

२ फ्रेजर ने दूसरा लक्षण स्थापित किया कि वह मिस्टिक अथवा रहस्यशील होता है। क्योंकि वे अपने अनुभवो की व्याख्या मे पराप्राकृतिक शक्तियो का आश्रय लेते हैं। पर यह पराप्राकृतिक शक्तियो की शरण लेना वस्तुत उनके मानस की मूल विशेषता नही। यह तो उनकी एक विशेष मूल मनोस्थिति का परिणाम है। वे क्यो पराप्राकृतिक शक्तियो की कल्पना करते हैं यह जानने की चेष्टा करने से ही हम मूल लोक-मानस के तथ्य से अवगत हो सकेंगे।

वस्तुत लोक-मानस का मूल सृष्टि के मनुष्य में विद्यमान सबसे प्रथम अपने जन्म की सहज प्रतिक्रियाओं का प्रतिफल है। आज फ्रायड के सिद्धान्तो से इतना तो अवश्य ही सिद्ध होता है कि उत्पन्न होते समय भी बालक मे मूल काम-भाव व्याप्त रहता है जिसे हम रति कह सकते हैं। रति विस्तार चाहती हैं। बाह्य से आनन्दमय सम्पर्क। किन्तु बाह्य से अपनी रक्षा का भाव भी उसमे सहज है। इसका प्रतिरूप है भय। रति और भय के दो मूल सहज भाव आदिम मानव मे जन्म से आये। रति ने 'रिचुअल' अथवा अनुष्ठानो (विधि) के रूप खड़े किये, भय ने टैबू अथवा निषेध और वर्जन

के रूप । उस 'विधि-निषेध' के कर्म मे हम आदिम मानव मे, जिस मनोस्थिति को विद्यमान देखते हैं वह सबमे पहले अभेद-द्योतक-बुद्धि प्रतीत होती है। 'लोक मानस' चेतन 'निज' और जड 'पर' के स्वरूप को भिन्न भिन्न नही देख-समझ सकता। उसके लिए समस्त सृष्टि उसी के समान सत्ता रखती है। वह व्यक्ति-विशेषी (Subjective) और वस्तु-विशेषी (Objective) भेद करने की सामर्थ्य नही रखता। वह किसी वस्तु को वस्तु के रूप मे नही पाता। उसे प्रत्येक वस्तु अपने समान धर्म वाली ही विदित होती है। वह सूरज को निकलते देखता है,आकाश मे चढते देखता है और समझता है,और अपने इस ज्ञान को वह यथार्थ ज्ञान मानता है। यह ज्ञानरूपक (Alleagory) की भाँति नही होता, और न यह ज्ञान उसके अपने व्यक्तित्व का विस्तार (projection) ही है कि जिसे अपने से इतर सृष्टि को समझने या जानने या अभिव्यक्ति की सुविधा के लिए अपने ही रूप का प्रतिरूप मान लिया गया हो। यह तो उसके लिए इतना ही यथार्थ है, जितना उसका अपना अस्तित्व।

इस यथार्थ का भाव उसमे बहुत प्रबल है। उसके लिए ऐसी समस्त बातें यथार्थ सत्ताशील हैं जो उसे प्रभावित कर सकें, जो उसके हृदय और मस्तिष्क पर एक छाप छोड़ सकें। इस मानसिक स्थिति मे स्वप्न भी उतने ही यथार्थ है जितने कि जाग्रत अवस्था मे दृश्य। ऐसे ही कितने ही ऐतिहासिक कथानक मिल जाते हैं जिनमे स्वप्न की बातो को पूर्ण आस्था के साथ स्वीकार किया गया है। हरिश्चन्द्र ने स्वप्न मे महर्षि विश्वामित्र को पृथ्वी दान दे दी और जग कर भी उस सत्य का पालन किया। बहुत से लोग स्वप्नो से अपने लिए मार्ग-दर्शन की प्रेरणा ग्रहण करते हैं। फारहो[1] ने तो यह बात लेखबद्ध भी कर दी है कि उन्होने कितने ही कार्य स्वप्नो की प्रेरणा से किये। इसी प्रकार भ्रम-दृश्य (Hallucinations) भी आदिम मन के लिए मिथ्या नही, सत्य थे। जमीरिया के अस्सढद्दन के सरकारी विवरणो मे उल्लेख किया गया है कि उनकी सेना जब सिनाई रेगिस्तान मे होकर जा रही थी और बहुत थकी-माँदी थी तो उन्हे दो सिरो वाले हरे उडनेवाले साँप दिखायी पडे थे। तात्पर्य यह है कि भ्रम-दृश्य जैसी वस्तु भ्रम के रूप मे उनके लिए अस्तित्व नही रखती थी। जो उन्हे दिखाई पडा, भले ही वह भ्रम हो, पर जिसने उनके हृदय अथवा मस्तिष्क को प्रभावित किया, उसे वे अस्वीकार नही कर सकते थे, उसकी सत्ता उन्हे यथार्थत: माननी पडती थी। इसी प्रकार, तीसरे, वे जीवित और मृतक मे भी कोई विशेष भेद नही कर सकते थे, स्वप्न मे अथवा जाग्रत स्मृति मे मर जाने वाले के सजीव मानस-चित्रो के आवर्तन से

१. मिस्र के प्राचीन सम्राट।

उसे मृतक भी जीवित की भाँति सत्तावान ज्ञात होते थे। वस्तुत तो उनसे भी अधिक।

चौथे, अश और समग्र वस्तु मे भी वे कोई भेद नही कर सकते। शरीर का एक अश भी, सिर का एक बाल ही क्यो न हो, उसके सपूर्ण शरीर के ही तुल्य ग्रहण किया जाता था। कहानियो मे मिलने वाले अभिप्रायो मे हमे ऐसे बहुत से अभिप्राय मिल जायेंगे, जिनमे किसी व्यक्ति के बाल को आग मे तपाने से उस को बुलाया जा सकता है। इस 'अभेदवाद' मे ही यह मान्यता भी आती है कि नाम भी व्यक्ति से अभिन्न है। अनेको क्षेत्रो मे अपने मे बडो के नाम भूमि पर लिखने का घोर निषेध है, इस निषेध के पीछे यही भावना काम करती है कि नाम पर पैर पडेंगे, और यह ऐसा ही है जैसे स्वय नामधारी पर पैर पडे हो। इसी विश्वास का एक रूप हमे मिस्र के माध्यमिक राज्यो के राजाओ की एक रिवाज मे मिलता है। ये प्यालो पर अपने शत्रुओ के नाम खुदवा देते थे, और उन्हे एक विशेष सस्कार के साथ फोड डालते थे, इससे ये विश्वास करते थे कि अब उनके उन शत्रुओ का नाश हो गया। आज भी ब्रज के गाँवो मे स्त्रियाँ दिवाली और होली पर बैरियरा* कूटती हैं, वे अपने कुटुम्ब के प्रत्येक का नाम लेकर उसके बैरियरा का उल्लेख कर पृथ्वी पर मूसल कूटती हैं। वे यथार्थ मे विश्वास करती हैं कि इससे शत्रु कुचल जायेंगे।[1] वे यह भेद भी नही कर सकते थे कि कार्य कोई और वस्तु है और सस्कारानुष्ठान कोई और। एक किसान अपनी सफल फसल को देख कर यह नही कह सकता था कि यह सफलता उसकी मेहनत का फल था या उसके द्वारा किये गये अनुष्ठान का। उसके लिए दोनो ही एक तत्व बनकर उपस्थित होते है।

इसी प्रकार उसके लिए भावाश (concept) भी मूर्त स्वरूप वाले होते थे। उदाहरण के लिए 'प्राण' उसके लिए मूर्त वस्तु है जिसे वह ले-दे

---

* बैरियरा=शत्रु। 'बैरी' से बैरियरा बना है।

१. इसी मनोस्थिति का एक परिणाम यह है कि तुल्य आकार, वस्तु अथवा पदार्थ में और तुलनीय में भी कोई अन्तर नहीं समझा जाता। टोने और टोटके इसी मनोस्थिति का फल हैं। किसी आदमी का पुतला बना कर उसे काट डालने से वह आदमी स्वय कट जायगा ऐसा माना जाता है। मिस्र मे नूत स्वर्ग की वत्सला देवी मानी जाती है। मिस्र-निवासी मृतक पुरुष को स्वर्ग भेजने के लिए कफन मे मनुष्य के कद का नूत का चित्र अकित कर देते थे और उसमे मुर्दे को बद कर देते थे। इस विधान से उनका मत था कि पुरुष स्वर्ग मे पहुँच जाता था।

सकता है, अथवा बाँट भी सकता है। सत्यवान के शरीर मे यम प्राण नाम का पदार्थ निकाल ले गये, और सावित्री को वह पदार्थ लौटा भी दिया।[1] मृत्यु भी मूर्त वस्तु की भाँति परिकल्पित है। यम भी मृत्यु का मूर्त रूप ही है।

यह बात भी यथार्थ है कि आदिम मानस 'कार्य-कारण' के क्रम पर तो विश्वास करता था, पर वह उसे एक व्यक्तित्व हीन प्राकृतिक व्यापार मानने को तैयार नही था। वह प्रत्येक कार्य का कारण चेतना और 'इच्छा'-सयुक्त किसी पदार्थ को मानता था, इसलिए जैसा हेनरी फ्रैंकफर्ट आदि ने लिखा है, कार्य-कारण की स्थापक प्रश्न-प्रणाली से वे 'कैसे' और 'क्यो' का उत्तर नही ढूढते थे। वे 'कौन' की कल्पना करते थे। वे यह तो मानते थे कि यह जो वर्षा होती है अथवा रात-दिन होते हैं उनका कारण अवश्य है, पर वह कारण कोई सिद्धान्त विशेष नही हो सकता, कोई व्यक्तित्व ही हो सकता है। कोई व्यक्ति है जो बादलो को भेजता है और वर्षा करता है। सूर्य एक व्यक्ति है, वह आता है और जाता है। इसी प्रकार प्रत्येक व्यापार के लिए वे चेतन तथा व्यक्तित्व युक्त कारणो की कल्पना करते थे।

कारण और कार्य मे उस मूर्त चेतन व्यक्तित्व की स्थापना के ही साथ वे उनमे इच्छा के भी दर्शन करते थे। मृत्यु या जीवन पदार्थ रूप तो हैं ही, उनके आदान-प्रदान म इच्छा का भी तत्व है। इस इच्छा-तत्व और मूर्तत्व से सपूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण होता है, तब गुणो और दोषो के रूपो की कल्पना आदिम मानस करने लगता है। इसी स्तर पर देवताओ और असुरों का जन्म होता है।

कार्य और कारण की कल्पना मे वे किसी भी निकटस्थ तत्व को कारण स्वीकार कर सकेंगे, भले ही वह यथार्थ कारण न हो। केवल दो की सम्बद्धता ही कारण-रूप मे पर्याप्त है। मिस्र मे यह माना जाता रहा है कि आकाश स्त्री है, और पृथ्वी पिता। आकाश पृथ्वी के ऊपर लेटा हुआ था किन्तु वायु के देवता शू ने दोनो को पृथक कर दिया और आकाश को ऊपर उठा दिया। शू को उस रूप मे मानने का कारण केवल यही है कि उन्हे आकाश और पृथ्वी के बीच मे वायु का सचार दिखायी देता था। द्यावा-पृथ्वी को भारतीय परिकल्पना मे भी माता-पिता स्वीकार किया जाता है।*

---

१ देखिये सती सावित्री का आख्यान।

* देखिये डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का 'निबंध अदिति ऐण्ड द ग्रेट गौड्डेस' 'इण्डियन कल्चर' खंड ४. यथा—"द्यौर्वे पिता पृथिवी माता सोमो भ्रातादिति स्वसा—ऋ० १ १९१.६; तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यो—तै. ब्रा० २।७।१६।३.तांड्य महाब्राह्मण मे उल्लेख है कि द्यावा-पृथिवी मिले हुए थे। फिर वे अलग हो गये, तो उन्होने परस्पर विवाह करके मिल जाने का सकल्प किया।

वह विविध तत्वो और व्यापारो मे सघर्ष भी देखता है, और इच्छा-व्यापार-युक्त उसे मूर्त रूप देता है।

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो सका है कि आदिम मानव की मनोवैज्ञानिक स्थिति मे निम्नलिखित तत्व होते हैं।

१—समस्त सृष्टि मनुष्य के ही तुल्य है। यदि इस सृष्टि मे स्वयं मनुष्य "मैं" है तो सृष्टि का प्रत्येक अन्य अग उसके लिए "तू" है।

२—प्रत्येक व्यापार, गुण आदि उसके लिए मूर्त अथवा पदार्थवत् सत्ता रखता है, मृत्यु, जीवन, आदि उसके लिए पदार्थ-रूप ही है जिनका आदान-प्रदान हो सकता है।

३—तुल्य और तुलनीय, अग और अशी, चिह्न-प्रतीक और प्रदाता अथवा लक्ष्य मे अभेद होता है।

४—देश-काल के भेद से होने वाली आवृत्ति मे भी मूल विद्यमान रहता है।

५—प्रत्येक व्यापार अथवा तत्व 'इच्छा' से भी सयुक्त होता है।

६—व्यापारो मे कार्य-कारण परपरा होती है पर कोई भी कारण निकटता, सबद्धता, पूर्वकालिकता के तत्त्व से युक्त होने पर कारण हो सकता है।

७—यह विविध प्राकृतिक तत्वों मे सघर्ष भी लक्षित करता है। सूर्य और रात्रि मे सघर्ष होता है। सूर्य परास्त होता है आदि।

इन तत्वो के साथ यह बात परिलक्षणीय है कि आदिम मानव समस्त सृष्टि से अपने व्यक्तित्व को तटस्थ नही रख सकता था। वह स्वयं मनत और कर्मत, मानसत और भावत सृष्टि के समस्त व्यापारों का अग होता है। अत तुल्य-मूर्त विवान की मान्यता के साथ वह अपने लिए उपयोगी-अनुपयोगी तत्वो को अपने द्वारा प्रस्तुत करता था। इस प्रस्तुति को अनुष्ठान (रिचुअल) कहा जा सकता है। इसके द्वारा वह स्वय प्रकृति के विविध तत्वो के सघर्ष-व्यापार मे सहयोग देता था।

प्रकृति से वह सहयोग-भाव से चलता था। प्रकृति के प्रत्येक व्यापार मे वह अपने लिए किसी न किसी प्रकार का अर्थ भी ग्रहण करता था। शकुनो की उद्भावना इसी स्थिति का परिणाम है।

ऊपर लोक-मानस के जो तत्त्व प्रस्तुत किये गये हैं, उन्हे सक्षेप मे हम केवल चार कोटियो मे विभाजित कर सकते हैं। वे है —

१—यथार्थ और कल्पना मे भेद करने की असमर्थता—

प्राकल्पना (फंटेसी थिंकिंग)

२—प्राणि-अप्राणि, 'जड-चेतन' को आत्मा से युक्त जानना—
आत्मशीलता (ऐनिमिस्टिक थिंकिग)

३—यह विश्वास होना कि तुल्य से तुल्य पैदा होता है ।
टोना विचारणा (मैजिकल थिंकिग)

४—वह विश्वास होना कि विशेष विधि से कार्य करने से इच्छित फल अथवा अभीष्ट प्राप्त होगा
आनुष्ठानिक विचारणा (रिचुअल थिंकिग)

इन मानसिक तत्वो के परिणाम निम्नलिखित होंगे ·—

१—सत्य और स्वप्न मे अभेद—इससे वह इस निष्कर्ष पर पहुँचेगा कि उसके दो अस्तित्व हैं—एक वह जो शरीर से सम्बद्ध है, दूसरा वह जो शरीर को छोड कर 'स्वप्न' मे घूमता फिरता है ।

२—शरीर और छाया मे अभेद—छाया को भी उतना ही महत्वपूर्ण मानना और अपना स्वरूप मानना, जितना शरीर को ।

३—मृतक को भी सोया हुआ मानना, और यह समझना कि उसका दूसरा व्यक्तित्व 'आत्मा' कही भटक गया है, वह सम्भवत फिर कभी लौटेगा । अत शव को सुरक्षित करके उसके साथ भोजन आदि की वस्तुएँ रखने की व्यवस्था की गयी ।

४—भूत-प्रेतो मे विश्वास इसी वृत्ति का परिणाम है । कितनी ही ऐसी आदिम अथवा असभ्य जगली जातियाँ हैं जो पशुओ, पेडो और पत्थरो तक के भूतो अथवा प्रेतों को मानती हैं ।

५—अचरो, जडो अथवा अप्राण पदार्थों को आत्मतत्व से युक्त देखना जिससे वृक्ष, पहाड, नदी, नाले, चेतन मानवों की भाँति काम करते माने जाते है ।

६—भ्रम के सयोग से वस्तुओ के कार्य-कारण की कल्पना जिसे काकतालीय भी कह सकते हैं । उदाहरणार्थ कभी कई दिनो से मेह पड रहा है, और वद नही होता, तभी किसी से तवा उल्टा होकर आँगन मे गिर पडा, इसके वाद ही सयोग से मेह वद हो गया । तो आँगन मे उल्टा तवा रखना मेह वद होने का कारण मान लिया गया ।*

७—तुल्य से तुल्य को प्रभावित करना—पुतलो मे सुई चुभो कर मनुष्य की मृत्यु मे विश्वास करना ।

८—अश से अशी को प्रभावित करना—किसी के नाम, शरीर के अग, वाल, नाखून, आदि से उसे प्रभावित करना ।

* ब्रज मे प्रचलित एक विश्वास

९—इसी विश्वास से टोने करने वाले भोपो अथवा जादूगरो अथवा स्यानो का प्रादुर्भाव।

१०—विशेष विधि से, अनुष्ठान से, बलात् अभीष्ट की सिद्धि, इसी के फलस्वरूप मत्र से अथवा अनुष्ठान से फल-सिद्धि मानी जाती है। 'पुत्रेष्टियज्ञ', आदि इसी वृत्ति के परिणाम हैं।

११—सतान-धारण और सभोगक्रिया मे कार्य-कारण की स्थिति का अज्ञान। ऐसी आदिम जातियाँ आज भी हैं जो यह नही समझती कि पिता के कारण पुत्र पैदा होता है। आज भी स्त्रियाँ और पुरुष देवी-देवताओ-पीरों-पैगम्बरों से सतान की याचना करती मिलती हैं, वह इसी मूल आदिम विश्वास का ही अवशेष है। फल से या भभूत से या आशीर्वाद से सन्तान मिलने का विश्वास भी इसी के अन्तर्गत है।

१२—आदिम मानव व्यक्ति के अस्तित्व को नही मानता, वह तो दल के अस्तित्व को ही मानता है। इसी के परिणाम स्वरूप ऐसे समाजों मे यह स्थिति मिलेगी कि एक लडका अपने दल के समस्त वयोवृद्ध व्यक्तियो को पिता व पिता-तुल्य मानता मिलेगा।

इसी मनोवृत्ति का परिणाम यह भी है कि किसी किसी आदिम जाति मे एक दल की समस्त समवयस्क स्त्रियाँ, पुरुष की बहिनें मानी जाती हैं। और जिस दल मे उसका विवाह हुआ है, उस दल की समस्त समवयस्क स्त्रियाँ उसकी पत्नी के समकक्ष।

इस सबध मे ही आर० आर० मैरेट ने 'साइकौलोजी एण्ड फोकलोर' (१९२०) नाम के निबन्ध-सग्रह मे लिखा है "यह कथन जोडना और है कि यद्यपि लोकवार्ताविद् का धर्म, मेरी दृष्टि मे यही है कि वह अपनी विषय-वस्तु को स्थिर न मान कर परिवर्तनशील ही मानें, जीवित मानें, मृत नही, फिर भी इसके यह अर्थ नही कि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ऐसे कोई स्थायी छाया के समूह होंगे ही नही जो चित्र-कला (Kinematographic) की प्रणाली से देखने पर प्रतिफलित होगे, ऐसा कुछ भी नही मिलेगा जिसे अपेक्षाकृत स्थिर-शील मानकर उस परिवर्तन की नाप-जोख का साधन बनाया जा सके। उल्टे मनुष्य की आन्तरिक प्रकृति के अध्ययन से तो यही घोषित करने की ललक होती है कि "plus ca Change. plusi est to me'me Chose". यह मानना न्यायसगत ही होगा कि मानव जाति (स्पीसीज) ने वन-मानुसो (एप्स) से किसी विधि से अपना सम्पूर्ण विच्छेद तो सदा के लिए कर लिया पर तब से अब तक वह अपने रूप को प्रत्यक्षत वैसा ही बनाये रख सकी" (पृष्ठ १९)

यही विद्वान आगे लिखता है --

"किन्तु सभ्य मानस के क्षेत्र मे प्राचीन पाखण्ड छिपे पडे हैं। एक क्षण के लिए भी किंचित विवेक-चेतन (रेशनल) का प्रयत्न शिथिल होते ही मानस-क्षेत्र मे ये सामने आकर उपस्थित हो जाते हैं।" (पृष्ठ २२)

यही लेखक आगे लिखता है कि

"यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि लोकवार्ता मे अवशेपो के अवशिष्ट रहने पर विचार किया जाता है तो ये अवशेप क्यो बच रहते है ? ये भी अन्य बातो की तरह समाप्त क्यो नही हो पाते।" लेखक कहता है कि इसका ठीक उत्तर यह है कि ये इसलिए बचे रहते हैं कि ये लोक के उस जीवन के वे उपलक्षण हैं जिनकी निरंतर पुनरावृत्ति होती रहती है और जिनमे ही केवल दीर्घ काल के दौरान मे ऐसे अवशिष्ट रूप मे रहने की आन्तरिक क्षमता रहती है।" इससे स्पष्ट है कि लोक-जीवन मे जो परम्परागत अवशेप रहता है, उस अवशेप के साथ वह मानस भी अवशेप के साथ रहता है, जिसका उस अवशेप से सम्बन्ध है। वस्तुत जब तक मानस मे उस अवशेप के लिए आग्रह नही हो तब तक कोई वस्तु अवशेप की भाँति परम्परा से परम्परा मे जा नही सकती। मूलत. ये मानस की मूल वृत्तियाँ हैं जो मानव के आदिम से आदिम रूप को अपने अन्दर बचाये हुए है।

समस्त मानसिक सस्थान मे अब इस 'लोक-मानस' की स्थिति को यहाँ पृष्ठ ३२ पर दिये हुए रेखाचित्र द्वारा और भी भली प्रकार देख सकते हैं।

इसमे पहले समस्त मानस के दो बडे भेद किये जा सकते हैं। १--चेतन तथा २--अवचेतन। ३--तीसरा भेद अर्द्धचेतन का भी मानना होगा। यह अवचेतन और चेतन के बीच का अवकाश नही, यह चेतन की परिधि के रूप मे है, चेतन की आवश्यक सीमा। अवचेतन के दो बडे भेद होंगे, उपार्जित अवचेतन, जो मनोविश्लेपण के अनुरूप स्थिति रखता है और कुण्ठाओ तथा दमित वासनाओ से बना हुआ है। २ उत्तराधिकारेय मानस। यही लोक-मानस है। इसके निर्माण मे दो तत्व हैं १. आदिम उत्तराधिकरण--यह मानव के मन की मूल गति का प्राकृतिक दाय है। २. ऐतिहासिक उत्तराधिकरण--आदिम काल से चलकर आज तक उस प्राकृतिक आदिम मानसिक सस्थान के सूत्रो से सलग्न होकर, इतिहास-क्रम मे विविध सस्कारो और सस्कृतियो के विकास से उपलब्ध मानसिक सस्कार जो आज हमारी रुचि और प्रवृत्ति के मूल मे अलक्षित रूप से विद्यमान रहते हैं।

प्रश्न यह है कि लोक-मानस की यह स्थिति 'व्यक्तिगत' है या 'सामूहिक'। ऊपर से यह प्रश्न कुछ हास्यास्पद प्रतीत होता है। मानस का सम्बन्ध मस्तिष्क

ऐतिहासिक
उत्तराधिकार
आदिम
उपार्जित अव चेतन
(फ्रायडियन
चेतन
अर्द्ध चेतन
लोक मानस=समग्र उत्तराधिकारेय
मानस
(अव चेतन)
समग्र अव चेतन
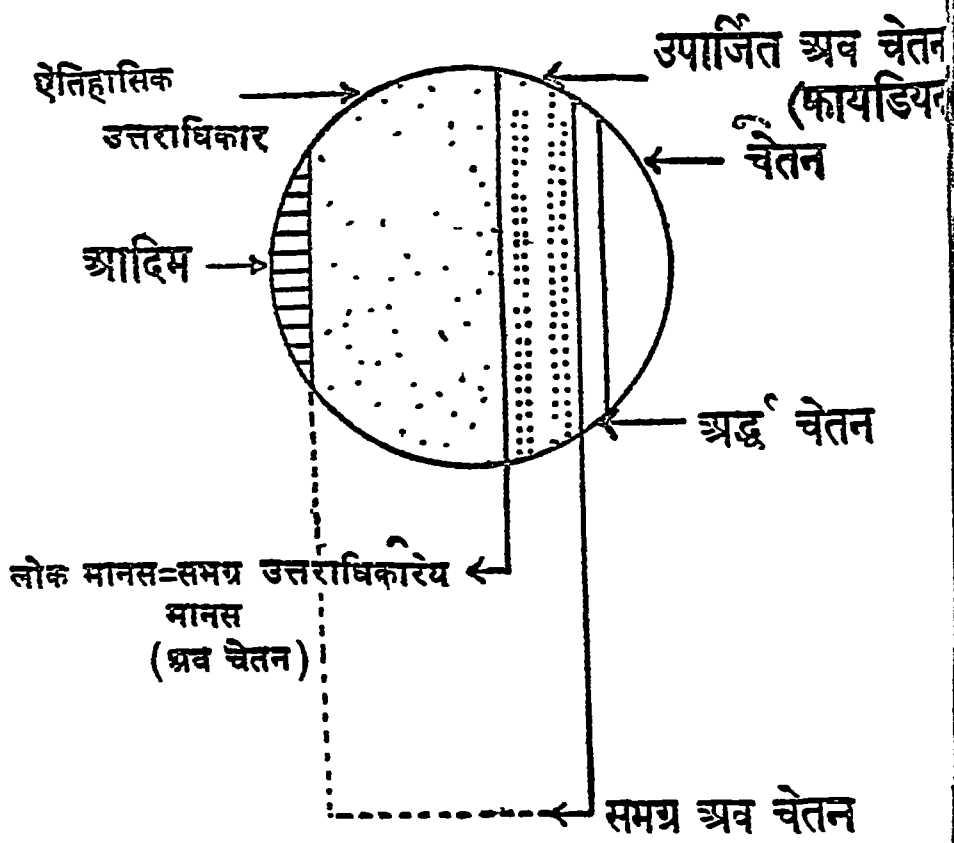
से है। मस्तिष्क किसी शरीर का ही अश हो सकता है। अत मानस तो किसी व्यक्ति मे ही हो सकता है। किन्तु वात इतनी सरल नही। मानव का मनुष्य से सम्बन्ध है। मनुष्य का शरीर से। शरीर व्यक्तिपरक होता है। इसके होते हुए भी हम 'मानव' की एक ऐसी स्थिति भी मानने को वाध्य होते हैं जो मात्र 'व्यक्तिगत' नही। यह मानव क्या है ? क्या इसके शरीर नही है ? पर वह व्यक्ति रूप मे नही मिलेगा। व्यक्ति-व्यक्ति मे व्याप्त जो शरीर-धर्म है वस्तुत मानव का वही शरीर है। क्या यह नही पूछा जा सकता कि सृष्टि मे जो अरवो मनुष्य हैं, उनमे से प्रत्येक को हम मनुष्य ही क्यो मानते हैं ? जातिवादियो (रेस थ्योरी मानने वालो) ने छोटे मस्तिष्क[1] या सिर वाले नीग्रो और विशाल मस्तिष्क वाले यूरोपियनो मे भेद माना है, उनकी विविध शक्तियो मे अन्तर माना है, उनके द्वारा होने वाले हानि-लाभ को भी आंकने की चेष्टा की है।[2] पर उन्हे 'मनुष्य' सभी ने माना है। यही नही सवसे आदिम जगली मानव से लेकर आज के सभ्यातिसभ्य मनुष्य को भी मानव कहा जाता है। ऐसा क्यो ? कोई ऐसा धर्म अथवा लक्षण अवश्य है जो समान रूप से सव मे व्याप्त है। वह प्रत्येक शरीर मे प्रकट होता है, किंतु सवमे समान है। यही मानव है जिसमे ससार मे फैले हुए प्रत्येक मनुष्य का रूप समाया हुआ है। इस मानव की सत्ता ही उसमे 'मानस' की सत्ता की स्थिति की भी सूचना देती है। जव 'मानव' है तो उसका 'मानस' भी होगा ही। यह मानस वह मानस होगा जो ऐतिहासिक काल-क्रम से आदिम से लेकर आज तक और भौगोलिक-क्रम से समस्त विश्व मे प्रत्येक मस्तिष्क मे 'सामान्य मानस-धर्म' के रूप मे विद्यमान हैं। इस अर्थ मे 'लोक-मानस' मात्र व्यक्तिगत

---

१. कार्ल गुस्तव कॅरस ने 'सिस्टम आव फिजियालौजी' मे बताया है कि यूरोपियनों के मस्तिष्क का आकार वडा होता है। ये दिवा जातियां हैं और नीग्रो जाति का मस्तिष्क छोटा होता है यह रात्रि जाति है।

२—मेडिसन ग्रांट ने इसे स्पष्ट किया है। फ्राज वोआज ने बताया है कि "His (i. e. Madison Grant's) book is a dithyrambic praise of the blondblue-eyed long-headed White and his echievements and he prophesies all the ills that will befall mankind because of the presence of Negroes and dark-eyed races. (P. 25 "The Mind of Primitive Man").

नही। व्यक्तिगत रूप मे स्थित भी वह सामान्य मानस है जिसके कारण प्रत्येक व्यक्ति का मानस 'मानस' कहलाता है और जिसके कारण ही मानव 'मानव' के लिए प्रेषणीय हो पाता है। इसी अर्थ मे यह सामूहिक भी है, क्योंकि समस्त मानव समूह मे अपनी सामान्यता के कारण यह धर्म के रूप मे विद्यमान प्रतीत होता है। जैसा ऊपर बताया जा चुका है आज यह लोकवार्ताविदो के द्वारा सिद्ध हो चुका है, कि मानव-मात्र समान मानस धर्म रखता है।[१]

लोक-मानस उस मानव-मानस का ही एक अश और अंग है। इस लोक-मानस का प्रत्यक्षीकरण किसी व्यक्ति के द्वारा नही होता। व्यक्ति में विद्यमान रहते हुए भी मनोवैज्ञानिक इस मानस की झाँकी अभिव्यक्ति के माध्यम से ही कर पाते हैं। अनादिकाल से आज तक और सृष्टि मे ओर से छोर तक मनुष्य-मात्र की जितनी भी अभिव्यक्तियाँ हैं, उनके विश्लेषण से ही लोक-मानस की स्थिति और उसके स्वरूप का ज्ञान होता है।

लोक-मानस और मानव-प्रकृति

उक्त विवरण से कुछ ऐसा आभास मिलता है कि लोक-मानस और मानव-प्रकृति को अभिन्न मान लिया गया है। वस्तुत मानव-प्रकृति तो मनुष्य के स्वरूप का मूल है। और मानस उसका एक अश मात्र। मानव-प्रकृति मानस की दिशा निर्धारक प्रकृति है। मानव-प्रकृति के, रूढ मूल स्वरूप के अनुसार जो मानस ढला, वह जिस प्रकार से ऐतिहासिक-भौगोलिक क्रम मे प्रतिक्रियावान अथवा क्रियावान, विकसित होता हुआ, पर अपने रूढ मूल की सीमाओं अथवा तत्वो को न त्यागता हुआ चला आया है, वही लोक-मानस है। यह आदिम मानस 'प्रिमिटिव माइ ड' भी नही है, और 'जन-मानस' भी नही है। यह तो मात्र वह प्राकृतिक आदिम रूढ मूल मानस है, जो ऐतिहासिक अथवा भौगोलिक स्थितियो के परिणाम को किसी भी रूप में ग्रहण नही करता। इस आदिम शब्द का प्रयोग आज विद्यमान आदिम जातियों के लिए भी होता है। अत आज आदिम मानस से आदिम जातियो की मानसिक विशेषताओं का ही ज्ञान होता है। निश्चय ही यह लोक-मानस नही। लोक-मानस का किसी वर्ग अथवा जाति विशेष से सम्बन्ध नहीं। वह तो सर्वत्र

१.—The psychological basis of cultural traits is identical among all races, and similar forms develop among all of them वही (P. 33) तथा the similarities of culture the world over justify this assumption of a fundamental sameness of the human mind regardless of race. वही (P. 34)

मानस के मूल मे विद्यमान तत्व है। यह जगल मे भी और शहर में भी मिलेगा।

लोक-मानस को हमे आज जन-मानस से भी भिन्न मानना होगा। जन को यदि जाति 'रेस' का पर्याय माना जाय तो वस्तुत लोक-मानस उसका विरोधी है। लोक-मानस की अवस्थिति ऐसे जन-मानस के सिद्धान्त को भ्रामक सिद्ध करती है। किन्तु आज जन शब्द 'रेस' अथवा 'जाति' के अर्थ मे नही आता। आज जन शब्द से जनता का भी अर्थ ग्रहण किया जाता है। जनता शब्द भी विश्वभर के सामान्य मनुष्य का वाचक है, अत जन-मानस उस सामूहिक 'कलैक्टिव' मनोविज्ञान का एक रूप है, जो वस्तुत मानस के चेतन पक्ष पर बल देता है। जन-मानस किसी युग का वह साधारणीकृत मानस होता है, जिसमें चेतन-रूप मे सामाजिक सस्कार-बद्धता के साथ युग के विधि-निषेधो के परिणाम से उद्भूत चेतन वृत्तियाँ फलित होती हैं। इसका सम्बन्ध चेतन-ग्राह्य वृत्तियो से है। मानसिक वृत्तियो की यह पृष्ठभूमि सामाजिक सस्कारों की चेतना और युग-चेतना के साधारणीकरण से प्रस्तुत होती है। इसी कारण यह लोक-मानस से भिन्न है।

और जिस शाब्दिक अभिव्यक्ति अथवा वाणी मे जितना यह लोक-मानस अधिक मात्रा मे मिलेगा, उतनी ही वह लोक-साहित्य के अन्तर्गत आ सकेगी। मेरेट महोदय ने लिखा है कि, "ऐतिहासिक परिस्थितियाँ बदलती हैं, जब कि मनोवैज्ञानिक स्थितियाँ अपेक्षाकृत स्थायी होती हैं। लोक-साहित्य के विद्यार्थी को दोनो के साथ ही न्याय करना चाहिये।" '(Psychology And Folk-lore P. 121)' क्योकि आज लोकवार्ता मात्र अवशेषो का ही अध्ययन नही है, लोक-मानस के साथ लोक आज के वर्तमान मानव मे जीवित है। लोक साहित्य के द्वारा हम उसे इतिहास के साथ विद्यमान रूप मे अध्ययन करते हैं।

विश्व लोक-वार्ता के भेद

विश्व लोक वार्ता के अन्तर्गत वह समस्त लोकाभिव्यक्ति आती है, जिसमे लोक-मानस अपने मौलिक प्रयोगो के साथ अपने उत्तराधिकरण को भी प्रस्तुत करता है। इसी कारण लोक-वार्ता के अध्ययन की दो प्रमुख दिशाएँ हो जाती हैं एक लोक-वार्ता का ऐतिहासिक अध्ययन और दूसरा वर्तमान लोक-वार्ता का अध्ययन। ऐतिहासिक लोक-वार्ता के अन्तर्गत लोकाभिव्यक्ति की वह समस्त सपत्ति आती है जो साहित्य-कलाकौशल मे इतिहास की साक्षी के

रूप में बिखरी हुई है, जैसे प्राचीन से प्राचीन लोककृत चित्र[१] मूर्तियाँ[२] विशेषत मिट्टी की मूर्तियाँ (Terracottas), प्राचीन लिखित अथवा मौखिक लोक-मानस परपरा [३] का साहित्य, स्थापत्य, स्थापत्यों मे उत्कीर्ण अभिप्राय (motifs), उनके प्रसग[४] प्राचीन आभूषण, अस्त्र-शस्त्र, वाणिज्य की वस्तुएं, कौडियाँ, सीपें[५], परपरागत नाट्य तथा नृत्य आदि ।

१—प्राचीन चित्र फ्रान्स तथा स्पेन की गुफाओं मे दिवालों पर उत्कीर्ण मिले हैं। इन चित्रो का लोक-वार्ता से गम्भीर संबंध है, क्योंकि श्री डब्ल्यू जे० पैरी के मतानुसार "It seems probable that this art was concerned with the food supply, that the representation of an animal desired for food helped in some way in its capture. (The Gowth of Civlization, 1937 P. 27.) अर्थात् अधिक सभावना यह है कि इस कला का सबध भोजन-उपलब्धि से था कि भोजन के लिए इच्छित पशु का रेखांकन उसके पकडने मे किसी न किसी प्रकार से सहायक था।

२—These people (of the Aurigracian stage of culture) also practised sculpture depicting boars and other animals that they chased, but in addition, they made sculptures of feminine form, with the material parts grossly exaggerated" (वही पृ० २८) स्त्रियों के अंगों का यह विशदीकरण निश्चय ही किसी टोने से संबंध रखता है, केवल कला-सौंदर्य की अभिव्यक्ति के लिए नहीं हो सकता।

३—प्राचीन साहित्य में अधिकाश लोक-वार्ता ही होती है क्योंकि वह लोक-मानस के स्तर से उत्पन्न भावों को ही व्यक्त करता है।

४—प्रत्येक स्थापत्य और उसमे उत्कीर्ण अभिप्राय तथा प्रसंग में लोक-मानस का कोई न कोई विश्वास संलग्न अवश्य रहता है।

५—ये पदार्थ मेनटोन के निकट गुफा मे प्राप्त हुए। ये निश्चय ही हिन्द महासागर से लायी गयी होंगी। यह टिप्पणी ठीक ही प्रतीत होती है कि "These shells are eloquent witnesses of intercourse of some sort or other in those far off days between widely separated parts of the earth. Elliot Smith has shown, in his work on the Evolution of Dragon, why shells were so valued in such remote age, they were supposed to have life giving powers."
इससे इनका ऐतिहासिक ही नहीं लोकवार्ता सबंधी महत्व स्पष्ट हो जाता है।

वर्तमान लोक-वार्ता के अन्तर्गत इसी प्रकार की वह समस्त अभिव्यक्ति आती है जो आज उक्त रूपो मे विद्यमान मिलती है, फलत इसे हम निम्न फलक से समझ सकते है।
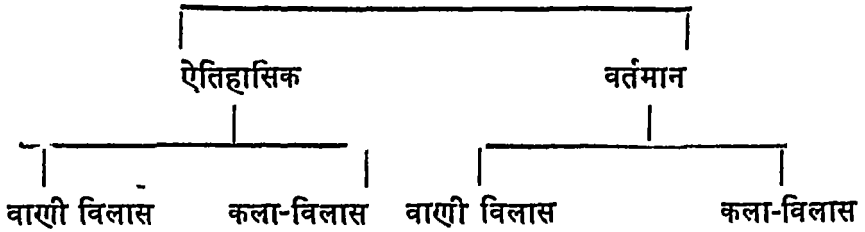
यहाँ यह बात ध्यान मे अवश्य रखनी चाहिये कि लोक-वार्ता की अभिव्यक्ति मे कला केवल किसी सौंदर्यानुभूति का प्रकाशन नही, लोकवार्ता की कला का जन-जीवन और इसके विश्वासो से घनिष्ठ सबध होता है। लोकवार्ता सबधी कोई भी चित्र मनोरजन के लिए अथवा शोभा-सज्जा के लिए नही अकित किया जाता। वह समस्त अनुष्ठान का एक अङ्ग होता है, जिसमे धर्म, तत्र, मत्र और टोने से मिलते-जुलते भावो का अद्भुत मेल रहता है। प्राचीनतम चित्राङ्कन मे जो अभिप्राय आज हमारे अनुमान से सिद्ध होता है, वैसा ही अभिप्राय आज के लोक-वार्ता के चित्राङ्कनो मे मिलता है। यद्यपि इनमे व्याप्त भाव उतने वस्तुपरक नही रहे, जितने भावपरक होगये है। भाव भी स्थूल जैसे कल्याण, सकट से रक्षा, समृद्धि आदि। पुरातन गुफा-निवासी पशुओ के चित्र बनाकर चित्र के टोने से पशुओ को हस्तगत करने की युक्ति रचता था। आधुनिक लोक-परपरा मे जब कोई चित्र प्रस्तुत किया जाता है, तो वह सपूर्ण अनुष्ठान का अङ्ग होता है और समस्त अनुष्ठान के अभिप्राय के अनुकूल होता है। लोक-वार्ता के कला-विलास का क्षेत्र तो बहुत व्यापक है। वाणी की अभिव्यक्ति के रूपो के अतिरिक्त शेष समस्त लोकोद्योग इसी के अन्तर्गत आते हैं जिन्हे यो विभाजित किया जा सकता है।

लोक कला-विलास

१	२	३	४
उत्पादन-सबधी	सग्रह-सम्बन्धी	कौटुम्बिक	सामाजिक
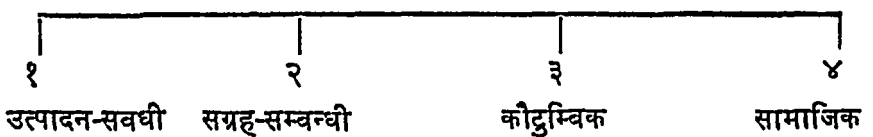
लोक-जीवन मे प्रत्येक कार्य और प्रत्येक आचार के सम्बन्ध मे लोक-वार्ता मिलती है। उत्पादन-विषयक लोक-वार्ताएँ तो अत्याधिक मिलती हैं। वस्तुत मनुष्य के समस्त उद्योगो की दो ही तो दिशाए हैं उत्पादन और उपभोग। सग्रह भी मूलत उत्पादन का ही अङ्ग है। आधुनिक अर्थशास्त्र मे तो यह

निर्विवाद उत्पादन के ही अन्तर्गत है। उत्पादन का उपभोग एक महान कर्म है। लोक-जीवन मे उसे आवश्यक महानता प्रदान की गयी है। उपभोग को सदा उत्सव-विलास से सलग्न कर दिया गया है।

वाणी-विलास भी जीवन से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध है और उत्पादन तथा उपभोग से निरन्तर लिपटा रहता है, फिर भी इसके कई रूप मिलते हैं। वे इस प्रकार हैं —
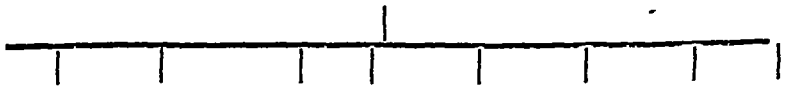
१—लेवीज स्पेन्स ने 'ऐन इट्रोडक्शन टू माइथालाजी' मे इनमे से कुछ रूपो की व्याख्या की है। जिसमे से धर्मगाथा पर सक्षेप मे यहाँ दिया जाता है 'धर्मगाथा (myth) यह किसी देवता अथवा पराप्राकृत सत्ता का एकविवरण होता है, इसे साधारणत. आदिम-विचारो की शैली में लाक्षणिकता से अभिव्यक्त किया जाता है। यह वह प्रयत्न है जिसके द्वारा मनुष्य का विश्व से सम्बन्ध समझाया जाता है, और जो इसे दुहराते हैं उनके लिए प्रमुखत धार्मिक महत्व रखता है, अथवा इसका जन्म किसी सामाजिक सस्था, रीतिरिवाज, अथवा परिस्थितियो की किसी विशेपता की व्याख्या करने के निमित्त होता है।"

इस परिभाषा के अनुसार 'धर्मगाथा' मे (क) देवता अथवा पराप्राकृतिक शक्ति का विवरण होता है।

(ख) इसमे आदिम-मानस विद्यमान रहता है।

(ग) इसका धार्मिक महत्व होता है। इसे जो दुहराता है या पढता है वह किसी धर्मलाभ की आकांक्षा रखता है।

(घ) इसके निर्माण के दो प्रमुख कारण हो सकते हैं।

(अ)—मनुष्य के सृष्टि के साथ सम्बन्धो की व्याख्या करने के लिए अथवा (आ)—किसी सामाजिक सस्था, प्रथा आदि की व्याख्या के लिए।

इसे और स्पष्ट करते हुए कहा जा सकता है कि धर्मगाथा यह बताती है कि 'आदम' नाम के मनुष्य की पसली से हव्वा का जन्म हुआ। पशु अथवा पदार्थ कैसे उत्पन्न हुए? किसी प्राणी मे कुछ विशेषताएँ क्यो हैं? कौवे के एक आँख क्यो है? विशेष प्राकृतिक व्यापार क्यो होता है? चन्द्र को राहु ग्रसता है अत चन्द्रग्रहण होता है। आदि।

इन रूपो मे से कुछ विद्वान धर्म-गाथा को लोकवार्ताभिव्यक्ति नही मानते। कुछ का तो कहना यह है कि धर्म-गाथा का पूर्व मे कुछ रूप रहा हो, हमारे समक्ष तो वह महान कवियो की रचना के रूप मे आती है, इन विद्वानों का लक्ष्य ईलियड तथा महाभारत जैसी रचनाओ की ओर होता है।[1] कुछ का

विद्वानो के मत मे धार्मिक आस्था नही, धार्मिक पृष्ठभूमि अवश्य होनी चाहिये। उसमे किसी देवता या दैवी पुरुष का समावेश होना आवश्यक है, यदि ऐसा न होगा तो उसे लोक-कहानी कहा जायगा। किन्तु यह बात ध्यान मे रखने की आवश्यकता है, कि केवल देवी-देवताओ के आने से कोई लोक-कहानी धर्म-गाथा नही हो सकती। कितनी ही लोक-कहानियाँ ऐसी प्रचलित हैं जिनमे शिव-पार्वती, विष्णु आदि का उल्लेख मिलता है, पर उन्हे धर्मगाथा नही कहा जा सकता। किसी तथ्य की व्याख्या करने वाली कहानियो मे भी देवताओ का समावेश होता है, पर उन्हे भी सदैव धर्मगाथा नही कह सकते। उदाहरणार्थ—

१—**गिलहरी की पीठ पर रेखाएँ क्यो हैं**—सीता के वियोग मे गिलहरी ने राम को सहायता दी, राम प्रसन्न हुए, उन्होने उस पर हाथ फेरा और रेखाएँ बन गयी। यह लोक कहानी है, धर्मगाथा नही।

२—**पेट बन्द क्यों है**—पहले पेट खुला होता था और वह एक ढक्कन अथवा परिया से बन्द होता था। किन्तु पार्वती के पेट को खोल कर एक बार शिवजी ने देख लिया और उनके मायके का उपहास किया। तब से पार्वती ने शाप देकर उसे सदा के लिए बन्द कर दिया—यह लोक-कथा है, धर्मगाथा नही।

कारण यह है कि धर्म-गाथा के लिए केवल यही आवश्यक नही कि उसमे देवताओ का समावेश हो, यह भी आवश्यक नही कि उसमे आस्था हो (यहाँ आस्था से अभिप्राय है कहानी मे कही बात पर विश्वास करना)। ऊपर की दोनो कहानियो मे वर्णित बात पर कहने-सुनने वाले दोनो ही विश्वास करते हैं, किन्तु धर्मगाथा के लिए आवश्यक है कि उक्त दोनो बातों के साथ उसका धार्मिक माहात्म्य भी हो। उसके कहने-सुनने मे किसी धार्मिक लाभ की सम्भावना हो। किन्तु इन सबसे अधिक महत्व का तत्व यह है कि धर्मगाथा मे देवी-देवता का समावेश परम्परित कथा-अभिप्राय (मोटिफ) के रूप मे नही होता। धर्म-गाथा किसी न किसी देवी-देवता के वृत्त से गुँथी रहती है।

(देखिये स्टैण्डड डिक्शनरी आव फोकलोर, माइथालाजी एण्ड लीजेण्ड)

१—ऐसे विद्वानो (जैसे ऐडिथ हैमिल्टन) से हमे यही पूछना है कि धर्म-गाथा का उपयोग महाकाव्यो मे हुआ है, या महाकाव्य ही धर्मगाथाएँ हैं। निश्चय ही धर्मगाथा ने महाकाव्य से पूर्व ही जन्म ग्रहण किया। उसी पूर्व

विचार है कि लोकवार्ता-तत्व का सवध आदिम-मानव के वर्तमान अवशेषो से होता है, किन्तु धर्म-गाथा तो अतीत काल से सम्बन्ध रखती है।[१] यह भी कहा जाता है धर्मगाथा मे आदिम-मानस की अभिव्यक्ति नही, क्योकि आदिम मानस का विकास कुछ निम्न क्रम से हुआ है।

(१) मन[२]।

(२) पराप्राकृतिक-वाद—प्राकृतिक पदार्थों के श्रद्धामयोद्रेक मे।

(३) आत्मवत् वाद—किसी शक्ति की उद्भावना
आत्मवत् सर्वभूतेपू—मेरे जैसी
बुद्धि, शक्ति, विवेक पशु पक्षियो, पदार्थों मे है।

(४) पदार्थात्मवाद—समस्त पदार्थों मे आत्मा है।

(५) देववाद–देवताओ की कल्पना

इन विद्वानो के विचार से इस पाचवी स्थिति मे पहुँचने पर ही धर्म-गाथाओ का उदय हुआ।[3] अतः ये मूल लोक-मानस से सवद्ध नही। 'भाषा' रूप के कारण वे धर्मगाथाएँ हैं। उसी महत्व के कारण वे महाकाव्यों का विषय वनीं। वे कथाएँ कवियों द्वारा कल्पित नहीं की गयीं, उनके द्वारा संशोधित भले ही हुई हों। अत वे अपने मूल रूप मे क्या थीं, यही महत्वपूर्ण है।

१—इस तर्क के संवध मे एक तो काट यही है कि आज लोकवार्ता वस्तुत. आदिम-अवशेष मात्र नहीं। धर्मगाथा का संवंध भी उतना ही वर्तमान से है जितना लोकवार्ता के आदिम अवशेषों के वर्त्तमान रूप से होता है। धर्मगाथा का यदि अतीत से संवंध है तो लोकवार्ता के आदिम अवशेषों को क्या विना अतीत से सवंधित किये आदिम अवशेष माना जा सकता है?

२—मन शब्द का प्रयोग मेलेनेशियन द्वीपसमूह में होता है,"To describe a mysterious form of energy which is thought of as capable of residing or gathering in men and natural objects, much as does electricity in a leyden jar" यह वस्तुत आत्म अथवा आत्मशक्ति (Spirit power) का भी मूल सार है। कुछ विद्वान इस क्रम-विकास मे 'मन' को पहला स्थान देने से सहमत नहीं। वे 'आत्मवत् वाद' अर्थात् 'ऐनिमेटिज्म' से ही लोक- मानस का मूल मानते हैं।

३—यहाँ प्रश्न यही है कि क्या इस पाँचवी अवस्था तक पहुँचने पर आदिम-मानस की सत्ता मिट चुकी थी। 'देववाद' क्या लोक-मानस की ही उद्भावना नहीं? यह भी अव स्पष्ट हो गया है कि लोकवार्ता का मूल लोक-मानस से अनिवार्य सवंध नहीं। लोक-मानस की जो दाय रूप मे स्थिति है,

मे भी जैसा मेक्समूलर ने माना —

पहली अवस्था—धातु निर्माण की है। (The Matic Period)

दूसरी अवस्था—भाषाओ की मूल जातियो के जन्म की है (Dialectic stage)। इस अवस्था मे आर्य, सेमेटिक, टर्की आदि की जाति-भाषाओ ने जातीय धर्म ग्रहण करना आरम्भ किया।

तीसरी अवस्था–धर्मगाथापरक (Mythological) है जिसमे मूल शब्दो ने विकारयुक्त होकर गाथाओ को जन्म दिया। इस विकास की अवस्था पर आकर धर्मगाथाएँ वनी।

चौथी अवस्था–लौकिक (Popular) इस अवस्था पर पहुँच कर राष्ट्रीय भाषाओ का निर्माण हुआ।

धर्म-गाथाओ के निर्माण मे भाषा का वहुत हाथ रहा है। मेक्समूलर ने यही धारणा वना ली थी कि धर्मगाथा केवल भाषा का रोग है, 'मैलेडी आव लेंग्वेज' है। भाषा जव अपनी श्लेष-शक्ति अथवा असमर्थता के कारण, एक के स्थान पर, साम्य के या भ्रान्ति कारण, दूसरे शब्द को ग्रहण कर लेती है और अर्थ विषयक परिवर्तन भी पैदा कर देती है, तव धर्मगाथा जन्म लेती है। अत धर्मगाथा का सवध लोक-मानस से नही हो सकता।[1] फिर धर्म-गाथा से लोक-कथाएँ उत्पन्न हुई है। अत लोक-कथाओ और लोक-वार्ताओ की जननी इस धर्मगाथा को पृथक ही मान्यता देनी पडेगी। इसी प्रसग मे यह उल्लेखनीय है कि विद्वानो के एक सप्रदाय ने धर्मगाथाओ को सूर्य, चन्द्र, तूफान जैसे किसी प्राकृतिक व्यापार का रूपक सिद्ध किया, तो किसी ने उन्हें किसी न किसी ऐतिहासिक व्यक्ति या तथ्य का ही रूपान्तर तथा लोक परिवर्द्धित रूप माना।

इन युक्तियो मे विशेष वल नही माना जा सकता। धर्म-गाथा में मूलत आदिम मानस [primitive mind] ओतप्रोत है। उसमे समस्त

उसकी अभिव्यक्ति भी लोकवार्ता का एक तत्व है। धर्मगाथाओं के विन्यास मे लोकमानस व्याप्त है।

१—मैक्समूलर का सिद्धात अब अमान्य हो चुका है। वास्तविक बात यह है कि लोक-कथा का जन्म पहले होता है। उसके पात्रो का नामकरण बाद मे होता है। यह नामकरण की स्थिति ही महाकाव्यों की स्थिति है। सामान्य लोक-कथा+धर्म तथा देव-तत्व=धर्मगाथा+देवतत्व का नामकरण =महाकाव्य। अत महाकाव्य धर्मगाथा का रूपान्तर है।

विचार, विकास और उद्भावना लोक-मानस के परिणाम से है, संस्कृत मानस की मनीषिता उसमें नहीं। यो यह विषय पर्याप्त विवाद को गुंजायश रखता है कि आदिम उद्गार धार्मिक भावना के मूल से संयुक्त थे, जैसा कि फ्रेजर ने माना है। मैजिक (टोने) के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए फ्रेजर का कहना है कि लोक-वार्ता का मूल मानस मैजिक भाव का परिणाम है। मूलर ने उधर [ऐनीमिज्म] पदार्थ-आत्म देवसत्तावाद की स्थापना की थी, और रूस के विद्वानो की मान्यता यह हो रही है कि आदिम-मानव की मूल अभिव्यक्ति धार्मिक मूल से युक्त नहीं थी, वह शुद्ध लौकिक थी। ऐडिथ हैमिल्टन ने लिखा है कि "अधुनातन विचार के अनुसार एक वास्तविक धर्मगाथा (Myth) का धर्म से कोई संबंध नहीं होता। वह प्रकृति की किसी बात की व्याख्या होती है, जैसे विश्व मे कोई या प्रत्येक वस्तु किस प्रकार अस्तित्व मे आयी धर्मगाथाएँ आरंभकालीन विज्ञान हैं, मनुष्य के उस प्रथम प्रयत्न का प्रतिफल जिसके द्वारा उसने अपने चारो ओर की वस्तुओं की व्याख्या की किन्तु तथाकथित धर्मगाथाओं मे ऐसी भी हैं जो व्याख्या नहीं करती। ये शुद्ध मनोरंजन के लिए है अब यह तथ्य प्राय मान लिया गया है और अब हमे धर्मगाथा की प्रत्येक नायिका मे चन्द्र या उषा को ढूँढने की आवश्यकता नहीं रही, न प्रत्येक नायक के पराक्रमो मे सूर्य-गाथा ही ढूँढनी है (दे० 'मायथालॉजी' नामक पुस्तक) तथापि इस समस्त विवाद-पूर्ण स्थिति के उपरान्त भी यह कहा जा सकता है कि वह धर्म भी लोक-तत्व का अङ्ग था और धर्मगाथाएँ भी उसी लोकतत्व के आधार पर बनी। 'बिफोर फिलासफी' की भूमिका मे ऐच० एण्ड ऐच० ए० फ्रैंकफर्ट द्वारा लोक-मानस के जो तत्व उद्घाटित किये गये हैं, उनका ऊपर 'लोक-मानस' मे उल्लेख हो चुका है। वे सभी तत्व धर्म-गाथाओं मे पूर्णत मिलते हैं। यद्यपि ऐडिथ हैमिल्टन ने यह लिखकर आदिम-तत्व की धर्म-गाथाओं मे कमी बतायी है कि "किन्तु जो बात आश्चर्य की है वह यह नहीं कि जहाँ-तहाँ जंगली विश्वासों के कुछ टुकडे बच रहे हैं। अद्भुत बात तो यह है कि वे इतने थोडे हैं", फिर भी क्या यूनानी, क्या भारतीय, क्या मिस्री, सभी की धर्मगाथाओं मे लोक-मानस आपाद-मस्तक व्याप्त है। अत धर्म-गाथाएँ, लोकवार्ता साहित्य का ही अङ्ग हैं।[1] धर्म-गाथाओं का अध्ययन लोकवार्ताओं के अध्ययन के लिए अत्यन्त आवश्यक है। तथा लोक-वार्ताओं के स्वरूप को समझे बिना धर्म-गाथाओं का भी अध्ययन असंभव है।

१—लोकवार्ता का क्षेत्र बहुत विशद है। उसमे धर्मगाथा का समावेश सहज ही हो जाता है।

दोनो का परस्पर घनिष्ठ संबंध है। शेष रूपो के संबंध मे कोई विशेष मतभेद नही। लोक-कहानी, अवदान, तंत्राख्यान आदि सभी निर्विवाद लोक-वाणी-विलास के भेद हैं। तंत्राख्यान का इन सभी रूपो मे लिखित-विशिष्ट साहित्य से कुछ विशेष संबंध अवश्य है। भारत के पंचतंत्र तथा ईसप की फेबिल्स का पता हमे 'साहित्य' के द्वारा ही मिला है। पंचतंत्र की कहानियाँ बहुत अधिक प्रचलित हुई हैं। इसके २०० रूपान्तर विश्व की पचास भाषाओ मे हुए बतलाये जाते हैं[1]। ये कहानियाँ पशु-पक्षियो से संबंधित हैं। यह कहा जा सकता है, कि ये लोक-कहानियाँ नही। पंचतंत्र मे नीति और राजनीति को दृष्टि मे रखकर जिस प्रकार ये कहानियाँ व्यवस्था-बद्ध की गयी हैं, वह साहित्यिक अह-चैतन्य अथवा मेधा का परिणाम हैं। किन्तु बस, इस युक्ति मे इतना ही सत्य है, कि कहानियो की व्यवस्था मात्र ही साहित्यिक अह-चैतन्य से युक्त है, पशु-पक्षियो की कहानियो मे स्वतंत्र रूप से लोक-मानस के तत्व स्पष्ट हैं। वस्तुत लोक-क्षेत्र से कहानियाँ लेकर साहित्यिक मेधा ने साभिप्राय व्यवस्था मे उन्हे रख दिया है। अत पंचतंत्र की मूल कहानियाँ लोक-कहानियाँ है, अथवा लोक-मानस के तत्वो से परिव्याप्त हैं। पंच-तंत्र के बाहर भी अनेको पशु-पक्षी-विषयक कहानियाँ है। जो शुद्ध लोक-कहानियाँ है और इसी वर्ग मे रखी जायेंगी। लोकोक्ति, कहावत तथा मुहावरो तथा प्रहेलिका के मूल मे मनीषी बौद्धिक कौशल दिखायी पडता है। पर यह यथार्थता नही। इन सभी का मूल लोक-मानस मे है। पहेली के उल्लेख तो बहुत प्राचीन मिलते हैं। आदिम अनुष्ठानो तथा टोटको से इनका घनिष्ठ संबंध था। वेदो तक मे अश्वमेघ यज्ञ के अवसर पर पहेलिया बुझायी जाती थी। आदिम जातियो मे वर्षा के न होने पर कही विवाह के अवसर पर अथवा जन्म के अवसर पर पहेलियो का आनुष्ठानिक (ritualistic) उपयोग होता है। इससे इसमे सन्देह नही रह जाता कि इनका जन्म लोक-मानस मे ही है।

लोक-साहित्य-विषयक संप्रदाय

इस समस्त विवरण के उपरान्त यह कहा जा सकता है कि लोक-वार्ता तथा लोक-साहित्य के अध्ययन-विषयक तीन संप्रदाय है।[2] एक को तो भारतीय

१—देखिये 'द स्टैण्डर्ड डिक्शनरी आफ फोकलोर आदि पंचतंत्र शीर्षक निबंध।

२—किसी भी विज्ञान का इतिहास प्राय उसके संप्रदायो के रूपमे प्रस्तुत किया जाता है। लोक-वार्ता-तत्व का इतिहास भी इसी दृष्टि से प्रस्तुत किया जाता है, किसी विज्ञान के इतिहास के अध्ययन की भाँति। लोक-वार्ता-तत्व के

सप्रदाय नाम दिया जा सकता है। इस सप्रदाय की स्थापना यह रही कि धर्मगाथाओ तथा लोककथाओ का जन्म भारत मे हुआ और वे भारत से चतुर्दिक फैली। धर्मगाथाओ और लोक-कथाओ के जन्म लेने और रूपान्तरित होने का कारण

इतिहास के अध्ययन के महत्व के विषय मे सोकोलोव ने लिखा है कि —

(अ) बिना इतिहासपरक अध्ययन के तो इस क्षेत्र के आधुनिक उद्योगों का यथार्थ मूल्याङ्कन नहीं किया जा सकता है क्योंकि उनके (लोक-वार्ता-तत्व-विदों के) उद्योगो की परम्परा है, उस परपरा मे ही उन्हें ठीक समझा जा सकता है।

(आ) लोक-वार्ता-तत्व विषयक विविध समस्याओ के क्या, कैसे और क्यों को समझने और इस निमित्त किये गये विविध हलों को जानने का मार्ग भी इतिहास से ही मिलता है।

(इ) इस क्षेत्र मे क्या उपलब्धि हुई, यह इतिहास ही बतायेगा।

(ई) वैज्ञानिक विचार-विकास मे क्या बाधाएँ और त्रुटियाँ रही हैं, इतिहास से ही जाना जा सकता है।

तथा (उ) इस लोक-वार्ता की पृष्ठभूमि क्या है, यह भी इसी से ज्ञात होगा। और जहाँ तक लोक-वार्त्ता-तत्व के विकास का प्रश्न है उसे सम्प्रदायों मे बाँटकर किंचित व्यवस्थित रूप से समझा जा सकता है।

लोक-वार्ता-तत्व का शास्त्रीय अध्ययन उन्नीसवीं शताब्दी की प्रथम दशाब्दी माना जाता है। सोकोलोव का मत है कि यह उस विचार-क्रान्ति का परिणाम है जिसे 'रोमाण्टिसिज्म' नाम दिया जाता है। वस्तुत तो यह लोक-वार्ता-विषयक प्रवृत्ति फ्रासीसी राज्य-क्राति का परिणाम थी। जिसने राष्ट्रीयवाद (नेशनलिज्म) को जन्म दिया। सामंतों के अत्याचारो से पीडित जन-समूह मे चेतना उत्पन्न हुई और उन्होंने स्थापित किया कि राष्ट्र सामन्त-वर्ग से नहीं बनता, जन-साधारण के समूह से अथवा लोक-समूह से बनता है। इस स्थापना के बाद लोक-सस्कृति अथवा लोक-वार्ता का सकलन और अध्ययन आरभ हो गया। स्वय सोकोलोव ने माना है कि 'लोक-वार्ता के प्रथम रोमाण्टिसिस्ट सस्करण के प्रकाशन मे राजनीतिक उद्देश्य स्पष्ट और उग्र रूप मे प्रकट किये गये हैं।' उनको समझने के लिए केवल यह स्मरण रखना आवश्यक है कि इन प्रथम प्रकाशनो का समय वही है जो नेपोलियन के युद्धों का है। इस राष्ट्रवादी भावना से अनुप्रेरित शोध और अध्ययन की प्रवृत्ति ने संग्रह-ग्रथ प्रदान किये और सस्कृत के पाश्चात्य जगत के समक्ष उद्घाटित होने से इस लोक-वार्ता

है शब्द-विकार अथवा मैक्समूलर के शब्दो मे 'मैलैडी आव वर्ड्स' है । इस युग के प्राय समस्त लोक-तत्व-मर्मज्ञ [आरियटेलिस्ट], भारतीय तत्व के पडित तथा भाषा-विज्ञान-विशारद थे । भारतीय तत्व और भाषा-विज्ञान के सहारे ही उन्होंने लोक-तत्व को भी समझने की चेष्टा की थी । इसके लिए तुलनात्मक प्रणाली का प्रयोग किया जाता था ।

इस दिशा मे सबसे पहला प्रयत्न विलहेल्म ग्रिम (१७८७-१८५६) तथा जेकब ग्रिम का था ।[1] ग्रिम बन्धुओ ने लोक-तत्व के अध्ययन की दृष्टि से विशेष ध्यान माइथालोजी (धर्मगाथा) पर दिया था, इसी कारण इसे माइथालोजीकल संप्रदाय कहा जाता है । इस सप्रदाय के प्रसिद्ध तत्व-वेत्ताओ मे प्रमुख हैं—जर्मनी का अडालवर्ट कुह्न (१८१२-१८८१) 'स्वार्ज' (Schwarz) 'मन्न

प्रवृत्ति को वैज्ञानिक रूप प्राप्त हुआ । सोकोलोव ने इस प्रकार लोक-वार्ता का संबंध अपनी दृष्टि से वर्गवादी सिद्धांत से कर दिया है । जबकि सत्य यही प्रतीत होता है कि संस्कृत-भाषा के साहित्य के परिचय से ही एक बौद्धिक क्रांति हुई । भाषा मे ही साम्य नहीं दीखा, कथा-कहानियों में भी साम्य था । माइथालाजी में भी था । पुरातत्वविद भारत के साहित्य और लोक-साहित्य दोनों के सग्रह और अध्ययन तथा तुलना मे लगे । इसके लिए पाश्चात्य क्षेत्र से भी सामग्री संकलन की गयी । वस्तु-स्थिति तो यह थी कि यह संस्कृत के संपर्क से उदित होने वाली विचार-क्रान्ति मूल मे फ्रान्स की राज्य क्रान्ति के राष्ट्रवाद के विरोध मे थी । राष्ट्रवाद भौगोलिक और ऐतिहासिक सीमाओ मे मानव-धर्म को बाँट कर विश्व मे संकुचित क्षेत्र पैदा कर रहा था । जब कि संस्कृत के संपर्क से उत्पन्न विद्वानों ने यह विचार प्रस्तुत किया कि आर्य जातियाँ इन राष्ट्रीय सीमाओं का उल्लंघन करके एक हैं । फलत राष्ट्रवाद ने लोक सामग्री प्रदान की और सस्कृत-संपर्क से उत्पन्न मनीषिता ने तुलनामूलक वंज्ञानिक दृष्टि । निश्चय ही इस लोक-विज्ञान की वैज्ञानिकता मे भारत की विचारधारा का गहरा प्रभाव है । इसी कारण इस प्रारम्भ के लोक-वार्ता-तत्व के अध्ययन की परम्परा को भारतीय संप्रदाय कहा जाता है । अधिक वैज्ञानिक दृष्टि से इसे 'मैथोलौजिकल स्कूल' भी कहा जाता है । इसके प्रवर्तन का श्रेय ग्रिम बन्धुओ को है ।

१—जेकबग्रिम की मुख्य रचनाएँ हैं 'टेल्स फार दी चिल्ड्रन एण्ड दी फैमिली' (१८१२), जर्मन ग्रामर (१८१९) ऐण्टिक्विटीज आव जर्मन (१८२८), जर्मन मैथालाजी (१८३५), हिस्ट्री आव दी जर्मन लैंग्वेज (१८४८) ।

हार्ट' (Mannhardt) अंग्रेजों के मैक्समूलर, फ्रेंच के पिक्टेत,रूस के एफ० आई० वुस्लयेव, ए० एन० अफनस्यैव, तथा ओ० एफ० मिलर।

इस संप्रदाय की मान्यता यह थी कि.—

(१) समान गाथाओ का उद्‌गम एक स्थान पर हुआ।

(२) समान गाथाओ का जहाँ जहाँ प्रचलन और मान्यता है वहाँ की जातियो का भी उद्‌गम स्थान एक था। वे सब एक परिवार की जातियाँ हैं।

(३) गाथाएँ भाषा-विकार के कारण उत्पन्न हुई।[१]

(४) उनका मूल है कोई प्राकृतिक व्यापार जैसे स्क्वार्ज की स्टार्म थ्योरी। मैक्समूलर की सोलर थ्योरी[२] को महत्व देने वाला माना जाता है।

(५) इसकी प्रणाली तुलनामूलक थी। गाथा, अभिप्राय तथा नाम और शब्दो की तुलना, इसे धर्मगाथावादी सम्प्रदाय की त्रुटियाँ, कमी और दोष, इसके अनुयायियो को ही प्रकट होने लगे थे, फिर भी यह प्रवृत्ति १८५६ ई० तक प्रबल रही।

१८५६ मे थ्योडोर बेन्फी का पंचतंत्र प्रकाशित हुआ, जिसने थ्योरी आव बोरोइंग—उधारवादी सम्प्रदाय की स्थापना की। बेन्फी की स्थापना यह थी कि ये गाथाएँ अथवा लोक-कथाएँ एक स्थान पर उत्पन्न हुई और वहाँ से दूसरे क्षेत्रो मे फैलती चली गयीं। इससे बेन्फी ने धर्म-गाथा-वादी सम्प्रदाय की इस धारणा का निराकरण किया कि समान धर्मगाथाओ वाली जातियाँ एक ही परिवार की हैं, वे जातियाँ अलग अलग परिवार की हो सकती हैं। उनमे समान धर्म-गाथाएँ इसलिए हैं कि उन्होंने एक मूल स्रोत से उन्हें उधार लिया है।

बेन्फी का विश्वास था कि गाथाओ का मूल उद्‌गम क्षेत्र भारत है। भारत

१—मैक्समूलर ने गाथाओं के उद्भव की दृष्टि से मानवीय संस्कृति के विकास की चार सीढियाँ या युग माने हैं—पहली, थीमैटिक शाब्दिक (धातुओं और व्याकरण के तत्वों का जन्म),, दूसरी डायलेक्टिक (बोलियों के निजी रूप-ग्रहण की अवस्था अथवा भाषिक विविध कुलो की भाषाओं के मूल स्वरूप का जन्म हुआ।) तीसरी माइथालाजीकल· गाथा-तात्विक (इस युग मे गाथाएँ बनीं) औरचौथी पौपुलर इस युग मे लौकिक राष्ट्र भाषाएँ खड़ी हुई।

२—स्टार्म थ्योरी मे विविध देवी-देवताओं का मूल स्टार्म या तूफान के प्राकृतिक व्यापार से माना जाता है और 'सोलर थ्योरी' मे सूर्य से।

से ही ये कथाएँ चली और फैली। बेन्फी ने उन युगो का निर्देश किया है जिनमे यह कथाओ का सक्रमण विशेषत हुआ—

उदाहरणार्थ एक युग है सिकन्दर के आक्रमणो का, दूसरा है अरबो के आक्रमण का। तथा धर्म-युद्धों [crusades] का।

बेन्फी ने उन मार्गों को ढूँढ निकाला जिनसे होकर ये गाथाएँ एक स्थान से दूसरे स्थान की यात्रा करती रही। पंचतत्र की कहानियो के आधार पर बेन्फी ने ये सब स्थापनाएँ सिद्ध की।

इस उधारवादी सप्रदाय के प्रमुख वेत्ताओ मे हैं फ्रांस के गेस्टनपटिस, कासविवन, अग्रेजी के क्लौस्टज, जर्मन के लेनडउ आदि।

इस उधारवादी संप्रदाय को भी भारतीय सप्रदाय के अन्तर्गत स्थान दिया जायगा, क्योकि, माइथालौजिस्ट 'धर्मगाथावादी' की भाँति यह सप्रदाय भी भारतीय-तत्व को प्रधानता देता है। यद्यपि इसी सप्रदाय के अन्तर्गत ही वे प्रयत्न भी आयेंगे जो लोक-गाथाओ के उत्पत्ति-स्थान और उसके अभिप्रायो की यात्रा का अनुसधान करेंगे, भले ही वे उनका मूल भारत को न मानें। किन्तु ऐसे प्रयत्न विशेष महत्व नही पा सके। मुख्यत इस सप्रदाय के प्रयत्नो के परिणाम से भारत ही कहानियो का मूल सिद्ध होता था।

किन्तु इस सम्प्रदाय की कमियाँ धीरे धीरे सामने आने लगी थी। इंग्लैंड, फ्रांस आदि देशो के साम्राज्य अफ्रीका, अमरीका, एशिया, आस्ट्रेलिया आदि में फैले, वहाँ से लोक-वार्ता विषयक सामग्री का सग्रह विद्वानो के समक्ष आया। इस सामग्री को इस उधारवादी सिद्धान्त के आधार पर सिद्ध नही किया जा सकता था। तब एन्थ्रापालाजिकल (मूल-प्राकृतिक) सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ। अग्रेज विद्वान टेलर ने सर्वप्रथम 'प्रिमिटिव कल्चर' नामक पुस्तक मे उधारवादी सप्रदाय के विरुद्ध एन्थ्रापालिजिकल सिद्धान्त की रूप-रेखा प्रस्तुत की। वृहद् सामग्री का अध्ययन करके टेलर ने स्थापित किया कि —

(१) सभी जातियो के लोको की जीवन-प्रणाली, रीति-रिवाजो और धार्मिक वृत्तियो और काव्य-रचना-प्रणाली मे अद्‍भुत साम्य दिखायी पडता है। इस साम्य का कारण यह नही हो सकता कि एक स्थान से ही इन सबका प्रसरण हुआ।

(२) यह मानवीय स्वभाव-जन्य मानस-विचार-पद्धति और विकास-क्रम के स्वाभाविक साम्य के ही कारण है। मानव सर्वत्र मूलत मानव ही है। इसका परिणाम यह है कि प्रत्येक जाति ने अपने लोक-वार्ता-तत्वो का निर्माण अपने क्षेत्रो में स्वतत्र रूप से किया है, किसी से उधार नही लिया और न

किसी एक मूल से ही उदय होकर वे आये है। इस धारणा के कारण इस सम्प्रदाय को विषयो के स्वोद्‌भावन का सिद्धान्त भी कहा जाता है।

(३) आदिम मानव ने ही हमारे समस्त सस्कृति के मूल बीज का निर्माण किया। उनके उन मूल स्वरूपो का अवशेष आज भी हमे विद्यमान मिलता है, विशेषत पिछडे हुए वर्ग मे। इसी सप्रदाय ने एनीमिज्म (animism) भूतात्मवाद अथवा पदार्थात्मिवाद को आदिम धर्म का मूल बताया था। इस नृवैज्ञानिक सप्रदाय के प्रवर्तक टेलर का साथ दिया है लैंग महोदय ने।

इस सप्रदाय ने धर्मगाथावादी और उधारवादी सम्प्रदायो से वैज्ञानिक दृष्टि से अधिक ठोस धरातल स्वीकार किया और इस प्रकार लोक-वार्ता-तत्व के विषय में एक बहुत लम्बा डग बढाया, फिर भी यही यह विचार-परम्परा समाप्त नही हो सकती थी। इस सप्रदाय ने मनुष्य और उसके स्वभाव को एक निरपेक्ष तत्व के रूप मे स्वीकार कर उसकी सर्वत्र सभावना स्थापित की थी। वह उन तत्वो तक नही पहुँचा था जो मानव-स्वभाव के निर्माता माने जा सकते हैं।

इसी सम्प्रदाय के अन्दर लोक-मानस को भी विशेषत अध्ययन का विषय बनाया गया। जर्मन विद्वान विलहेल्म वुंट इसके अगुआ थे। 'साइकालौजी आव नेशन्स' मे इन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि धर्म तथा काव्य के विविध विचार-विन्दु विशेष परिस्थितियो मे मनुष्य के मानस मे स्वप्न अथवा भ्रम रूपो मे उत्पन्न हूए हैं।

ऐंथ्रॉपालाजिकल सम्प्रदाय के इस मनोवैज्ञानिकवाद मे फ्रायड को स्थान दिया जायगा, जिसने अपने साइकोऐनेलिसिस (मनोविश्लेषणात्मक प्रणाली) से यह सिद्ध करने की चेष्टा की, कि लोकगाथा (कथा) के अभिप्रायो का निर्माण दमित काम-भाव का परिणाम है। मनोवैज्ञानिक सप्रदाय सर्वथैव ग्राह्य नहीं हो सका।

इस 'नृवैज्ञानिक सप्रदाय' मे फ्रेजर का नाम सबसे अधिक उल्लेखनीय है। गोल्डन बौ (Golden Bough) में उसने टेलर-लैंग की भाँति नृवैज्ञानिक मानवीय समानता का प्रतिपादन करके भूतात्मतत्व (ऐनीमिज्म) को भी माना है, पर उसने यह भी स्थापना की कि उससे पूर्व भी लोक-संस्कृति की एक स्थिति होती है, जिसमे 'मैजिक' वाद का विशेष महत्व होता है, और इस मूल मैजिक भाव के साथ धार्मिक भाव भी सम्बद्ध रहता है।

रूस मे इसी नृवैज्ञानिकवाद के साथ वी० एफ० मिलर (१८४८-१९१३) के उद्योगो से ऐतिहासिक सम्प्रदाय का जन्म हुआ। इस सम्प्रदाय ने रूसी

लोक-साहित्य को उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से सम्बद्ध दिखाया और इतिहास और लोक-साहित्य के घनिष्ठ सम्बन्ध के सिद्धान्त को स्पष्ट किया। इस सम्प्रदाय के अध्ययन मे निम्न बातो पर ध्यान दिया जाता था कि लोक-वार्ता साहित्य'—

(१) कहा,

(२) कब,

(३) किन ऐतिहासिक तथ्यो पर और

(४) किन काव्य स्रोतो के सहयोग से निर्मित हुआ है।

इस प्रकार लोक-वार्ता-साहित्य विषयक यह नृवैज्ञानियक सम्प्रदाय दूसरा प्रधान सम्प्रदाय है। इस सम्प्रदाय के विविध देशो मे अपने-अपने अनुकूल रूप ढले।

इन दोनो सम्प्रदायो के अतिरिक्त एक सम्प्रदाय और माना जा सकता है। यह शुद्ध 'लोक-साहित्यवादी' सम्प्रदाय है और अमरीकी लोक-वार्ता क्षेत्रो मे 'आर्ने-टामसन' सम्प्रदाय कहलाता है। इस सम्प्रदाय का दृष्टिकोण न तो लोक-साहित्य के साथ धर्म के प्रश्न को ग्रहण करता है, न मानव के आदिम मानस और स्वभाव को। वह लोक-साहित्य को, उसके रूप, अभिप्राय, उसके साम्य, पारस्परिक आदान-प्रदान आदि की दृष्टि से अध्ययन करता है। यह उनके अतीत आदि मे प्रवेश करने की चेष्टा नही करता।

इन तीनो सम्प्रदायो तथा इनके उप-सम्प्रदायो और सहवर्ती सम्प्रदायो के सिद्धान्तो को हृदयगम करके यही निष्कर्ष निकलता है, कि लोकवार्ता और लोक-साहित्य का अपना इतिहास भी है और उसका अपना विज्ञान भी है। विज्ञान की दृष्टि से इसे भाषा-विज्ञान की समकक्षता प्रदान की जा सकती है और उसी के अनुसार इसे नृवैज्ञानिक पद्धति से भी ग्रहण किया जा सकता है, और लिंग्विस्टिक्स की भाँति 'फोकलोरिस्टिक्स'लोकवार्त्तातत्व को विवरणात्मक (डिस्क्रिप्टिव) रूप मे भी ग्रहण किया जा सकता है।

प्रत्येक दृष्टिकोण से लोकवार्त्ता और लोक-साहित्य का महत्त्व विश्व व्यापी सिद्ध होता है। और यह भी प्रतीत होता है कि लोक-साहित्य मनुष्य की प्रतिभा के लिए मूल स्रोत है। सभवत मानव की प्रतिभाजन्य वाणी-क्रीडा-कला लोक-साहित्य से विलग होकर रह नही सकती। प्रत्येक देश और जाति के, प्रत्येक काल के साहित्य मे इसकी सत्ता प्रतीत होती है। वैज्ञानिक दृष्टि से इस सत्ता की व्याप्ति 'लोक-मानस' की सतत विद्यमानता के कारण है।

ऐतिहासिक दृष्टि से साहित्य के निर्माण की पृष्ठभूमि एक परपरा से सवद्ध रहती है, और यह परपरा अपने-अपने क्षेत्रो मे व्युत्पत्ति-क्रम से आदिम प्राक् ऐतिहासिक मूल तक पहुँचती प्रतीत होती है।

हिन्दी साहित्य परपरा, मनीषिता और प्रतिभा की दृष्टि से महान है, उसमे भी लोकवार्ता के तत्व का महत्त्वपूर्ण समावेश है। कैसे, कितने और किस रूप मे ? ये प्रश्न हैं जो उत्तर की अपेक्षा रखते हैं।

लोक-साहित्य और साहित्य

जिस प्रकार भाषा का विकास जनवाणी से होता है, वस्तुत उसी प्रकार जन साहित्य से उदात्त अथवा वर्गोच्च साहित्य 'Classical literature' नाम की वस्तु का निर्माण होता है। लोक-मानस 'फोक माइ ड' अपनी वर्वर मानस-परपरा का उत्तराधिकार अर्थात् आदिम मानव-मानस सस्कारो को वनाये रहता है। इसी मानस को शिष्ट सस्कार के उपरान्त साहित्यिक मानसिकता प्राप्त होती है। प्रत्येक साहित्यिक मानस की यथार्थ पृष्ठभूमि इसी जन-मानस पर टिकी होती है। फलत लोक-वार्ता की व्याप्ति प्रत्येक काल और प्रत्येक युग के साहित्य मे उसी प्रकार मिलती है, जिस प्रकार पूर्वजो का रक्त उनकी सतति में मिलता है। यह व्याप्ति उनकी नवीन से नवीन कल्पना और नवीन से नवीन दर्शन में भी मिलती है, उन तक में भी जिन्हें हम उनकी अपनी निजी उद्भूति मानते हैं। 'एक दीपक किरण-कण हूँ', डा० रामकुमार वर्मा की कविता के इस चरण में जो विपरीत-आरोप है जिसमें मानव का दीपकीकरण प्रस्तुत हुआ है, वह उसी आदिम वृत्ति का परिणाम है जो किसी भी वस्तु को प्राणवान मानती है। 'एक दीपक किरण कण हूँ' में अलकार नही, कवि की एक आस्था है जिसमें आदिम मनोवृत्ति ने कुलाच लगायी है।

न जाने कौन, अये द्यु तिमान।
जान मुझको अवोध अज्ञान,
सुझाते हो तुम पथ अनजान,
फूक देते छिद्रो में गान,
अहे सुख दुख के सहचर मौन
नही कह सकते तुम हो कौन ?

ऐसे गीतो मे यथार्थ आदिम मानवीय मनोवृत्ति अवाक् और सभ्रम दिखायी पड़ती है। अन्यथा आज कौन इतना विस्मय कर सकता है! आज का बौद्धिक व्यक्ति इन समस्त प्रकाश-अधकार के रहस्यो से परिचित है, 'वह न जाने कौन' कह ही नही सकता। वह उसे "तुम" भी नही कह सकता। क्योकि

यह "तुम" तो स्पष्टत मानवीकरण है । अत केवल मौलिक दृष्टि से ही यह लोक-वार्ता-तत्त्व तथाकथित उदात्त साहित्य को पृष्ठभूमि ही नही प्रदान करता, वह साहित्य के अभिप्रायो [motifs] का भी वीज अथवा केन्द्र होता है । प्रत्येक साहित्य किन्ही अभिप्रायो (मोटिफो) के आधार पर खडा होता है । ये अभिप्राय जन-मानस में लोक-वार्ता से घनिष्ठ रूप से सवद्ध होते हैं और लोक-वार्ता-मय मानस में ही धर्म-गाथा का रूप ग्रहण कर धार्मिक आस्था का अवलवन बन जाते है । यह अभिप्राय लोक-वार्ता की देन होते हैं और विश्व के समस्त उन्नत से उन्नत साहित्य में वडे गर्व से सिर उठाये मिलते हैं । राम और कृष्ण भारतीय वाग्मय के ऐसे प्रवल अभिप्राय हैं जो अनेक नामो और रूपो से साहित्य में व्याप्त हैं । ये मूलत किस क्षेत्र की देन हैं, इसका अनुसधान यद्यपि कठिन है, फिर भी अव तक की जो शोध है उसके आधार पर कामिल बुल्के के शब्द प्रमाण माने जा सकते हैं —

"वैदिक काल के वाद इक्ष्वाकु वश के सूतो द्वारा रामकथा सम्वन्धी आख्यान-काव्य की सृष्टि होने लगी थी, जो चौथी शताब्दी ई० पू० के अन्त तक कुछ प्रचलित हो चुका था । उस समय वाल्मीकि ने इस स्फुट आख्यान काव्य के आधार पर राम-कथा विषयक एक विस्तृत-प्रबन्ध काव्य की रचना की ।"[1]

वैदिक काल के वाद राम-आख्यान सूतो ने रचा, यह तो लेखक का अनुमान माना जा सकता है पर लेखक का यह निष्कर्ष उसकी वैज्ञानिक शोध का ही परिणाम है कि वाल्मीकि ने राम-आख्यान को लोक-वार्ता से प्राप्त किया, वह आख्यान विविध रूपो में स्फुट लोक में प्रचलित था । वाल्मीकि जी ने उसे प्रवन्ध-वद्ध कर दिया । स्पष्ट है कि वाल्मीकि का मूल स्रोत लोक-क्षेत्र था, अनुश्रुति और जन-श्रुति पर निर्भर । इस अनुश्रुति और जन-श्रुति के स्तरो को भेदकर यदि दूर गहरायी में देखा जाय तो सभवत यह सत्य उद्घाटित हो सकता है कि राम-लक्ष्मण नाम के दो भाई तो कभी इतिहास के इक्ष्वाकु वश ने हमें अवश्य दिये और वे यशस्वी भी रहे, पर वाल्मीकि रामायण ने जिस कथा को राम-लक्ष्मण के साथ गूंथा है, वह कथा उन इक्ष्वाकुवशी राजकुमारो की नही, वरन् वह एक ऐसी लोककथा है, जो सभवत आर्यजाति मे उस समय प्रचलित थी जव इस जाति की शाखाऐं मूल से विच्छिन्न होकर पूर्व पश्चिम मे बटी और फैली[2] । राम-कथा की वात ही नही, कृष्ण-कथा का स्वरूप भी लोक-वार्ता ने प्रस्तुत किया है । कृष्ण,

१—रामकथा—पृष्ठ ४८०
२—देखिये काक्स (Cox) की 'माइथालाजी आव एर्यन नेशन्स'

नारायण, वासुदेव, गोपाल आदि एक ही व्यक्तित्व नहीं, कई व्यक्तियों के सम्मिलित रूप हैं, यह तो अब आधुनिक विद्वान मानने लगे हैं। यह सम्मिलित रूप लोक-मानस का ही प्रदान किया हुआ है। किन्तु जैसे राम की मूल-कथा भारत से बाहर भी व्याप्त है, उसी प्रकार कृष्ण-कथा को भी हम केवल भारत में ही नहीं पाते। यूनानी पुराण में जियस के जन्म की कथा क्या कुछ ही रूपान्तर में कृष्ण-कथा नहीं है।

यूरेनस नाम के ग्रालिम्पस के प्रथम सम्राट को सिंहासन च्युत करके उसका पुत्र क्रोनस सिंहासनासीन हुआ तो उसने 'रहीग्रा' (Rhea) से विवाह किया। किन्तु उसकी (क्रोनस की) मा 'गइग्रा' ने उसे शाप दिया कि उसे भी उसके (क्रोनस के) पुत्रो में से कोई एक गद्दी से उतारेगा क्योंकि उसने अपने पिता यूरेनस को उतारा है। इससे क्रोनस इतना विकल हुआ कि जब उसके बच्चा होता तभी वह अपनी पत्नी से उसे छीन लाता और निगल जाता। पाच बच्चो को वह इस प्रकार निगल गया। तब रहीया बहुत दुखी हुई। उसने गइग्रा के परामर्श से एक प्रपच किया। जब छठा पुत्र उत्पन्न हुआ तो उसे क्रीट द्वीप मे एक गुफा मे छिपा दिया। यहा ग्रमलथिया नाम की बकरी ने उसका पालन किया। उधर उस बच्चे के स्थान पर रहीग्रा ने एक पत्थर के टुकडे को प्रसव के वस्त्रो मे लपेट कर क्रोनस को दे दिया। क्रोनस उसे भी निगल गया। वह बालक वहा क्रीट द्वीप मे पलकर एक वर्ष मे ही बडा हो गया। गइग्रा ने क्रोनस को वमन करा दिया, जिससे वह पत्थर का टुकडा ही पेट से नहीं निकल ग्राया, वे पाचों बच्चे भी निकल ग्राये, दो देवता थे, तीन थी देविया। इन्हीं ने क्रोनस को अपदस्थ कर दिया . आदि।[१]

इससे यह बात और भी भली प्रकार सिद्ध हो जाती है कि कृष्ण की कथा का लोक-वार्ता से घनिष्ठ सबध है। इससे यह भी स्पष्ट है कि केवल भारतीय साहित्य को ही राम और कृष्ण लोक-वार्ता से नही मिले, अन्य भाषाओं के साहित्यों को भी मुख्य मुख्य जातीय अभिप्राय (National Motif) ऐसे ही लोक-वार्ताओ से मिला करते हैं, और वहाँ से साहित्यकार उन्हें ग्रहण कर लोक-विश्वास की मुख्य तीलियों को बिना विचलित किये, उन अभिप्रायो मे नूतन कथा-व्याख्या प्रतिष्ठित करता है। इसी कारण किसी भी साहित्य में महान जातीय पुरुष प्राचीन परपरा अथवा पुराणों से ही अवतीर्ण होते हैं और समय के अनुसार नयी साहित्यिक व्याख्या ग्रहण करते जाते हैं।

१—Lewis Spence, Introduction To Mythology P 13.

राम वाल्मीकि रामायण मे भी है, तुलसी के रामचरितमानस मे भी, केशव की रामचन्द्रिका मे सेनापति के श्लेषो मे, रामसखे की रचनाओ मे भी है, और मैथिलीशरण गुप्त के साकेत मे, निराला की राम की शक्ति पूजा मे। श्यामनारायण पाँडेय के तुमुल मे। पुराण-सिद्ध राम की रूप-रेखा सर्वत्र एक है किन्तु आत्मा भिन्न हो गयी है। इसी प्रकार पुराणो के कृष्ण और प्रिय-प्रवास तथा द्वापर के अथवा कृष्णायन के कृष्ण अभिन्न होते हुए भी भिन्न हैं। पुराणो के कृष्ण भगवान है या भगवान के अवतार हैं, किन्तु प्रिय-प्रवास के कृष्ण एक महापुरुष अथवा जननायक ही दिखाये गये है। फलत. कृष्ण और राम तो लोक-वार्ता से मिलते ही हैं, उनके साथ के समस्त रूढ भाव भी लोक-वार्ता से प्राप्त होते हैं। कृष्ण केवल यशोदा-नंद के पालित पुत्र है इतना ही नही माना जायेगा, यह भी माना जायेगा कि कृष्ण गोपियो के प्रिय हैं, उन्होने गोवर्द्धन पर्वत उठाया, व्रज की इन्द्र के कोप से रक्षा की, कितने ही दनुजो को मारा, आदि आदि और इस वृत्त मे लोक-वार्ता का दिया हुआ तत्व विद्यमान है। विश्व का ऐसा कोई भी साहित्य नही मिलेगा जिसमे यह तत्व प्रचुर मात्रा मे नही। प्राय समस्त वर्गोच्च (क्लासीकल) उदात्त साहित्य और विशेषत उसके महाकाव्य[१] और नाटक ऐसे ही पौराणिक आख्यानो पर निर्भर करते हैं, जो लोक-कथा का ही मूल्य रखते है। शेक्सपीअर के किंगलीअर और उसकी तीन बेटियो की कहानी प्रसिद्ध लोक-कहानी ही है जो भारत मे भी किसी न किसी रूप मे विद्यमान मिलती है। होमर के महाकाव्यो मे जो पौराणिक आख्यान भरे पडे है, वे लोककहानी के स्वभाव के ही तो हैं। इस प्रकार लोक-वार्ता से ही दार्शनिक सिद्धान्तो को भी साहित्य प्राप्त करता है और साहित्यकार उसे और महानता का आवरण प्रदान कर देता है।

1—The epic poem is a popular tale which the highest human genius has imparted a peculiar charm, and the same genius might have handled in like manner other tales which perhaps may never have passed out of the rang of common story tellers. They must all, therefore, be regarded and treated as belong ing to vast store of popular tradition They form indeed in the strictest sense of the works and have formed for thousands of years the folklore or learning of the people. Rev. Sir George W. Cox Bart M.A. "Introduction to the Science of Comparative Mythology and Folklore" Edi 1881 p. 6—7

हिन्दी मे मध्ययुगीन भक्ति का जन्म ही लोक-क्षेत्र मे हुआ था, जितने भी सत हुए सभी अशिक्षित और निम्न वर्ग में से हुए और उन्होंने भक्ति को प्रधानता दी। पत्थर की पूजा, नाम का महत्व, निराकार के साकार और साकार के निराकार होने का अद्भुत व्यापार, सभी कुछ तो लोक-वार्ता से प्राप्त हुआ है।[1] 'पत्थर पूजा' आदिम मानस के फेटिश (Fetish) मूर्तिकरण का सस्कृत अवशेप है।

हिन्दी के भक्ति काल का रास-तत्व, दर्शन, अध्यात्म, काव्य के कथा-प्रसग विपय-गत सामाजिक, व्यावहारिक वर्णन-विवरण, छद, शैली, भापा का स्वरूप, सभी में लोक-तत्व और उसकी महत् प्रेरणा विदित होती है—हिन्दी में यह कितनी और कैसी है इसी का विश्लेपण और निरूपण इस प्रवन्ध का मुख्य विपय है। ये सभी लोक-क्षेत्र से ग्रहीत सामग्री आज उच्च उदात्त साहित्य की महिमा से मडित हमारे समक्ष हैं।[2]

यहाँ तक इस वात का प्रतिपादन किया गया है कि परिनिष्ठित अथवा उद्दात्त साहित्य लोक-साहित्य से प्रभावित होता है। वस्तुतः इस प्रभाव से साहित्य वच नहीं सकता, क्योकि साहित्य और लोक-साहित्य दोनो की प्रवृत्तियो मे जो मौलिक भेद है वह इस प्रभाव को अनिवार्यता का रूप दे देता है। परिनिष्ठित अथवा उदात्त साहित्य की प्रवृत्ति क्या है ? निश्चय ही यह प्रवृत्ति सस्कार और परिमार्जन की प्रवृत्ति है। यह वह प्रवृत्ति है जो वैशिष्ट्य

१—देखिए डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखित 'हिन्दी साहित्य'—"स्पष्ट है अलवारो का भक्तिवाद भी जनसाधारण की वस्तु था जो शास्त्रों का सहारा पाकर सारे भारत मे फैल गया। भक्तों के अनुभूति-गम्य सहज सत्य को वाद के आचार्यों ने प्रदर्शन का क्रमवद्ध और सुचिन्तित रूप दिया।" (पृ० ६०)

२—Psychology of Folklore by R. R Marret—पृ० १०० पर देखिये "Thus the aesthetic tradition of the folk which is the last home of many decadent interests of a practical kind can furnish material on which the literary genius may profitably draw."

इस कला सौंदर्य की उद्भावना पर आगे विचार करते हुए इन्होंने लिखा है—

'Now possibly the sense of beauty depends more on innate predisposition than on education—Page 116.

चाहती है। यह सौन्दर्य और अनुभूति का ही वैशिष्ट्य नही चाहती, अभिव्यक्ति के रूप का भी वैशिष्ट्य चाहती है। अत. इसमे कला ही नही कौशल भी आता है। रूप का वैशिष्ट्य और कौशल का उपयोग ऐसे साहित्य को अनुदार सीमा-रेखाओ से बाँध देता है। यह बधन आगे चलकर नियम और शास्त्र की परपरा मे पर्यवसित होता है। यह परपरा लकीर के फकीरो का महत्व स्थापित कर देती है। मौलिकता का लोप होने लगता है। उधर लोक-साहित्य की धारा प्राकृत धारा है, वह प्राकृत प्रवाह से स्वच्छन्द बहती चलती है, उसके लोक-मानसिक तत्व एक परपरागत रीढ का सहारा लेते हुए भी नयी सभावनाओ, नयी उद्भावनाओ, और नयी अनुभूतियो को अपनाती चलती है। फलत जैसे ही मनीषी उदात्त साहित्य परिपाटी मे पडकर जीर्ण होने लगता है, वैसे ही उसे लोक-साहित्य से नयी सजीवनी प्राप्त करने के लिए विवश होना पडता है। लोक-क्षेत्र की विशालता भी साहित्य को प्रभावित करने मे एक कारण है। लोक-साहित्य नयी उद्भावनाओ से ओत-प्रोत महासागर की तरह जहाँ चारो ओर उमड रहा है वहाँ साहित्यकार उसकी कैसे उपेक्षा कर सकता है। और कुछ नही तो उसकी प्रेरणा से उद्भूत अपनी कलात्मक अनुभूति के लिए ही वह लोक-साहित्य का ऋणी हो जाता है। लोक-साहित्य और लोक-वार्ता से वस्तु और प्रतीक लेकर वह उन्हे सस्कृत और परिमार्जित रुचि के अनुकूल ढालने की भी चेष्टा करता है। इसी के साथ एक और अत्यन्त महत्वपूर्ण कारण यह है कि लोक-साहित्य मे मानव का परपरित मर्म और मूल अवतरित होता है। दूसरे शब्दो मे उसमे हमे वह धरातल प्राप्त होता है जिस पर भूतकालीन मानव अपनी नग्नता के साथ वर्तमान मानव से मानव की चिरकालिक सत्ता के धरातल पर मिलता है, जिस पर मानव की समष्टिगत मूर्ति प्रतिष्ठित है, जिस पर मानव की बहुमुखी प्रवृत्ति लहरा रही होती है, जिस पर मानव भौगोलिक और सास्कृतिक भेद भुलाकर जीवित है, जो व्यक्ति के अलकार से रहित है, पर व्यक्ति की प्रतिभा के सामान्य को लिये है। ऐसे मर्म से व्यक्तित्व और प्रतिभा की अहम्मन्यता भी देर तक प्रवचना नही कर सकती।

ऊपर जैसे कुछ कारणो से ही साहित्य को लोकसाहित्य से प्रभावित होना पडता है। साहित्य के लिए लोक-वार्ता और लोक-साहित्य स्रोत का काम देते हैं। बडे बडे महाकाव्यो ने अपनी वस्तु का चयन लोक-वार्ता और लोक-साहित्य से किया है। यही कारण है कि कथासरित्सागर अथवा बड्डकहा (वृहत कथा) को आचार्यों ने काव्यो के स्रोत का सम्मान प्रदान किया है?

लोक-वार्ता और लोक-साहित्य केवल कथा और कथानक-रूढियो या अभिप्रायो के लिए ही साहित्यकारो को स्रोत नही होता, विचारो, धार्मिक भावो,दार्शनिक तत्वो के लिए भी होता है। यहाँ तक कि छन्द और भाषा के लिए भी उसे लोक के पास जाना होता है। लोक-साहित्य की धारा सहज ही सर्वत्र प्रवाहित मिल जाती है। उसके लिए पाठशालाओ को अपेक्षा नही, वह जैसे प्रत्येक मनुष्य से सहज ही सबद्ध है। मौखिक होने से वह सहज ही कानो में पडती रहती है। लोक-मानस का किंचित दाय भी मनीषी-मानस को मिलता ही है। विश्व की समस्त साहित्य की पृष्ठभूमि मे यह तत्व विद्यमान मिलेगा। हिन्दी के सम्वन्ध मे तो यह और भी विशेष रूप से सत्य है। हिन्दी के जन्म से पूर्व की दीर्घ धारा को हम देखते हैं, सस्कृत भाषा के मनीषियो ने एक समय लोक-भाषा का अस्तित्व माना। यह लोक-भाषा उस सस्कृत के लिए प्राकृत थी। प्राकृत-युग में आचार्यों ने प्राकृत के साथ फिर एक 'देशभाषा' की सत्ता स्वीकार की*—तव यह देश-भाषा अपभ्रंश थी। और अपभ्रंश के साहित्यकारो ने भी "देसिल वयना" की ओर सकेत किया—यहाँ हमे अपनी हिन्दी आदि देशी भाषाए मिली। देशी भाषा में साहित्य रचने की परपरा निरतर विद्यमान है। इस भाषा को ही लोक-भाषा कहा जाता है और इसका साहित्य आरभ में जव वह केवल 'देश भाषा' के नाम से चलती है, लोक-साहित्य होता है। फिर लोकसाहित्य साहित्य को पृष्ठभूमि वन जाता है। हिन्दी के उदाहरण से इस लोक विषयक पृष्ठभूमि को स्पष्ट समझा जा सकता है।

हिन्दी साहित्य के विकासक्रम मे लोकवार्ता को पृष्ठभूमि

हिन्दी के उदय की वेला पर दृष्टिपात करते ही यह सहज ही प्रतिभासित होता है कि हिन्दी की समस्त पृष्ठभूमि लोकवार्ता और लोक-तत्वो पर निर्मित हुई होगी। हिन्दी लोकभाषा थी और इसमे साहित्य-सृजन करने वाले आरभ मे वे ही लोग थे जिनका या तो सस्कृत से सैद्धान्तिक विरोध था, जैसे बौद्ध या जैन[1] या वे थे जिनका सस्कृत से सम्पर्क ही न था, अर्थात अत्यन्त साधारण जन जो अधपढ, कुपढ या वेपढे थे। अत लोकभाषा का ही आधार इनके साथ था, भले ही वह सैद्धान्तिक आस्था के कारण हो अथवा जन्मजात।

---

* यथा "एवमेतन्तु विज्ञेयं प्राकृत सस्कृत तथा अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि देश-भाषा प्रकल्पनम्" (भरत नाट्यशास्त्र)

१—भगवान बुद्ध मागधी प्राकृत मे उपदेश देते थे। उनके शिष्यो ने उनसे पूछा कि आपकी वाणी को सस्कृत में रूपांतरित किया जाय, किंतु उन्होंने उसका स्पष्ट निषेध किया था।

इस स्थिति से सस्कृत-क्षेत्र-वाह्य मूल लोक-सत्ता की एक विशेप मनोवृत्ति* हो गयी थी। इस मनोवृत्ति का वस एक ही परिणाम हुआ करता है · वह यह कि समस्त जन-साहित्य की पृष्ठभूमि और भाव-भूमि लोक-तत्वो से प्रेरणा और सामग्री ग्रहण करती है। जन-मानस लोक-तत्वो का अभिज्ञान लेकर यथार्थ लोक-पार्थिव भूमि पर निर्भर करता है। मुनि-मानस अपनी प्रतिभा के चमत्कार पर पार्थिव भूमि से पृथक् सौन्दर्य-अनुभूति-कल्पना के लोक मे विचरण करता है। दोनो मानसो मे वहुत गहरी खाई हो जाती है। फलत. मुनि-मानस की सृष्टि एक महार्घता और पूज्य भावशीलता ग्रहण कर लेती है। लोक-मानस ऐसे अवसर पर स्वतत्र उद्भावनाओ से, नई स्फूर्ति से, सृजन करता है और यह सृजन परिणाम और नव-कल्पनाओ की दृष्टि से महत्वपूर्ण होता जाता है। धीरे-धीरे यह साहित्य के सम्मान का अधिकारी हो जाता है। हिन्दी के विकास की चार अवस्थाओ तक हमे लोक-तत्व धीरे-धीरे साहित्य-गौरव से अभिमण्डित होता दिखायी पडता है। हमे हिन्दी साहित्य की इसी पृष्ठभूमि को भली प्रकार देखना है।

ऐसा करने के लिए हमे लोक-तत्व का स्वरूप स्पष्ट करने की आवश्यकता

---

* इस विशेष मनोवृत्ति को 'लोक-वेद' की परम्परागत दो पद्धतियो मे से 'लोक-मनोवृत्ति' ही कहा जा सकता है। यह सस्कृत-सास्कृतिक नहीं रहती; लोक-सस्कारपरक हो जाती है।

ऐसी ही घटना भगवान महावीर के सम्वंध मे कही जाती है।

जैन महाकवि देवसेन के साथ भी कुछ ऐसी ही घटना घटी थी। प्राकृत उस समय शिष्ट भाषा थी, अपभ्रंश या पुरानी हिंदी उस समय थी देशभाषा। देवसेन ने 'नय चक्र' इसी देशभाषा मे 'दोहो' मे रचा और किन्हीं शुभंकर नाम के विद्वान को सुनाया। वे इस पर हँसे और कहा कि ऐसी ऊँची बातें तो गाथावंध यानी प्राकृत मे शोभा देंगी, यह क्या दोहावंध (देशभाषा अथवा गँवारी भाषा) के योग्य हैं। देवसेन के शिष्य माइल्ल धवल ने इस कथा का उल्लेख किया है।

सुणिऊण दोहरत्थ सिग्घ, हसि ऊण सुभकरो भणइ,
ऐत्थण सोहइ अत्थो, गाहा वंध गतदव्व सहाव पयास दोहय-बंधेम आसिज दिट्ठ
तं गाहा-बंधेण रइय माइल्ल धवलेण (ना० प्र० स० नवीन सस्करण भाग ८ अक २, पृ० २२३)

है। आरम्भ मे हमे लोक और वेद का पारस्परिक विरोध दिखायी पड़ता है।[१] यह 'लोक' साधारण लोक अथवा जन का प्रतीक है और 'वेद' विशेष ज्ञानवान मुनि-मानसो का। यही लोक और वेद महाभारत-काल मे पूर्व मे ही दो भिन्न स्तरों पर साहित्य-सृष्टि की धारा प्रवाहित करते आये हैं। संस्कृत के इस 'लोक' शब्द मे, जो 'वेद' के विरुद्ध प्रस्तुत किया गया है साधारण जन का तो अर्थ प्रतीत होता है, किन्तु यह विदित नही होता कि वह 'जन' निरा गँवार होता है, जिसकी प्रेरणाएँ जीवन की निजी अनुभूतियाँ न हो, वरन् वे परम्पराएँ हों, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी उसे मिली है, जिन्हे उसने अध्ययन-अभ्यास से प्राप्त नही किया, अपितु प्रकृति की अन्य मुक्त विभूतियो की भाँति जो उसे सहज ही अपनी भूमि से प्राप्त होती चली गयी है। किन्तु आज जब हम 'लोकवार्ता' अथवा 'लोक तत्व' जैसे शब्दो मे "लोक" का प्रयोग करते है तो इस लोक से हमारा अभिप्राय वेद के विरोध मे आये हुए 'लोक' से नही होता, वरन् उस 'लोक' से होता है जिसके स्वरूप का कुछ आभास ऊपर दिया गया है। यह लोक अंग्रेजी शब्द 'फोक' का पर्यायवाची होकर हिन्दी मे आया है। लोकवार्ता शब्द का अर्थ आज 'फोकलोर' होता है। यह लोकवार्ता का निजी विशेष अर्थ है। और उस अर्थ से भिन्न है जो संस्कृत साहित्य के मनीषियो ने उसे दे रखा था[२]। अंग्रेजी मे भी इस शब्द के कई अर्थ विदित होते हैं। आदिम जातियो मे तो सम्पूर्ण मनुष्य समुदाय ही 'फोक' कहा जा सकता है। विस्तृत अर्थ मे समस्त सभ्य जगत् के जन भी 'फोक' हैं। किन्तु साधारणत पश्चिमी दृष्टि से जब यह शब्द फोकलोर, फोकम्युजिक या ऐसे ही शब्दो मे प्रयोग मे आता है तो इसका अर्थ बहुत संकुचित हो जाता है। इसके अन्तर्गत तब केवल वही लोग आते है जो नागरिक संस्कृति से शून्य रह जाते हैं, जिन्हे विधिवत् शिक्षा नही मिली होती, जो अपढ़े अथवा बेपढे, निरक्षर भट्टाचार्य होते हैं—गाँव के गँवार।[3] इस प्रकार आज के युग मे

१—वेदोक्ता वैदिका शब्दा सिद्धा लोकाच्च लौकिका, प्रियतद्धिता दाक्षिणात्या यथा लोके वेदे चेति प्रयोक्तव्ये यथा लौकिक वैदिकेष्विति प्रयुञ्जते (म० भा०) अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथित पुरुषोत्तम (भाग० १५-१८) जैसा आप्टे के कोष मे उल्लेख है।

२—देखिए, आप्टे का कोष जिसमे 'लोकवार्ता' का अर्थ 'पोप्युलर रिपोर्ट, पब्लिक रयूमर' दिया हुआ है।

३—देखिए, 'ऐनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका' में 'फोक डाँसिंग' पर टिप्पणी।

साधारणत सस्कृति के दो स्वरूप साथ-साथ विद्यमान मिलते है। एक नगर-सस्कृति दूसरी गँवार-सस्कृति[1]। गँवार-सस्कृति से अभिप्राय ग्रामीण-सस्कृति से है। नगर-सस्कृति मे वैशिष्ट्य का भाव रहता है—एक परिमार्जन, एक शिष्ट भाव, एक कृत्रिमशील। गँवार-सस्कृति मे एक सामान्य भाव रहता है—एक प्राकृतिक, स्वाभाविक तथा रूढि-सिद्ध भावाचार सम्पत्ति। इन दोनो सस्कृतियो का स्वरूप दोनो की अपनी अभिव्यक्तियो मे मूर्त होता है[2]। ये अभिव्यक्तियाँ 'साहित्य-सगीत-कला' से त्रिधा मानी जा सकती हैं। गँवार-सस्कृति का उक्त 'त्रिधा' रूप लोकवार्ता के अन्तर्गत आता है।

अत इस लोकवार्ता मे, इस युग मे, एक ओर तो हमे ऐतिहासिक आदिम मूल-तत्व मिलता है जो इस लोकवार्ता का अन्तराधार होता है, दूसरी ओर समय-समय पर, युग-युग मे हुए इस आधार के परिमार्जन-विकास के भी ध्वस विद्यमान रहते हैं। इन दोनो ऐतिहासिक स्तरो के साथ इन दोनो के पारस्परिक घोलमेल से बने एक सामान्य स्वरूप मे लोक की उस प्रतिभा का अभिमण्डन रहता है, जो प्रत्येक वस्तु को साधारण मानस के लिए भी प्रेषणीय बना देती है, और जिसमे सम्भव-असम्भव, यथार्थ-आदर्श, ऐतिहासिक अथवा कल्पित, स्वाभाविक अथवा कृत्रिम, स्वर्ग्य अथवा मर्त्य, सामान्य अथवा विलक्षण का भेद नही रहता। जिसमे प्रत्येक तथ्य अथवा कल्पना सहज ही ग्राह्य और विश्वसनीय होती है। इसी प्रतिभा से लोकवार्ता का निर्माण होता है और यही प्रतिभा है, जो मूल बीजो को सुरक्षित रखते हुए भी

१—ऐसे ही गँवारो का अनादर रीतिकाल के महाकवि बिहारीलाल जी ने खुलकर किया है—

कर लै सूँघि सराहि कै सबै रहे गहि मौन।
गंधी गंध गुलाब कौ गँवई गाहक कौन॥

तथा—ते न यहाँ नागर बढ़ी जिन आदर तो आब।
फूल्यौ अनफूल्यौ भयौ गँवई गाँव गुलाब॥

तथा—सबै हँसत कर तारि दै, नागरता के नाँउ।
गयौ गरब गुन कौ सबै बसे गमेले गाँउ॥ आदि

२—हेमचद्राचार्य ने अपने व्याकरण ग्रंथ 'काव्यानुशासन' मे दो प्रकार के अपभ्रंश माने हैं। एक को शिष्ट जन की अपभ्रंश बताया है। इसी का व्याकरण उन्होंने लिखा है। जैन पण्डितो ने इसी भाषा मे ग्रंथ रचे। दूसरी 'ग्राम्य अपभ्रंश'। यह भेद शिष्ट और ग्राम्यजन के भेद की ओर स्पष्टत सकेत करता है।

मनुष्यों के विकास के सामाजिक[1] इतिहास की लोकाभिव्यक्ति को प्रस्तुत करती है।

यह मानव-समाज की स्वाभाविक प्रतिभा और प्रवृत्ति है। यह एक अविच्छिन्न संस्कार की भाँति मानव के जन्म से आज तक चली आयी है। इस प्रतिभा को किसी नदी के प्रवाह से तुलना दी जा सकती है। इसी नदी में प्रवाह की अविच्छिन्नता के अतिरिक्त जो समय-समय और स्थान-स्थान पर उठने-गिरने वाली लहरें हैं वे मानो सभ्यता, मनीषिता और संस्कारिता के वे प्रयोग, प्रयत्न और उद्योग हैं जो किसी विशिष्टता तथा उच्चता से अभिमण्डित होकर कला अथवा साहित्य की महत्तम महानताओं को प्राप्त कर लेती हैं। जिस प्रकार लहरें उठकर फिर नदी में विलुप्त हो जाती हैं, उसी प्रकार से साहित्यिक और कलात्मक उत्थान की तरंगें लोकवार्ता अथवा लोकाभिव्यक्ति के महानद में अपने नाम और रूप दोनों को विलीन कर देती हैं। इस दृष्टि से सामान्य और विशेष में साधारणतः और यथार्थतः कोई विरोध नहीं होता। फिर भी, यह विरोध के रूप में ही ऐतिहासिक मनन-बुद्धि द्वारा ग्रहीत होता है। इसी दृष्टि ने लौकिक-वैदिक का विरोध दिखाया, इसी दृष्टि ने साहित्यिक को 'ग्राम्य' दोषों से बचने का परामर्श दिया, इसी दृष्टि ने नागरिकता को 'गमेले गाँव' का उपहास करने की प्रेरणा दी और इसी दृष्टि ने केशव के मन में भाषा-काव्य करते समय क्षोभ और दुःख पैदा किया।[2] इसी दृष्टि से तुलसी को यह सफाई देनी पड़ी थी कि—

"का भाषा का संस्कृत प्रेम चाहिए साँचु,
काम जु आवे कामरी का लै करै कुमाँचु।"[3]

और इसी दृष्टि तथा प्रवृत्ति ने भाषा तथा संस्कृत का भेद, विरोध और संघर्ष

१—सामाजिक शब्द उस विस्तृत अर्थ में प्रयुक्त हुआ है जिसमें अंग्रेजी शब्द 'सोशल' का प्रयोग होता है, और जिसमें सोशल साइंसों का समावेश होता है।

२—हिंदी में रचना करते समय केशव ने यह लिखा था—

भाषा बोलि न जानहीं, जिनके कुल के दास।
भाषा-कवि भो मन्दमति, तेहि कुल केशवदास॥

३—भाषा भनिति भोरि मति मोरी। हँसिबे जोग हँसे नहिं खोरी॥
(रा० च० मानस, बाल काण्ड, आठवें दोहे के उपरान्त)

गिरा ग्राम्य सिय राम जस, गावहिं सुनहिं सुजान
(वही दसवें दोहे के आगे)

प्रस्तुत किया था। सस्कृतविद् लोग पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी के समय तक ही नही, आज तक भी हिन्दी को हीन समझते आये हैं। कारण स्पष्ट है। फिर भी लोकाभिव्यक्ति अपनी शक्तिमे प्रवल होती है। उसकी उपेक्षा नही की जासकती। हिन्दी लोक-भापा थी, विशिष्ट वर्ग से भिन्न साधारण लोक की भापा। स्वभावत' ही यह भाषा लोकवार्ता और लोकतत्वो से अपने लिए प्राणदा सामग्री सचित करेगी। सभ्यता अथवा सस्कृति का दम्भ जिन प्रवृत्तियो, विश्वासो, आचारो और अभिव्यक्तियो को घृणा की दृष्टि से देखता है और त्याज्य वना देता है, वे ही तो लोकवार्ता और लोक-तत्वो का नाम प्राप्त कर लेती हैं। वह विशिष्ट वर्ग साधारण लोक मे से ही उदित हुआ है। समय पाकर अपनी विशिष्टता खोकर वह फिर उसी साधारण लोक मे विलुप्त हो गया है। नदी का शान्त, स्थिर, समगति प्रवाह लोक-प्रवाह है, जिसमे लहरो अथवा तरगो की भाँति साहित्यिक और सास्कृतिक आन्दोलन उठते हैं और फिर उसी मे गिरकर विलीन हो जाते हैं। फलत इस दृष्टि से ससार की समस्त साहित्यिक भूमि यही लोकाभिव्यक्ति होती है, परन्तु हिन्दी-साहित्य के साथ तो यह एक अनुपेक्षणीय घटना है। भारत के उत्तरी भाग ने अनादि या आदिकाल से आज तक सभ्यता, सस्कृति और साहित्य के क्षेत्र मे अभूतपूर्व तथा असाधारण महानता प्राप्त कर ली है। सामान्य लोक-भूमि से उसका स्तर वहुत ऊँचा हो गया है। ऐसी स्थिति मे सामान्य लोकभिव्यक्ति का महत्व स्थापित हुआ और उसमे निजी शक्ति उद्भावित हुई। इस महत्व और शक्ति का हमे हिन्दी के आरम्भ से आज तक परिचय मिलता है।

वस्तुत सातवी शती से दसवी शती तक हमे कुछ महान और कुछ लघु उत्थानो का लोक-प्रवाह मे लय अथवा प्रलय होता मिलता है। इसी युग मे महान वौद्ध-धर्म अपना नाम खोकर पूर्णत लोक-धर्म अथवा लोक-प्रवाह मे समा गया। ब्राह्मण-धर्म अनेकधा होकर लोकाभिव्यक्ति से समन्वय पाने के लिए सचेष्ट था। शैव, शाक्त तथा वैष्णव अनेक मार्गो से इस काल मे लोकाभिमुख हो रहे थे। फलत लोक-शक्ति इस युग मे प्रवल हो उठी थी।

लोकाभिव्यक्ति और लोक-तत्वो की शक्तियो ने एक ओर तो लोक से पृथक् हो जाने वाली उच्चता और महानता का अभिमान रखने वाली प्रवृत्तियो को शिथिल किया और अपनी ओर आकर्षित किया, दूसरी ओर इन्होंने स्वय भी ऐसे नाम-रूपात्मक नवीन, मौलिक और मौखिक सृजन किये कि वे आगे चलकर महार्घ कृतियो की प्रवृत्तियो और उनकी महानताओ को चुनौती देने लगे।

साधारण आदिम मानव ही अपनी आदिम अभिव्यक्तियो मे वे मौलिक बीज प्रस्तुत करता है जो चेतन और सभ्य मानव की अभिव्यक्ति द्वारा विकास और परिष्कार प्राप्त करते हैं। भारत के अपौरुषेय वेद भी इसी लोक-भूमि पर निर्मित हुए हैं, और सम्भवत इसीलिए वे अपौरुषेय भी हैं कि पुरुष यानी पुरुषार्थ के द्वारा उनकी उद्भावना नही हुई है, वे सहज उद्गार हैं। वे विश्वास उनमे अभिव्यक्ति हुए हैं, जो आदिम मानव ने अपने व्यक्तित्व और प्रकृतित्व के सयोग से सहज ही उपार्जित किये और जिन्हे किसी वैज्ञानिक प्रणाली से स्पष्ट नही किया जा सकता। 'प्राकृतिक' को व्यक्तित्व का आवरण पहनाना उस मूल आदिम सहज-प्रवृत्ति का परिणाम है जो एक ओर तो धार्मिक विश्वास का रूप ग्रहण कर अलौकिकता अथवा जादू-टोने का आधार बनती है, दूसरी ओर काव्य मे रूपकातिशयोक्ति का अलकारिक रूप ग्रहण कर, पर्सोनिफिकेशन, प्रतीक, समासोक्ति आदि का चमत्कार प्रदान करती है। वेदो मे लोक-भूमि की प्रचुरता होते हुए भी, सौन्दर्य चेतना का अभाव नही। हमारा उद्देश्य यहाँ इन दोनो प्रवृत्तियो का विश्लेषण करना नही। वेदो की लोक-भूमि ही आगे चलकर पौराणिक स्वरूप ग्रहण कर सकी। पुराणो के समय तक वैदिककालीन लोक कितनी ही परिस्थितियो से जटिल होता चला गया था। फलत लोकवार्ता, लोक-तत्व अथवा लोकाभिव्यक्ति की लोक-भूमि पर समस्त पुराण-साहित्य निर्मित हुआ।[१] आदि से अन्त तक समस्त पुराण-साहित्य आज के वैज्ञानिक सहज-अविश्वासी मानस के लिए ऐसी अलौकिक और असभव वार्ताओं का भण्डार है,जिनकी साधारणत व्याख्या नही की जासकती। फलत इन पर विश्वास करने के लिए व्याख्या की विशेष शक्तियो* का आश्रय लेना पडता है। किन्तु एक बात अवश्य है कि पुराण-साहित्य मे भारत की समग्र अभिव्यक्ति है। भारत की अभिव्यक्तियो और उनकी प्रेरणाओं के समस्त मर्म को पूर्णता के साथ पुराणो के द्वारा ही प्रस्तुत किया जा सका, इसीलिए पुराणो के उपरान्त लोकवार्ता की मौलिकता उदात्त साहित्य के लिए

१—ऐसा माना जाता रहा है कि वेदों को समझने के लिए पुराणों की सहायता अपेक्षित होती है। उधर पुराणों के लक्षणो मे भी यह स्पष्ट है कि वे केवल इतिहास नहीं। इन कारणों से पुराणों की लौकिक पृष्ठभूमि स्पष्ट हो जाती है।

* व्याख्या करने की कितनी ही विशेष शक्तियाँ हैं, जिनमे से कुछ के नाम यहां दिये जा सकते हैं १. अन्योक्ति, २. प्रतीक, ३. रूपक, ४. Allegory ५. Pesonificiation ६ श्लेष आदि।

किसी सीमा तक समाप्त हो गयी। अब लोकवार्ता की शक्ति का विधायकत्व उदात्त साहित्य मे केवल इतना रह गया कि वह पुराण-प्राप्त सूत्रो को जोड-तोडकर अपने अस्तित्व की सूचना देती रहे। पुराणो से सामग्री लेकर और नये पुराण बनाती रहे। आज तक की समस्त साहित्यिक अभिव्यक्ति का एक-मात्र आन्तरिक आधार यह पुराण-वार्ता है जो वस्तुत लोकवार्ता है। भारत की समस्त अभिव्यक्ति के दो ध्रुव राम और कृष्ण इसी पुराण-वार्ता से प्रसूत हैं। शिव, शक्ति, ब्रह्मा, विष्णु सभी का मूल इसी पुराण-सग्रहीत लोक-भूमिवर्ती-वार्ता मे है किंतु'लोकवार्ता साहित्य'से पुराणो ने कुछ छँटी हुई सामग्री ही ली, युग-युग से चली आने वाली बहुश परँपराओ से समृद्ध लोक-साहित्य के अक्षय भण्डार का मौखिक आदान-प्रदान चलता रहा, जिनमे पुराण-त्याज्य लोक-कथा, कहानी, गीत आदि चलते रहे। इनके अस्तित्व की सूचना हमे वृहत्कथा, जातक, जैन-कथा, लोक-प्रेम-गाथा आदि की पुराणातिरिक्त लौकिक प्रवृत्तियो द्वारा निरतर मिलती रही है।

किसी भी अभिव्यक्ति मे तीन तत्व होते हैं, जिन्हे आधार, निर्माण अथवा आधेय और रूप कह सकते हैं। इन्हे साहित्य मे वस्तु, विचार तथा शैली अथवा कला का नाम दिया जाता है। आधार, निर्माण और रूप वस्तुत अभिन्न हैं। आधार ही निर्माण मे विकसित होता है और निरन्तर निर्माण के साथ विद्यमान रहता है। इसी प्रकार कला भी निर्माण की वितन्वानता के साथ-साथ सहज ही अवतीर्ण होती जाती है। लोक-प्रवाह विवर्तनशील प्रकृति के कारण अभिव्यक्ति के ये तीनो ही तत्व विकसित और परिमार्जित होते जाते हैं। फलत क्या वस्तु, क्या विचार, क्या कला, तीनो मे तीनो का आरम्भिक मूल-तत्व किसी-न-किसी रूप मे विद्यमान पाया जा सकता है।

मनुष्य-जीवन के अन्य क्षेत्रो मे जैसे सघर्ष और युद्ध होते हैं और जय-विजय होती है, हारा हुआ क्षुद्रता ग्रहण करता है, विजेता महत्व पाता है, वैसे ही लोकवार्ताओ और अभिव्यक्तियो के क्षेत्र मे भी एक जाति की वार्ता पर दूसरी का आक्रमण होता है और विजय अथवा हार होती है। इसके परिणाम स्वरूप हारी तथा जीती दोनो वार्ताएँ ही अपने-अपने स्वरूप मे विकार को जन्म देकर एक नयी प्रकार की वार्ता का प्रचलन करती हैं। कौन नही जानता कि आज की भारतीय सस्कृति तथा साहित्य का स्वरूप कई भिन्न जातीय मानव-समूहो और उनकी वार्ताओ के सघर्ष का परिणाम है और सकर-सस्कृति का एक सुन्दर, पवित्र तथा महान स्वरूप प्रस्तुत करता है।

हिन्दी साहित्य के मर्म पर दृष्टि डालने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि

वस्तु, विचार और कला तीनो मे ही लोकवार्ता के आधार से अविच्छिन्न संबंध रखा गया है।

हिन्दी साहित्य के जन्म-काल की परिस्थितियो में बौद्ध, ब्राह्मण और जैन-साहित्य के उच्च स्तूप धराशायी होकर लोक-भूमि मे धूलि-धूसरित होते मिलते हैं और इन सामान्य भूमि पर एक नई लोकवार्तापरक दार्शनिकता, धार्मिकता तथा आध्यात्मिकता का निर्माण करते मिलते हैं। बौद्ध सिद्धो की और भक्तो की अभिव्यक्ति का स्वरूप इन बात का प्रमाण है। नाथ-सम्प्रदाय ने तो गोरखनाथ के नेतृत्व मे समग्र उत्तर भारत को एक सामान्य लोक-धर्म के आधार पर, जितने भी लोक-परिकर के धर्म थे, उन्हे एक सगठन-सूत्र मे बाँधने की चेष्टा की थी। इसी सगठन के द्वारा इस काल मे दो प्रवृत्तियो का सघर्ष हुआ था—एक ब्राह्मण-प्रवृत्ति तथा दूसरी लोक-प्रवृत्ति। लोक-प्रवृत्ति समस्त अब्राह्मण-प्रवृत्ति का पर्याय थी। ब्राह्मण-प्रवृत्ति भेद और भिन्नता की भित्त पर खडी थी, लोक-प्रवृत्ति सर्व-ग्राहिणी थी, उसमे सबका समावेश तथा सबका आदर था। ब्राह्मण-प्रवृत्ति इस काल मे पिछडी और जितनी भी अब्राह्मण धार्मिक प्रवृत्तियाँ थी उन सबको गोरखनाथ जी ने नाथ-सम्प्रदाय मे आत्मसात कर लेने की चेष्टा की।

लोकवार्ता-प्रवृत्ति सर्व-ग्राहिणी होती है, फलत उसमें हमे एक साथ ही ऐसी बातो का समन्वय मिलता है, मिल जाता है, और मिल सकता है जो साधारणत असम्भव और विरोधी प्रतीत होती हैं। इसी के कारण गोरखनाथ का लोकपरक नाथ-सम्प्रदाय योग को लेकर चला—उस योग को जो लोक की वस्तु नही हो सकती। उधर ब्राह्मण-प्रवृत्ति के उत्थान के प्रवर्तक तुलसी दास हमे यह कहते मिलते हैं—

भगति भूमि भूसर सुरभि सुरहित लागि कृपाल।

वह भक्ति तो मूलत उस अब्राह्मण-प्रवृत्ति पर पनप सकती है, जो शुद्ध लोक-आश्रित होती है, उसी भक्ति को भूसुर 'ब्राह्मणों' के साथ तुलसीदास ने स्मरण किया है।

इसी प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप सहजिया-सम्प्रदाय और धामी-सम्प्रदाय में अद्भुत बातें मिलती हैं, ऐसी बातें मिलती हैं जिनमे हिन्दू, मुस्लिम और ईसाई तत्वों का सम्मिश्रण है। इसी प्रवृत्ति ने राम और रहीम को एक ही

नही किया भैरो जी को, सरवरसुलतान जैसे सूफी फकीर का दूत बना दिया है ।[1]

इसी प्रवृत्ति का आश्रय गोरखनाथ जी ने लिया और जो भी इस प्रवृत्ति को स्वीकार करने को तत्पर थे उन्हे उन्होंने अपना लिया । अधिकाश जन-समूह, वर्ग, जातियाँ इस महान आन्दोलन के प्रभाव मे आ गये । गोरखनाथजी ने एक महान लोक-धर्म का प्रवर्तन किया—जैसे तुलसी मे एक विरोध मिलता है वैसे ही गोरख मे भी । तुलसीदास जी ने लिखा था कि 'गोरख जगायो जोग भगति भगायो लोग' । गोरख ने इस भक्ति को ही नही भागया, और भी कुछ किया । तुलसीदास जी ने ही वस्तु-स्थिति का वहुत स्पष्ट उल्लेख कर दिया है ।

करम धरम गयौ, आश्रम निवास तज्यौ,
आसन चकित सो परावनौ परौ सौ है ।
करम उपासना कुवासना विनास्यौ ज्ञान,
वचन विराग वेस जतन हरौ सो है ॥

१—इसी प्रवृत्ति मे उस विरोधाभास का हल है जिसके कारण यह विवाद खडा होता रहा है कि विद्यापति शैव थे, वे वैष्णव भक्त नहीं थे । लोकमानस मे शिव और विष्णु एक साथ रहने लगे थे । इसका ऐतिहासिक प्रमाण गाहडवाल नरेशो की प्रशस्तियो मे मिल जाता है । वे अपने को माहेश्वर कहते थे और अपनी प्रशस्तियो मे लक्ष्मीनारायण की स्तुति भी किया करते थे (देखिये हिन्दी साहित्य का आदिकाल पृ० ३९) । यहाँ यह बात भी उल्लेखनीय है कि उडीसा मे शिव और विष्णु की मिश्रित मूर्तियो मे भी यही तत्व था । प्रद्युम्नेश्वर के मंदिर की मूर्ति भी शिव और विष्णु का मिश्रण थी । विजय सेन परम शैव होते हुए भी प्रद्युम्नेश्वर की मूर्ति बनवाते हैं । विद्यापति मे भी इस रूप के हमे दर्शन हो जाते हैं जब वे गाते हैं —

"धनहरि धनहर धन तव कला, खन पीत वसन खनहिं बघछला ।"

और यही प्रवृत्ति जैन महाकवि स्वयंभू की इन पक्तियों मे ध्वनित हो रही है

अरहन्तु बुद्धु तुहुँ हरिहरु वि.
तुहुँ अण्णाण-तमोह-रिउ
तुहुँ सुहुम णिरञ्जणु परम-पउ
तुहुँ रवि वम्भु सयम्भु सिउ ।

इस सामाजिक निर्बन्ध स्थिति के साथ लोक की सुस्थिति तो ठीक रहती है, पर योग तो लोकपरक नहीं। इस लोक-धर्म में योग को इतना महत्व मिलना प्रत्यक्षत लोक-धर्म के स्वभाव के विरुद्ध है। वरन् आश्रम के साथ तुलसी ने जैसे भक्ति का मेल लोक-भूमि के कारण ही बिठाया है, वैसे ही लोक-प्रवृत्ति की मौलिक जादू-टोने में विश्वास रखने वाली भूमि पर ही योग टिक सकता था। नाथ-सम्प्रदाय में योग की सिद्धि और चमत्कारों का ही विशेष प्राधान्य था, जिससे साधारण लोक का आकर्षण होता था। योग स्वयं भले ही लोकोत्तर वस्तु हो, पर उसका योगी-जीवन को अलौकिक स्वरूप प्रदान करने का भाव लोक-प्रवृत्ति पर ही विशेष निर्भर करता था। इस सम्प्रदाय के योगियों का योग भी सिद्धियों से सम्बन्ध रखता था। ये योग और अलख भी धीरे-धीरे अपनी साख खो बैठे और लोक-भूमि के निर्मम स्तर पर गिर पटककर, अपनी अगम्य रहस्यशीलता छोड़कर सामान्य लोक-प्रवृत्ति के अनुकूल ढलने लगे। योग के चमत्कार कहानियों के विषय बनकर रह गये, सामान्य भूमि के प्रभाव ने योग के उद्योग को भी वर्जित कर दिया—

गोरख पौन राखि नहीं जाना, जोग मुकुति अनुमाना,
रिधि सिधि संचय बहुतेरे, पारब्रह्म नहिं जाना।

सुरति और सहज को महत्व प्रदान किया गया। अलख मूर्त होकर राम-नाम में अवतरित हुआ। सामान्य लोक-भूमि से इस 'सहज' और 'सुरति' को लेकर कबीर ने इन्हें अपनी प्रतिभा से फिर एक रहस्य का रूप प्रदान किया—

सुन्न सहज मन सुमिरत, प्रगट भई एक जोति,
ताहि पुरुष की मैं बलिहारी, निरालम्ब जो होति।
अविगत की गति का कहौं, जा के गाँव न ठाँव।
गुन विहूना पेखना, का कहि लीजै नाँव।

सामान्य लोक-भूमि के समस्त तत्कालीन तत्वों को अपनी वाणी का विषय कबीर ने बनाया। प्रत्येक साम्प्रदायिक पाखण्ड का स्वरूप स्पष्ट किया और आगे उसी के आधार पर पुन एक सम्प्रदाय की रचना आरम्भ कर दी। बस इसी प्रयास में कबीर-परम्परा का साहित्य पुन लोकवार्ता और लोकतत्वों के सूत्रों और बिन्दुओं पर नई सृष्टि के द्वारा लोकोत्तर होता गया, लोक से विलग होता गया।

कबीर ने भक्ति को अपनाया, योगादि को भागते भूत की लँगोटी की

भाँति साथ लगाये रखा, अलख को राम-नाम दिया, उसे समस्त सम्प्रदायो तथा धर्मों से परे पर सबका मर्म माना और साम्प्रदायिक विपमताओ और भिन्नताओ को विश्वास की सम-भूमि प्रदान की। कबीर ने इस प्रकार लोक-भूमि के उस भाग को ग्रहण किया जो लोक-सस्कारो से सम्बन्ध रखता था, लोक के आचारो के साथ जिसका गठबन्धन था।

लोक-भूमि का वह भाग, जिसमे योग के चमत्कारो ने लोक-कहानियो मे परिणति पा ली थी, अपनी पृथक् सत्ता रखता था। इसे सूफियो और प्रेम-गाथाकारो ने ग्रहण किया। सूफियो की प्रेम-गाथाओ मे एक ओर जहाँ जैन-कहानियो के विद्याधरो के चमत्कारो का भी किंचित उपयोग है, वहाँ प्रत्येक कहानी मे किसी-न-किसी रूप मे जोगी या योगी भी अवश्य आता है। यह योगी नाथ-सम्प्रदाय के योगी का ही अवशेष[1] है। नायक ने बहुधा जोगी बनकर ही अपनी प्रियतमा को प्राप्त करने की चेष्टा की है।

पद्मावती अथवा पद्मिनी का सिंहल से सम्बन्ध भी नाथ-सम्प्रदाय की उस मान्यता के कारण है जिसमे सिंहल मे सिद्ध को पद्मिनी नायिकाएँ प्राप्त होती हैं। इस प्रकार प्रेमगाथाओ की पृष्ठभूमि नाथ-सम्प्रदायों द्वारा उद्भूत लोकवार्ताओ के आधार पर खड़ी हुई है। इस पद्मिनी की कहानी का सक्षिप्त रूप पृथ्वीराज रासो मे भी मिलता है। इस प्रेम-कथा का मूल स्वरूप वस्तुत 'नल-कथा' मे भी उपलब्ध है, जहाँ नल के पास हस आकर दमयंती के प्रति प्रेम और उसे प्राप्त करने की चेष्टा उत्पन्न कर देता है।

दक्षिण से आने वाली भक्ति ने उत्तर मे आकर विविध रूप धारण किये और विविध विकास की स्थितियो मे होकर वह प्रवाहित हुई। उत्तर मे आकर इस भक्ति ने मायावाद से अधिक 'निर्गुण-निराकार' का विरोध किया। यद्यपि कबीर निर्गुणिये कहे जाते है, पर उनमे भी उस 'निर्गुण-निराकार' के साथ सामजस्य होता नही दीखता, जो उनसे पहले अलख बन चुका था। इस भक्ति-सम्प्रदाय ने धीरे-धीरे प्रत्येक क्षेत्र मे आक्रमण करना आरम्भ कर दिया था और धीरे-धीरे सिद्धो और नाथो का प्रभाव कम कर

१—"उसमान" ने 'चित्रावली' मे ऐसे योगी को गोरख योगी के रूप मे स्पष्टत दिखाया है—

आगे गोरखपुर भल देसू, निबहै सोइ जो गोरख वेसू।
जहँ-तहँ मढी गुफा बहु अहहीं, जोगी जती सनासी रहहीं।
चारि ओर जाप नित होई, चरचा आन करै नहि कोई।
काउ दोउ दिसि डोले बिकारा, कोउ बैठ रह आसन मारा।
काऊ पंच अगिन तथ सारा, काउ लटकइं रूखन डारा।

दिया था। सिद्धो और नाथो का प्रभाव कम होते ही वैष्णव लोक-वृत्त उभर कर सामने आ गये। दक्षिण से आने वाली इस भक्ति का मूलाधार विष्णु ही थे, यह वैष्णव भक्ति थी। फलत विष्णु के वे लोकस्थ अवतार,जो जैनियो की धार्मिक रचनाओ मे "वासुदेवहिंडि" तथा "पउमचरिउ" मे "कृष्ण", "वलदेव" तथा "राम" चरित्र के रूप मे एक दुर्बल रूप मे सास ले रहे थे, वैष्णव पुनरुत्थान के द्वारा सनातन पौराणिक प्रणाली पर उभरे। सूर ने 'कृष्ण-चरित्र' और तुलसी ने 'राम-चरित्र' को अपनाया। कृष्ण-चरित्र के सम्वन्ध मे अनेकश विद्वानो ने विचार किया है और शोध-प्रवृत्त तत्वज्ञ इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि कृष्ण एक ससृष्ट व्यक्तित्व है। यह ससृष्टि लोक-वार्ता का विशेष गुण है। लोकमेधा समानधर्मा व्यक्तियो को एक मे मिला देने मे अत्यन्त कुशल होती है, तो कृष्ण तो मूलत लोकवार्ता की देन हैं और उनके विस्तृत वृत्त मे अनेक शुद्ध लोकवार्ताएँ हैं। किन्तु सूर ने महाभारत अथवा भागवत से ही कृष्ण-वृत्त को नही लिया, उन्होने कई ऐसी वातें उसमें सम्मिलित की हैं, जो नयी हैं। ये नयी वातें लोक-मेधा से उन्हें प्राप्त हुई थीं। तुलसी की राम-कथा की तो लोक-यात्रा और भी रोचक तथा लम्बी है। एक ही व्यक्तित्व किस प्रकार विविध लोक-भूमियो पर चलकर नये रग ग्रहण करके नया रूप प्राप्त कर सकता है, यह तुलसी की राम-कथा के आन्तरिक अध्ययन से जाना जा सकता है। तुलसी का "भगतिभूमिभूसुर सुरभि सुर" आदि भी लोक-प्रवृत्ति की देन हैं। कथा के ताने-वाने मे ही नही, उनमे जो दार्शनिक तथा धार्मिक तत्व हैं, उन सभी मे वह रग है जो लोक की देन है। इस समस्त साहित्य की लोकवार्ता-सम्वन्धी पृष्ठभूमि का विस्तृत अध्ययन आज अपेक्षित है।

ऊपर हिन्दी साहित्य के विकास-क्रम में जिन प्रवृत्तियो का उल्लेख हुआ है वे हैं १—सिद्ध, २—नाथ, ३—सत, ४—प्रेमगाथा, ५—धर्मगाथा रामविषयक, ६—धर्मगाथा कृष्णविषयक, ये एक परम्परा मे प्रतीत होते हैं। यह परम्परा सामान्य लोक से सम्पर्क रखने वाली है। ७—रासौ, ८—चरित, आदि स्फुट प्रवृति से सम्वन्ध रखते हैं। यह भले ही सामान्य लोक से घनिष्ठ सम्पर्क न रखती हो, पर वहुत सी सामग्री के लिए स्रोत इसका भी लोक-साहित्य ही रहा।

हिन्दी के उदय की पृष्ठभूमि का विश्लेषण

ऊपर वहुत सक्षेप मे यह सकेत किया गया है कि कि हिंदी के जन्म-विकास के समय की पृष्ठभूमि क्या थी। यह वात ध्यान देने योग्य है कि भारतीय साहित्य

ने मेधा के महत्व को बुद्धि से अधिक समझा। भारत मे बहुत समय से ही कितने ही सम्प्रदायो का होना सिद्ध है। भगवान बुद्ध स्वय कितने ही सम्प्रदायो के महान नेताओ के पास जीवन के लिए मार्ग पाने गये थे और निराश हुए थे[1]। वही परपरा इस युग मे भी विद्यमान थी। राजनीतिक और ऐतिहासिक परिस्थितियो के विकारो मे से भारतीय विचार और भाव की धारा अपने निजी विकास के मार्ग से प्रभावित होरही थी और साहित्यकार उसी से अपने लिए सामग्री प्राप्त करता था। हिन्दी का जन्म आठवी शताब्दी मे भी माना जा सकता है[2] किन्तु १०वी

१—भगवान बुद्ध के समय ये संप्रदाय थे —१—आजीवक, २—निगंथ, ३—जटिल, ४—परिव्वाजक, ५—अवरुद्धक, ६—गज, ७—हय, ८—गाय, ९—कुत्ता, १०—काग, ११—वासुदेव, १२—बल्देव, १३—मणिभद्द, १४—पुन्नभद्द, १५—अग्नि, १६—नाग, १७—सुपण्णा, १८—यक्ख, १९—असुर, २०—गंधव्व, २१—महाराज, २२—चंद, २३—सूरिया, २४—इंद, २५—ब्रह्म, २६—देव, २७—दिसा। (यह उल्लेख निद्देस मे है)

२—हिंदी के जन्म पर विचार :—हिंदी का जन्म अपभ्रंश से हुआ। पं० चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने 'पुरानी हिंदी' नामक लेख मे लिखा "विक्रम की सातवीं से ग्यारहवीं शताब्दी तक अपभ्रंश की प्रधानता रही"। प० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने माना है कि "स्पष्ट ही १० वीं से तेरहवीं शताब्दी तक की वोलचाल की भाषा मे सस्कृत तत्सम शब्दो का प्रयोग बढने लगा था। इन कुछ शताब्दियो मे अपभ्रंश से मिलती-जुलती भाषा पद्य का वाहन बनी रही और गद्य की भाषा तत्सम-बहुल होती गई। कीर्तिलता मे इसकी स्पष्ट सूचना मिलती है। धीरे-धीरे तत्सम शब्दों और उनके तद्भव रूपो के कारण भाषा बदली भी जान पडने लगी। और १४ वीं शताब्दी के बाद वह बदल ही गई। इसके पूर्व अपभ्रंश और देश्य मिश्रित अपभ्रंश की प्रधानता बनी रही। इस प्रकार दसवीं से चौदहवी शताब्दी काल, जिसे हिंदी का आदि काल कहते हैं, भाषा की दृष्टि से अपभ्रंश का ही बढाव है। इसी अपभ्रंश के बढाव को कुछ लोग उत्तरकालीन अपभ्रंश कहते हैं और कुछ लोग पुरानी हिंदी। (हिंदी साहित्य का आदिकाल पृ० २१)। उधर राहुल साकृत्यायन ने अपनी नयी शोधो के आधार पर 'पुरानी हिंदी' का आरम्भ आठवी शताब्दी मे माना है। उन्होंने आठवीं से लेकर तेरहवीं शताब्दी तक के कवियो की परम्परा भी दी है। आठवीं शती के 'सरहपा, सबरपा, स्वयम्भू और भूसुकपा' ये चार कवि हैं। इनमे तीन सिद्ध हैं, स्वयम्भू जैन कवि हैं। स्वयम्भू को राहुल जी हिंदी का प्रथम सर्वोत्तम कवि मानते हैं। नवीं शताब्दी के दसो कवि सिद्ध हैं। दसवीं मे

शताब्दी तक तो उसका स्वरूप स्पष्ट हो चुका था,[1] इतना स्पष्ट है कि बिना किसी सकोच के उसे हिन्दी कहा जा सकता है। १४ वी शताब्दी मे वह अपभ्रंश के पल्लोथन से भी पूर्णत मुक्त होकर 'हिन्दी' ही रह गयी। फलत हिन्दी का उदय ८ वी से १४ वी शताब्दी तक हुआ। इन सात शताब्दियो की उस पृष्ठभूमि पर हमे विचार करना है जिसने इस युग मे भाषा और साहित्य को प्रभावित किया है। आठवी शताब्दी से १४ वी शताब्दी तक का भारतीय इतिहास का युग अब तक अन्धकार युग माना जाता रहा है। डा० काशीप्रसाद जायसवाल ने पुराणो के आधार पर इस युग पर सबसे पहले प्रकाश डाला और एक सुसबद्ध इतिहास प्रस्तुत किया। इस काल मे दो विशेष बाते इतिहास की दृष्टि से दिखायी पडती हैं एक बात है मुसलमानी आक्रमण, दूसरी है पारस्परिक युद्ध। किंतु इन दोनो से भी महत्वपूर्ण है तीसरी बात धार्मिक उद्वेलन।

वस्तुत ऐतिहासिक दृष्टि से यह युग युद्धो से परिपूर्ण था। कोई शक्तिशाली केन्द्र सम्राट हर्ष के उपरान्त नही रहा था। किन्तु इस युग के युद्धो की एक विशेषता अवश्य थी। इन युद्धो से साधारण जन विशेष प्रभावित नही होता था। कुछेक आक्रमणो और युद्धो को छोडकर युद्ध-नीति आदर्श पर स्थित थी, उसमे न तो प्रजा को सताया जाता था, न उनकी फसल असुरक्षित रहती थी,उनके गांवो को भी कोई भय नही था। जगत के प्राय समस्त व्यापार निर्विघ्न चलते थे। इसी का प्रभाव था कि तुलसीदास की मथरा ने कैकेयी को आश्वस्त करने के लिए कहा था "कोउ नृप होउ हमहि का हानी" और इसके द्वारा दीर्घकालीन ऐतिहासिक स्थिति से उत्पन्न साधारण जन की मनोवृत्ति प्रकट करायी थी, इसी का प्रभाव था कि धर्मप्रशस्तियो तक मे मुसलमानी शासको को कल्याण का आशीर्वाद दिया गया[2]। उदाहरण है बटियागढ़ का

आठ कवि हैं। राहुल जी के अनुसार इस शती का 'पुष्पदत' हिंदी का दूसरा सर्वोत्तम कवि है। डा० द्विवेदी का अनुमान है कि यही पुष्पदत वह पुष्पभाट है जिसे शिवसिंह ने टाड के आधार पर हिंदी भाषा की जड माना है। अभिप्राय यह है कि हिंदी का जन्म ८ वीं शताब्दी मे हुआ और १४ वीं मे वह अपने पैरों पर खड़ी होने योग्य हो गयी।

१—इसी कारण शुक्लजी ने हिंदी का आदिकाल १०५० से माना है।

२—बटियागढ के एक सस्कृत श्लोक में इस काल के मुसलमान शासक के कल्याण की कामना इस प्रकार है—

असित कलियुगे राजो शकेन्द्रो वसुधाधिप।
योगिनीपुरमास्थाय यो भुंक्ते सकला महीम्॥
सर्व सागर पर्यन्ते वशीचक्रे नराधिपान्।
महमूद सुरत्राणो नाम्ना शूरोभिनवतु॥
(ना० प्र० प० वर्ष ४४ अक १, वैशाख १९९६, पृष्ठ ७६)

शिलालेख। यह शिलालेख स० १३८५ (सन १३२८) का है।

इसी का एक अन्य परिणाम यह हुआ कि समस्त वातावरण भी दो स्तरो मे बँट गया—एक राजकीय वातावरण, दूसरा साधारण। कवि, लेखक और विचारक दोनो ही क्षेत्रो मे थे। एक का केन्द्र हुआ राजा और उसकी कीर्ति, दूसरा लोक-साहित्य की परपरा का सवर्द्धक। स्पष्ट है कि दोनो के विषय भिन्न हो गये। और इसी लोक परम्परा से धर्म-चक्रो का सम्बन्ध रहा।

इस काल की कृतियो पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि राजकीय वर्ग के कवियो ने अधिकाशत चरित-काव्य लिखे जो राजस्तुतिपरक थे। जैन वर्ग के कवियो की कृतियो मे या तो किसी धर्म का प्रतिपादन था या फिर कोई कथा-कहानी है।

यह भी विदित होता है कि ऐसे चरित-काव्य सस्कृत मे अपभ्र श से अधिक लिखे गये। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी का यह अभिमत है कि "फिर भी सचाई यह है कि [इस काल के राजा] अपभ्र श मे लिखी स्तुतियाँ ही समझ सकते थे। इसलिए अपभ्र श मे तेजी से राजस्तुतिपरक साहित्य की परम्परा स्थापित होने लगी। सस्कृत मे भी यह बात थी पर सस्कृत मे और भी सौ बातें थी [1]। अपभ्र श साहित्य का अभी पूर्ण उद्घाटन नही हो पाया। अपभ्र श का जन्म ५ वी-६ वी शताब्दी के पूर्व ही हुआ, क्योकि कालिदास के 'विक्रमोर्वशीय' मे अपभ्र श का दोहा मिलता है [2]।

दण्डी और भामह इससे परिचित थे। फलत ५ वी से १४ वी शताब्दी तक अपभ्रंश मे केवल २४-२५ ग्रन्थ ही रचे गये, इस पर विश्वास नही किया जा सकता। वस्तुत उपलब्ध सामग्री प्रकट करती है कि 'अपभ्र श' मे राजकीय स्तर की रचनाएँ कम और धर्म तथा जन-स्तर की रचनाएँ विशेप थी। चरित नाम की अपभ्र श-रचनाएँ विशेपत. धार्मिक महापुरुपो और अवतारो की हैं*। सिद्धो की रचनाएँ धर्म-चक्र आश्रित थी।

१—देखिये "हिंदी साहित्य का आदिकाल", चतुर्थ व्याख्यान पृ० ६८

२—वही-पचम व्याख्यान पृ० ६१-६२।

* डा० हरिवश कोचड ने 'अपभ्र श साहित्य' मे परिशिष्ट (१) मे अपभ्र श के ६० कवियो की प्राय ८७ रचनाएँ बतायी हैं। इनमे १४०० तक की लगभग ५० रचनाएँ हैं। इन पचास रचनाओ मे ३३ तो निश्चय ही कथा-काव्य हैं। इनमे से विद्यापति तथा चंदवरदायी की रचनाएँ ही राज-परक हैं। अद्दहमाण के 'सदेशरासक' के अतिरिक्त शेप सभी प्राचीन धार्मिक पुरुषो के वृत्त हैं या लोक-कथाएँ हैं जिन्हें धर्मोपदेश के काम मे लाया गया है।

८ वीं से १३ वीं शताब्दी तक साहित्य में जिन रूपों और शैलियों का प्रयोग हुआ है वे ये हैं —

गाथाबंध—गाथाबंध से बहुधा प्राकृत साहित्य का ज्ञान होता है क्योंकि गाथाओं का विशेष प्रचलन प्राकृत साहित्य में ही था। माइल्ल धवल ने अपने गुरु से सम्बन्धित जिस घटना का उल्लेख किया है, उससे यह भेद स्पष्ट हो जाता है कि 'गाथाबंध प्राकृत में होता था। यह गाथा माइल्ल धवल के समय में सम्मान से देखी जाती थी।

दोहाबन्ध—यह अपभ्रंश का पर्यायवाची माना जाने लगा था, ऐसा उक्त माइल्ल धवल वाली घटना से सिद्ध है। अपभ्रंश को 'दूहाविद्या' इसी कारण कहा जाता है।[1] 'दोहाबंध' माइल्ल धवल के समय में उपहास की वस्तु थी।

पद्धडियाबंध—पद्धडियाबंध बहुधा अपभ्रंश के कथा-काव्य में आता था। इस बंध को चतुर्मुख अथवा चउमुहेण ने समर्पित किया था, यह स्वयंभू ने बताया है—

छद्दणिय दुवइ धुवएहि जडिय चउमुहेण समप्पिअ पद्धडियाँ"

"छर्दनिका द्विपदी और ध्रुवकों से जड़ित पद्धडियाँ चतुर्मुख ने दी" यह पद्धति पश्चिम में विशेष प्रचलित थी।

चौपाईदोहाबंध 'रमैनी—सरहपा सिद्ध ने सम्भवत. सबसे पहले चौपाई और दोहे के मेल से कुछ रचना प्रस्तुत की। यह प्रणाली पूर्व में विशेषत प्रयोग में आने लगी। यह प्रणाली कबीर के समय में रमैनी कही जाती थी।

छप्पयबंध—चन्द का रासो विशेषत इस बंध में लिखा गया

कुण्डलिया बंध—

रासाबंध—रासा नाम का छंद भी स्वयंभू के समय में प्रचलित था और रासा-बंध काव्य शैली भी थी। रासाबंध छंद का लक्षण स्वयंभू ने यह दिया है—

"एक्कवीस मत्ताणिहणउ उद्दाम गिरु।
चउदसाइ विस्साम हो भगणा विरइयिरु॥
रासाबन्धु समिद्धउ एहु अभिराम अरु।
लहु अति अल अवसाण विरयअ महुर अरु॥

और "रासा काव्य" का लक्षण इन्हीं स्वयंभू ने यह दिया है

"घत्ता छड्डुणिआहि पद्धणियाहि सुअण्ण रूएहि

---

[1]—दे० हि० सा० का आ० काल, चतुर्थ व्याख्यान पृ० ९२

रासाववो कव्वे जणमण अहिराउग्रोहोहिं ।।

धत्ता, छ्दंनिका, पद्धणिया आदि विविध छंदो से युक्त रासोवध काव्य होता था ।

चर्चरी या चाचर—लोकगीत था । इस नाम से कितनी रचनाएँ हुई है ।

फाग—यह भी लोकगीत था ।

साखी—सवदी—कवीरदास से पूर्व इन रूपो का वहुत प्रचार था, उन्होने स्वय कहा है.. 'माला पहिरे टोपी पहिरे छाप तिलक अनुमाना
साखी सवदी गावत भूलै आतम खवर न जाना ।।

दोहरे—ये साखी से भिन्न जैनो मे प्रचलित एक प्रकार के अपभ्र श दोहे ।

सोहर

पद

मगलकाव्य

चौतीसा

विप्रमतीसी

कहरा

वसत

वेलि

विरहुली (साँप का विप उतारनेवाला गान)

हिंडोला

कवित्त-सवैया—ये विशेपत व्रजभापा के छ्द है

इन छद-रूपो मे निवद्ध काव्य-रचना के विपय की दृष्टि से भी कुछ विशेप रूप मिलते है । चरित-काव्य की ही इनमे प्रधानता है । इन चरित-काव्यो मे से अधिकाँश धार्मिक महापुरुपो के है, कुछेक अवश्य राजा महाराजाओ के है । इन्ही चरितो मे कथाएँ भी हैं, वे कथाएँ जो मूलत लोक-प्रसूत है और वहुधा ली गयी है कथा-सरित्सागर से । दूसरे वे कथाएँ है जो पौराणिक अथवा धार्मिक हैं । वौद्ध साहित्य धार्मिक अनुभूति अथवा उपदेश और नीति विपयक है ।

इस समस्त साहित्यिक रचना की भूमि क्या थी, इसका भी सक्षिप्त वर्णन आवश्यक है । ऊपर जैसा उल्लेख किया गया है, इस काल मे राजकीय क्षेत्र मे तो दो प्रकार के सघर्प थे, एक देश-विदेश का, दूसरा देश के राजाओ का, पारस्परिक । यह यथार्थ मे ऊपरी स्तर का था, जन-साधारण तथा साधु-सन्त राजकीय क्षेत्र के इन विकारो से प्राय अछूते थे । इनी जन-भूमि के स्वरूप को हमे किंचित और अधिक हृदयगम करना है ।

इतिहास बदलता रहा, इतिहास की नीति बदलती रही। सास्कृतिक संघर्ष हुए, आन्दोलन चलते रहे—ये समस्त विकृतियाँ चचल उत्तुग तरगो की भाँति उत्पन्न हुई, इन्होंने साहित्य मे भी अपनी सत्ता प्रकट की, और साहित्य को इन्ही तरगो के कारण लोक-सपर्क को आधार के रूप मे बार-बार ग्रहण करना पडा। ऐतिहासिक और सास्कृतिक उद्वेलन जब तक चलते रहे, साहित्य का लोक-सम्पर्क घनिष्ठ बना रहा और जब ये उद्वेलन शिथिल होगये तभी साहित्य ने युग-युगीन प्रवृत्ति को प्रकट करनेवाले साहित्य के रूप को स्थिरता-पूर्वक अपना लिया।

सातवी शताब्दी से १६ वी शताब्दी तक ये उद्वेलन चले। हर्ष की मृत्यु के बाद भारत के इतिहास का प्राचीनकाल समाप्त हुआ, और मध्यकाल अवतीर्ण हुआ। इतिहास के इस मध्यकाल के अवतीर्ण होने के कई अर्थ हैं—इस नये युग की अवतारणा से नये जीवन-मान प्रस्तुत होने ही चाहिये। नये अभिव्यक्ति के माध्यम प्रबल होंगे ही। अभिव्यक्तियो की कला की स्वरूप और सामग्री भी परिवर्तित होगी। ये परिवर्तन और अभिव्यक्तियाँ क्या थी ? सक्षेप मे यहाँ उनका उल्लेख करना उचित है

१—इस बीच धीरे-धीरे तत्सम-बहुल रूप प्रकट होने लगा था। नवीं-दसवीं शताब्दी से ही बोलचाल की भाषा मे तत्सम शब्दों के प्रवेश का प्रमाण मिलने लगता है और चौदहवी शताब्दी के प्रारम्भ से तो तत्सम शब्द निश्चित रूप से अधिक मात्रा में व्यवहृत होने लगे। क्रियाएँ और विभक्तियाँ तो ईषत् विकसित या परिवर्द्धित रूप मे बनी रही पर तत्सम शब्दो का प्रचार बढ जाने से भाषा भी बदली सी जान पडने लगी।"

(हि० सा० का आ० का० पृ० १७)

इसका अभिप्राय है कि तद्भव प्राधान्य की प्रवृत्ति को हटाकर भाषा ने तत्सम प्रधानता का मार्ग ग्रहण किया, और इस काल मे यह प्रवृत्ति उत्तरोत्तर बढती गयी, जिसमे भाषा ही बदल गयी। भाषा मे यह प्रवृत्ति क्यो आयी ? डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के मत से दो कारण हैं —

(अ) भक्ति के नवीन आन्दोलन के कारण, इससे भागवत पुराण का प्रभाव विशेष पडा।

(आ) शाकरमत की दृढ-प्रतिष्ठा के कारण।

२—ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम पर काव्य लिखने की प्रथा बाद मे खूब चली। इन्हीं दिनों ईरान के साहित्य मे भी इस प्रथा का प्रवेश हुआ। उत्तर-पश्चिम सीमान्त से बहुत-सी जातियो का प्रवेश होता रहा—पता नही उन जातियो की स्वदेशी प्रथा की क्या क्या बातें इस देश मे चली।

साहित्य मे नये-नये काव्य-रूपो का प्रवेश इस काल मे हुआ अवश्य। सम्भवत ऐतिहासिक पुरुषो के नाम पर काव्य लिखने या लिखाने का चलन भी उनके ससर्ग का फल हो। परन्तु भारतीय कवियो ने ऐतिहासिक नाम भर लिया, शैली उनकी वही पुरानी रही जिसमे काव्य-निर्माण की ओर अधिक ध्यान था। (वही—पृ० ७०)

अभिप्राय यह है कि इस युग मे नये काव्य-रूपो की उद्भावना हुई जिसमे से एक रूप वह था जिसमे ऐतिहासिक आश्रय और नाम लेकर काव्य-कल्पना का कौतुक प्रकट किया जाता था।

३—सदेश रासक मे कवि ने जिस वाह्य प्रकृति के व्यापारो का वर्णन किया है वह रासो के समान ही कविप्रथा के अनुसार है। उन दिनो ऋतु-वर्णन के प्रसग मे वर्ण्यवस्तुओ की सूची वन गयी थी। वारहवी शताव्दी की पुस्तक कवि कल्पलता में और चौदहवी शताव्दी की पुस्तक वर्णरत्नाकर मे ये नुस्खे पाए जा सकते हैं। इन वाह्य वस्तुओ और व्यापारो के आगे न तो रासो का कवि गया है, न अद्दहमान ही। (वही—पृ० ८४)

इससे विदित होता है कि काव्य-रचना मे विशेषत· वाह्य अथवा प्राकृतिक वर्णनो मे "कवि-प्रथा" का अनुसरण होता था। कवि नयी उद्भावनाए नही कर सकता था।

४—नया छन्द नये मनोभाव की सूचना देता है। श्लोक लौकिक सस्कृत के आविर्भाव का सन्देशवाहक है—जिस प्रकार श्लोक सस्कृत की मोड का सूचक है उसी प्रकार गाथा प्राकृत की ओर के झुकाव का व्यजक है। तीसरे झुकाव की सूचना लेकर एक दूसरा छन्द भारतीय साहित्य के प्रागण मे प्रवेश करता है। यह दोहा है। स्पष्ट ही दोहावध का अर्थ अपभ्रंश है। अपभ्रश को 'दूहाविद्या' कहा गया है। (वही पृ० ९०व९२)

दोहा नये युग की उद्भावना से सवधित है।

५—दोहा वह पहला छन्द है जिसमे तुक मिलाने का प्रयत्न हुआ और आगे चलकर एक भी ऐसी अपभ्रश-कविता नही लिखी गयी जिसमे तुक मिलाने की प्रथा न हो। इस प्रकार अपभ्रश केवल नवीन छन्द लेकर ही नही आयी, विल्कुल नवीन साहित्यिक कारीगरी लेकर भी आविर्भूत हुई। (वही पृ० ९३)

६—दोहो को प्रवध-काव्य के योग्य वनाने के लिए चौपाई का उपयोग किया गया। किसी कथानक-सूत्र को जोडने के उद्देश्य से सोलहवी शताव्दी मे दोहो के वीच-वीच मे चौपाई जोडकर कथानक को क्रमवद्ध करने का प्रयास किया गया था। (वही पृ० ९४)

७—इस काल मे उद्भावित-काव्य रूप—

१—आदि मगल (मगल काव्य)
२—रमैनी (चौपाई दोहे)
३—शब्द (गेय पद)
४—ग्यान चौंतीसा (वर्णमाला के प्रत्येक अक्षर से आरम्भ करके पद लिखना)
५—विप्रमतीसी
६—कहरा
७—वसन्त
८—चाचर
९—वेलि
१०—विरहुली (साप का विप उतारने वाला गान)
११—हिंडोला
१२—साखी (दोहे)
१३—दोहा-चौपाई वाला चरित काव्य
१४—कवित्त-सवैया
१५—दोहो मे आध्यात्म और धर्म-नीति के उपदेश
१६—वरवै
१७—सोहर छन्द
१८—विनय के पद
१९—लीला के पद
२०—वीर काव्यो के लिए उपयोगी छप्पय, तोमर, नाराच आदि की पद्धति
२१—दोहो मे सगुन विचार
२२—फागु
२३—अखरावट (वही पृ० १०४, १०१, १०७)
२४—नहछू
२५—रासक
२६—रास
२७—रासो
२८—कुडलिया
२९—भमरगीत
३०—मुकरी
३१—दो सखुने

३२—वुझौवल
३३—पटऋतु
३४—वारहमासा
३५—नखशिख
३६—दसम [दशावतार]
३७—भडौग्रा
३८—जीवनी काव्य

यह इतिहास के मध्ययुग के साहित्य-रूपो और उनकी प्रवृत्तियो का उल्लेख है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मध्ययुग साहित्य के लिए कितने ही परिवर्तनो को लेकर अवतीर्ण हुआ। इन परिवर्तनो के मूल मे कितने ही उद्वेलन थे जिन्हे यहाँ गिनाया जाता है—

१—वज्रयान
२—सहजयान
३—सिद्ध-सम्प्रदाय
४—शैव-सम्प्रदाय
५—शाक्त-सम्प्रदाय
६—नाथ-सम्प्रदाय
७—भक्ति आन्दोलन
८—सत-मत
९—सूफी मत
१०—कृष्ण सम्प्रदाय
११—राम सम्प्रदाय
१२—राधा सम्प्रदाय
१३—जैन-मत
१४—इसलाम आदि

हमें जिस युग का अध्ययन करना है वह भक्ति आन्दोलन के दूसरे तथा तीसरे चरण से सवधित है। भक्ति आन्दोलन के पाच चरण प्रतीत होते हैं—

(१) सधि-चरण—भक्ति का हिन्दी क्षेत्र मे आरम्भ। वीजारोपण।

(२) अकुरण —अकुर जिस प्रकार भूमि से सवद्ध रहता हुआ भी उससे ऊपर अपने व्यक्तिगत स्वरूप के अभिमान से लहलहाने लगता है, उसी प्रकार भक्ति अपने थाले मे से वाहर

फूटी—निर्गुणोपासक संत-सम्प्रदाय की भक्ति का यही रूप मानना होगा।

(३) प्रेमाभिसारण

(४) अवताराश्रयी-चरमोत्कर्ष।

(५) स्थिरत्व

भक्ति के विकास की इस द्वितीय स्थिति तक पहुँचते-पहुँचते युग की प्रवृत्तियो में जो परिवर्तन प्रस्तुत हुए, उसका मूल तत्त्व था वैविध्य का साधारणीकृत एकत्व और उसकी "वैष्णवत्व" मे समर्पित होने की चेष्टा। यह स्थिति विकास और विवर्त्तन का परिणाम थी। भारत मे मत-स्वातंत्र्य की सुविधा होने के कारण प्रत्येक युग मे यहाँ अनेको मत-सम्प्रदाय रहे हैं। और वे साथ-साथ चलते रहे हैं।[1] पहले वैदिक धर्म ने प्रबलता प्राप्त की।

१—क—वैदिक युग मे यज्ञ-कर्ता आर्यों के साथ 'शिश्न देवों' का उल्लेख है।

ख—भगवान बुद्ध निम्नलिखित सम्प्रदायो से परिचित थे। वे उनके समय में प्रचलित थे। १—आजीवक, २—निगथ, ३—जटिल, ४—परिव्राजक, ५—अवरुद्धक, ६—हाथी, ७—घोड़ा, ८—गाय, ९—कुत्ता, १०—कौवा, ११—वासुदेव, १२—बल्देव, १४—पुण्णभद्द, १५—अग्नि, १६—नाग, १७—सुपण्ण, १८—यक्ख, १९—असुर, २०—गंधर्व, २१—महाराज, २२—चंद, २३—सूरिय, २४—इन्द्र, २५—ब्रह्म, २६—देव, २७—दिसा। (निद्देस)

ग—बाणभट्ट ने हर्ष-चरित में निम्न सिद्धांतवादियों और सांप्रदायिकों का उल्लेख किया है

१. आर्हत—सम्भवत यापनीय जैन।
२. मस्करी—नियतिवादी।
३. श्वेतपट—श्वेताम्बर जैन।
४. पांडुरिभिक्षु—आजीवक।
५. भागवत—भृगु के अनुयायी।
६. वर्णी—गुरु के अनुयायी-तपस्वी।
७. केशलुंचन—दिगंबर जैन
८. कापिल—सांख्यवादी, जटाधारी
९. जैन-बौद्ध
१०. लोकायित
११ काणाद

फिर वौद्ध धर्म ने। बौद्ध धर्म के उपरान्त धार्मिक क्षेत्र मे हमे जो प्रवृत्ति मिलती है, वह वस्तुत· एक नयी प्रवृत्ति है। यह प्रवृत्ति "सुसम्बद्ध समन्वित महत्व" की प्रवृत्ति कही जा सकती है। वैदिक धर्म ने शिश्न-देवो को घृणा की दृष्टि से देखा। वौद्धो ने अपने से इतर समस्त मतानुयायियो को हीन समझा। किन्तु जो नया युग प्रवर्तित हुआ वह उस धर्म को लेकर उठा जिसे आज 'हिन्दू' धर्म कहते हैं। पहली अवस्था मे वे समस्त मत समन्वित होते प्रतीत होगे जो वौद्ध-धर्म से विरोध रखते थे, दूसरी अवस्था मे इस उदार भावना ने स्वय बुद्ध को आत्मसात कर लिया और वौद्ध धर्म भी समन्वित हो गया। इस 'समन्वय' को लाने के लिए एक ऐसी दार्शनिक भूमिका प्रस्तुत करनी पडी जिसने एक दूसरे से भिन्न सम्प्रदायो की मान्यताओ को परस्पर सुसवद्ध करने का प्रयत्न किया। यह लोक-प्रवृत्ति का परिणाम थी।

इस नयी क्रान्ति से हमे आलोच्य युग तक पहुँचते-पहुँचते तीन चरण मिलते हैं·

प्रथम— वैष्णव—१—चरण
द्वितीय—शैव-शाक्त)
तृतीय—सिद्ध) नाथ—२
चतुर्थ—नाथ)
पचम— भक्ति—३

---

१२. औपनिषदिक—वेदाती (शकर-पूर्वके)
१३. ऐश्वर कारणिक—नैयायिक
१४. कारधयी
१५. धर्मशास्त्री
१६. पौराणिक
१७ साप्ततत्व—मीमासक-यज्ञकर्त्ता
१८. शाब्द—वैयाकरण
१९. पाचरात्रिक—चतुर्व्यूहवादी

विशेष रोचक वात यह है कि ये सभी सम्प्रदायवादी एक ही आश्रम मे एक साथ रहते थे। (हर्ष-चरित डा० वासुदेवशरण अग्रवाल)।

घ—इसी प्रकार 'सरहपा' (७६० ई०) ने भी कई पाखडो (सम्प्रदायो) का उल्लेख किया है जैसे

ब्रह्म सम्प्रदाय {
१. ब्राह्मण—(वम्हणेँ म जाणन्त हि भेउ।
एँवइ पढिअउ ए चउवेउ (चतुर्वेद) ॥
२. एकदण्डी
३ त्रिदण्डी
४. भगवाँ वेषधारी } एकदण्डि त्रिदण्डी भअवाँ वेसे

प्रथम 'वैष्णव' 'चरण' ब्राह्मण धर्म अथवा हिन्दू धर्म के नाम से भी अभिहित किया जा सकता है, और इसका ऐतिहासिक उत्कर्ष ईसवी की पहली दूसरी शताब्दी तक माना जा सकता। इस उत्कर्ष मे वैष्णव धर्म ने समस्त बौद्ध विरोधी सम्प्रदायो को अपनी परिधि मे समेटने का प्रयत्न किया। यह सहज ही समझा जा सकता है कि यह प्रयत्न वेदो को ही आगे करके बढा होगा। क्योकि बौद्ध-धर्म जिस प्रबल सम्प्रदाय के विरुद्ध खडा हुआ था, वह मुख्यत वैदिक था। बौद्ध-धर्म दुर्बल हुआ तो वेदो की प्रतिष्ठा को फिर बढाने का प्रयत्न हुआ, किन्तु इतनी शताब्दियो का व्यवधान विवश कर रहा था कि वेदो के समस्त योग-दान को नये प्रकार से प्रस्तुत किया जाय। पुराणसाहित्य मे हमे वह प्रयत्न दिखायी पडता है। अत प्रथम वैष्णव चरण का मूलाधार वैदिक व्याख्या थी।

दूसरे चरण मे दो या तीन सप्रदाय प्रस्तुत किये गये हैं। ये तीनो परस्पर एक दूसरे से गुँथने लगे थे। यो तो बौद्ध धर्म की ह्रासावस्था मे लोक-प्रवृत्ति ने पहले सिद्धो को ही अवतीर्ण किया। पर सिद्धो के सिद्ध-सिद्धान्तो के साथ शिव-शक्ति के शैव तत्व से समन्वित होकर नाथ-सप्रदाय प्रबल हो उठा। सिद्धो की देन भी इस युग मे महत्वपूर्ण थी।

सिद्ध—'सिद्ध' का सबध 'सिद्धि' से है। सिद्धियो से युक्त पुरुष सिद्ध कहा जायेगा। साधारणत सिद्धो की सख्या चौरासी मानी गयी है। आज से कुछ वर्ष पूर्व चौरासी सिद्धो का उल्लेख आश्चर्यमय लोकवार्ता का ही विषय था। किन्तु इधर पच्चीस वर्षों के अन्दर जो नये अनुसधान हुए हैं, उनसे चौरासी सिद्धो की ऐतिहासिकता निर्विवाद सिद्ध हो चुकी है। आज हम पर्याप्त निश्चितता के साथ इन चौरासी सिद्धो के नाम भी गिना सकते हैं।

सिद्ध-युग—राहुल साकृतायन जी ने लिखा है—"अतएव चौरासी सिद्धो का युग ७५०-११७५ ई० मानना ठीक जान पडता है। इसी समय सिद्धो की

ईश्वर सम्प्रदाय	५.	आचार्य—(अइरिएँहि उद्दूलिअ छारे)
	६.	दीपकवाले (घर ही वइसी दीवा जाली)
	७.	घटा बजाने वाले (कोनहि वइसे घण्डाचाली)
	८.	हठयोगी (अक्खि णिवेसी आसण्णवधी)
	९	मन्त्रदाता (कण्णेहि खुसखुसाइ जणघन्धी)
	१०.	सखी-सम्प्रदाय या साधुनियाँ (रण्डी-मुण्डी अण्ण 'वि वेसें)
अर्हन्त	११.	दीर्घनखा (दीहणक्ख जइ मलिणे वेसें)
	१२	क्षपणक (खवणेहि जाण-विडविअ वेसें)
बौद्ध	१३.	भिक्षु
	१४	स्थविर

चौरासी सख्या पूरी हो गयी थी। किन्तु 'चौरासी' सख्या मे बँधकर ही सिद्ध नही रह गये, न उनके साथ काल बधन ही रहा – वे ११७५ के वाद भी 'सिद्ध' हुए, यद्यपि वे चौरासी सिद्धो मे नही गिने गये। इन समस्त सिद्धो की सख्या डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार १२० तक पहुँच जाती है, और यह सख्या चौदहवी शताब्दी के आरम्भ होने के पूर्व तक की है[1]। इस हिसाव से आठवी शताब्दी से चौदहवी शताब्दी तक सिद्धो की दीर्घ परपरा फैली हुई मिलती है। चौदहवी शताब्दी के उपरान्त भी सिद्धो का अत्यन्ताभाव नही कहा जा सकता, पर इस काल के उपरान्त के सिद्ध इतने महत्वपूर्ण नही रहे, और यह सिद्ध-सम्प्रदाय स्वय एक ओर तो ऐतिहासिक कारणो से शिथिल हो गया, दूसरे नाथ-सम्प्रदाय जैसे नये सम्प्रदायो ने उद्‌भावित होकर उसे उच्छिन्न कर दिया। सभी जानते है कि नाथ-सम्प्रदाय मे भी चौरासी सिद्धो की मान्यता है, वे नाथ-सिद्ध कहलाते है। इनसे भिन्न सिद्ध सहजयानी और वज्रयानी सिद्ध हैं जो वौद्धधर्म की उस परपरा मे है जो महायान से मन्त्रयान मे परिणत होता हुआ सहजयानी और वज्रयानी परपरा मे परिणत हुआ। यह नाथ-सम्प्रदाय इस प्रकार सहजयानी-वज्रयानी सिद्धो का आश्रय लेकर खडा हुआ और उनकी मौलिक परपरा से अलग होकर पृथक नाथ-सम्प्रदाय की स्थापना मे सफल हुआ। नाथ-सम्प्रदाय के मूल प्रवर्त्तक मत्स्येन्द्रनाथ हैं। किन्तु नाथ-सम्प्रदाय ने साम्प्रदायिक रूप 'गोरखनाथ' के हाथो प्राप्त किया। यद्यपि 'गोरखपा' नाम से 'गोरखनाथ' भी सहजयानी सिद्धो मे माने गये है, पर इसका समाधान तिब्बती ऐतिहासिक तारानाथ के इस उल्लेख से हो जाता है कि गोरखनाथ पहले वौद्ध थे, वाद मे वे शैव होगये। गोरखनाथ का शैव होने का काल ही वस्तुत नाथ-सम्प्रदाय की सम्प्रदाय रूप मे पृथक स्थापना का काल होगा।

आठवी से वारहवी शताब्दी तक का युग सिद्ध-साहित्य की दृष्टि से महत्व पूर्ण है। इस काल मे हमे कई प्रकार के सिद्ध मिलते हैं। वौद्ध-धर्म से उद्‌भूत, ह्रास मे जकडे हुए वज्रयान और सहजयान के सिद्धो की एक वडी परपरा थी। जैन धर्म भी सिद्धो से शून्य नही था। पर जैन-सिद्ध वौद्ध वज्रयानी और सहजयानी सिद्धो की भाँति न तो उतने अन्य प्रवाहो से प्रभावित हुए, और न उस रूप मे वाममार्ग से आवृत। शाक्त सिद्धो की एक पृथक परपरा थी। सहजयानी सिद्धो और नाथो,

---

१—नाथ सम्प्रदाय पृष्ठ ३२.

दोनो परपराओ के कितने ही सिद्ध समान है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने तुलनापूर्वक ३३ नाम ऐसे बताये हैं जो दोनों सम्प्रदायों मे एक हैं।[1] इन सभी सम्प्रदायो के सिद्धों मे तान्त्रिक अनुष्ठान की किसी न किसी रूप मे अवश्य प्रतिष्ठा हुई, किन्तु इसी कारण सिद्धो मे 'नाथो' का अन्तर्भाव नही होता। नाथो के पूर्ववर्ती भाव से ही सिद्धो के अस्तित्व को मानना होगा, भले ही वे कही-कही नाथ-सम्प्रदाय के सिद्धो के समानान्तर रहे है।

सिद्ध-युग की पृष्ठभूमि —सिद्धयुग भारत मे महान ऐतिहासिक उथल-पुथल का युग था। हर्ष की मृत्यु हो चुकी थी। साम्राज्य की धुरी नष्ट हो जाने से छोटे-छोटे सामन्त जहाँ तहाँ खडे हो गये थे। राजपूत राज्यो की स्थापना इसी काल में हुई। चारो अग्निकुल राजपूतो का उद्भव इसी युग मे हुआ। इस युग मे राजनीतिक तथा ऐतिहासिक क्षेत्र मे विकेन्द्रीकरण ही दृष्टिगोचर हो रहा था। इसका स्वाभाविक परिणाम यह था कि व्यक्ति का अपना बल या गुण ही उसका साथी और महत्व-अर्जन मे सहायक था। यह व्यक्ति विधि और विधान का परिणाम नही था, न अपनी प्रतिष्ठा के लिए वह इन पर निर्भर था। वह अपने निजी गुणो के चमत्कार से ही अपना महत्व और अपनी प्रतिष्ठा जमा सकता था और सुरक्षित रह सकता था। यह 'व्यक्ति-प्रभुता' इस युग का सामान्य धर्म बन गयी थी। यही कारण है कि धार्मिक क्षेत्र अथवा साम्प्रदायिक परम्पराओ मे गुरु का जो महत्व इस युग मे हुआ वह और कभी नही होसका। इससे पूर्व गुरु थे, उनका महत्व भी सामाजिक क्षेत्र मे था, पर उसका आधार गुरु की ज्ञानगरिमा के प्रति श्रद्धा थी, उनकी शक्ति के प्रति आतक नही था। इस युग मे गुरुओ के महत्व का एक आवश्यक अङ्ग उनकी शक्ति का आतक अथवा चमत्कार था। इस व्यक्ति-वादी गुरुत्व की दौड मे होड भी थी जिसके कारण हमे वे लोकवार्ताएँ मिलती हैं जिनमे दो सिद्ध पुरुष अपनी अपनी अलौकिक शक्तियो से एक दूसरे को पछाडने की चेष्टा करते पाये जाते हैं। गोरखनाथ और कण्हपा में भी ऐसी चोटें हुई थी, इनका उल्लेख लोक-कथाओ मे है।[2] यह विदित होता है कि

१—नाथ सम्प्रदाय पृष्ठ २७-३२

२—"इसके बाद गोरखनाथ वकुल वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ हुए। उधर कानफा ठीक उनके सिर पर से उड़ते हुए आकाश मार्ग से कहीं जा रहे थे। छाया देखकर गोरखनाथ ने सिर ऊपर उठाया और क्रोधवश अपना खड़ाऊँ ऊपर फेंका। खडाऊँ ने कानफा को पकड कर नीचे किया। गोरखनाथ के सिर पर से उड़ने के अविचार का फल उन्हें हाथोंहाथ मिला पर कानफा ने व्यङ्ग करते

सिद्धो की ऐसी कथाओ को विस्तार नाथ-युग मे ही मिला होगा। किन्तु सिद्ध युग मे नाथ-युग के सिद्ध से सिद्ध की कुछ भिन्न परिभाषा की जाती थी— मैं समझता हूँ कण्हपा ने निम्न पद मे 'सिद्ध' की ही परिभाषा दी है :

णित्तरग-सम सहज-रूअ सअल-कलुस-विरहिए।
पाप-पुण्य-रहिए कुच्छ णाहि काण्ह फुर कहिए॥
वहिणिक्कालिआ सुण्णासुण्ण पइट्ठ।
सुण्णासुण्ण-वेणि मज्झे रे वढ! किम्पि ण दिट्ठ॥
सहज एक्कु पर अत्थि तहि फुड काण्ह परिजाणइ।
सत्थागम वहु पढइ सुणइ वढ! किम्पि ण जाणइ॥
अह ण गमइ ऊह ण जाइ। वेण्णि-रहिअ तसु णिच्चल ठाइ॥
भणइ काण्ह मण कहवि ण फुट्टइ णिचल पवण घरिणि-घर वट्टइ॥
वरगिरिकन्दर गुहिरे जगु तहिं सअल, वि तुट्टइ।
विमल सलिल सोँस जाइ, कालग्गि पइट्टइ॥
पह वहन्ते णिअ-मणा, वन्धण किअऊ जेण।
तिहुअण सहल वि फारिआ, पुणु सारिअ तेण॥
सहजे णिच्चल जेण किअ, समरसेँ णिअ-मण-राअ।
सिद्धो सो पुण तक्खणे, णउ जरामरणह भाअ॥
(हिन्दी काव्यधारा—पृ० १४६-१४८)

सहज से यह 'निश्चल' की प्राप्ति इतनी 'सहज' नही। कण्हपा ने स्पष्ट किया है

णिच्चल णिव्विअप्प णिव्विआर। उअअ-अत्थमण-रहिअ सुमार।
अइसो सो णिव्वाण भणिज्जइ। जहिँ मण माणस किम्पि ण किजइ।

यह निश्चल निर्विकल्प निर्विकार स्थिति 'निर्वाण' कहलाती है। यहाँ मन की गति नही है। क्योकि 'मन' तो रह जाता है पीछे, मृतवत् और उभर आता है निश्चल। यह मन की निश्चलता असाधारण है, इसमे निज गृहिणी का साथ होना आवश्यक है—

हुए कहा कि वडे सिद्ध बने हो, कुछ गुरु का भी पता है कि वे कहाँ हैं। कदली देश मे महाज्ञान भूलकर स्त्रियों के साथ वे विहार करते हैं,उनकी शक्ति समाप्त हो गयी है। यमराज के कार्यालय मे देखकर आ रहा हूँ कि उनकी आयु के तीन ही दिन वाकी हैं। वडे सिद्ध हो तो जाओ गुरु को वचाओ। गोरख नाथ ने कहा—मुझे तो समझा रहे हो कुछ अपने गुरु की भी खवर है तुम्हें ? मेहरकुल की महाज्ञानशीला रानी मयनावती के पुत्र गोपीचद ने उन्हें मिट्टी मे गड़वा रखा है। आदि। (नाथसम्प्रदाय पृ० ४७)

जे किअ णिच्चल मण-रअण, णिअ-घरणी लइ एत्थ
सोइ वाजिरा-णाहु रे, मयिँ वुत्तो परमत्थ ।

और 'गृहिणी' का यह साथ किस प्रकार का हो—

जिमि लोण विलिज्जइ पाणिएहि, तिम घरिणी लइ चित्त ।

जैसे नमक पानी मे विलीन हो जाता है, ऐसे ही गृहिणी हो जाय चित्त मे।

इस वर्णन से विदित होता है कि यह 'चित्त' या मन साधारण चित्त या मन नहीं, यह वह पराक्षेत्र का चित्त है जो 'परमशिव' की अवस्था मे होता है तो शक्ति उसमे चिन्मयी होकर रमती है। इस 'चिन्मयता' को कैसे समझाया जा सकता है ? जल मे मिले हुए नमक की भाँति ही वह 'चिन्मयी' शक्ति या कला शिव अथवा चित्त या अ-कला में विलीन हो जाती है, तभी यथार्थ मे 'निश्चलता' प्राप्त हो सकती है। 'नमक' के पानी में विलीन होने की स्थिति का ज्ञान 'सरहपा' ने कण्हपा से ५०-८० वर्ष पूर्व ही करा दिया था—

अलिओ ! धम्म-महासुह पइसइ ।
लवणो जिमि पाणीहि विलिज्जइ । (हि० का० धारा पृ० २)

सरहपा ने जिस महासुख का यहाँ उल्लेख किया है, वही सिद्धो का परम-ध्येय है। कण्हपा ने भी 'नमक-पानी' के एकमेक होने—अद्वितीय (वेण्णि-रहिअ) होने के 'निश्चल ठाम' की चर्चा की है और बताया है कि—

"एहु सो गिरिवर कहिअ मँइ, एहुसो महसुह ठाव"

तो इस अद्वितीय स्थिति को कैसे प्राप्त किया जा सकता है ? सभी सिद्ध एकमत हैं कि यह न शास्त्र-ज्ञान से, न पोथी-पत्रे से, न जत्र-मत्र मे, न पाखडो से ही प्राप्त हो सकती है—७६० ई० के लगभग सरहपा घोषणा करते हैं—

'मन्त' ण तन्त ण धेअ ण धारण"
"सव्व वि रे वढ ! विब्भम-कारण"

८३० ई० के लगभग लुईपा कहते मिलते हैं:

जाहि र वण्ण-चिन्ह-रूअ ण जाणी
सो कइसे आगम-वेएँ वखाणी

ऐसे ही शब्द दारिकपा ने ८४० ई० के लगभग कहे

"किन्तो मन्तो किन्तो तन्ते किन्तो झाण वखाणे
अप्प पइट्ठा महासुह लीलेँ दुलक्ख परम-निवाणे

कण्हपा ने तो काव्यमयी भाषा मे समस्त पडित पथ को पके श्रीफल के ऊपर मडराकर भिनभिनानेवाला भ्रमर मात्र बताया है ·

"आगम-वेअ-पुराणे, पण्डिअ माण वहन्ति
पक्क-सिरीफले अलिअ जिम, वाहेरीअ भमन्ति ।"

इसी प्रकार सभी सिद्धो को हम वेद-पुराण तथा जत्र-मत्र की तुच्छता प्रकट करते पाते है। पाखड-खटन मे तो हम काल-क्रम मे सब से पहले सिद्ध सरहपा को अपने अति परिचित कबीर की भाँति ही कबीर से लगभग ६०० वर्ष पूर्व यो अक्खडता के साथ व्यग्य करते पाते हैं :—

बम्हणहि म जाणन्त हि भेउ।
एँवइ पढिअउ ए चउवेउ।
मट्टि पाणि कुस लई पढन्त।
घरही वइसी अग्गि हुणन्त।
कज्जे विरहइ हुअवह होमें।
अक्खि डहाविअ कडुएँ धूयें।
एकदण्डि त्रिदण्डी भअवाँ वेसें।
विणुआ होँइअइ हस-उएसें।
मिच्छेहाँ जग वाहिअ भुल्लें।
धम्माधम्म ण जाणिअ तुल्लें।
अइरिएहिँ उद्दूलिअ छारें।
सीस सु वाहिअ ए जडभारें।
घरही वइसी दीवा जाली।
कोणहिँ वइसी घण्डा चाली।
अक्खि णिवेसी आसण वन्धी।
कण्णेहिँ खुसखुसाइ जण धन्धी।
रण्डी-मुण्डी अण्ण वि वेसें।
दिक्खिज्जइ दक्खिण-उद्देसें।
दीहणक्ख जइ मलिणे वेसें।
णग्गल होइ उपाडिअ केसें।
खवणेहि जाण-विडविअ वेसें।
अप्पण वाहिअ मोक्ख-उवेसे।

जइ णग्गाविअ होइ मुत्ति, ता सुणह सिआलह।
लोम उपाडण अत्थि सिद्धि, ता जुवइ-णिअवह।
पिच्छी गहणे दिट्ठ मोक्ख, ता मोरह चमरह।
उञ्छ-भोअणें होइ जाण, ता करिह तुरगह।
सरह भणहि खवणाण मोक्ख, महु किम्पि न भावइ।
तत्त-रहिअ काआ ण ताव, पर केवल साहइ।

चेल्लु भिक्खु जे थविर उदेसें । वन्देहिँ भ्रा पव्विज्जउ-वेसें ।
कोइ सुतण्त वक्खाण वइट्ठो । कोवि चिण्ते कर सोसइ डिट्ठो ।

इस लम्बे उद्धरण से हमें आठवीं शताब्दी के प्रचलित वहुत से सम्प्रदायो का ज्ञान भी हो जाता है। साथ ही कवीर की पाखड-खडिनी प्रवृत्ति के आदि रूप का भी पता चल जाता है। सरहपा मानता है कि इन पाखडो के द्वारा मुक्ति नही प्राप्त की जा सकती। उसी की भाँति उसकी परपरा के सभी सिद्ध यही बात कहते चले जाते है।

इस प्रकार यह प्रकट है कि सिद्धों का सम्प्रदाय समस्त पाखडो से रहित था, और सहज पर आश्रित था। किन्तु जिन पाखडो का उल्लेख ऊपर हुआ है, उनसे भिन्न इस सहज का भी एक पाखड खडा होगया था—यह सहज शून्य-अशून्य से परे था—

"सुण्णासुण्ण-वेणि मज्झें रे वढ ! किम्पि ण जाणइ ।
सहज एक्कु पर अत्थि तहि फुड काण्ह परिजाणइ ।" (कण्हपा)

यहाँ मन और पवन निश्चल हो जाते हैं, पाप-पुण्य रहित यह अद्वैत निश्चल स्थल है। न यह देखा जा सकता है, न पवन इसे हिला सकता है, न अग्नि जला सकती है, मेघ जल से यह भीगता नही, न पैदा होता है, न मरता है। यहाँ सहज से उन्मत्त होकर योगी गृहिणी से रमण करता है। यही उसे महासुख प्राप्त होता है। इस "सहज" को क्या कोई सहज ही पा सकता है—

जहि मण पवण ण सचरइ, रवि ससि णाह पवेस ।
तहि वढ ! चित्त विसाम करु, सरहें कहिअ उएस ।
आइ ण अन्त ण मझ णउ, णउ भव णउ णिव्वाण ।
एँहु सो परममहासुह, णउ पर णउ अप्पाण ।

सअ-सविति-करहु रे धन्धा ।
भावाभाव सुगति रे वन्धा ।
णिअ मण मुणहुरे णिउणें जोई ।
जिम जल जलहि मिलन्ते सोई ।
पढमे जइ आभास विसुद्धो ।
चाहते चाहते दिट्ठि णिरुद्धो ।
एसें जइ आयास विकालो ।
णिअ मण दोस ण वुज्झइ वालो ।
मूल-रहिअ जो चिन्तइ तत्त ।
गुरु-उवएसे एत्त-विअत्त ।

अत यह स्पष्ट है कि सहज की सिद्धि प्राप्त करने के लिए 'गुरु' की अनिवार्यता इस सप्रदाय मे निश्चित हुई।

व्यक्तिवादी युग ने अहचेतना से व्यक्तित्व को गुरुत्व से अभिमण्डित किया। इस गुरुत्व ने युग-सस्कारो को आध्यात्मिक धरातल पर ऐसा ढाला कि गुरु अनिवार्य हो गया। यह गुरु विना सिद्ध हुए उस गुरुत्व को सिद्ध कैसे कर सकता था ? नही, उसे स्थिर रखना तो और भी कठिन था। इन सिद्धो को एक ओर तो अपने सप्रदाय को अन्य सप्रदायो की अपेक्षा अत्यन्त सहज भी दिखाना था, दूसरे उसे ऐसा दुरूह भी रखना था कि गुरु का महत्व ही समाप्त न हो जाय। इस द्वैध के कारण इस सप्रदाय मे सहज और साधना दोनो का साथ-साथ पोपण हुआ। उसकी कुजी भी गुरु के हाथ मे रही। गुरु की कृपा हो तो चमत्कार रूप मे शिष्य या भक्त को वह 'सहज' सहज ही प्राप्त हो जाय। किन्तु शिष्य इस व्यक्तिवादी युग मे केवल सहज को पाकर क्या करेगा ? वह सिद्ध की कृपा पर ही क्यो रह जाय ? उसे तो स्वय सिद्ध होना चाहिये। उस सिद्धि को प्राप्त करने के लिए गुरु की और भी अधिक आवश्यकता है, क्योकि सिद्ध का मार्ग तो तलवार की धार पर चलने का मार्ग है। गोरख की वाणी से स्पस्ट सिद्ध होता है कि 'सहज' शनै-शनै स्थूल 'शील' से आरभ होकर जटिल शून्य की स्थिति तक पहुँचता है—गोरखनाथ कहते हैं —

हबकि न बोलिबा, ठबकि न चालिबा धीरै धरिबा पाँव।
गरब न करिबा सहजै रहिबा भणत गोरष राँव।
(छन्द २७ पृ० ११ गोरखवानी)

यह 'सहज' शीलगत सहज ही है, यद्यपि 'सहज' मे रहन की भावना से सहज-शील का स्वरूप त्यागकर आध्यात्मिक गूढ अर्थ भी ग्रहण किया जा सकता है। किन्तु समस्त द्वद्व की परिपाटी से यह 'शील' का ही सहज है। इस 'शील' के 'सहज' को प्राप्त करने के वाद, इस शील का रूप ऐसा करले कि समस्त शरीर ही इस शील का हो जाय—यह समस्त शरीर के सस्कार का प्रश्न है—

गिरही सो जो गिरहै काया। अभि अन्तर की त्यागै माया।
सहज-शील का धरै सरीर। सो गिरही गगा का नीर।
(वही, छन्द ४५ पृ० १७)

शरीर सहज-शील का कब हो सकता है ? कब वह स्थिति प्राप्त हो सकती है कि सहज-शील और शरीर एकमेक हो जाय ? उतर होगा —तभी जबकि शरीर को सहज-समाधि प्राप्त हो जाय। समाधि ही तो तन्मयावस्था है तो बत पा गया कि.—

निद्रा सुपनें विन्द कू हरें। पथ चलता आतमा मरें।
वैठा पटपट ऊभा उपाधि। गोरख कहै पूता सहज-समाधि।
(वही, छन्द २१२, पृ० ७०)

अब स्पष्ट है कि सहज की स्थिति जटिल हो चली। सहज की समाधि के लिए विन्दु का अपहरण आवश्यक है, पथ चलती आत्मा को भी मारना होगा, और इस सहज समाधि मे पहुँचकर—

जिहि घरि चद सूर नहिं ऊगै, तिहि घरि हो मी उजियारा।
तिहाँ जे आसण पूरौ तौ सहज का भरौ पियाला, मेरे ग्यानी।
(वही, पद ४, पृ० ९०)

सहज का प्याला उस घर मे आसन लगाकर पीना पडेगा, जिस घर मे चन्द्र-सूर्य के विना उजियाला है। ये चन्द्रसूर्य साधारण चन्द्र-सूर्य नही, इनका भी अपना एक विशेष अर्थ है। तो सहज का प्याला पीने का यह घर इस काया गढ को जीत लेने पर ही प्राप्त होता है—

इहाँ नही, उहाँ नही, त्रिकुटी मँझारी।
सहज सु नि मैं रहनि हमारी। (वही, पद ३९, पृ० १३४)

सरहपा का मत है—सव्व रूअ तहि ख-सम करिज्जइ.
सो वी मगु तहि अमगु करिज्जइ। सहज सहावैं सो पर रज्जइ।

वह घर भी सहज का घर है, वह सहज जो शून्य है।

इस प्रकार शील का सहज धीरे धीरे कदम वढाता हुआ शून्य तक पहुँच गया। भला इस समस्त साधना को गुरु के विना कौन समझा सकता है? अत गुरु है, सहज स्थिति प्राप्तव्य है, उसके लिए साधना का आयोजन है।

साधना के इस आयोजन का 'योग' से सवन्ध वहुत घनिष्ठ है, इसलिए इन सिद्धो ने 'योगी' का उल्लेख वारवार किया है —

भव जाई ण आवइ ण एण्थु कोई।
अइस भावे विलसइ काण्हिन जोई।

गोरखनाथ ने कहा—जोगी सो जो रापै जोग।
जिभ्यायन्द्री न करै भोग।

भूसुकपा योगी को सवोधन कर उपदेश देते हैं—

मारु रे जोगिया! मूसा पवना। जासे टूटै अवना-गवना।

इस योगी का सवध काया को गिरह देने से है, पवन अथवा प्राण को वाँधने से है।

मारु रे जोगिया मूसा पवना। जासे टूटै अवना-गवना।

यह मूसा वहुत भयानक है—निसि अधियारी मूसा करै सचारा ।
अमृत भक्ष्य मूसा करै अहारा । (भूसुकपा)
क्योकि समस्त अमृत को यही खा जाता ।

किन्तु काया को गिरह देने की इस साधना को सिद्ध ने योगियो की साधना से भिन्न कर दिया है । वह केवल गुरु-कृपा से ही सहज-सिद्ध होता है । शवरपा कहते हैं कि—गुरु वाक पु जिआ धनु णिअ-मण वाणे ।
एके शर सन्धाने विन्धह विन्धह परम-णिवाणे ।
भूसुक ने बताया है कि —

करुणामेह निरन्तर फारिआ । भावाभाव द्व दल दालिआ ।
उइउ गअण माज्झे अदभूआ । पेख रे भूसुक ! सहज सरुआ ।
जासु सुणन्ते तुट्टइ इँदआल । णिहुए णिज मण देइउ उल्लाल ।
विसअ विसुज्झे मइँ वुज्झिउ आणदे । गअणहँ जिम उजोली चन्दे ।
ए तिलोए एत वि सारा । जोइ भूसुकु फडइ अधियारा ।

इस प्रकार सिद्धो ने योगी की साधना के आरभ तक पहुँच कर उस साधना के स्वरूप को एकदम वदल दिया । और उस साधना की कु जी गुरु के हाथ मे देदी । जो कार्य पवन को बाँधकर चक्र वेधने से होता, वह गुरु-उपदेश और गुरु कृपा से । इसलिए 'लुईपा' ने लिखा '—

काआ तरुवर पच विडाल । चचल चीए पयट्ठा काल ।
दिढ करिअ महासुह परिमाण । लुई भणइ गुरु पुच्छिअ जाण ।

साधना के इस स्थल पर पहुँच कर सिद्ध-साहित्य 'रहस्य' मय हो जाता है । वह कण्हपा के साथ गा उठता है—

नाडि शक्ति दिढ धरिआ खाटे । अनहा डमरु वजइ विरनाटे ।।
काण्ह कपाली जोइ पइठ अचारे । देह न अरि विहरइ एककारे ।।
अलि-कलि घटा नेउर चरणे । रवि-शशि-कुण्डल किउ आभरणे ।।
राग-दोष-मोहे लाइअ छार । परम मोख लवएँ मुत्ताहार ।।
मारिअ सासु नणँद घरे शाली । मा मरिअ काण्ह भइल कपाली ।।

'रहस्यवाद' साधना का पक्ष नही, महासुख के भोग और आनद की स्थिति का आस्वादन है । सिद्ध-साहित्य मे इस रहस्य के उद्घाटन की भी विकास-श्रेणियाँ परिलक्षित होती है—कही तो 'सहज' की स्थिति 'भाव-अभाव' दोनो से ऊपर वताने के लिए साधारण शब्दावली मे इसे आश्चर्य के साथ प्रस्तुत किया गया है —

भाव ण होइ अभाव ण जाइ ।
अइस सँवोहेँ को पतिआइ ।

लुई भणइ वढ ! दुलख विणाणा ।
तिधातुए विलइ ऊह लागेना ।
जाहि र वण्ण-चिन्ह-रूअ ण जाणी
सो कइसे आगम-वेएँ वखाणी । आदि

तो कही इस स्थिति को 'उन्मत्तता' वताया गया, और उसके लिए सहज वारुणी सिद्ध करने की वात कही गयी ।

विरूपा ने यह निर्धारित किया —

एक से शोडिनि दुइ घरे साधअ ।
चीअ न वाकलअ वारुणी वाँधअ ।
सहजे थिर करि वारुणी साधय ।
जे अजरामर होइ दिढ काँधअ । आदि

यह भाव-अभाव से परे की स्थिति अभाव मे भाव के रमण की ही स्थिति है । सहज तो शून्य ही है । यहाँ दो का रमण है, जिसमे समुद्र की लहरें तो समाप्त हो जाती हैं, समुद्र की समरसता रह जाती है । द्वैत के इस रमण को अव गु डरीपा यो अभिव्यक्त करते हैं —

तिअड्डा चाँपि जोइनि दे अंकवाली ।
कमल-कुलिश घोँटि करहु विआली ।
जोइनि तइँ विनु खनहिं न जीवमि ।
तो मुह चुम्वि कमल-रस पीवमि ।
खेपहुं जोइनि लेप न जाअ ।
मणिकुले वहिआ उडिआने समाअ ।
सासु घरे घालि कोचा - ताल ।
चाँद - सूज वेण्णि पखा फाल ।
भणइ गु डरी अम्हे कु दुरे वीरा ।
नर अ नारी माझे उभिल चीरा ।

और अव इस 'जोइनि' या 'जोगिनी' ने डोम्वी का रूप धारण किया तो कण्हपा उससे विवाह करने चल पड़े—

भव-णिव्वाणे पडइ माँदला ।
मण-पवण-वेण्णि करउँ कशाला ।
जअ जअ दुन्दुहि सद्द उछलिला ।
काण्हे डोम्वि-विवाहे चलिला ।
डोम्वि विवाहिअ अहारिउ जाम ।
जउतुके किअ आणूतू धाम ।

अहरिणसि सुरअ-पसंगे जाअ।
जोइणि जाले रअणि पोहाअ।
डोंविए सगे जोड रत्तो।
खणह ण छाडअ सहज-उमत्तो।

यही सिद्धो को युगनद्ध अद्वय की उपलब्धि हुई। इस मत्रके लिए तान्त्रिक सावना ग्रहण की गयी। विवाहित डोमनी महामुद्रा बन गयी, जिससे महामुद्रा सिद्धि प्राप्त होती है।

यहाँ तक हमने सिद्धो की उस पृष्ठभूमि को दिखाया है जो मूलत सामान्य लोकवृत्ति-परक रही है। सामान्य लोक-प्रवृत्ति के कारण ही बौद्ध धर्म को सहजयान का आश्रय लेना पडा।

किन्तु सिद्ध सम्प्रदाय के विकास में सामान्य लोक-प्रवृत्ति ही का योग नही था। उसकी जड मे मूल लोक-मानस भी व्याप्त था। यह मूल लोक-मानस सिद्ध-सम्प्रदाय की आधार भूत मान्यताओ से सम्बद्ध है। सिद्ध-सम्प्रदाय की १ सहज, २ महामुद्रा, ३ तन्त्र-योग, ४ सिद्धि तथा ५ गुरु ही आधार-शिलाएँ है। 'सहज' मे व्याप्त सामान्य लोकभूमि हम देख चुके हैं। वेद-शास्त्र, तन्त्र-मन्त्र, जप-तप, पाखण्ड सभी को त्याग कर 'सहज' मिलता है। किन्तु लोक-मानस जहाँ एक ओर ऐसी सहज स्थिति का वरण करता है, वहाँ वह आनुष्ठानिक टोने (Ritualistic magic) के बिना भी नहीं रह सकता। वह अपने मनोरथ की पूर्ति के लिए ऐसे तन्त्र की प्रतिष्ठा करता है जिससे विविध तत्व प्रकृति, पुरुष, उनकी जीवित तथा मृतात्माएँ उसके मनोरथ को पूर्ण कर सकें। सिद्धो मे 'सहज' के साथ-साथ 'तन्त्र योग' इसी कारण चल सका। मूल आदिम समाज मे यह आनुष्ठानिक तन्त्र हमे प्राय आरम्भ से ही दो रूपो मे मिलता है। एक, व्यक्ति-आश्रित प्रत्येक व्यक्ति अपनी मनोरथ पूर्ति के लिए कुछ आनुष्ठानिक तन्त्र का विधान कर सकता था। वह पशुओ के चित्र बनाता था कि इससे वे उसे सरलता से प्राप्त हो सकेंगे। सिद्धो का या शाक्तो का 'तन्त्र' उसी मूल-लोकमानस की दृढ भूमि पर स्थित हैं। दूसरे सामाजिक सम्मिलित अनुष्ठान। इसमे एक पूरा समूह का समूह भाग लेता था। आनुष्ठानिक नृत्यो का आविर्भाव ऐसे ही सामूहिक अनुष्ठानो मे हुआ है।

'महामुद्रा' के सिद्धि का स्वरूप मूल लोक-मानस की सृष्टि-रचना की मूल गाथा से सलग्न है। इस मूल गाथा मे आकाश को पृथिवी पर लेटा हुआ माना गया है। ये दोनो आरम्भ मे युगनद्ध थे। यह अद्वय भारत मे ताण्ड्य-ब्राह्मण मे बताया गया है। माओरी जाति के लोग आज भी यही मानते हैं। बाद मे इन दोनो को पृथक कर दिया गया। न्यूजीलैंड मे इन दोनो को एकदूसरे मे अलग उनके

लडके ने किया। मिस्र मे उन्हे वायु के देवता 'शू' ने अलग-अलग किया। यहाँ आकाश को स्त्री और पृथ्वी को पुरुष रूप मे चित्रित किया गया है।* ताण्ड्य ब्राह्मण मे उल्लेख है कि जब ये अलग-अलग हो गये तो दोनो ने विवाह कर लिया। सिद्धो की महामुद्रा-साधना में लोक-मानस का यही प्रत्यावर्तन प्रत्यक्ष है, पर उसके साथ आनुष्ठानिक तन्त्र सन्निविष्ट है। समस्त तान्त्रिक साधना के मूल मे 'मैथुन' का जो महत्व मिला हुआ है, वह समस्त आदिम-मानस के प्रजनन विषयक आनुष्ठानिक टोने का ही सशोधित रूप है। इस प्रक्रिया से मूल लोक-मानस मनोरथ की सिद्धि मे विश्वास करता था। दूसरे शब्दो मे आनुष्ठानिक रूपेण सिद्धि और साधन का भेद किया जाय तो यह प्रक्रिया साधन है और मनोरथपूर्ति सिद्धि है।

तन्त्र मे चक्रपूजा का समस्त वातावरण और आनुष्ठानिक तन्त्र उसी मूल लोक-मानस की अभिव्यक्ति का एक अपूर्व उदाहरण है। चक्र का विकास योनि-प्रतीक के रूप मे हुआ है। योनि-प्रतीक देवी या महामुद्रा का यान्त्रिक प्रतिस्थानीय है। ऊपर लोक-मानस की स्थिति पर विचार करते हुए यह बताया जा चुका है कि अत्यन्त प्राचीन काल मे जो कुछ मृण्मूर्तियाँ मिलीं उनमे स्त्री-अङ्गो का विशदीकरण किया गया है। और उसका आनुष्ठानिक टोने से सम्बन्ध था, इसमे कोई सदेह नही। चित्र, मूर्ति आदि आदिमकाल से सहानुभूतिक टोने (sympathetic magic) के रूप में काम मे आते रहे हैं। उसी आदिम भाव का रूपान्तर हमे चक्रो मे और उसकी पूजा में मिलता है।§ सिद्धो में भी इस चक्र-पूजा का अत्यन्ताभाव नहीं था।

* "Heaven was originally lying upon earth. but the two were separated, and the sky was lifted up to its present position. In New Zealand this was done by their son, in Egypt it was done by the god of the air, Shu, who is now between earth and sky. And heaven is depicted as a woman bending over the earth with outstretched arms while the good Shu supports her.'—Before Philosphy पृ० २७

§ इस चक्रपूजा के सम्बन्ध मे अर्नेस्ट ए० पयने (A Ernest Payne) ने अपनी पुस्तक 'द शाक्ताज' (The Saktas) में यह विवरण दिया है

"An equal number of men and women who may belong to any caste or castes and may be near relations—husband, wife, mother, sister, brother—meet in secret, usually at night and sit in a circle. The

महामुद्रा समागम से सिद्धि प्राप्त करने के विधानो के साथ ये तत्व जुडे हुए हैं, और इनके साथ है 'सिद्ध' और 'गुरु'। साधक सिद्धि प्राप्त करके ही सिद्ध होता है, और सिद्ध होने पर गुरु हो सकता है। विना गुरु के सिद्धि हो ही नही सकती। गुरु के इस व्यक्ति-परक महत्व पर लोक-प्रवृत्ति का प्रभाव हम ऊपर दिखा आये है। गुरु का यह महत्व साम्प्रदायिक स्थिति-स्थापकता से मूल-रूपेण सम्बन्धित है, यह किसी वाहरी औद्योगिक प्रवृत्ति के साम्य से उद्भूत नही। इसके अतिरिक्त इस युग में गुरु को ऐसा महत्व मिलने का एक और गहरा कारण वही मूल लोक-मानसिकता है जो इस सम्प्रदाय के ताने-वाने में व्याप्त थी। इस मानसिकता में गुरु=सिद्ध या सिद्ध=गुरु=स्याना। स्याना झाड-फूँक करने वाला होता है, इस पर देवी-देवता भी आते हैं। किसी आत्मा का आवेश उसमे होता है भूत-प्रेतो को वश करता है। इस व्यक्ति का महत्व अपनी इन्ही व्यक्तिगत विशेषताओ के कारण होता है। उस समाज में वह विशेष प्रकार की प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। इस युग में गुरु और व्यक्ति का ऐसा विशिष्ट महत्व इन्ही कारणो से हुआ। इतिहास यह वताता है कि सिद्धो का सवध ऐसे लोगो से था जिनमे स्यानो का महत्व था।

इस युग में सिद्ध-साहित्य के दोहे, पद आदि लोक की अपनी सपत्ति थी। इन सिद्धो के अतिरिक्त शेष साहित्य में जो रूप खडे हुए वे भी इस लोक-भूमि को स्पष्ट करते हैं। उनमें से अधिकाश का सम्वन्ध लोक-नृत्यो, लोक-गीतो और लोकोत्सवो से था। कुछ तो लोकानुष्ठानो तक से लिये गये है। सरसरी दृष्टि से यह कहा जासकता है कि मगल, सोहर, नहछू का सम्वन्ध घर के सस्कारोत्सवो से था। हिंडोला, फाग, वारहमासा ऋतुपरक लोकायोजनो से सवद्ध थे। हिंडोला झूले का, फाग होली या वसन्त का, वारहमासा वर्षा ऋतु का गीत था। 'चाचर' और रास सामूहिक लोक-नृत्यो से सम्बद्ध हैं। विरहुली विष उतारने के स्यानो के गीत का ही रूप है। किन्तु यहाँ सिद्धो में प्रचलित एक विशेष प्रणाली की ओर विशेष ध्यान जाता है। वह सधा भाषा है जिसमें प्रतीक से गुह्यार्थ प्रस्तुत किये

---

goddess may be represented by an image of a yantra which is actully a drawing of pudendum muliebre in the centre of a circle formed by nine pudenda. The liturgy consists of the repetition of mantras, the ritual in partaking of the five tattvas, i. e. elements, viz wine,, meat, fish, parched grain and sexual intercourse" पृष्ठ १५

गये हैं। इन प्रतीक रूपकों का प्रत्यक्ष अभिधामूलक अर्थ मैथुन-परक होता है, किन्तु उससे सहजयोग का गूढार्थ निकाला जाता है। लोक-मानम भूमि की पहेली या बुझौवल (Riddle) सवधी प्रवृत्ति का ही यह विकाम है। आदिम लोकमानस मे पहेली का अनुष्ठानो से गहरा सम्बन्ध था। मूल-सिद्धान्त इसमें सहानुभूतिक टोने का ही था। पहेली का अर्थ खुल गया तो मनोरथ-सिद्धि का मार्ग भी खुल जायगा, तुल्य से तुल्य की प्राप्ति की भावना ही थी। वही से यह प्रहेलिका-प्रवृत्ति प्रत्येक रहस्य-सिद्धि अथवा फल-प्रतीक्षा के आयोजन के साथ सलग्न मिलती है। सिद्धो ने भी गुह्य को प्रस्तुत करने के लिए इसी प्रवृत्ति के विकास में सधा भाषा या साभिप्राय भाषा का उपयोग किया। और क्यो उसे यौन-प्रतीको से युक्त किया गया? यह हम देख चुके हैं कि यौन-भावना का भी आदिमानुष्ठानो से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। वही मानस-भूमि सिद्धो में परि-व्याप्त है।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि सिद्ध-सम्प्रदाय की मूल भूमि आदिम मूल मानसिकता या लोक-मानस से युक्त है। आज यह सिद्ध हो चुका है कि सिद्धों का सम्बन्ध ऐसी जातियो से था जिनमें आदिमत्व विशेष था। सिद्धो में ब्राह्मण से लेकर शूद्र जाति तक के व्यक्ति थे, महामुद्राऐँ भी ऐसी ही थी। जाति-पाँति का भेद इनमें नही था। वस्तुत शवर मछुए, सरकडो का काम करने वाले तक तो इनमे थे। सिद्धो की ही नही समस्त साहित्यिक प्रवृत्तियो की मूल भूमि प्राय यही थी।

अत लोक-मानस की मूल भूमि से सिद्धों का घनिष्ठ सम्पर्क था। वहा के जीवन के मान्य तत्वो को सिद्धो ने ग्रहण किया और उन्हे एक साम्प्रदायिक महार्घता प्रदान की। उसे एक दार्शनिक व्याख्या देकर एक उच्चता से अभि-मण्डित कर दिया। इसके लिये उन्होने भाषा-गौरव, श्लेष, रूपक-प्रतीक, अल-कार आदि प्रणालियो के उपयोग में पूर्ण पाण्डित्य प्रकट किया। इस प्रकार 'सहज' को कठिन कर 'कमल-कुलिश' के विरोध-विवर्ती सिद्धान्तो को सिद्ध कर दिया है।

इस प्रकार सिद्धो ने अपनी विशिष्टता के साथ लोक-तत्वो का समादर किया। पर सिद्धो मे से ही नाथ-सम्प्रदाय ढला, और उसने इस दूसरे चरण को प्रवल वेग से आच्छादित कर लिया।

दूसरा चरण पूर्ण उत्कर्ष पर दसवी शताब्दी मे पहुँचा। इसका दृष्टि-कोण वैष्णव दृष्टिकोण से भिन्न था। यह अवैदिक था। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है—

"कहने का तात्पर्य यह है कि गोरक्षनाथ के पूर्व ऐसे वहुत से शैव, बौद्ध और शाक्त सम्प्रदाय थे जो वेद-बाह्य होने के कारण न हिन्दू थे और न मुसलमान। जब मुसलमानी धर्म प्रथम बार इस देश मे प्रचलित हुआ तो नाना कारणो से देश दो प्रतिद्वन्द्वी धर्मसाधनामूलक दलो मे विभक्त हो गया। जो शैव मार्ग और शाक्त मार्ग वेदानुयायी थे, वे वृहत्तर ब्राह्मण प्रधान हिन्दू समाज मे मिल गये और निरन्तर अपने को कट्टर वेदानुयायी सिद्ध करने का प्रयत्न करते रहे।" (नाथ-सम्प्रदाय–पृ० १४७) शेप वेद-बाह्य सम्प्रदाय गोरख सम्प्रदाय मे अन्तर्भुक्त हुए, किन्तु वे ही जो 'योग' को मानते थे। जो लोग वेद विमुखता और ब्राह्मण विरोधिता के कारण समाज मे अग्रहीत रह जाते, वे उन (गोरखनाथ) की कृपा से ही प्रतिष्ठा पा सकते थे। (वही पृ० १६३)

इस प्रकार नाथ-सम्प्रदाय ने बिखरे सम्प्रदायो को एक सूत्र मे पिरोने का कार्य सम्पादित किया। नाथ-सम्प्रदाय दसवी शताब्दी मे चरमोत्कर्ष पर पहुँच कर ह्रास की ओर अग्रसर हुआ।

तभी भक्ति 'आन्दोलन' उठा। यह 'वैष्णव' आन्दोलन का ही नया सस्करण था। इसने समस्त लौकिक-वैदिक तत्वो को समन्वित करने का प्रयत्न किया। भक्ति की भावना, अवतार मे आस्था, निर्गुण-सगुण का समन्वय, सहज-सुरति और योग की योजना, पूजा, कीर्त्तन और काव्य का उपयोग, नाम और रूप का आश्रय—ये सभी प्रमुखत लोक-तत्व है, जिनके पोपण के लिए किसी-किसी ने 'वेद-उपनिपद और ब्रह्मसूत्र' का भी आधार ग्रहण किया। वस्तुत वेदो का आश्रय तो प्रमाणार्थ ही लिया गया, इस भक्ति-आन्दोलन का समस्त रूप और आत्मा लोक-तत्वो से निर्मित थी। इस नये आन्दोलन ने वैदिक-अवैदिक समस्त भारतीय साम्प्रदायिक प्रवृत्तियो का एकीकरण कर दिया, इनमे वैष्णवीय अहिंसा अथवा दाक्षिण्य की भावना प्रधान हो गयी, अत केवल उग्र शाक्त ही इसमे नही समा सके। ये उग्र शाक्त लोक-ग्राह्य भी नही थे। भक्ति की इस नयी अवतारणा के दाक्षिण्य ने मुसलमानो को भी अग्राह्य नही माना।

हरि को भजे सो हरि का होई।

यह मनोवृत्ति प्रधान हो चुकी थी।

दूसरा अध्याय

निर्गुण सम्प्रदाय के तत्व

हिन्दी के जन्म और उसकी आरम्भिक अवस्थाओ का जो रूप ऊपर दिया गया है, उससे स्पष्ट है कि हिन्दी की निर्गुण-धारा का मूल नाथ-सम्प्रदाय मे से होकर सिद्धो मे है। सिद्धो ने जो तत्व दिये, वे नाथो के द्वारा सशोधित हुए और अधिकाधिक लोक-भूमि के निकट लाये गये, और जव वे लोक-वार्ता के अग वन गये तव उन्हें हिन्दी की निर्गुण-धारा ने ग्रहण किया।

सिद्धो ने जिन तत्वो की स्थापना की उनमे से कुछ सक्षेप मे ये थे—

१ स्कध
२ भूत
३ आयतन
४ इद्रिय
५ शून्य
६ चित्त
७ भव
८ निर्वाण
९ माया
१० सहज

११ करुणा
१२ अद्वय साधना
१३ समरसता
१४ प्रज्ञोपाय
१५ मैथुन
१६ युगनद्ध
१७ निरजन
१८ समुत्पाद
१९ अमनस्कार
२० राग-महाराग
२१ गुरु
२२ आदिकर्म
२३ एव
२४ वोल कक्कोल
२५ वज्र
२६ खमम
२७ सुरति-निरति
२८ उलटी साधना

इन तत्वो का इतिहास लोकतत्व की सामर्थ्य को बहुत स्पष्ट करता है।

सिद्ध-साहित्य मे भी इन शब्दो का प्रयोग विशेष अर्थ में होने लगा था। नाथ-सम्प्रदाय मे इसके अर्थ मे दूसरा विकास हुआ और सत-सम्प्रदाय ने उससे आगे। और यह विकास लोक-प्रवृत्ति का परिणाम था।

१—स्कध—रूप, वेदना, सस्कार, सज्ञा तथा विज्ञानादि ये पाँच स्कध हैं। यह शब्द और यह विभाजन सिद्धो ने विज्ञानवाद से लिया है। विज्ञानवादियो ने स्कध के इन पाँचो भेदो पर और भी अधिक विस्तार से विचार किया। सिद्धों ने वह विस्तार अनावश्यक समझा। उन्होंने पाँच स्कधो से ही काम चलाया। नाथ-सम्प्रदाय मे स्कध की चर्चा समाप्त हो गयी। उससे आगे सन्त तो इससे अपरिचित ही रहे।

इससे स्पष्ट है कि लोक-धारा ने स्कध को स्वीकार नहीं किया। जो सम्प्रदाय जितना ही लोकपरक रहा, उतना ही वह स्कध के शास्त्रीय स्वरूप की सूक्ष्मता को त्यागता गया।

२—भूत— ये भी पाच हैं, और पच महाभूत कहलाते हैं। सर्वास्तिवादियो

ने क्षिति, जल वायु तथा हुताशन ये चार ही महाभूत माने, सिद्धो मे भी सरहपा ने भी यही चार भूत माने, पर काण्हपा ने पाच तत्व माने। उन्होने गगन को भी एक भूत स्वाकार किया। स्पष्ट है कि सिद्धो ने प्रचलित परपरा से ही भूतो को पाच माना। गगन को 'शून्य' रूप मे ग्रहण करके उन्होने उसे सभी मे व्याप्त स्वीकार करके भूत के क्षेत्र से पृथक नही किया। पच महाभूतो की मान्यता इतनी सामान्य हो गयी थी कि यह समस्त लोक की अपनी मान्यता बन गयी थी। इस मान्यता को सतो ने स्वीकार किया। कारण स्पष्ट है कि ये पचतत्व शास्त्रीय दृष्टि से कितनी ही मौलिक अमूर्त्त सत्ता क्यो न रखते हो, लोक-प्रवृत्ति में उनकी मूर्त्त और यथार्थ सत्ता विद्यमान थी। यही नही, लोक-तत्व इन्हे प्रबल शक्तियो के रूप मे स्वीकार करता आ रहा था। ऐसी अवस्था मे इन तत्वो को वह महत्व देता ही। इसी समवायता के कारण लोक में विद्यमान इन तत्वो को साप्रदायिक दृष्टि से धर्म-विकास की परपरा की अतिम कडी के रूप मे सतो ने स्वीकार कर लिया।

३—आयतन—आयतन का अर्थ होता है आधार-स्थल। सिद्धो मे इन्द्रियों के विषय का जो आधार स्थल होता है, उसे आयतन कहा जाता है। और इस विषय की इन्द्रिय को भी आयतन कहा गया है। अत आयतन के दो प्रकार होते हैं, एक इन्द्रिय आयतन, दूसरा विषय या रूप आयतन। 'आयतन' नाम का आगे एक प्रकार से लोप हो गया है। नाथ-सप्रदाय मे 'गृह' का उल्लेख हुआ है। यह 'गृह' आयतन से कुछ भिन्न है। यहाँ यह स्पष्ट है कि जब इन्द्रिय से काम चल सका तो उसके सूक्ष्म तत्व को लोक-मानस क्यो ग्रहण करता।

४—इन्द्रिय—साधारणत पचमहाभूतो के साथ पचेन्द्रिय सिद्धो ने मानी हैं नासिका, रसना, चक्षु, त्वचा, श्रोत्र। किन्तु कही-कही 'मन' को सम्मिलित करके 'षडेन्द्रयाँ' भी मानी गयी हैं। नाथ-सप्रदाय मे 'इन्द्रिय' के समकक्ष 'द्वार' शब्द का प्रयोग हुआ है, पर यहाँ भी यह इन्द्रिय के पूर्व पारिभाषिक शब्द से भिन्न है—पच द्वार हैं श्रुति, नासिका, चक्षु, लिंग और गुदा। सतों ने पाँच इन्द्रियाँ ही मानी। सतो मे द्वार दस हो गये।

५—शून्य—प्रथम अवस्था मे 'शून्य' का अर्थ है 'अनस्तित्व', दूसरी अवस्था मे विज्ञानवादियो ने 'शून्य' का अर्थ किया 'तथता'—जैसे तरगो के नष्ट हो जाने पर जल हो जाता है, वैसे ही भव के विनाश से चित्त की जो स्थिति होती है वह 'तथता' है। तीसरी अवस्था मे सिद्धो ने इसी को 'परमार्थ' भी कहा और इसी शून्य के तीन रूप माने—तत्व-रूप मे अगोचर, अगम, ज्ञान-रूप मे भाव-अभाव, ग्राह्य-ग्राहक तथा अन्त-आदि से रहित, स्वभाव-रूप मे ख-सम, आकाश अथवा शून्य के समान चित्त-स्वभाव। इस शून्य

को अपनी शैली मे सिद्धो ने नैरात्मवालिका, प्रज्ञा या महामुद्रा कहा। इसे अद्वय तत्व माना। चौथी अवस्था मे नाथो ने इसी शून्य को परमतत्व का पर्याय मानकर हठयोग के शब्द-ब्रह्म या नाद मे जोड दिया। अब शून्य-प्राण-नाद। यह नाद 'नाद-विन्दु' के नाद से सबधित है। ब्रह्मरन्ध्र या दशमद्वार को भी शून्य माना गया। शिवलोक भी शून्य कहा गया। पाचवी अवस्था मे शून्य सतो के हाथ मे पडा। यहाँ यह शून्य अपना मौलिक तात्विक अर्थ खो बैठा। यहाँ शून्य शब्द भी है,[1] शून्य आदितत्व भी है[2], शून्य आकाशतत्व को जन्म देने वाला है,[3] शून्य पूर्णता है,शून्य जीवन-मरण रहित है, शून्य सहज है। वह अद्वय भी है,[4] त्रिकुटी मे शून्य है[5], शून्य, शून्य मडल, शून्य सरोवर, शून्य महल, शून्य शिखा, शून्य नगर, शून्य हाट—आदि अनेक रूपो मे प्रस्तुत हुआ।

६—चित्त—सर्वप्रथम विज्ञानवादियों ने 'चित्त' की स्थिति मानी। यही एक मात्र तत्व है। सिद्धो ने चित्त को भव और निर्वाण दोनो का बीज माना। यही चित्त मन का पर्याय आगे चलकर समझा गया। और सतो मे इस 'मन' के कितने ही रूप हो गये, और इसे कितने ही प्रतीकों द्वारा अभिव्यक्त किया गया। तरवर, करभ, बैल, हाथी, मूषक, मेढक, शृगाल, सिंह, हस, भँवरा, मृग, कपास, श्वान आदि के द्वारा मन को कभी चित्त या बोधिचित्त, कभी प्रयत्न प्रकाशक चित्त, कभी भावना मे लगा हुआ मन, कभी उन्मनमन, कभी माया का शिकार होता हुआ मन, कभी वासनायुक्त मन, कभी निर्मल मन, कभी सदाचार प्रेमी मन, कभी विषयो मे आसक्त मन आदि, अनेक रूपो मे मन चित्रित किया गया है।

७—माया—भव और मोहजाल तथा ससार एक ही हैं। सिद्धो ने इसका चित्त से उद्भव माना है। यह सकल्पो से निर्मित होता है, और सकल्प चित्त का ही प्रक्षेपण हैं। यह सध्या या माया चित्त से उदय होकर चित्त को ही ग्रस लेती है।

सिद्धो का यह सकल्प-स्वरूप नाथो मे कुछ ठोस सत्तावान होता दीखता है। मत्स्येन्द्रनाथ ने माया को छत्तीस तत्वो मे से छठा तत्व माना है। परमशिव

१—उल्टे मनु जब सुन्नि समावे। नानक शब्दे शब्दि मिलावे (नानक)
२—सुन्न ते सम्भू होवे आदि। सुन्न तें नीलु अनील अनादि (नानक)
३—आकाश सुन्न ते उतपत जानी।
४—शून्य सहज मे दोऊ त्यागे राम न कहुँ सुखदाइ (रैदास)
एक न दोइ (सुंदरदास)
५—सुखमनि सुन्न आनि त्रिकुटी मे तुलसी दरद दिल हगन मिटा,
(तुलसी साहिब)

मे सिसृच्छा होने से दो तत्व हो जाते हैं, १—शिव, २—शक्ति। तीसरा तत्व 'सदाशिव' जगत को अपने से अभिन्न मानता है। वह 'अह' है। चौथा ईश्वर-तत्व जो जगत को अपने से भिन्न 'इद' रूप मे ग्रहण करता है। सदाशिव की शक्ति पाँचवा तत्व है, और यह 'शुद्ध' विद्या के नाम से अभिहित है। ईश्वर की शक्ति 'माया' कहलाती है, यह छठा तत्व है। 'इद' रूप ईश्वर की शक्ति 'माया' शिव को तीन मलो से आच्छादित करती है : १—आणव (अपने को अणु मात्र समझना), २—मायिक (भेद बुद्धि से जगत के अद्वैत को ग्रहण करना), ३—कर्म (नाना जन्मो मे स्वीकृत कर्मों का सस्कार)। इन तीनो से आच्छादित होने पर शिव 'जीव' रूप मे परिणत होते हैं। यहाँ इस एक सिद्धान्त मे 'माया' की वलवत्तरता देख रहे है। जीव, माया और शिव का सवध यहाँ स्पष्ट होने लगा है।

गोरखनाथ ने 'माया' को छठा तत्व ही माना है, पर उसका सवध पिडो से लगाया है। माया साकार पिड नामक तीसरे पिड से सबधित है। गोरख के द्वारा माया को कोई विशेष महत्व नही मिला। किन्तु 'माया' का मौलिक 'इद' कर्तृत्व-शक्ति-तत्व भूला नही जा सका था। फलत दूसरी परम्परा से आने वाले 'माया' तत्व की प्रवलता ने सत मत मे 'माया' का महत्व पुनः स्थापित किया। सदाशिव की शक्ति के नाम से 'शुद्धविद्या' ने ईश्वर की इदपरक शक्ति माया को 'अविद्या' से सम्बद्ध करने की प्रवृत्ति दी होगी। माया और अविद्या मिले तो 'माया' ने शक्ति-रूपिणी नारी के साथ समस्त प्रपच-रचना का श्रेय प्राप्त कर लिया। कवीर ने माया के सवध मे बताया है कि यह ठगिनी है, फँसाने वाली है, यह सर्वत्र व्याप्त है, यह मिथ्या व सारहीन है, यह ईश्वर की इच्छा है। यह डाइन है जो मनुष्य को डसती है। इसके पाँच पुत्र हैं[1]। माया की वेलि सर्वत्र फैली हुई है और उसकी जड ऐसी विचित्र है कि सारी टहनियो को काट-छाँट देने पर भी वह फिर से कोपल देकर हरी-भरी हो जाती है। इसे ज्ञान-रूपी अग्नि मे एक वार भस्म कर देने से भी काम नही चलता, क्योकि जव तक इसके मोह-रूपी फल का एक भी कामना-रूपी वीज अवशेष है, इसके एक वार फिर अकुरित होकर लहलहा उठने का भय वना हुआ है। इस प्रकार माया ने एक नया रूप ग्रहण कर लिया। और

१—ये पाच पुत्र 'पचकचुक' हैं (१) विद्या या अविद्या, (२) कला, (३) राग, (४) काल, तथा (५) नियति। ये काम, क्रोध, मोह, मद व मत्सर नहीं जैसा श्री परशुराम चतुर्वेदी ने लिखा है।

(दे० उत्तरी भारत की सत परपरा पृ० २०० तथा नाथ-संप्रदाय पृ० ६७)

इसको हृदयगम करने के लिए सतो को लोक-प्रतीको का आश्रय लेना पडा।

८—सहज—सहज सिद्धो का अत्यन्त ही महत्वपूर्ण शब्द है। डा० धर्मवीर भारती ने लिखा है, "किन्तु एक सर्वथा नवीन शब्द हमें सिद्ध साहित्य मे मिलता है वह शब्द है 'सहज'। जो जो गुण शून्य के हैं बिल्कुल वे ही सहज के हैं, जिसमे स्पष्ट है कि सहज शून्य मे अलग कोई अन्य तत्व नही।" पर वही कुछ आगे चलकर लिखते हैं कि "इस प्रकार हम देखते हैं कि तत्वज्ञान अथवा स्वभाव रूप मे 'सहज' नाम से नवीन होने पर भी वास्तव मे वज्रयानियो का चिरपरिचित परमार्थ और शून्य ही है। किन्तु सिद्धो ने इसे इतना महत्व दिया है कि अपनी साधना से सबधित प्रत्येक वस्तु का नाम सहज दिया है। सहज तत्व, सहज ज्ञान, सहज स्वरूप, सहज सुख, सहज समाधि, सहज काया, सहज पथ, यहाँ तक कि बुद्ध को सहज सम्बर और नैरात्मा या शून्यता को सहज सुन्दरी कहा जाने लगा।" भारती जी यही विचार करते हुए लिखते हैं, "परमतत्व को यह नयी सज्ञा देने का क्या कारण है। क्या शून्य उस परमतत्व के पूरे अर्थ को नही अभिव्यक्त कर सकता था।" और उनका ही उत्तर है "वास्तव मे बात यही थी। शून्यता ज्ञान या ख-सम स्वभाव के अतिरिक्त एक तत्व और था जिसकी ओर सिद्ध विशेष रूप से सकेत करना चाहते थे। वह तत्व था करुण।"

अत निश्चय ही शून्य और सहज अभिन्न नही थे। अद्वय शून्य और करुणा के अद्वय से जिसका तात्विक सम्बन्ध था वह सिद्धो का 'सहज' था। और यह स्थिति निश्चय ही शून्य से भिन्न थी।

यह विशिष्ट स्थिति होते हुए भी 'शून्य' के महत्व ने सहज को छोडा नहीं। चार शून्यो मे सर्वशून्य ही 'सहज' है, क्योकि यही प्रज्ञोपाय अद्वैत या अद्वय स्थिति प्राप्त होती है। अत परम तत्व के रूप मे 'सहज-शून्य' ग्रहीत हुआ।

नाथ-सम्प्रदाय मे भी इस सहज-शून्य का उल्लेख मिलता है

'सहज-सुनि तन मन थिर रहे[1]।

सतो मे सहज-शून्य का महत्त्व और भी अधिक होगया। सतो मे कुछ की दृष्टि मे तो शून्य और सहज का अतर है। वे सहज को शून्य से ऊण मानते हैं। कुछ सहज को शून्य नगर में एक स्थल मानते है, कुछ सहज को उपाय मानते हैं। नाथो मे विद्यमान सहजविषयक सभी धारणाएँ सतो मे जहाँ तहाँ

१—यह सहज का परमतत्व रूप है। नाथ-सम्प्रदाय मे सहज को परम-ज्ञान भी माना गया। सहज को योगिनी या शक्ति से सगम लाभ करने वाली योग-पद्धति भी माना गया। उसे समाधि भी, परमपद या आनद भी और जीवन पद्धति के रूप मे भी ग्रहण किया गया।

मिल जाती है। किन्तु सतों मे भी कुछ और मिलता है, वह है सहज को व्यक्तित्व प्रदान। सहज स्वय एक सत्ता के रूप मे स्थापित हो गया, वह राम हो गया है, ब्रह्म हो गया है। 'सहज' को लेकर सन्तो ने 'सहज रहनी और सहज करनी' भी गोरखनाथ से माग ली, पर उनसे अधिक इन्हे महत्व सतो ने दे दिया। "माहै है पर मन नही, सहज निरजन सोइ"—दादू

करुणा—'करुणा' का उदय महायान मे हुआ। सिद्धो में यह शून्य के साथ जुडी और 'उपाय' के लिए पर्यायवत् हुई। शून्य और करुणा का उदय सहज हुआ। 'करुणा' के इतने नाम हुए और प्रज्ञोपाय प्रणाली तथा युगनद्धता के सिद्धान्त ने 'करुणा' का महत्व कम कर दिया। नाथो और संतो मे वह एक प्रकार से लुप्त ही हो गयी।

अद्वय साधना,	ये सभी एक ही स्थिति के विविध दृष्टियो से
समरसता,	विवरण मात्र हैं। शून्य और करुणा के अद्वय
प्रज्ञोपाय,	को सहज कहा गया। यह सहज ही'समरसता'थी।
युगनद्ध,	शून्य और करुणा का नामकरण सिद्धों मे प्रज्ञा
मैथुन	और उपाय के रूप मे हुआ। इन्हे नारी और
	पुरुष का रूप दिया गया। यही 'प्रज्ञोपाय' का

अद्वय 'तान्त्रिक' प्रभाव से नारी-पुरुष का अद्वय अथवा 'मैथुन' या 'युगनद्ध' हो गया। यही नाथो की 'द्वैयप' रहित स्थिति है, यही सतों का दो के वीच का मारग है। इसमे 'द्वै द्वै मिटी तरग[1]'। इस प्रकार यही सशोधित 'सहज' सतो के पास गया।

निरजन—प्रज्ञोपाय अथवा युगनद्ध स्थिति को सर्वोपरि वताने के लिए सिद्धों ने महायानी वौद्धाचार्यों द्वारा निर्दिष्ट निर्वाण काया, सम्मान काया और धर्मकाया नाम की तीन कायाओ से परे चौथी सहज काया की प्रतिष्ठा की। यह सहज द्वयताओ और क्लेशादि मलावरणो से निरावृत्त शुद्ध सहज रूप होती है अतः इसी को निरजन कहते हैं।[2] नाथ-सम्प्रदाय मे निरजन 'नाथ तत्व' का पर्यायवाची हुआ।[3] वही लोक प्रचलित 'अलख-निरजन' कहलाया। धीरे धीरे नानाभावविनिमुक्त[4] स्थिति 'निरजन' की हुई। 'सो घरवारी कहिये

१—सहज रूप मन का भया जव द्वै द्वै मिटी तरग।
ताता सीला सम भया तव दादू एकै अंग॥ (दादू)

२—सिद्ध साहित्य डा० धर्मवीर भारती

३—निखिलोपाधि हीनो वै यदा भवति पूरुष
तदा विवक्षते अखड ज्ञानरूपी निरजन (शिवसंहिता—१०६८)

४—"नाना भाव विनिर्मुक्त स च प्रोक्तो निरंजन" (दे० नाथ-सम्प्रदाय)

निरजन की काया'—हमें इससे विदित होता है कि नाथ-सम्प्रदाय ने एक ओर तो निरजन को साधन की अवस्थाओं में से एक देवता माना और दूसरी ओर उसे उपलब्धि में भी महत्वपूर्ण स्थान दिया। दोनो स्थितियो को यो समझा जा सकता है —

साधना की दृष्टि से —

विन्दु के अध.पतन के देवता—विषहर
नदिनी वृत्ति के देवता —काम
स्थिरीभाव के देवता —निरजन
ऊर्ध्वगमन के देवता —कालाग्नि रुद्र

उपलब्धि का स्वरूप—

दोनो दशाओं मे निरजन वह तत्व है जहाँ पहुँचकर ही उपलब्धियाँ सम्भव है। यही से ऊर्ध्वगमन आरम्भ होता है। यहाँ से पूर्व तो 'प्रपच' से छुटकारा पाने की ही स्थितियाँ है। 'निरजन' समभूमि है जहाँ पहली बार प्रपच अथवा नाना भाव से मुक्ति मिलती है। यहाँ पहुँच जाने के अर्थ हैं ऊपरी उपलब्धियो को पाने के सकटो का सर्वथैव शमन। इसी लिए निरजन बहुत महत्वपूर्ण है। इसी लिए यह 'नाथ-तत्व' है, क्योकि नाथ-सत्ता का यथार्थ प्रथम छोर यही है। सतो ने भी इसे अपनाया। दादू ने कहा है —

तहँ पाप-पुण्य नहिं कोई, तहँ अलख निरजन सोई।
तहँ सहज रहै सो स्वामी, सब घटि अन्तरयामी।

कबीर ने कहा —"अजन छाँड़ि निरजन राते, ना किस ही का दैना।"
तथा—"मन थिर होइत कवल प्रकासै कवला माहि निरजन वासै।"
(कबीर-ग्रन्थावली)

नाथ-सम्प्रदाय मे इस अलख निरजन का महत्व बढा पर यह उनकी समस्त

व्याख्या का एक स्थल था। आगे एक निरजन सम्प्रदाय ही खडा हुआ। जिसे कुछ विद्वान नाथ और सतो के वीच की कडी मानते है।[1]

समुत्पाद—विज्ञानवाद मे चित्त को भवजाल से मुक्त कर करुणा से समन्वित कर साधना के लिए अग्रसर करने की प्रणाली को समुत्पाद कहा जाता था (सिद्ध सा० पृ० १९०)

सिद्धो मे इस 'समुत्पाद' को विशोधन, हनन, स्थिरीकरण या 'दृढीकरण' कहा है।

अमनसिकार—१–सर्वास्तिवादी 'मनस्कार' को दशभूमिक चैत्त धर्मों मे से एक मानते थे जिसका अर्थ था सासारिक कार्यों मे प्रवृत्त होना।

२—विज्ञानवादियो ने इसे मन की सभी वृत्तियो को परिचालित करने वाली मूल प्रवृत्ति माना।

इस 'मनस्कार' से छुटकारा पाना अमनस्कार है। जिसे सिद्धो मे 'अमन' करना भी कहा गया। सतो मे भी अमनिया शव्द मिलता है।

गुरु—वौद्ध धर्म मे गुरु का महत्व नही था। पर जैसे जैसे वुद्ध का महत्व वढा, जिसका सूत्र था 'वुद्धं शरणं गच्छामि' वैसे ही वुद्ध को गुरु स्वीकार किया गया, और तन्त्रयान मे गुरु अनिवार्य हो गया और वुद्ध से मिलकर गुरु का स्थान और भी अधिक महत्वपूर्ण हो गया। इसके पीछे लोक-मानस था। इसी परम्परा मे गोरखनाथ भी 'गुरु' हुए और सतो मे गुरु-गोविन्द अभिन्न हो गये। यो महत्व मे गुरु गोविन्द से भी वढ गये।

एव—वीज है। इसे हेवज्रतत्र मे प्रज्ञोपाय, युगनद्ध, अद्वय का अक्षर-प्रतीक माना गया हैं। 'ए'—माता, प्रज्ञा, कमल, भगवती

'व'—पिता, उपाय, कुलिश, भगवान

इनका योग साधना के लिए तात्रिक महत्व था। यह 'एव' योगाचार सम्प्रदाय के 'सद्द गहन' अर्थात वीजाक्षर 'अर्हन' के स्थान पर सिद्धो ने ग्रहण किया था। अर्हन मे अ—धर्म

र—वुद्ध तथा

हन—सघ

माना गया था। अद्वय स्थिति की मान्यता से 'एवं' को उस अद्वय के प्रतीक के रूप मे ग्रहण किया गया।

पहले ये अक्षर 'युगनद्ध' के भाव को स्मृत रखने की दृष्टि से योगाभ्यास मे काम मे लाये गये, फिर ये मत्र का महत्व पा गये। यही इन्हे मत्र और नाम का समन्वित महत्व प्राप्त हुआ।

१—देखिये डा० वर्तवाल तथा परशुराम चतुर्वेदी

यह 'एव' का ध्यान-योग, नाथ-सम्प्रदाय मे अजपा-जाप हुआ। सत-सम्प्रदाय मे योगाभ्यास के लिए द्वयक्षर हुए सोह—स-ह। ये मूलत बीजाक्षर है। 'एव' के स्थान पर विधि मे तो 'सोह' आया पर साध्य की दृष्टि से वही 'राम' नाम से अभिहित हुआ। सतो मे अजपा-जाप भी माना गया।

वोलकक्कोल—ये शब्द वस्तुत उपाय तथा प्रज्ञा या कुलिश और कमल के लिए प्रयोग मे आये हैं।

वज्र—मूलत इन्द्र का आयुध था। बौद्धो मे इसका अर्थ हुआ शून्य, स्मृद्दि और अश्मतनु। वज्रयान ने इस वज्र को प्रधानता दी। सिद्धो मे वज्र का यह रूप विद्यमान रहा। किन्तु सतो मे वज्र ने इस महत्व को खो दिया, फिर भी 'वज्र किवाड' के रूप मे 'दशमद्वार' के साथ यह अवशेष मे रहा।

ख-सम—यह शब्द 'ख+सम' के लिए थे। ख—शून्य। यह 'शून्य-समता' बौद्ध-धर्म के शून्य से सत्तात्मक शून्य मे सिद्धो ने परिणत की, और पुरुपत्व समन्वित परमतत्व मे 'खसम' करके सतो ने इसे ग्रहण किया।

सुरति निरति—वज्रयान मे 'सुरत' 'सुरग्र' का अर्थ है कमल-कुलिश की कोमल क्रीडा। वज्रयान के इस मैथुनपरक अर्थ से इसे हटाकर नाथ-सम्प्रदाय ने सुरति को शब्द की वह अवस्था माना जो चित्त मे स्थित रहती है। इसके विपरीत निरति चित्त और शब्द की इस लीनावस्था से ऊपर की स्थिति है। सतो मे सुरति के साथ शोव-सुत्ति-सुर्ति-सुरति वाला अर्थ भी जुड गया। मछीन्द्र ने सुरति का साधक वताया था, 'साधक' या शोधक—खोज करने वाला अर्थ सुरति मे था जिससे कवीर ने कहा था, 'जिन खोजा तिन पाइयाँ'। कवीर ने जहाँ, 'कथता, वकता और सुरता सोई' कहा है, वहाँ भी 'सुरता' है। सुरता का अर्थ है १ शोधक-साधक। २ स्मरण करने वाला। 'नामस्मरण' और 'योग-साधन' साथ-साथ चलते हैं, इसलिए सुरति मे स्मरण और शोध दोनो अर्थ समा गये। साधक या शोधक की अतर्मुख स्थिति मे नानक-सम्प्रदाय के एक विद्वान ने इसकी यह व्याख्या की—

"विदित रहे कि जिस चैतन्य वस्तु को 'आत्मा' इस प्रकार वेदान्त शास्त्र कहता है, शब्द योग के आचार्य श्री गुरु महाराज जी ने उसका नाम 'सुरति' रखा हुआ है। क्योकि स्थूल, सूक्ष्म आदि समूह सहात मे होने वाले क्रिया प्रति-क्रिया रूप समग्र व्याभार सूझ (अनुभवाऽकारा मति) इसी चैतन्य वस्तु से ही हुआ करती हैं। ताते सूझ (सोझी) साक्षात्कारिता की कारण होने से इसे 'सुरति' इस नाम से सकेतित किया गया है। सुरति-सवित-सवेदन-चितकला-जीव कला आदि सभी शब्द इस एक ही अर्थ के बोधक हैं। (श्री प्राण सगली सत सपूर्णसिंह कृत टिप्पणी—पृ० १४४)

उलटी साधना—उलटी साधना का अभिप्राय उस साधना से है जहाँ वाह्य को अन्तर में लीन किया जाता है, अथवा अध को ऊर्ध्व मे, दूसरे शब्दो मे इस सृष्टि तत्व को उलटकर उसके मूल उद्‌भावक निर्विकार तत्व मे विलीन करना। इन शब्दो के व्यूह मे से निकल आने पर यह विदित होता है कि सत सम्प्रदाय जिस परम्परा मे से आया है उसका मूल तान्त्रिक है। ये तत्र शुद्ध 'लोकतत्व' के रूप थे। इस सम्बन्ध मे डा० धर्मवीर भारती ने स्पष्ट लिखा है

"इस प्रकार तन्त्र वास्तव मे उन अगणित लोकाचारो, लोक मे पूजित देवियो तथा लोक प्रचलित रहस्य अनुष्ठानो का परिणत रूप है जो आदि निवासियो ने सृष्टि से सग्राम करते समय अपना लिये थे।" वस्तुत' यह तन्त्र उन तत्वो से निर्मित था जो लोक-प्रचलित, आदिम परम्पराओ पर आधारित अनुष्ठान से सम्बन्धित थे।*

---

*यही तथ्य 'द शाक्ताज' नामक पुस्तक मे पायने ने कई प्रकार से समर्थित किया है। कुछ स्थल ये हैं :—

"There are Buddhist Tantras as well as Hindu Tantras, Vaishnava Tantras as well as Sakta one. The common element seems to be that they are all expression of a system of magical and sacramental ritual which propose to attain the highest aims of religion by means of spells, diagrams, gestures and other physical methods (पृ० ५१)

"The Tantras not merely sanction the lowest rites of primitive savagery and superstition, they are guilty of the crime of seeking philosophical justification for such things. पृ० ६०

Hindu ecleticism has no difficulty in assimilating local cults, and regarding the deities worshipped as mainfestation of the chief gods and goddesses of the Pantheon Many of the cults point back to a totemistic stage of religion. P. 67

Local cults, often cults belonging to pre-Aryan India, and in some cases, perhaps, to pre-Dravidian India ,have been admitted into Hinduism,have reacted upon one another, have been traced to a common source, have received philosophical justification and have been allegorical. पृ० ७१

तन्त्र के तत्व सम्प्रदायवादियों के हाथ में पड़े और उन्हें दार्शनिक ऊहा-पोह में डालकर उन्हें एक अलौकिक स्तर पर रख देने की चेष्टा की गयी। पर शीघ्र ही यह प्रयत्न रुका और पुनः लौकिक तत्व उभरे। मन्त्रयान से वज्रयान, वज्रयान से सहजयान, सहजयान से सिद्ध, सिद्ध से नाथ, नाथ से संत इसी प्रगति के परिणाम हैं। संत-मत में हमें उक्त परम्परा के परिणाम के साथ भक्ति-तत्व का समावेश और उसपर वैदिक और वैष्णव छाया के लोकरूप का का समन्वय विदित होता है। इसमें मुस्लिम लोक-तत्व का भी बहिष्कार नहीं था, क्योंकि लोक-तत्त्व में वस्तुतः साम्प्रदायिकता नहीं होती। यह समस्त समन्विति लोक-भूमि पर हुई और लोक-मानस के तत्वों से सर्वथैव युक्त रही।

हिन्दी में इस समन्विति का प्रबल उद्गार कबीर ने किया। कबीर में 'लोक-भूमि' अत्यन्त प्रबल है, कबीर को हिन्दी में संतमत का प्रवर्त्तक माना जाता है। हमें संतमत के साहित्य में लोक-तत्वों की प्रधानता मिलती है। अब यह आवश्यक है कि कबीर के सम्बन्ध में जो प्रमुख दृष्टियाँ रही हैं, उन्हें समझ लिया जाय—

विद्वद्वर चन्द्रबली पाडे जी ने सिद्ध किया है कि कबीर जिन्दीक अर्थात् सूफी थे। वे जन्म से मुसलमान ही नहीं थे, सूफी मत से मुसलमानी विश्वासों को मानने वाले थे, और उन्हें उन्होंने अपनी रचनाओं में व्यक्त किया है।—

कबीर चाल्या जाइ था, आगे मिल्या खुदाइ,
मीरा मुझ सो यौं कह्या, किनि फुरमाई गाइ ?
गाफिल गरब के अधिकाई, स्वारथ अरथि वधै ये गाई।
जाकौ दूध धाइ करि पीजै, ता माता का वध क्यूँ कीजै।
लहुरै थकै दुहि पीया खीरो, ताका अहमक भखै सरीरो।

इसमें गोवध करने का निषेध कुरान के उस मत से सम्बन्वित है, जिसमें गोवध को 'विधि' नहीं बताया गया।

एक अचंभा देखिया बिटिया जायौ बाप
बावल मेरा ब्याह करि, वर उत्यम ले चाहि।
जब लग वर पावै नहीं, तब लग तँही व्याहि।

"From being a worship followed by aboriginies and outcasts, Tantricism passed by the help of Buddhist prestige to take its place, in the twelfth or thirteenth century, among the higher classes" Page 72.

"No doubt each affected the other but what was really happening over the whole area was absorption and blending primitive beliefs and practices" पृ०७३.

ये सूफी सस्कार है, श्रौर वदरुद्दीन श्रल्शहीद जोलो श्रौर 'इब्नुल्फारिज' के श्रनुकरण पर हैं (देखिये . स्टडीज इन् इसलामिक मिस्टीसीज्म, पृ० ११३)

कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नाउँ
गले राम की जेवडी, जित खेंचें तित जाउँ

यह 'कुत्ते' की उपमा क़ल्वे मुस्तफा श्रौर 'कल्वेश्रव्वास' का फल है।

कलि का स्वामी लोभिया, मनसा धरी वधाइ
देहिं पईसा व्याज कौ, लेखाँ करता जाइ

इसमे 'सूद न लेने' की इस्लामी शिक्षा है।

सात्त समद की मसि करौं लेखनि सब बन राइ
धरती सब कागद करौं, तऊ हरि गुण लिख्या न जाइ।

यह कुरान की श्रायत का तर्जुमा है। (देखिये सू० लुकमान ३१ पा० उल्लुमा ऊहिय—२१, डा० नजीर का श्रनुवाद)

हमरे राम रहीम करीमा केसो, श्रलह राम सति मोई।

यह भाव भी कुरान से है—(दे० सू० वनी इस्माईल १७, पा० सुब्हान-ल्लजी १५)

या करीम वलि हिकमति तेरी खाक एक सूरति वहुतेरी
श्रर्धगगन मे नीर जमाया, वहुत भाँति करि नूरनि पाया।
श्रवलि श्रादम पीर भुलाँना, तेरी सिफति करि भए दिवाँना।
कहै कबीर यहु हेत विचारा, या रब या रब यार हमारा।

(देखिये सू० नूर २४, पा० कद श्रफ्लहल मोमिनून, पृ० ४६६ तथा सू० फातिर ३५, पा० वमैं यक्नुत २२, वही पृ० १०८)

पाण्डे न करसि वाद विवाद, या देही विन सवद न स्वाद।
अड ब्रह्मण्ड खड भी माटी, माटी नव निधि काया।
माटी खोजत सतगुरु भेटया, तिन कछु श्रलख लखाया।
जीवत माटी मूया भी माटी, देखौ ग्यान विचारी।
अति कालि माटी मे वासा, लेटै पाँव पसारी,
माटी का चित्र पवन का थमा, व्यन्द सजोगि उपाया।
भानै घडै सँवारै सोई, यहु गोव्यन्द की माया॥
माटी का मन्दिर ग्यान का दीपक, पवन बाति उजियारा
तिहि उजियारै सब जग सूझै, कबीर ग्यान विचारा॥

(देखिये सू० सज्दह ३२, पा० उल्लुमा उहिय २१, वही पृष्ठ ५८७ हसन निजामी की टीका)

हम भी पाहन पूजते, होते रन के रोझ
सतगुरु की किरपा भई, डार्‌या सिर थें बोझ।
जिहिं हरी की चोरी करी, गये राम गुण भूलि
ते विधना बागुल रचे, रहे अरध मुखि भूलि।

यह मनुष्य के पशुयोनि मे जाने का इस्लाम का 'मस्ख' नामक तना-सुख अथवा जन्मान्तरवाद है।

मनुष्य जन्म बार बार नही मिलता यह इसलामी सिद्धान्त है और कबीर ने इसे बहुधा व्यक्त किया है—

मानिख जनम अवतारा, नाँ ह्वै है बारम्बारा
+ + +
मनिषा जनम दुर्लभ है, देह न बारम्बार,
तरवर थें फल झडि पड्या, बहुरि न लागै डार।
कबीर हरि की भगति करि, तजि विषया रस चोज,
बार बार नहिं पाइस, मनिषा जन्म की मौज।

कबीर का कर्मवाद भी मुसलमानी सिद्धान्त के अनुकूल है।

करम करीमा लिखि रह्या, अब कछू लिख्या न जाइ,
मासा घटै न तिल बधै, जो कोटिक करै उपाइ।
बहुरि हम काहि आवहिंगे।
आवन जाना हुक्म तिसैका, हुकमै बुज्झि समावहिंगे
जब चूकै पच धातु की रचना, ऐसे मर्म चुकावहिंगे।
दर्सन छाडि भए समदर्सी, एकौ नाम धियावहिंगे।
जित हम लाए तितही लागे, तैसे करम कमावहिंगे।
हरिजी कृपा करै जौ अपनी, तौ गुरु के सबद कमावहिंगे,
जीवत मरहु मरहु पुनि जीवहु पुनरपि जन्म होई।
कहु कबीर जो नाम समाने, सुन्न रह्या लव सोई।

इस पद मे कबीर का इस्लामी स्वरूप अत्यन्त स्पष्ट है। कबीर का पारब्रह्म 'अल्लाह' कर्त्ता रूप है—

लोका जानि न भूलौ भाई।
खालिक खलक खलक मैं खालिक सब घट रह्यौ समाई।
अला एकै नूर उपनाया, ताकी कैसी निन्दा,
ता नूर थै सब जग कीया, कौन भला कौन- मन्दा।
ता अला की गति नही जानी, गुरि गुड दीया मीठा।
कहै कबीर मैं पूरा पाया, सब घटि साहिब दीठा।

ग्रौर यही नही सृष्टि का उत्पादन भी उसी कोटिक्रम मे है। कवीर के नारद 'इवलीस' हैं। चौमठि दीवा जोड़ करि, चौदह चदा माहि—

'चौदह चंदा' मुसलमानो मे पूर्णमासी के लिए ग्राता है।

'ग्रवतार' के लिए उन्होंने 'नरसिंघ प्रभू कियौ' नही लिखा वरन इम दृष्टि से कि ग्रल्लाह कर्त्ता है, वह किसी रूप मे भी उद्धार कर सकता है ग्रत वे उपाधिवादी हैं।

इस प्रकार मुसलमानी सस्कारो का कवीर मे व्याप्त होना दिखायी पडता है। वस्तुत' वे स्वतन्त्र विचार के सूफी यानी जिन्दीक हैं इसलिए सूफी परम्परा की वातें वे ग्रहण करते हैं, जिससे कट्टर इसलामियत उनमे नही मिल पाती।

उनमे योग मिलता है योग-दर्शन के प्रतिपादन के लिए नही, वरन् 'काम' के 'अकुश' के लिए।

वे ग्रपने को नामदेव ग्रादि के साथ भक्तो की कोटि मे नही रखते, गोरख ग्रादि के साथ ग्रभ्यासी की कोटि मे रखते हैं।

यो तो चन्द्रवली पाडे जी का मत यह है—

'कवीर वास्तव मे मुसलमान कुल मे उत्पन्न हुए ग्रौर मुस्लिम सस्कार से वँधे जीव थे जो स्वतन्त्र विचार ग्रौर सत्य के ग्रनुरोध के कारण इसलाम से 'ग्राजाद' हो गये ग्रौर धीरे धीरे 'जिन्द' से केवल वैष्णव वन गये। किन्तु वे ग्रन्त मे यही कहते हैं कि—

'हमतो प्रस्तुत सामग्री के ग्राधार पर कवीर को जिन्द कहना ही ठीक समझते हैं।''

ग्रर्थात् उनका 'वैष्णवत्व' भी 'जिन्दीक' रूप मे ही है।

इससे यह विदित होता है कि कवीर की ग्रभिव्यक्ति मुसलमानी ढाल मे ढली हुई है।

उधर कवीर मे हमे 'हठयोग' का शास्त्रीय रूप भी दिखायी पड जाता है।

कवीर के हठयोग की भूमिका समझने के लिए हमे योग के शास्त्रीय रूप को समझना ग्रावश्यक है। इस भूमिका को निम्न चित्रो द्वारा कुछ कुछ हृदयगम किया जा सकता है।

सकलशिव
नाद
पराविन्दु
कार्य विंदु
बीज
विन्दु
नाद
कला
सहस्रार
चन्द्र
आज्ञा
विशुद्धाख्य
अनाहत
मणिपूर
स्वाधिष्ठान
सूर्य
मूलाधार
कुंडलिनी
स्वयंभू लिंग
अग्निचक
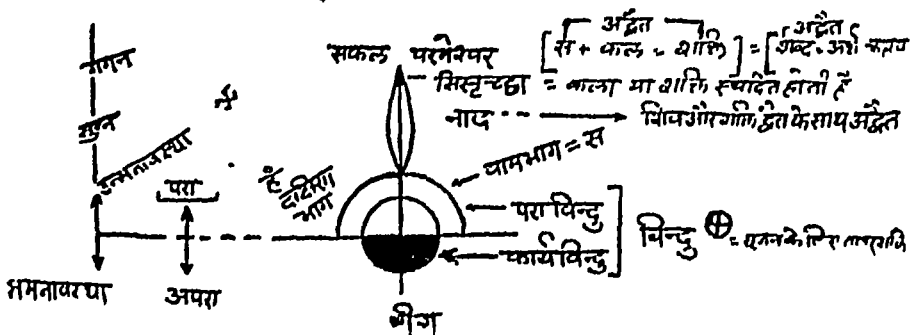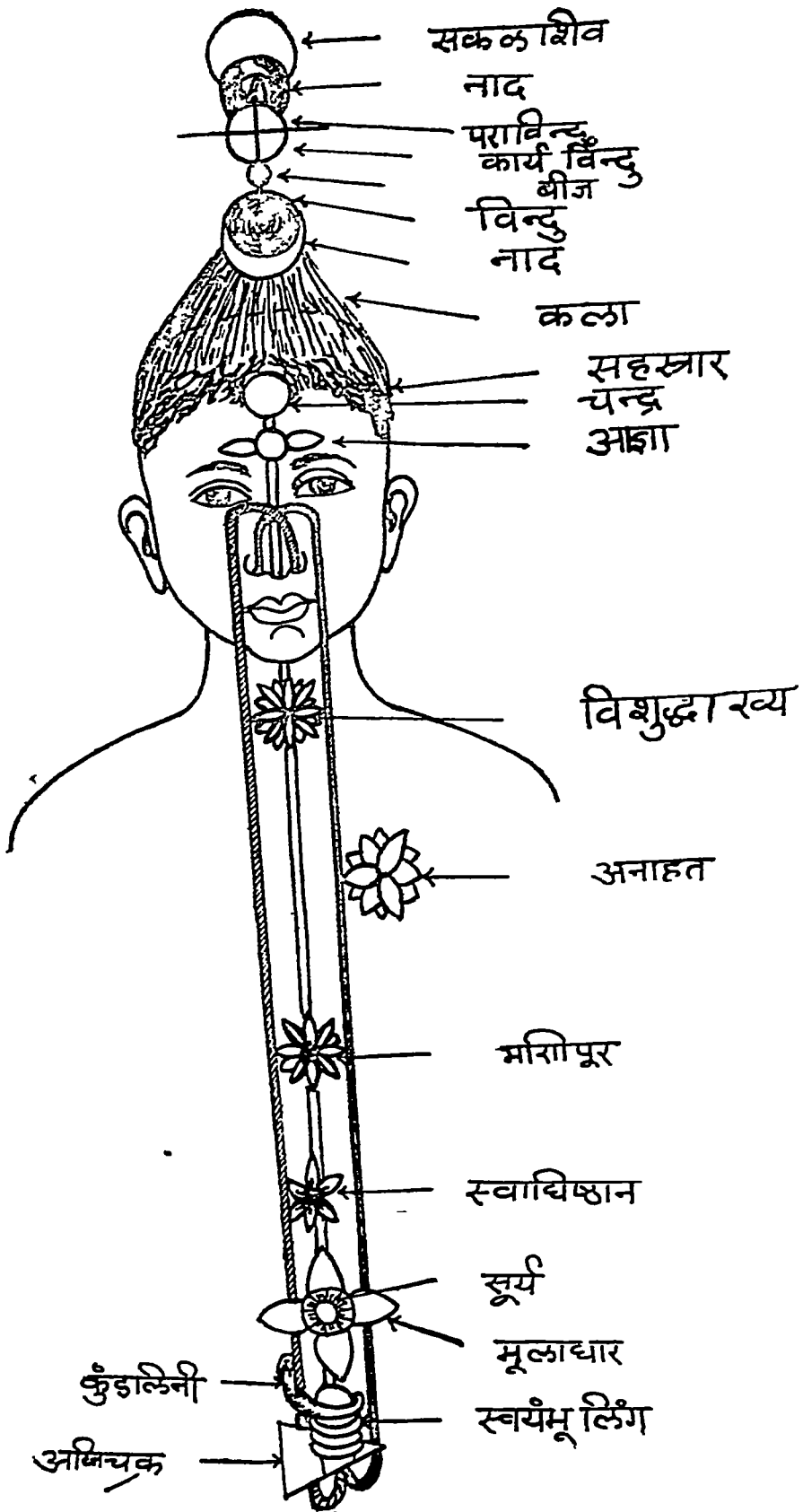
हँसे न बोलै उनमनी, चचल मेल्ह्या मारि,
कहै कबीर भीतर भिद्या, सतगुरु के हथियारि।

बिन्दु कबीर की 'चौहाट' है।

चौपडि माडी चौहटै, ग्ररध उरध्र बाजार।

[इसके (ग्ररध) नीचे भी ग्रौर (उरध) ऊपर भी बाजार है।]

कहै कबीरा रामजन, खेलै सत विचार
सायर नाही सीप बिन, स्वाति बूँद भी नाँहि
कबीर मोती नीपजै, सुन्नि सिषर गढ माँहि
मन लागा उनमन्न सौं, गगन पहूँचा जाइ
देखा चद विहूँणा चाँदिणा, तहाँ ग्रलख निरजनराइ
मन लागा उनमन्न सो, उनमन मर्नहि विलग्ग
लूँण विलागा पाँणिया, पाँणी लूण विलग्ग।
गगन गरजि ग्रमृत चवै, कदली कवल प्रकास
तहाँ कबीरा वदिगी, कै कोई निजदास
कबीर कवल प्रकासिया ऊग्या निर्मल सूर
निस ग्रँधियारी मिटि गई, जागे ग्रनहद नूर
ग्रनहद वाजै नीझर झरै, उपजै ब्रह्म गियान
ग्रभिमत अतरि प्रगटे, लागे प्रेम धियान।
ग्रकासे मुखि, ग्रौंधा कुवा, पाताले पनहारी
ताकर पाणी को हसा पीवै, विरला ग्रादि विचारी
सिव सकती दिसि कौंण जु जैवै, पछिम दिसा उठैं घूरि
जल मे सिंघ जु घर करै मछली चढै खजूरि
सुरति ढीकुली, लेज ल्यौ, मन चित ढोलन हार
कँवल कुँवा मे प्रेमरस, पीवै बारम्बार
गग जमुन उर अतरें, सहज सुनि ल्यौ घाट
तहाँ कबीरै मठ रच्या, मुनिजन जोवें बाट

इन उल्लेखो से विदित होता है कि कबीर को जितना इसलाम का ज्ञान था, उससे भी ग्रधिक हठयोग का। क्योकि इसलाम विषयक जितनी बातो का उल्लेख किया है, वे इतनी सामान्य हैं कि उन्हे मुसलमानो के साधारण सम्पर्क मे ग्राने वाला व्यक्ति भी जान सकता है, पर हठयोग विषयक कबीर के उल्लेख ग्रसाधारण ज्ञान की ग्रपेक्षा रखते है। हठयोग के विशिष्ट पारिभाषिक शब्दो का उसने प्रयोग किया है। उस समस्त साधना के एक विस्तृत स्वरूप को उसने प्रस्तुत किया है।

इसी के साथ हम देखते है कि 'नाम' का आश्रय प्रबल है, वह नाम भी 'राम' का है। इस रामनाम के साथ 'वैष्णवत्व' लगा हुआ है। इसी के साथ भक्ति भी है। कबीर का स्वरूप श्री चन्द्रबली पाडे जी ने यो दिया है—

"कबीर की साधना मे हठयोग का भी पूरा योग है। कबीर वेदान्त, हठ-योग और प्रेम को एक मे मिलाकर साधना के क्षेत्र मे उतरते और 'केवल' की प्राप्ति करते हैं। कबीर ने हठयोग पर इतना ध्यान दिया है कि लोग उन्हे गोरखनाथ का चेला बना देना चाहते हैं, एव 'ब्रह्म' तथा 'केवल' का इतना उल्लेख कर दिया है कि लोग उन्हे शकर से अलग नही देख सकते, रही 'प्रेमभगति' साखी सो वह उन्हें वैष्णव बनाने के लिए तुली हैं। कबीर अपने को वैष्णव तो नही पर वैष्णव को अपना साथी अवश्य समझते हैं। आखिर बात है क्या कि कबीर वेदान्ती, योगी, और वैष्णव दिखायी तो दे जाते हैं, परन्तु अपने को समझते सदैव उनसे भिन्न हैं। (विचार विमर्श पृ० ३२)

इसके साथ यह भी जोडना पडेगा कि वे 'कुरान और इस्लाम' के अनुयायी जैसे भी मिलते हैं, पर हैं नही। श्रद्धेय 'पाडे जी' का निष्कर्ष है कि ऐसा इस-लिए है कि वे सूफी हैं, जिन्द हैं, स्वतन्त्र विचार के मुसलमान हैं। पर प्रश्न है कि क्या यह इतना ही यथार्थ है ? कबीर के स्वरूप को सिद्ध करने के लिए कसौटी क्या होनी चाहिये ? क्या उन तत्वो का मूल जिनसे कबीर का निर्माण हुआ है, इस कसौटी का स्थान ले सकते हैं ? यदि हाँ तो कबीर के निर्माण के तत्व क्या ये हैं कि—

१. उन्होंने गोवध का विरोध किया
२. उन्होंने अपने को 'कोरी' अथवा 'जुलाहा' लिखा।
३. उन्होंने लिखा है 'चौथे पन मे जन का ज्यद'
४. उन्होंने अपनी 'हज' गोमती तीर पर पीताम्बर पीर के यहाँ बतायी।
५. उनकी कुछ रचनाओ मे कुरान तथा सूफी कवियो की छाया मिलती है
६ वे मनुष्य का पुन· मनुष्य-योनि मे जन्म ग्रहण करने के सिद्धान्त को नही मानते।
७ उनके कर्म का स्वरूप कुछ और है ?
८ 'पूरब जनम' का उल्लेख प्रकृति-विधान अथवा 'लौह महफूज' के लिए है।
९. वेद और कुरान का जहाँ विरोध किया है वहाँ यह भी लिखा है, 'वेद कतेब कहौ क्यूँ झूठा, झूठा जो न विचारै

१०. वे 'जोति' से सब को उत्पन्न मानते है।
११. उनका उद्देश्य 'प्रेम' का प्रचार था।
१२. उन्होंने 'चौदह चदा' पूर्णिमा को लिखा है।
१३. उन्होंने हठयोग की साधना का वर्णन किया है। कुण्डलिनी, सुरति, निरति, चक्र, इडा-पिगला, सुषुम्ना, विंदु, उन्मन, आदि का उल्लेख उन्होंने किया है।
१४ राम के नाम का जाप और भक्ति का उन्होने प्रतिपादन किया है।
१५. उन्होने राम को अवतार के रूप मे भी माना है, और यह भी लिखा है कि 'ना दसरथ घर औतरि आया'
१६. उन्होंने 'मरजीवा' बनने का आदेश दिया है।
१७. कबीर ने 'गुरु' का महत्व माना है, और उसे 'गोविंद' से भी बढकर स्वीकार किया है—

'गुरु गोविंद दोनो खडे काके लागूँ पाँय
बलिहारी गुरुदेव का गोविंद दियो बताय'

१८. सत के स्वरूप को उन्होंने महत्व दिया है—उसे सारग्राही बताया है—

'सार सार को गहि रहे थोथा देइ उड़ाय'

१९. उन्होने माया के अस्तित्व को स्वीकार किया है, पर उसे ठगिनी माना है।

'माया महा ठगिनि हम जानी'

२०. उन्होंने 'मस्जिद और मन्दिर दोनो का विरोध किया है।
२१. उन्होने न हिन्दुओ को ठीक मार्ग पर पाया न मुसलमानो को—'हिंदुन की हिंदुआई देखी तुरकन की तुरकाई'

कबीर के इस समस्त स्वरूप को दृष्टि-पथ मे लाते ही यह बात अत्यन्त स्पष्ट हो जाती है कि कबीर को किसी एक सम्प्रदाय या मजहब का, अथवा उससे प्रभावित नही मान सकते।* कबीर बेपढे थे। उन्होने जो ज्ञान प्राप्त

*इस सम्बन्ध मे प० परशुराम चतुर्वेदी जी ने भी लिखा है—"इस प्रकार भिन्न-भिन्न परपराओ तथा इनकी रचनाओ के उपलब्ध सग्रहो मे यत्र-तत्र पाये जाने वाले विविध पद्यो के आधार पर एक ही व्यक्ति को दो नितात भिन्न धर्मों व सस्कृतियो का अनुयायी मानकर उसी के अनुसार उसके सिद्धान्तो के निरू-

किया वह लोक-ज्ञान था अत 'लोक-धर्म' ही कबीर ने प्रस्तुत किया। 'लोक-धर्म' ही वस्तुत सारग्राही हो सकता है। लोक-धर्म का सार ग्रंथो से नही लोकवार्त्ता से ग्रहण किया जाता है। कबीर से पूर्व के विविध सप्रदायो मे प्रचलित विविध बातें लोक-धरातल पर पहुँच कर लोक-धर्म का सारग्राही रूप प्रस्तुत कर रही थीं, उसी लोक-धर्म को कबीर ने अपनाया, उसीको उसने हिंदू-मुसलमानो की कसौटी माना। उसीको उसने साहित्य में अपने शब्दों और साखियो द्वारा उतार दिया। लोक-धर्म मे विविध सम्प्रदायों की गहरी बातें भी किसी सीमा तक ग्रहण कर ली गयी थीं पर वे सभी ऐसी बातें थी जिनमे परस्पर सम्प्रदाय-भावना का आग्रह नही था। उनमे एक समन्वय और सामजस्य था। वह समन्वय और सामंजस्य लोकवार्त्ता के क्षेत्र में साधारणी-कृत हो गया था। वहीं से स्वसवेद्य सिद्धान्त के रूप मे कबीर तथा सन्तो ने ग्रहण किया।

क्योंकि लोक-प्रवृत्ति सामान्य रूप से बिना किसी प्रकार की भेद-बुद्धि रक्खे जहाँ-तहाँ से जो कुछ मिलता है उसे सग्रह करती रहती हैं और यदि उसमे उसे आस्था और निष्ठा हुई तो उसे सुरक्षित रखकर उसकी एक परम्परा बनाती

पण की भी परिपाटी पृथक-पृथक देखी जा रही है। अतएव बहुत से विद्वानों का इनके विषय मे यह भी अनुमान है कि ये एक मत विशेष के अनुयायी न होकर भिन्न-भिन्न मतो से अच्छी-अच्छी बातें लेकर उनके आधार पर एक नया सम्प्रदाय खडा करने वाले व्यक्ति थे। इन्होंने हिन्दू धर्म से अद्वैत सिद्धात, वैष्णव सप्रदाय की भक्तिमयी उपासना, कर्मवाद, जन्मान्तरवाद आदि बातें ग्रहण की, बौद्धधर्म से शून्यवाद, अहिंसा, मध्यमार्ग आदि अपनाये तथा इस्लाम धर्म से एकेश्वरवाद, भ्रातृभाव और सूफी सम्प्रदाय से प्रेम-भावना को लेकर सबके सम्मिश्रण से एक नया पथ चला देने की चेष्टा की। इन्होंने जिन-जिन धर्मों मे जो-जो बुराइयाँ देखीं उनकी आलोचना की और उन्हे दूर करने के लिए लोगो को उपदेश दिये और उनका महत्वपूर्ण बातो को एक मे समन्वित कर उनके आधार पर एक ऐसे मत की नीव रक्खी जो सर्वसाधारण के लिए ग्राह्य हो सके। इनके उस नये मत मे इसी कारण कोई मौलिकता नही दीख पडती और न ऐसी कोई भी बात लक्षित होती है जो इनकी ओर से हमारे लिए एक 'देन' कही जा सके। क्या सिद्धांत क्या साधना सभी पर प्रचलित मतो व सप्रदायो की गहरी छाप लगी हुई है जो उन्हें अधिक से अधिक एक 'सार-ग्राही' मात्र ही सिद्ध करती है। [उत्तरी भारत की सत-परम्परा-पृष्ठ १८३-१८४]

चली जाती है। महात्माओ और कवियो ने सन्तो की जो परम्परा दी है उससे भी यही विदित होता है कि सन्तो का स्वरूप लोक-प्रवृत्ति के अनुकूल ढलता है। यह प्रवृत्ति सारग्राहिणी होती है।

इस सारग्राहिता के कारण सन्तो मे मत-मतान्तरो का अभेद होजाता है और विविध दार्शनिकवादो मे जो तत्व भी सार-जैसे प्रतीत होते हैं उन्हे वह ग्रहण कर लेता है। सन्त मत की दार्शनिकता 'सार और थोथे' की व्याख्या पर ही निर्भर करती है। यों तो सामान्यत यह कहा सकता है कि विश्व की समस्त दार्शनिकता का ही आधार यही सार और थोथे का अन्तर है। सार और थोथा, जो सत्य और मिथ्या का पर्यायवाची अथवा लौकिक रूप है, समस्त दार्शनिक विश्वास और विचारणा का मूल है। किन्तु सन्तमत की सार और थोथे की कसौटी अन्य दार्शनिकवादो की तरह वाद-भूमि पर निर्भर नही करती, उनकी दृष्टि बहिष्कार की नही अङ्गीकार की है। विविध दार्शनिकवाद जो सार और थोथे का अन्तर करते है उनकी दृष्टि यह देखने की रहती है कि क्या मिथ्या है। और वे प्रत्येक वस्तु को इसी भय से देखते जाते हैं कि कही इसमे मिथ्यात्व तो नही है। मिथ्यावादिनी दृष्टि के प्रमुख हो जाने से उनके विवेक को एक-एक करके प्रत्येक वस्तु मे मिथ्यात्व दीखता चला जाता है और उनकी दृष्टि इस क्रम से अधिकाधिक सकुचित होती चली जाती है जिसका परिणाम कही तो शून्यवाद की स्थापना होती है कि सार कुछ है ही नही सब कुछ असार और मिथ्या है, और कही कोई तत्त्व साररूप मे प्रस्तुत होता है तो वह अकेला ही सम्पूर्ण सार बन जाता है और शेष सब निस्सार हो जाता है। यह दृष्टि थोथे को देखती है सार को नही। जबकि सन्त प्रवृत्ति लोक-प्रवृत्ति के अनुकूल सार को देखती है और जहाँ-जहाँ जो-जो सार मिलता जाता है उसे ग्रहण करती जाती है। परिणाम मे यह दृष्टि उपरोक्त दार्शनिको की वाद-दृष्टि के बिल्कुल विपरीत हो जाती है। वाद दृष्टि सकुचित होती है और सन्तवृत्ति अथवा सारग्राही दृष्टि उदार और महत् होती है।

यह प्रवृत्ति सन्तमत को लोक-प्रवृत्ति से ही प्राप्त हुई है। कारण स्पष्ट है कि विश्व के इस मानव-विधान मे दो प्रवृत्तियाँ साथ-साथ सदा और सर्वत्र मिलती है। ये प्रवृत्तियाँ विशिष्ट और सामान्य कही जा सकती है। जैसे भाषा-क्षेत्र मे प्राकृत सामान्य भाषा के रूप मे सामान्य लोक-तत्त्वो को लेकर प्रवाहित होती रहती है और उसमे से विशिष्ट प्रवृत्ति के परिणाम विशेष परिस्थितियो मे उत्कर्ष पाकर अपनी एक विशिष्ट सस्कृति प्रस्तुत करके विलीन हो जाते हैं, उसी प्रकार विविध विशिष्ट भाषाएँ प्राकृत मे से उद्भूत होकर प्राकृत से अलग अपना वैशिष्ट्य घोषित करती हुई फिर प्राकृत मे ही समा-

जाती हैं। उसी प्रकार लोक अथवा सन्त प्रवृत्ति प्राकृत की भाँति समग्रलोक के सामान्य तत्त्वो से युक्त होकर निरन्तर विद्यमान रहती है। उसीमे से विशेष दार्शनिक मतवाद और धर्म उत्पन्न होकर कुछ काल के लिए अपना आतङ्क दिखाकर रह जाते हैं, किन्तु यह सन्त-प्रवृत्ति निरन्तर प्रवाहित रहती है।

यही कारण है कि वादयुक्त दार्शनिकता और धार्मिकता, वस्तुत: खण्डन पर खडी होती है किन्तु सन्तमत मण्डन को ही प्रधानता देता है। यहाँ यह प्रश्न प्रस्तुत होता है कि हिन्दी साहित्य मे सन्तमत के प्रवर्त्तक कवीर है। और उनमे खण्डन की प्रवृत्ति वहुत प्रवल दिखायी पडती है। तव या तो वे सन्त-प्रवृति के प्रतिनिधि नही और सामान्य और लोकभूमि से उन्हें पृथक मानना होगा अथवा सन्त-मत की प्रवृति मण्डनात्मक ही होती है इस प्रतिपादन को अमान्य करना होगा।

यह सच है कि हमे यह विदित होता है कि कवीर खण्डन करने के लिए भी खड्गहस्त हैं। किन्तु देखना यह है कि क्या कवीर का खण्डन खण्डन है अथवा और कुछ। कवीर कहते हैं—

मूँड मुँडाए हरि मिलें सव कोई लेइ मुडाय।
वार वार के मूँडते भेड न वैकुण्ठ जाइ॥
माला फेरत जुग गया, गया न मनका फेर।
कर का मनका छाँडि के, मन का मनका फेर॥

इसी प्रकार से और भी अनेको उद्धरण कवीर से दिये जा मकते है—अरे इन दोउन राह न पाई। हिन्दुन की हिन्दुआई देखी तुरकन की तुरकाई।

कवीर के समस्त खण्डन विपयक उद्गारो पर एक दृष्टि डालकर पहला विचार तो यह वनता है कि कवीर की सफाई के लिए यह तर्क दिया जाय कि सामयिक पृष्ठभूमि के कारण उनमे यह उग्रता आगयी और वे खण्डन करने पर तुल गये। जो चीज भी उन्हे मिथ्या लगी उसी को उन्होने रोष और वलपूर्वक पटक मारा और खण्ड खण्ड कर दिया। और उन्होंने सन्त की जो परिभापा दी थी कि थोया देड उडाइ—जैसे उसके अनुकूल ही वे अपने सूप-स्वभाव से उस थोथे को उडा रहे हैं। इस सफाई से सन्तो की मूल प्रवृत्ति की जो परि-भापा की गयी है उसकी रक्षा नही होती। खण्डन तो रहता ही है। दूसरी दृष्टि से यह प्रश्न प्रस्तुत होता है कि कवीर मे मिलने वाली यह प्रवृत्ति और अन्य वाद दृष्टियो मे मिलने वाली खण्डन प्रवृत्ति क्या एक ही हैं। और इस अन्तिम प्रवृत्ति को कसौटी पर कसने से क्या कवीर की प्रवृत्ति को खण्डनवादी प्रवृत्ति कह सकते हैं।

ऊपर जो विवेचना की गयी है उसके आधार पर दोनों दृष्टियो का तात्विक

भेद यह प्रतीत होता है कि एक खडन करने के लिए ही प्रस्तुत होती है, उसे प्रत्येक मे मिथ्यात्व दिखायी पडता है और इसलिए उसे खण्डित करती चली जाती है और सृष्टि मे मिथ्याप्राधान्य दृष्टि की सृष्टि करती है और दूसरी दृष्टि जो उदार और सारग्राही होती है, वह सार ढूढने के लिए निकलती है। साथ ही यह भी विदित होता है कि इस सारग्राहिता के साथ असारता का दृष्टिकोण लोकहित के अनुकूल होता है, सकुचित दृष्टि के परिणामत वादहित की दृष्टि से नही। दार्शनिक वादी की खण्डन कसौटी वाद-दृष्टियुक्त होती है। जो उसके वाद के अनुकूल नही वही असार और मिथ्या है। लोकहित उसकी कसौटी नही होता। इसीलिए वह अनुदार और सकुचित होती है, कबीर मे खण्डन की प्रवृत्ति का मूल लोकानुकूल प्रतीत होता है। वे जैसे खण्डन नही कर रहे केवल सार पर से थोथे को हटा रहे है। थोथे मे ही सार है, और थोथा सार को आवृत्त किये हुए है। इसीलिए उसे हटा दिया जाय। वह कोई मिथ्या तत्त्व है, कूडा-करकट है, अपदार्थ है, अयथार्थ या अवास्तविक है ऐसा मत उनका नही होता है। धान्य मे धान्य है और उसके ऊपर उसका उत्पादन करने के लिए उत्पादन-क्रम मे जो आवरण होता है, सार बनाने के लिए जो उसे अपने मे से पोषक तत्त्व देकर स्वय थोथा हो जाता है उस थोथे को वह हटा रहे हैं। इसीलिए थोथा अन्न के पक जाने पर ही थोथा होता है, उससे पूर्व नही। अत आज परिपक्व सार के मिल जाने पर उससे लिपटा हुआ जो निस्सार है, उसे झटक कर पृथक कर दिया जाय और उडा दिया जाय, यह कबीर की दृष्टि है और इसे दार्शनिक शब्दो मे यथार्थत खडन नही किया जा सकता। यह सार को मण्डन करने की ही प्रवृत्ति कही जायगी। इसीलिए कबीर ने मूँड मुडाने की बात कही है। वे कहते है कि हरि को प्राप्त करने के लिए अब मूँड मुडाने की आवश्यकता नही रह गयी। मूँड मुडाने और हरि को प्राप्त करने में कोई कार्य और कारण का सम्बन्ध स्थापित नही किया जा सकता। अत इस उल्लेख मे प्रधानता हरि मिलने की है मूँड मुडाने के खण्डन की उतनी नही। उधर हम देखते है कि कबीर मे सारग्राहिता का पक्ष कही प्रबल है। विद्वानो ने कबीर पर जो विचार किया है उससे यह बात भली प्रकार सिद्ध हो जाती है। स्वर्गीय विद्वद्वर चन्द्रबली पाण्डेयजी ने सिद्ध किया था कि कबीर जिन्दीक थे इसके लिए उन्होने कबीर की रचनाओ से अनेको उदाहरण दिये है। जिन्दीक मे जो उदार इस्लामियत होती है वह कबीर मे भरपूर है। यहाँ तक कि कबीर की कितनी ही साखियो और पदो मे कुरान की आयतो की झाँकी तक मिल सकती है।

अन्य विद्वानो को कबीर के हठयोग की साधना मे पूर्णत साम्प्रदायिक

रूप प्रतिष्ठित हुआ दिखायी पडता है। एसे विद्वान कहते है कि कबीर ने स्वय अपने को भक्तो की कोटि मे नही रक्खा, गोरख आदि के साथ अभ्यासी की कोटि मे रक्खा है। उनकी रचनाओ में हठयोग की सूक्ष्म से सूक्ष्म और ऊँची से ऊँची बातो का समावेश हुआ है।

तीसरा पक्ष उन्हे वैष्णव मानता है और उन्हे एक उच्चकोटि के भक्त या भगत की मान्यता देता है। उनकी साखियों मे से और पदो मे से अनेको ही नही परन्तु सभी ऐसे हैं जिनमे या तो स्पष्टत रामनाम और भक्ति का आग्रह है, अनेको मे अन्तरधारा के रूप मे यही भक्ति व्याप्त है।

एक चौथा पक्ष है जिसे कबीर प्रवर्तित्त सन्तमत और उसके द्वारा ग्राह्य भक्ति और मानवीय करुणा मे स्पष्टत' ईसाई धर्म का प्रभाव दिखायी पडता है। अन्वेषण करने पर विदित होगा कि कबीर में योगी, सूफी, वैष्णव, इस्लाम, ईसाई धर्म के तत्त्व ही प्रतिष्ठित नही हैं, इनसे भी कुछ अधिक उनमे है। यह स्थिति निर्विवाद रूप से यह सिद्ध करती है कि कबीर सारग्राही हैं। और उनकी सारग्राहिता सन्तमत की आधार-शिला है। वस्तुतः इन समस्त धर्मों का जो स्वरूप कबीर मे प्रतिष्ठित होता हुआ हमें मिलता है वह स्वरूप ऐसा है जो लोक-मानस और लोक-भूमि के अनुकूल है। कबीर ने सन्तमत का प्रवर्तन करते हुए जिस सत्य को ग्रहण किया वह लोकजीवन का सत्य था। लोक-जीवन का सत्य एक महासागर की भाँति है जिसमे अनेको नदी नाले गिरते हैं और एक मे एकमेक होकर एक महान सत्ता की सृष्टि करते हैं। 'जिनकी रही भावना जैसी' के अनुसार इस महासागर मे से गगावादी गगाजल निकाल करके प्रसन्न हो सकता है, सिन्धुवादी सिन्धु जल निकाल करके प्रसन्न हो सकता है; किन्तु उस 'एकमेव द्वितीयो नास्ति' युक्त महासागर मे न गगा का पृथक अस्तित्व है, न सिन्धु का। इसी प्रकार लोक-जीवन के सत्य से जो लोक-धर्म खडा होता है, वह इसी प्रकार के विविध मतवादो को आत्मसात् करके एक महान सत्ता के रूप में सम-विषय लहरियो से युक्त होकर प्रस्तुत होता है। यही लोक-धर्म कबीर का धर्म था और इसी पर सन्त-मत खडा हुआ है।

किन्तु इस सार-ग्रहण मे कुछ विलक्षण सार और ग्राह्य हुए जो कि पहली दृष्टि मे लोक-तत्व विदित नहीं होते। उदाहरणार्थ यह परिकल्पना होती है कि सन्तमत वैराग्य का प्रतिपादक है।

सामान्यत यह माना जायगा कि लोक प्रवृत्तिवादी है निवृत्तिवादी नहीं। सन्त-मत द्वारा ग्रहीत निर्गुणोपासना और ज्ञानवाद भी ऐसे ही तत्व विदित होते हैं जो लोक-तत्त्व के अन्तर्गत सम्मिलित नहीं किये जा सकते।

ऐसी समस्त विलक्षणताएँ गम्भीर विचार करने पर दृष्टिदोष ही विदित

होती हैं क्योकि सन्त-मत के विद्वान यह मानते हैं कि कबीर ने केवल निर्गुण को नही माना, उसने केवल सगुण को भी नही माना, निर्गुण और सगुण से ऊपर के तत्त्व को उसने सारतत्त्व माना है। इससे स्पष्ट है कि कबीर को न निर्गुणवादी कहा जा सकता है, न सगुणवादी। जिसमे ये दोनो तत्त्व विद्यमान हैं और इनके अतिरिक्त भी जो कुछ और है वह सब कुछ कबीर को मान्य है। कबीर के साथ अन्तरत समस्त सन्तमत का भी यही प्रतिपाद्य है। सन्तमत को कबीर ने भक्ति से समन्वित किया। इसे भी निर्विवाद माना जाता है। अत सन्तमत ज्ञानवादी भी कैसे कहा जा सकता है। समग्र दृष्टि से देखने पर ज्ञान और भक्ति दोनो से समन्वित और इनसे भी कुछ अतिरिक्तता रखने वाला ही सन्तमत कहा जायेगा।

ऊपर के विवेचन से जब निर्गुण और ज्ञान सन्तमत की विशेषताएँ नही कही जा सकती तो सन्तमत वैराग्य का प्रतिपादक कैसे कहा जा सकता है।* कबीर गृहस्थ थे और सन्तमत मे न गृह-कर्म का विरोध है, न व्यवसाय का, न किसी और प्रकार से अपनी आजीविका के निर्वाह का विरोध है। वस्तुत देखा जाय तो इन समस्त प्रवृत्त पक्षो की सन्तमत में महत्ता है। चरखा चलाते हुए, जूता सीते हुए, कसाई का काम करते हुए, नाई का काम करते हुए, वेश्यात्व करते हुए, कोई भी पेशा क्यो न हो, उसे करते हुए भी मनुष्य सन्त हो सकता है, सन्त ही नही पहुँचा हुआ सन्त हो सकता है। यह बात अनेको सन्तो की जीवनियो पर दृष्टि डालने से अनायास ही सिद्ध होती है। अत. लोकभूमि से सन्तमत को दूर नही कहा जा सकता, फिर भी यह तो मानना ही होगा कि सामान्य लोक से इन सन्तो मे लोक के लिए ही एक विशेष प्रकार की साधना रही है। इस साधना का मूल था लोक के स्वरूप को अक्षुण्ण रखते हुए लोक-द्वारा ग्रहीत अध्यात्म को पुष्ट करने के लिए लोक के 'मन सस्कार' को सम्पन्न करना। समस्त सन्त साहित्य ने निर्विशिष्ट भाव से इसी विशिष्ट महान धर्म को सिद्ध करने की निरन्तर साधना की है। हिन्दी के सन्त-साहित्य मे इस साधना का बहुत ही उज्ज्वलतम रूप हमे दिखायी पडता है, इसी के कारण विविध मत-मतान्तरो की आँधियो के बीच मानव की अखण्ड मूर्ति हमे देदीप्यमान दिखायी पडती है।

---

* दादू जी ने स्पष्ट कहा है

"वैरागी बन मे बसे, घरवारी घर माँहि। राम निराला रहिगया दादू इनमे नाँहि।
(पृ० २३८)

दादू जिनि प्राणी कर जाणिया, घर बन एक समान।
घर माँहैं बन ज्यौं रहै, सो है साध सुजान। (पृ० २३८)"

संतमत की लोकभूमि का स्वरूप

सतमत की सारग्राहिणी प्रवृत्ति ने लोक-मानस के अनुकूल तत्वो को ग्रहण किया और सत-मत स्थापित किया। जिस प्रकार 'नाथ-सम्प्रदाय' मे नाथ का अर्थ करते हुए बताया जाता है कि ना=अनादि रूप और थ=(भुवनत्रय का) स्थापित होना अर्थात 'वह अनादि धर्म जो भुवनत्रय की स्थिति का कारण है, ('नाथ सम्प्रदाय' ले० डा० हृ० प्रसाद द्विवेदी पृ० ३,) उसी प्रकार सतमत को भी आदि धर्म कहा गया है। कभी कभी 'आदि जुगादि' कहा गया है। सत मतानुयायी सम्भवत कुछ-कुछ ऐसा समझते थे कि वे जिस मत का प्रतिपादन कर रहे हैं वह एक दीर्घ परम्परा ही नही रखता, अत्यन्त आदिम मनोभावो से सबद्ध है।

यो तो जैसा ऊपर कबीर के सम्बन्ध मे कहा जा चुका है, हठयोग का अत्यन्त विस्तृत और शास्त्रीय वर्णन इस सम्प्रदाय मे मिलता है। प्रत्येक आचार्य ने किसी-न-किसी बहाने इस हठयोग का एक प्रकार से पूरा पूरा विवरण दिया है। ऐसा उन्होंने दो कारणो से किया है · एक तो इसलिए कि वे उस परम्परा से ही अवतीर्ण थे जो हठयोग पर निर्भर करती थी—नाथ-सिद्धो की परम्परा। दूसरे इसलिए भी कि उन्हें लोक-समूह को भी यह दिखाना था कि वे सहजमार्ग या शब्दयोग या भक्ति-योग का उपदेश कर रहे थे, इसलिए नही कि वे हठयोग या कष्टयोग को जानते नही थे, वरन इस लिए कि एक तो सहजयोग सहज था, गुरु-कृपा से वह अनायास ही सिद्ध हो सकता था, दूसरे इसलिए भी कि हठयोग की सिद्धि से सहज-योग की सिद्धि ऊँची थी।* सहजयोग या शब्दयोग के मार्ग को उन्होंने 'मीन-मार्ग' भी कहा हठयोगी तो कुडलिनी को सुपुम्ना के सहारे विविध चक्रो मे से होकर ही ऊपर लेजा सकता था, जैसे कोई व्यक्ति खूँटियो के सहारे दिवाल पर चढकर छत पर पहुँच रहा हो। और शब्द-योग का मार्ग मीन-मार्ग था। जैसे बरसात होने पर जल की धारा के सहारे मछली ऊपर चढती चली जाती है, बिना किसी खूँटी या अन्य वस्तु का आश्रय लिए, केवल जल की धारा के आश्रय से ही,

---

* भजन मे है जुगल मारग, विहँग और पपीलन
पपील मद्धे सिद्ध कहिये विहँग सन्त कहावन
अनेक जन्म जब सिद्ध होवे अन्त सन्त कहावन
सिद्ध से जब सन्त होवै आवागमन मिटावन। आदि।

पलटू साहब—बानी पृ० ६८

वैसे ही शब्द-योगी शब्द के सहारे चढ़ता चला जाता है, फलतः इस शब्द-योग मे नाम का माहात्म्य हुआ। शब्द और नाम अभिन्न हो गये है। नाम का यह जाप भले ही अजपाजाप हो, मतमत का मूलाधार होगया है।

कबीर कहते हैं :—

कबीर कहैं मैं कथि गया, कथि गया ब्रह्म महेश,
राम नांव ततसार है, सब काहू उपदेश।
तत तिलक तिहुँ लोक मैं, राम नाँव निज सार।
(कबीर ग्रन्थावली—ना० प्र० सभा० पृ० ५)

इस नाम-स्मरण से क्या होता है ? कबीर बताते है :

मेरा मन सुमिरै राम कूँ, मेरा मन रामहि आहि।
अब मन रामहि ह्वै रह्या, सीस नवावौं काहि। (वही पृ० ५)

नानक के ये वचन हैं

शब्द के धारे सगले खड। शब्द के धारे कोटि ब्रह्मण्ड॥
शब्द के धारे पाणी पउण। शब्द के धारे त्रिभवण भउण॥
× × × ×
आस अँदेसे ते शब्द निरारा। तीन लोक शब्द पसारा॥
शब्द अदिष्ट सुष्ट नहि आवै। सप्त दीप शब्द धुनि गावै॥
शब्द अनाहद निरजन का वेपु। आदि मंत्र शब्द उपदेशु॥
चउदह ब्रह्मण्ड शब्द की धर्मशाला। नानक सोहं शब्द दइ आला॥
(प्राण सगलि—पृ० ११३-११४)

× × × ×

तथा—

सगली स्रिष्टि शब्द के पाछै। नानक शब्द घटे घटि आछै॥
(वही पृ० १८४)

सुणि रे भरथरि गोरखनाथा। नाम विना डूबे बहु साथा॥
साधिक सिद्ध गुरू बहु चेले। गुरु शब्दु बिना दुखीए दुहेले॥
(वही पृष्ट १८५)

× × × ×
जहि देखउ तहँ शब्दि निरासा। शब्दि बिचारि सहित सम आसा॥
× × × ×
जो देखउ सो सगल बिनासु। शब्दु अगम होइ सगलि नासु॥
× × × ×
शब्दे शब्दु होआ आकासु। शब्दे शब्दि कला परगासु॥

उलटा शब्दु गगनि वरु छाया। नानक शब्दै शब्दु समाया।।

× × × ×

गुरु कै शब्दि भेटै भगवानु।

(वही पृष्ठ १८५–१८८)

इसी प्रकार दादू का कथन है कि—

"एकै अष्पर पीव का, सोई सत करि जाणि।
राम नाम सतगुर कह्या, दादू सो परवाणि।
दादू नीका नांव है, तीनि लोक ततसार।
राति दिवस रटिबो करौ, रे मन इहै विचार।

धरमदास कहते हैं—

खोजहु संत सुजान सो मारग पीव को
समुझि सब्द देहु स्रवन, मूल जहँ जीव को

+ + × ×

का भरमत भटकत फिरो, करो खोज बनाई
मूल सब्द चीन्हे बिना, जिव जम लै जाई।।

इस प्रकार 'संत-सम्प्रदाय' में 'शब्द' अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है। भीखा साहब कहते हैं

"ऐकै शब्द ब्रह्म फिरि एकै, फिरि एकै जग छाया।

+ × + +

नाम नित्य तजि अनितै भावै, तजि अमृत विष खाया।
सतगुरु कृपा कोऊ कोउ वाचै जो सोधै निज काया।

(भीखा० बा० पृष्ठ २०)

और भी—नाम अनादि एक को एक। भीखा सब्दसरूप अनेक। [वही पृष्ठ २४]

इसी कारण इस सम्प्रदाय को 'शब्द-योग' भी कहा जाता है, औ· इसमे 'शब्द' का पूर्ण दर्शन ही प्रस्तुत हो गया है। ऐसा क्यो हुआ है? शब्द-नाम-मन्त्र इन सबके साथ मूल-लोक-मानस की विद्यमानता है। संत-सम्प्रदाय में 'शब्द या नाम' वही सामर्थ्य और शक्ति रखता है जो मंत्र रखता है। 'मंत्र' की सामर्थ्य धार्मिक तत्व नही, वह जादू-टोने या मैजिक का अंग है। जादू-टोने का यह रूप लोकमानस की उस प्रवृत्ति का परिणाम है जो सृष्टि मे जड-चेतन मे अभेद मानता है, अपने जैसा ही सबको समझता है, नाम और नामी मे अगागी सम्बन्ध मानता है, और 'अगागी टोने' (कटीग्युअस मैजिक) से शब्दाग या नामाग के द्वारा नामी को ही वश मे कर लेता है, उसी के द्वारा

उसे प्राप्त कर लेता है, और तव 'नाम' को ही शक्तिशाली मानने लगता है। अत शब्द के इस महत्त्व का सार या 'ततसार' इस लोक-मानस मे है।*

शब्द-नाम-मंत्र की परम्परा का एक सक्षिप्त विवरण महापडित राहुल साकृत्यायन ने गंगा पुरातत्वाक मे दिया था। उसमे आपने वताया है कि वौद्ध धर्म मे मत्र-प्रवेश किस प्रकार हुआ—

"मत्र कोई नई चीज नही है। मत्र से मतलव उन शब्दो से है जिनमे लोग मारण, मोहन, उच्चाटन आदि की अद्भुत शक्ति मानते हैं। यह हम वेदो मे भी पाते हैं। ओ वौषट, ओषट् आदि शब्द ऐसे ही हैं, जिनका प्रयोग यज्ञो मे आवश्यक माना जाता है। मत्रो का इतिहास ढूँढिये तो आप इन्हे मनुष्य की सभ्यता पर पैर रखने के साथ-साथ, तरक्की करते पायेंगे, वावुल (वेवीलोन) असुर, मिश्र आदि देशो मे भी मत्र का अच्छा जोर था। फलत मन्त्रयान वौद्धो का कोई नया आविष्कार नही है। केवल प्रश्न यह है कि वौद्धो मे इसका आरम्भ कैसे हुआ और उसमे प्रेरक शक्ति क्या थी? पाली के 'ब्रह्म जाल सूत्त' से मालूम होता है कि वुद्ध के समय मे ऐसे शान्ति सौभाग्य लानेवाले पूजा प्रकार या काव्य प्रचलित थे। गन्धारी-विद्या या आवर्तनी-विद्या पर भी लोग विश्वास रखते थे। वुद्ध ने इन सवको मिथ्याजीव (झूठा-व्यवसाय) कहकर मना किया, तो भी इससे उनके शिष्य इन विद्याओ मे पडने से न रुक सके। वुद्ध के निर्वाण को जितना ही अधिक समय वीतता जाता था उतने ही लोगो की नजर से, उनके मानुष गुण भी ओझल होने जाते थे। वहाँ अलौकिक गुणो वाले वुद्ध की सृष्टि का उपक्रम वढता जाता था जव लोगो ने वुद्ध की अलौकिक जीवन कथाओ को अधिक प्रभावशाली देखा, तव इधर टूट पडे। ·· उनकी कथा से लोगो को वर्त्तमान मे क्या लाभ? तव वुद्ध की अलौकिक शक्तियो का वर्त्तमान मे भी उपयोग होने के लिए, वुद्ध के वचनो के पारायण मात्र से पुण्य माना जाने लगा। उनके उच्चारण मात्र से रोग, भय आदि का नाश समझा जाने लगा? उस समय भूत-प्रेत आज से वहुत अधिक थे। ·· वुद्ध लोगो को इन भूतो की वहुत फिक्र रहती थी। इसलिये उन्हें वश मे करने के लिए भी कुछ सूत्रो की रचना होने लगी। स्थविरवादियो

---

* इसके विस्तृत विवेचन के लिए देखिये 'भारतीय साहित्य' जनवरी १९५६ वर्ष १ अंक १ 'मत्र' शीर्षक लेख। पृ० ४३ से ६३ तक। यहाँ उसी निवन्ध मे से डा० आर० ऐच० वान गुलिक (Dr. R. H. VAN Gulik) का अभिमत उद्धृत करना समीचीन प्रतीत होता है। उन्होंने वताया है कि—

ने (जो कि मानुष बुद्ध के बहुत पक्षपाती थे) ही 'आटानाटीय-सुत्त'[१] से इसका आरम्भ किया।" फिर क्या था, रास्ता खुल गया

उक्त क्रम से पहले अठारह प्राचीन बौद्ध सम्प्रदायो ने सूत्रो मे ही अद्भुत शक्तियाँ माननी शुरू की और कुछ खास सूत्र भी इस के लिए बनाये। फिर वैपुल्य वादियो ने, लम्बे लम्बे सूत्रो के पाठ में विलम्ब देख कर, कुछ पक्तियो की छोटी-छोटी धारणियाँ बनाई.... अन्त मे दूसरे लोग पैदा हुए जिन्होंने लम्बी धारणियो को रटने मे तकलीफ उठाती जनता पर, अपार कृपा करते हुए, ओ मुने मुने महा मुने स्वाहा", 'ओ आ हुँ', "ओ तारे तुत्तारे तुरे स्वाहा' आदि मन्त्रो की सृष्टि की। अब अक्षरो का मूल्य बढ चला। फिर लोगो को एक-एक मन्त्राक्षर की खोज मे भटकते देख, उन्होंने "मञ्जुश्रीनामसगीति" के

"Mantra means magic incantation or formula and as such has been defined as "power in the form of sound". Yana (litl vehicle) is a means of crossing the sea of rebirths and attaining to salvation it is the usual term employed to denote a certain trend of Buddhism. Hence Mantrayan is the method through which one can reach salvation by muttering certain words and phrases The roots of this curious system may be traced back to very old, probably even pre-Indo Aryan days. The belief in the power of the magic formulae plainly evinces itself in many cantos of the Atharvaveda such as Abhicharakani, curses and incantations against demons, sorcerers and enemies generally This belief seems to be particularly rooted in the propensity towards magic existing among the ancient aboriginal tribes of India Many of these ancient conceptions were adopted by the Indo-Aryan conquerors and made an integral part of their own conceptions In different parts of India, however, situated outside the centre of Indo Aryan culture, where the aboriginal population was better able to preserve its own character, the native usages of magic and witchcraft maintaind themselves in a form more closely resembling the pristine

१ "दीघ निकाय" का एक सुत्त, जिसमे यक्षों और देवताओं का बुद्ध से सवाद वर्णित है। इसमे यक्षो और देवताओं के प्रतिनिधियों ने प्रतिज्ञाएँ की है, जिनके दोहराने से आज भी उनके वशज देवताओं को अपने पूर्वजों की प्रतिज्ञा याद आ जाती है और वे सताने से बाज आ जाते हैं।

कहे अनुसार सभी स्वर और व्यजन वर्णों को मन्त्र करार दिया। और अब 'ओ' और 'स्वाहा' लगा कर चाहे जो भी मन्त्र वनाया जा सकता था, वशर्ते कि उसके कुछ अनुयायी हो।' ······ सक्षेप मे, भारत मे वौद्ध मन्त्र-शाखा के विकास का यही ढग रहा है। इस मन्त्रकाल को यदि हम निम्नक्रम से मान लें, तो वास्तविकता से वहुत दूर न रहेगे—सूत्र रूप मे मत्र—ई. पू. ४००–१००, धारणी मत्र–ई. पू. १००–४०० ईस्वी, मत्र मत्र—ई. ४००–१२०० ई०।

इस प्रकार मंत्र, हठयोग और मैथुन—ये तीनो तत्त्व क्रमशः वौद्ध धर्म मे प्रविष्ट हो गये। इसी वौद्धधर्म को मत्रयान कहते हैं। इसको हम निम्न मार्गों मे विभक्त कर सकते हैं—(१) मन्त्रयान (नाम) ई. ४००–७०० (२) वज्र-यान (नाम) ई. ८००–१२००। (गगा-पुरातत्त्वाक)

वौद्ध धर्म मे विकसित वज्रयान, सहजयान और सिद्ध सम्प्रदाय मे परिणत होकर नाथो तक पहुँचा, और नाथो से सतो मे आया, इस क्रम को ऊपर के पृष्ठो मे देख चुके हैं। अत यह स्पष्ट है कि यह शब्द-नाम परम्परा लोक-भूमि के अनुकूल होकर सतो तक आयी। इस शब्द-नाम का सत-गुरु या 'सतगुरु' से वहुत घनिष्ठ सम्वन्ध रहा। विना सतगुरु के नाम का कोई महत्व नहीं—

कवीर सतगुरु ना मिल्या, रही अधूरी सीष
स्वाग जती का पहरि करि, घरि घरि मागै भीष।
(क० ग्र ० पृष्ठ ३)

साधक, साधन और सिद्धि की नाम द्वारा अद्वैतता कवीर ने यो वतायी है
मेरा मन सुमिरै राम कूँ, मेरा मन रामहि आहि।
अव मन रामहि ह्वै रहा, सीस नवावौं काहि। (वही पृष्ठ ५)

पर ऐसा हो सकता है 'सतगुरु' के द्वारा ही। भीखा साहव की वाणी है कि—जो सत शब्द लखावै सोइ आपन हित हेरा।

\+ \+ \+ ×

भीखा जाहि मिलै गुरु गोविन्द, वै साहव हम चेरा।
(भीखा साहव की वाणी पृष्ठ २१)

'सतगुरु' का यह व्यक्तिपरक महत्त्व सतो मे भी सिद्धो से कुछ कम नही। सतो मे भी निगुरा को कोई स्थान नही। यह महत्त्व उसी लोक-मानस का अवशेष है जो शब्द-नाम-मत्र का ओझा या स्याने के साथ अद्वय सम्बन्ध मानता है।

"गुरु गम सब्द समुद्रहि जाचे परत भयो जल थीर।
केलि करत जिय नहरि पिया सग' ···· (भी वा. पृष्ट २४)

इन 'नाम' और 'गुरु' के तत्वो के साथ सतमत मे भक्ति को अपनाया गया है। यो तो भक्ति का यह आकर्षण सामयिक तकाजे के रूप मे था। फिर भी यह 'भक्ति-तत्व' भी तो मूल लोक-मानस का ही परिणाम था।

सतो मे हठयोग, सहजयोग, शब्द-योग के साथ भक्ति का समन्वय कुछ अद्भुत-सा लगता है। सैद्धान्तिक रूप से 'निर्गुण की भक्ति' का कोई अर्थ नही होता। तभी कुछ आगे सूरदास ने गाया था—

"निरालम्ब मन चक्रत धावै"
"ताते सूर सगुण पद गावै।"

किन्तु सतो का यह निर्गुण क्या निर्गुण था ? यह तो निश्चित ही है कि वे परमतत्व को 'न निर्गुण न सगुण' मानते थे। इस द्वैत से परे अद्वैत मानते थे। पर वह अद्वैत भी सतो का 'व्यक्ति रहित' तत्व नही था। भीखा साहब कहते हैं :—"निर्गुन मे गुन क्योकर कहियत, व्यापकता समुदाय।

जहँ नाही तहँ सब कुछ दिखियत, अँधरन की कठिनाय।
अजपा जाप अकथ को कथनो, अलख लखन किन पाय।
भीखा अविगति की गति न्यारी, मन बुधि चित न समाय।

(भीखा वाणी पृष्ठ ३३)

और भी—कोउ लखि रूप शब्द सुनि आई। (भी. वा. पृष्ठ ३७)

वह तत्व 'शब्द-आधार' अथवा 'ज्योति-आधार' पर व्यक्तित्व युक्त हो गया है। अत 'भक्ति' का आधार बन सकता था। पर वह 'भक्ति' उससे भी अधिक 'गुरु' के प्रति भी अपेक्षित है। उस परमतत्व के 'व्यक्तित्व' के कारण ही सतो मे 'विरह' की भावना मिलती है।

'विरहिनी फिरै है नाथ अधीरा।
उपजि बिना कछू समझि न परई,
बाँझ न जानै पीरा। टेक
या बड बिथा सोइ भल जानै, राम विरह सर मारी।
कै सो जानै जिनि यहु लाई, कै जिन चोट सहारी।
सग की बिछुरी मिलन न पावै, सोच करै अरु काहै।
जतन करै अरु जुगति बिचारै, रटै राम कूँ चाहै।
दीन भई बूझै सखियन कौं, कोई मोहि राम मिलावै।
दास कबीर मीन ज्यूँ तलपै, मिलै भलै सचुपावै।

(कबीर ग्रन्थ० पृष्ठ १८५)

उसी व्यक्तित्व के कारण सतो मे प्रेम-चर्चा सम्भव हो सकी है। प्रेम का यह तत्व जहाँ सूफी प्रभाव की ओर सकेत करता है, वहीं प्रेम के साथ भक्ति

की सँलग्नता उसे वैष्णवत्व के निकट ला देती है। पर यह निर्विवाद है कि भक्ति-तत्व मूलत 'लोक-मानस' की उद्भावना है। इसमे 'गुरु' की प्रधानता का कारण समस्त साम्प्रदायिक साधना का आधार-भूत तत्व शब्द-नाम-मत्र योग है। फ्रेजर ने भारत के सम्बन्ध मे ब्राह्मणो के महत्व को लेकर यह लिखा है ·

"इसी प्रकार आधुनिक भारत मे ब्रह्मा, विष्णु और महेश की महत्त्रयी भी जादूगरो के वश मे है। ये अपने टोनो से उन सर्वातिशयी शक्ति से सम्पन्न देवताओ को इस प्रकार विवश कर सकते है कि वे नीचे पृथिवी पर और ऊपर स्वर्ग में वे ही कार्य करें, जिनकी आज्ञा उनके ये स्वामी जादूगर उन्हे दें। एक यह लोकोक्ति सारे भारत में प्रचलित है कि सारा विश्व देवताओ के वशीभूत है, देवता मन्त्रो के वशीभूत है, मन्त्र ब्राह्मणो के वश में है, अत ब्राह्मण हमारे देवता है।" (फ्रेजर गोल्डन वो०–पृ० ५२)

यही स्थान वस्तुत ओझा का है, और इसी मूल से सतगुरु का सम्बन्ध सत शब्द से है जिसके द्वारा परमतत्व पाया जा सकता हैं।

गुरु के इस महत्त्व को सतो मे प्रचलित सतो की जीवनियो से भली प्रकार सिद्ध किया जा सकता है। जैसे चमत्कार सिद्धो और नाथो के द्वारा होते माने गये हैं, वैसे ही चमत्कार इन सतो के सम्बन्ध मे कहे गये मिलते हैं, और उन पर विश्वास किया जाता है। कुछ चमत्कारो का वर्णन असमीचीन न होगा—

१. सूखा वाग था, सत के पहुँचने से हरा हो गया। (गुरु नानक)
   [—"सगलादीप। शिवनाभ राजे के वाहर वसेरा कीया। राजे शिवनाभ का वाग नौलखा सूका पया था हरिया होया।" (उत्थानका श्री प्राणसगली की—पृष्ठ ६०)]
   गोरखनाथ के सम्बन्ध मे भी ऐसी ही घटना का लोक-गीत जाहरपीर मे तथा अन्य मे भी उल्लेख है।

२. एक राजा के लडके को जिवह कराया, उसका मास रँधवाया, फिर उसे जिला दिया [गुरु नानक सिंगला दीप के राजा शिवनाभ के घर पहुँचे तो राजा ने कहा 'जो अगादि का हुकम होवै। गुरु जी ने कहा—"जो मनुख का मास होवै, उह आदमी होवै राजा के घर इको (अकेला) पुत्र होवै अते वारह वर्षा का होवै व्याह होय को दिन वारा होए होउ।" राजा का वेटा ऐसा ही था। लड़के और लडके की वहू से पूछा दोनो गुरु के

काम आने के कारण प्रसन्न। उसे लेकर गुरु के सामने पहुँचे। गुरु ने कहा—"माता इसकी वाहाँ पकड़े। ईस्त्री उसके पैर पकड़े—तू हाथ छुरी ले जिवह करहि तो कम है।" ऐसा ही किया गया। मास रँध कर आया। खाते समय वह वालक जीवित होकर साथ वैठ गया। गुरु अदृश्य हो गये। [प्राणसगली पृष्ठ ६४-६५।

इस पर टिप्पणीकर ने लिखा है,—"वहुत से पाठक गुरु साहव के सेवको की केवल घडत मात्र यह घटना मानेंगे इसे असम्भवता की भेंटा करेंगे। परतु विचार-शीलो को इसमे सशय का अविकाश नही है—" आदि।

मोरध्वज की भक्ति की परीक्षा की लोक-कथा या पुराण-कथा से इसका साम्य अत्यन्त स्पष्ट है।

३ तीन दिन गुरूजी पानी के अन्दर गुप्त रहे।—प्राणसगली पृष्ठ ५०

४. मोदीखाने का सव सामान लुटा दिया, नवाव ने जाँच करायी तो रु० ७३०) नवाव के जिम्मे गुरुजी का निकला। (नानक—वही पृष्ठ ५२)

५ दूध दिया गया तो रख छोडा। पूछने पर वताया कि एक साधु आरहा है उसके लिए रखा है। कवीर। (कवीर ग्रन्थावली पृष्ठ ३०)

६ वेडी से पकड कर नदी मे फेंका। वेडियाँ टूट गयी। वे वच गये।
—कवीर। गग गुसांइन गहिर गँभीर। जजीर वाँधि करि खरे कवीर।
गगा की लहरि मेरी टूटी जजीर। मृगछाला पर वैठे कवीर।
(कवीर ग्रन्थावली ग्रन्थ साहव से पृष्ठ ३०-३१)
(प्रह्लाद की प्रसिद्ध कथा से साम्य।)

७ काजी ने धधकते अग्नि कुण्ड मे डाला, पर आँच तक न आयी।
(कवीर। वही पृष्ठ ३१)

८. वाँध कर हाथी के आगे डलवाया। हाथी ने प्रणाम किया।
कवीर। "कहा अपराध सत हो कीन्हाँ, वाँधि पोट कुजर कूँ दीन्हाँ।
कुजर पोट वहु वन्दन करै, अजहुँ न सूझै काजी अँधरै।
(वही पृष्ठ ३१)

९. मरने पर शरीर लुप्त, उनके स्थान पर पुष्प। (कवीर, वही पृष्ठ ३३)

१०. एक औघड़ सिद्ध ने सिद्धि से उनका पानी मदिरा कर दिया, पर जव

उन्होने मँगाया तो वह फिर पानी होगया। (भीखा–पृष्ठ २)

११. नगे साधु ने आकर मथुरा के पेडे माँगे, उस साधु ने अपनी सिद्धि से पेडे बाँटे पर उनके लिए नही बचे। सत ने पेडे माँगे, सिद्ध नही लासके। अण्डकोश बढ गया। सत के चरणो मे गिरा तो ठीक होगये। (भीखा-पृष्ठ ३)

१२. एक व्यक्ति दिन मे ही खाना खाते थे। सत ने रात को ही दिन कर दिया। (भीखा–पृष्ठ ३)

१३. मौनी बाबा सिंह पर सवार होकर आये, स्वागत के लिए जिस भीत पर बैठे थे उसे ही आज्ञा दी, वह आगे बढ गयी। (भीखा–पृष्ठ ३)

१४. काशी मे पानी डाला, उससे जगन्नाथपुरी के मदिर की आग बुझा दी। (कबीर—कबीर साहिब की शब्दावली, पृष्ठ ४)

१५. सत के दरवाजे पर बहुत भोजनार्थी पहुँचे। (१) भगवान बहुत से बोरे गेहूँ डाल गये। जो सबको बाँट देने पर भी बच रहे।

(२) एक हाँडी मे कुछ खाना रख दिया। एक कपडे से ढक कर खाना बाँटा। सबको पेट भर मिला। फिर भी हाँडी ज्यो की त्यो। (कबीर, वही पृष्ठ ४)

[अक्षय मजूषा या थैली या अन्नपूर्णा की लोक-कथा।]

१६. राजा ने कैद मे डाल दिया, पर ताले खुल गये, जजीरें टूट गयी।

(१) चरणदास। (चरणदास की बानी, प० भा० पृष्ठ २)

(२) गरीबदास। (गरीबदास की बानी, पृष्ठ २)

१७. सत ने प्रार्थना की तो भगवान की मूर्ति सिंहासन से उतर कर उनकी गोद मे आगयी। (रैदास, पृ० २)

१८. सत ने सुपाडी गगा पर चढाने भेजी, उसे गगा ने हाथ निकाल कर ग्रहण किया। (रैदास, पृष्ठ ४)

१९. एक धड से पृथक सिर को अमीरूपी प्रसाद से जीवित कर दिया।-कबीर

[सम्मन-सेऊ की कथा—सम्मन को साका किया, सेऊ भेंट चढाय।]

—गरीबदास की बानी पृष्ठ १४

२०. सेना नाई के लिए भगवान स्वय नाई बने और जाकर राजा की हजामत बनायी। (सेना नाई)

'गुरु' के साथ इतनी ही नही और भी कितनी ही चमत्कारक घटनाएँ जुडी हुई हैं। ये घटनाएँ केवल कही-सुनी ही नही जाती, उनमे विश्वास भी किया जाता है। इस बीसवी सदी मे भी इनके विश्वासी प्राय यो लिखते पाये जाते हैं।

"पर ऐसी करामातें महात्मा सरीके भारी गति के पुरुष के लिए महा-

तुच्छ बात है क्योकि पूरे साधु की अपने भगवत से एकता हो जाती है अर्थात् दोनों मे कोई भेद नही रहता।" [दे० चरणदास की बानी [पहिला भाग] वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग]

यह पुराण-प्रवृत्ति वह लोक-मानस है जिसकी परम्परा वेद-पूर्व से आज-तक निरन्तर चली आयी है। इन करामातो मे जिन अभिप्रायो अथवा कथानक-रूढियो का प्रयोग हुआ है, वे युग-युगों से लोक-वार्त्ता की सपत्ति हैं। फिर सतमत तो नाथ-सिद्धो की एडी से चिपका हुआ आया है। सतो की रचनाओ मे इसीलिए स्थान-स्थान पर सिद्धो से वाद और गुष्टि का उल्लेख है, जिसमे सिद्धो को परास्त होना पडा है।

सतो ने अपने सिद्धान्तो की व्याख्या के लिए भी लोक-प्रचलित वार्त्ताओ और आख्यानो का प्राय उपयोग किया है।

पारवती के उर धरा अमर भई छिन माह।
सुक की चौरासी मिटी निरालव निज नाम।
भैस सींग साहब भया पाडे गावै गीत,
महिमा सुन निज नाम की गहे द्रौपदी चीर
सेत बँधा पाहन तिरे गज पकडे थे ग्राह
गनिका चढी विमान मे निरगुन नाम मलाह
राम नाम सदनै पिया वकरे के उपदेश (गरीवदास)

सनक सनंदन जैदेव नामां, भगति करी मन उनहुँ न जाना
सिव विरंचि नारद मुनि ज्ञानी, मन की गति उनहूँ नहिं जानी
घ्रू प्रह्लाद वभीषन सेषा तन भीतरि मन उनहुँ न देषा
ता मन का कोई जान भेव, रचक लीन भया सुषदेव
गोरख भरथरी गोपीचंदा, ता मन सौं मिलि करै अनदा।
कवीर ग्रन्थ, पृष्ठ ६००

ब्रह्मा खोजि पर्‌यौ गहि नाल*

---

*इन उदाहरणो मे जिन आख्यानो की ओर सकेत हैं, वे प्राय सभी लोक-वार्त्ता के अग वन गये हैं, और लोक मे अत्यन्त प्रचलित हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो स्थानीय हैं, और सतो मे ही प्रचलित मिलते हैं। 'भैस सीग' से जिस वार्त्ता की ओर सकेत है, वह यह है कि एक ग्वाला सत के पास पहुँचा और भक्त वनना चाहा। सत ने कहा कि तू अपनी भैंस को वहुत प्यार करता है, उसी का ध्यान किया कर। एक दिन सत ने उसे आवाज दी तो उसने कहा महाराज आया, मैं अपनी भैंस के सीगो मे उलझ गया हूँ। वह ध्यान मे ही उलझ गया था। वस सत ने उसकी निष्ठा देखकर उस सीग से ही उसे साहब तक मिला दिया। इसी प्रकार सदन कसाई की वात यो है कि वह एक वकरे के कुछ अश को काटने लगा तो वकरे ने कहा कि पूर्व जन्म मे मैंने तुम्हारा सिर काटा था, उसके वदले मे तुम मेरा सिर ही काट सकते हो। इस ज्ञान से वह भक्त होगया। आदि।

सत-साहित्य मे जिन साहित्य-रूपो को अपनाया गया है, वे उसे और भी अधिक लोक-भूमि पर ले आते है। प्राय प्रत्येक सत ने आरती[1], हिंडोला[2] झूला[3], बारहमासा[4], होली[5], जँतसार[6], चाचर[7], मगल[8], बधावे[9], गाली[10] सोहर[11], सेहरा[12] लिखे हैं। इन गीतो मे इन सन्तो ने केवल लोक-प्रचलित राग ही नही अपनाये, उनके विषय भी अपनाये हैं। कही कही तो पूरा लोक-गीत ही लेकर उसे अपने मतानूकूल कुछ शब्द जोडकर अपना लिया गया है।

इसी के साथ यह भी स्पष्ट है कि समय समय पर जो प्रवृत्ति प्रबल रही है, उसे भी सत-सम्प्रदाय ने अपनाया है, और उससे अपनी मूल मनसा के अनुसार सामजस्य स्थापित किया है। इसका एक अच्छा उदाहरण चरणदास जी का शुक-सम्प्रदाय है। चरणदास जी ने ब्रज और कृष्ण की वैष्णव लीलाओ को सगुण रूप मे ग्रहण करते हुए भी निर्गुण और शब्द-योग को पूरा महत्व दिया है।

लोक का यह निकटत्व इसलिए भी था कि प्राय अधिकाश सत निरक्षर

---

१ आरती—धरम० बानी पृ० १६, गरीब० बानी पृ० १४३

२. हिंडोला—क० ग्र० पृष्ठ ६४ 'हिंडोलना तहाँ झूलै आतमराम'

३. झूलना—गरीब० बानी पृष्ठ ११४

४. बारहमासा…ध. धरम. पृष्ठ ५७, धरनी. बानी—पृष्ठ ४८, क० ग्र० पृष्ठ २३४, श्रीप्राणसगली—पृष्ठ २६७

५. होली—धरमदास जी की बानी—पृष्ठ ६०-६१

६. चक्की पीसने के समय के गीत।

७. नृत्य के साथ का गीत

८. मंगल—ध धर० बानी पृष्ठ ३८, गरीबदास की बानी पृष्ठ १५६

९, बधाए—ध धरम० बानी पृष्ठ ५४

१०. गाली—धनी धरमदास जी की शब्दावली—पृष्ठ ६६

सतगुरु आये द्वार सुरति रस बिजना

काहे कै बैठक देउँ, सुरति रस बिजना

चंदन पीढ़ी बैठक सुरति रस बिजना आदि। यह गीत गाली नामके 'लोक-गीत' की तर्ज परही नहीं, इसकी शब्दावली भी ऐसे लोक-गीतो की ही शब्दावली है।

११. 'सोहर धनी धरमदास जी की शब्दावली पृष्ठ ६२—'साहेब मोर बसत अगमपुर जहाँ गमन हमार हो।

१२. सेहरा…गरीबदास की बानी पृष्ठ १५७। आदि।

थे, जिन्होंने 'मसि-कागद' तक नही छुआ था, तथा सभी जातियों के थे।
'जाति-पाँति जानें नहिं कोई। हरि को भजै सो हरि का होई।'

प्राणसाँगली मे उल्लेख है कि

ठाकुर भगता का पिआरा जाति न भावई॥
नामा छीपा रविदासु चमारा उधरे भगति करि
कबीरु जुलाहा, वाल्मीक चडारा मुक्ते नामु जपि
धन्ना जट्ट तुमारा गऊ चरावणे। आदि।*

गरीबदास की वानी हैं कि

कौम छतीस एक ही जाती। ब्रह्म बीज सबकी उत्पाती।[1]

यह सिद्धान्त केवल कहने भर के लिए ही नही था। इन सन्तो मे नाई, कसाई, वेश्या, चमार, जुलाहा, छीपी, आदि सभी थे।[2] इन समस्त गुरुओं और भक्तो का मौलिक साम्य वहीं हो सकता था जहाँ सस्काराभिमान छूटा हुआ हो। इसकी भूमि लोक-भूमि हो सकती थी, वह लोकभूमि जो लोक-मानस से अनुप्रेरित और अनुप्राणित रहती है।

सतो मे 'पिंड मे ही ब्रह्माण्ड' को देखने और पाने का विश्वास दृढ है, उसकी उपलब्धि की यही मुख्य कुजी है। इसलिए ब्रह्माण्ड को पिंड मे पाने के भाव से सतो के लिए 'घट' या शरीर ही महत्वपूर्ण है। सन्तो ने इसलिए घट मे ही ब्रह्माण्ड की स्थापना करने का प्रयत्न किया है। यहाँ तक कि घट मे ही 'रामायण' की कथा तक सिद्ध कर दी है। बहिर्मुख मे अन्तर्मुख करने की यह साधना, अन्तर्मुख होने पर भी 'अध' से 'ऊरध की ओर ले जाती है। यह मूल की ओर प्रत्यावर्तन हैं, इसी को सामान्यत 'उलटी साधना'[3] कहा

---

* श्री प्राणसांगली (तरन तारन प्रकाशन) द्वितीयावृत्ति...पृष्ठ ३८८

१. गरीब० वानी...पृष्ठ १४३

२. पलटू साहिब कहते हैं "हरिको भजै सो बडा है जाति न पूछे कोय

× × ×

बधिक अजामिल रहे रहे फिर सदन कसाई।
गणिका विस्वा रही विमान पर तुरत चढ़ाई
नीच जाति रैदास आपु में लिया मिलाई।
(पृष्ठ ९७)

३. दादू समिता राम सौं, धैले अंतनि माँहि
उलटि समाना आप में, सो सुष कतहूँ नाँहि। (पृष्ठ ९८)

× × × ×

मन उलट्या दरिया मिल्या, लागा मलि मलि न्हांन (क० ग्र० पृष्ठ १७)
उलटी साधना के लिए सतों को मीन' और 'अलल पक्षी' के प्रतीक

गया है। वह्न मूल जो परमतत्व है, वह घट मे ही है।[४] इसी मे वह प्राप्त हो सकता है। गुरु के शब्द के माध्यम से शब्द-मूल तक पहुँच होती है। यह समस्त आस्था उस मूल मानस से प्रतिफलित है जो सहानुभूतिक टोने पर निर्भर करती है। इसके साथ ही इसमे 'आत्मावेश भी गुम्फित मिलता है। इस 'आत्मावेश' ने ही 'ऊरध' से 'अध' को आने वाले 'आवेश' को लौटकर 'उलट' कर उसके मूल से सलग्नता का भाव प्राप्त किया है। किसी ओझा या स्याने पर किसी देवता का आवेश 'ऊरध' से 'अध' की ओर होता है। तब 'अध' से उलटकर 'ऊरध' की ओर जाकर ही उस मूल को पाया जा सकता है।

यह विवेचन इसे स्पष्ट कर देता है कि सत-सप्रदाय लोक-मानस के प्राय सभी पहलुओ से सम्बन्ध रखता है। हाँ, लोक-मानस के आनुष्ठानिक (Ritusliatic) पहलू की ओर अवश्य आग्रह नही है, पर वह नितान्त शून्य भी नही हो पाया है। आनुष्ठानिक प्रक्रियाओ मे एक तत्व दूसरे का स्थान ग्रहण करता जाता है। यहाँ तक कि शब्दो मे ही किसी प्रक्रिया का उल्लेख उस प्रक्रिया के सपादन करने के समान ही महत्व रखता है। मानसी पूजा भी उसी क्रम से उस पूजा का स्थान पाती है। प्राय प्रत्येक सत गुरु ने विरह और रति का उल्लेख किया है। इसके लिए उसे 'पुरुष' और 'स्त्री' का रूपक ग्रहण करना पडा है। भक्ति और प्रेम के सूत्र को इन गुरुओ ने और भी अनेक रूपो मे व्यक्त किया है। उन्ही तक ये अपने को सीमित रख सकते थे। विरह-मिलन और रति आदि तक न पहुँचते तो भी ये अपनी साधना के समस्त स्वरूप को प्रकट कर सकते थे। पुरुष-स्त्री की यह कल्पना उनके लिए वस्तुत रूपक-कल्पना नही, अत इसका महत्व आलङ्कारिक नही। कुठा का परिणाम भी नही माना जा सकता। यह तो उसी आनुष्ठानिक प्रक्रिया की परिणति प्रतीत होती है,

---

बहुत प्रिय हैं। मीन वर्षा की धारा के साथ 'अध' पृथ्वी से 'ऊरध' 'आकाश' की ओर चढ़ती जाती है। अलल पक्षी आकाश मे ही अडे देता है, वह अडा नीचे 'अध' की ओर चलता है, पर पृथ्वी पर पहुँचने से पूर्व ही वह फूट जाता है और अलल पक्षी का शावक उसमे से निकलकर फिर आकाश मे अपनी माता की ओर ऊपर 'ऊरध' की ओर चल पडता है, और उससे जा मिलता है।

४. दादू काया अतरि पाइया सब देवन का देव।
सहजै आप लखाइया, अैसा अलख अभेव॥ पृष्ठ ६४

'सतगुरु मिलि परदा गया, तब हरि पाया घट माँहि। (क ग्र.पृ ८१)

क्योकि सतो के साथ भी सिद्धि का अप्रत्यक्ष चमत्कार विद्यमान है।*

*सतों के इन चमत्कारो का एक विवरण तो उदाहरणस्वरूपेण हम ऊपर दे चुके हैं। सतो की वानियों मे भी इनका उल्लेख मिलता है, ऐसा एक विवरण गरीबदासजी की वाणी मे निश्चय का अग मे मिलता है, उसे यहा दिया जाता है–

"अपने दिल साधू नही वाकूँ दरसा साध। भैंस सींग से जानिये गत कुछ अगम अगाध।
उसके मन की फुरत है, अपने मन की नाँहि। गनिका चढी विमान मैं अजामील की वाँहि
\+ + + +
नि चय ऊपर नामदेव पाहन दूध पिलाये। भैंस सींग मे साहब आये नाम रतन धन पाये
नि चय ही से देवल फेरा पूजी क्यो न पहारा। नामदेव पिछवारे बैठा पंडित के पिछवारा।
नि चय ही से गऊ जियाई नि चय बच्छा चूगैं। देस दिसतर भक्ति गई है फिर को लावै भूगैं।
नि चय सेऊ सीस चढाया चोरी सत सिधारे। बनियाँ कूँ जहँ पकड लिया है करदै सीस उतारे।
पिता समन और माता नेकी जिनके नि चय भारी।
जहाँ कबीर कमाल फरीदा भोजन की भई त्यारी।
सेऊ के धड सीस चढ़ाया मीनमेख नाँहि कोई।
\+ + + + +
लपिया के तौ जकतक कीना, लोदिया के घर आये। ताडी घाल लिये परमेसर निश्चय हाथ बँधाये।
नि चय ऊपर बालद आई और कैसो बनजारा। नौलख बोरी लदा लदीना कासी नगर मझारा।
नि चय पडा पाव बुझाया जगन्नाथ के माँही। अटका फूट पडा पाँवन पर अजहूँ बात न भाई।
× × × ×
कासी तज मगहर कूँ चाले, किया कबीर पयाना। चादर फूल बिछे ही छांडे, सबदै शब्द समाना।
\+ + + +
कनक जनेऊ कध दिखाया है रैदास रँगीला। धरे सातसै रूप तास कूँ ऐसी अद्भुत लीला।
पीपा तौ दरिया मे कूदे ऐसा नि चय कहिये।' मिले विसम्भरनाथ प्रासु कूँ झूठी भक्ति न चहिये।
सेना के घर साहब आये करी हजामत सेवा। + +
नरसी की तौ हुण्डी झाली, कागज सीस चढ़ाया। ध्योती का तो व्याह भया जब भात भरन कूँ आया।
\+ + + + +
तिरलोचन के भये बिरतिया ऐसी भक्ति कमाई। + +

फलत' मनसा-तत्र सतो मे एक स्तर पर प्रकट हुए विना नही रह सका । यह विकास या परिणति भी स्पष्टत लोक-मनसा की प्रवृत्ति के सर्वथा अनुकूल है । सिद्धो मे सिद्धि उनकी वैयक्तिक उपलब्धि के रूप मे आती है, नाथो मे वह है तो वैयक्तिक ही पर गुरु-शब्द से सलग्न है, फिर नाथ स्वय शिव हैं, जिससे शब्द या मत्र से सिद्धि वस्तुत शिव-सिद्ध ही है, सतो मे गुरु-गोविंद मे अन्तर नही रहा, गुरु-शब्द ही शब्द-ब्रह्म है, उसके द्वारा गोविंद से तादात्म्य प्राप्त होता है । किंतु सत भक्त है अत वे इस तादात्म्य को गुरु-कृपा या हरि-कृपा से सभव मानते हैं । गोविंद से तादात्म्य का भाव रहते हुए भी भक्त के एक पृथक अस्तित्व का भी आभास यहाँ विद्यमान मिलता है । भगवान या गोविंद स्वय भगवान का ध्यान रखते प्रतीत होते है—यथा—

भक्त सेना नाई कुछ सतों की सेवा मे लगा था और राजा की हजामत का समय बीतता जारहा था, यह देखकर भगवान स्वय सेना नाई बनकर राजा की हजामत बना आये, भक्त के किसी भी काम मे बाधा न पडने दी । प्राय प्रत्येक भक्त के सबध मे ऐसी कथाए मिल जाती है । पर साथ ही हम पहुँचे—सतो को सिद्धो की भाति स्वय भी चमत्कार प्रकट करते भी देखते है । कबीर ने सेऊ को आवाज दी तो वह आ उपस्थित हुआ, यद्यपि रात मे उसका सिर स्वय उसका पिता काट लाया था । अत 'सिद्ध+भक्त' दोनो की सधि इस सत-साहित्य मे मिल जाती है । ये दोनो भाव यहाँ एक तुलना के रूप मे यो दिये जा सकते हैं—

भक्त-भाव	सिद्ध-भाव
कहै कबीर कृपा भई,	चदन कै सगि तवरर विगर्यो,
गुर ग्यांन कह्या समझाइ ।	सो तरवर चदन ह्वै निवर्यौ ।
(क० ग्र० पद ३००पृ० २६०)	पारस के सग तावा बिगर्यो ।
+ + + +	सो ताँवा कचन ह्वै निवर्यो ।
भजन कौ प्रताप ऐसौ,	सतन सग कबीरा बिगर्यो ।
तिरे जल पाषान ।	सो कबीर राम ह्वै निवरो ।
अधम भील अजाति	(क० ग्र० पृ० २८१)
गनिका चढे जात विवांन ।	कहै कबीर भव बधन छूटै,
+ + + +	जोतिहि जोति समाना ।
नि चा ऊपर नाम का	(क० ग्र० पृ० ११६)
कहा ज्ञान कहा ध्यान ।	साहब साधू एक है दुनिया दूजा जान
नि.चा खेमा निपाइया	(गरीब० पृ० ८६)
फाकर वोई जान ।	साहब परगट सत है जिनका एकै मन्त्र ।
+ × + +	(वही पृ० ८८)

मीरा हाथ सितार था
पद गावैं लौ लाय।
पत्थर की थी पतिमा
जामें गई समाय।
+ + + +
भवन तेग थी काठ की जैसे चमकी बीज।
(गरीबदास जी की बानी पृ० ७७-८५)
+ + + +
जन कबीर तेरी सरनि आयौ,
राखि लेहु भगवान।
(वही पद ३०१ पृ०१६०)
+ + + +
भगति बिन भौजल डूबत है रे।
(पद ३१०, पृ० १६३)
जगन्नाथ जगदीस गुरु सरना आया तोहिं।
(गरीब० पृ० ३७)
चरन कमल के ध्यान सू,
कोटि विघन टल जायँ।
(वही पृ० ३७)
अधम उधारन भगति है,
अधम उधारन नाव।
(वही पृ० ३३)

साँई सरीखे साध हैं,
इन सम तुल नाहिं और।
सत करे सोइ होत है
साहब अपनी ठौर।
(वही पृ० ६६)

संतो मे भक्ति और सिद्धि से तानेवाने की धूप-छाँह स्पष्ट है, जिसमे कभी भक्तिभाव प्रबलता से झलकता दीखता है तो कभी सिद्ध-भाव। फिर भी सिद्ध-भाव पिछड़ता सा लगता है, भक्त पर भगवान की दया के रूप मे चमत्कार उभरते मिलते हैं। साथ ही वैष्णव प्रतीक-विधान भी प्रबल हो चला है। भगवान की नाममाला मे निर्गुण नामों के साथ वैष्णव नामो की ही प्रधानता है। राम-कृष्ण आदि बार बार आते हैं।

निर्गुण-सगुण का यह संधि-स्थल है। गुरु की सगुणता धीरे धीरे ब्रह्म की सगुणता की ओर बढ़ती मिलती है। लोक-मानस की यह अनुकूलता कितनी अभिनंदनीय प्रतीत होती है।

———

तृतीय अध्याय

प्रेमगाथा

आरम्भिक

हिंदी साहित्य के इतिहास से स्पष्ट है कि कबीर से आरभ होकर निर्गुण-धारा प्रवहमान हो उठी और वह परिपुष्ट होती गयी। उसी के साथ प्रबध-कथाओ को लेकर एक काव्यधारा और खडी हुई। इन कथाओ मे प्रेमकथाओ की प्रधानता रही। ये प्रेम गाथाएँ कहलाती हैं। इनके काव्य का विधान लोक-मेधा ने किया, इसमें सदेह नही किया जा सकता। प्रेमगाथाओ की कहानियाँ सभी लोक-कहानियाँ है, भारत की अपनी कहानियाँ हैं।

ये लोक-कहानियाँ प्राय समस्त भारत में ही नही समस्त ससार में व्याप्त मिलती है।

लोक-कहानियों की साहित्यिक अभिव्यक्ति

जो कहानियाँ हिन्दी-क्षेत्र में मिलती है, वे बङ्गाल, बुदेलखण्ड तथा दक्षिण भारत में ही नही, जर्मनी इटली आदि मे भी मिलती हैं। अनेको पाश्चात्य विद्वानो ने यह माना है कि इन कहानियो का मूल उद्गम भारत मे हुआ। यद्यपि इस मत को सभी विद्वानो ने ग्रहण नही किया है। बाद में ऐसे भी व्यक्ति हुए जिन्होंने कहानियो का उद्गम अन्य

प्रदेशो में भी सिद्ध करने की चेष्टा की। फिर भी, इस विवाद के उपरात भी भारत का महत्व कम नही हुआ।* भारत में लोककहानियो की 'साहित्यिक' अभिव्यक्ति की एक दीर्घ परम्परा विद्यमान मिलती है। 'ब्रजलोक साहित्य का अध्यरन' के प्रथम अध्याय में हम लोकगाथा और लोक-कहानी के उद्गम की कुछ चर्चा कर चुके है। वेद-साहित्य की प्राचीनतम पुस्तक है। उसके कितने ही वृत्त कहानी के रूप में है। यहाँ कहानियाँ भी हैं[1] और कहानी के बीज भी हैं। भारत मे जो विश्वास प्रचलित है कि पुराण वेदो की व्याख्या करते हैं, विना पुराणो के वेद समझे नही जा सकते, यह विल्कुल निराधार नही। लोक-दृष्टि से वैदिक देवो की व्याख्या पुराणो में देखी जा सकती है। इस सबसे यही सिद्ध होता है कि वेदो की बीज-कहानियाँ ही पुराणो की कथाओ में पल्लवित-पुष्पित हुई हैं, जबकि यथार्थ यह है कि वेदो ने उन कथाखडो या कथा-बीजो को उन्ही लोक-क्षेत्रो से लिया है जहाँ से पुराणो ने लिया है।[2] पुराणो ने उसे लोक-प्रचलित रूप में विस्तार से दे दिया है, वेदो ने अपनी अपेक्षा के अनुसार उनका सकेत ही किया है। इस प्रक्रिया में वेदो से पुराणो में बहुत कुछ उलट-फेर हुई मिलती है, इसमें सन्देह नही। वेदो में जिन देवताओ का

१—देखिये इसी पुस्तक का प्रथम अध्याय पृ० ४७

२—देखिये हिन्दी मे प्रकाशित "वैदिक कहानियाँ"

* पुराणों के मूल रूप के सम्बन्ध में पार्जीटर महोदय ने लिखा है—It is highly probable that they (i e, puranas) consisted at first mainly of ancient stories, geneologies, ballads, etc, which formed the popular side of ancient literature, and were quite probably in Prakrit originally In fact, it seems to me that they were largely in an old literary Prakrit used by the higher classes, but that, as the spoken languages diverged in time more and more Sanskrit through political vicissitudes, that literary Prakrit became unintelligible, while Sanskrit remained the only polished language of Brahmanic Hinduism. Hence it was natural that this literature should be Sanskritized, if it was to be preserved " Dynasties of the Kali Age, Introduction, Page xvii, footnote 2 by F E Pargiter, Oxford 1913—यह उद्धरण आर० सी० मजूमदार के ग्र थ 'द क्लासीकल एज' में पृ० २९६ से लिया गया है। इसी सम्बन्ध में 'हिन्दुत्व' मे श्री रामदास गौड ने यह अभिमत प्रकट किया है—

विशेष महत्व था वे गौण हो गये, जो गौण थे वे महत्वशाली हो गये। यही नही बलदेव, शकर, लक्ष्मी, पार्वती, कुबेर, दत्तात्रेय जैसे नये देवता भी प्रकट हुए और पुराण-कथा मे वेदो पर लोकवार्त्ता के प्रभाव को भी सिद्ध करने लगे। इस नये प्रभाव के कारण वैदिक देवताओ का कही-कही अपमानजनक चित्रण भी हुआ। यह सब विकासावस्था की ही परिणतियाँ हैं। इन सबके मूल जिनके आधार पर पुराण कथाएँ पल्लवित हुई, प्राय वेदो[1] में देखे जा सकते है। विशेषत उन लोक-वार्त्ताओ

"वेद मे जो बात बहुत संक्षेप से किसी विशेष उद्देश्य से वर्णन की गयी है, पुराण मे वही विस्तृत आख्यायिका के रूप मे वर्णित हुई है। पौराणिक कवियों के हाथ मे साधारण जनो के कौतूहल को उद्दीपन करने के लिए छोटा सा विषय अगर बहुत बडी आख्यायिका मे परिणत हो जाय तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। इस बृहत आख्यायिका मे अनेक अवान्तर-कथाओ का आजाना भी असभव नहीं है। यह भी संभव है कि वेदव्यास द्वारा संग्रहीत-साहित्य के पहले भी परम्परा से बहुत सी जबानी कथाएँ चली आती हों। यह सब उपाख्यान के इशारों की तरह वेद मे देख पडती हैं। क्योंकि वेद उपाख्यानमूलक ग्रन्थ नहीं हैं। वेद मे स्थल-विशेष पर उदाहरण-स्वरूप उपाख्यान भी खुल पडे हैं। किन्तु पुराण मे उन सब उपाख्यानों को एकत्र करने की चेष्टा हुई थी। इसीसे वेद की अपेक्षा पुराण मे आख्यायिकाओं का बाहुल्य और विस्तार देख पडता है। विशेषत एक ऐसा बहुकालीन रूपक या उपाख्यान जिसे कभी कोई लिपिबद्ध करे तो उसमे अनेक काल्पनिक कथाओं का आश्रय पा जाना स्वत सिद्ध है। वेद का एक क्षुद्र प्रसग पुराण मे जब विपुल काय धारण करने लगता है तो एक स्वतन्त्र रूप पकड लेता है। इसीसे हम वेद और पुराण मे समान वैलक्षण्य देखते हैं। यही समझकर हम शेषोक्त आख्यायिका को अद्भुत उपाख्यान या नितान्त आधुनिक वस्तु कहकर परित्याग नहीं करते।"

इस विवेचन मे श्री गौड़ ने मूल यथार्थ को प्रकट कर दिया है। वस्तुत ये उपाख्यान लोक-कथाओं के रूप मे वेदों के समय में भी उसी प्रकार प्रचलित थे जिस प्रकार पुराणों के समय मे। वहीं से पुराणकार या पुराणकारो ने इनका सग्रह किया। यदि कभी पुराणों का लोक-तात्विक दृष्टि से गभीर अध्ययन किया जायगा तो यह बात विदित होगी कि विविध पुराणो मे एक ही आख्यान जो पृथक-पृथक रूप में मिलता है, वह उसकी पृथक क्षेत्रीय परंपराओ को बताता है। उसमे सशोधन-परिवर्द्धन मूलत लोक-क्षेत्र मे हुआ है।

[1]—वेदों मे मूल इसलिए माना जाता है कि पुराणो से वेद प्राचीन हैं। पुराण-कथाओ के जो बीज वेदो मे हैं वे बीज कालक्रम से पुराणो के पूर्वज ही हुए। उन्ही मे पुराणों से बहुत पहले से लोकप्रचलित कथा के सकेत हैं।

के मूल जिनका सम्बन्ध सौर-परिवार से है। भले ही यह सम्बन्ध 'शब्द' की अर्थशक्ति के श्लेप के कारण ही क्यो न हुआ हो। वैदिक साहित्य मे वेद ही नही, आरण्यक, ब्राह्मण और उपनिषद् सभी सम्मिलित होते हैं। इस विकास को समझने के लिए एक उदाहरण देना ठीक रहेगा।

वैदिक बीज वरुण—यदि समस्त वैदिक साहित्य को लिया जाय तो वेद की ऋचाओ के बीज से एक पूर्ण कथा का विकास इस साहित्य में मिल जाता है। उदाहरण के लिए ऋग्वेद मे 'वरुण' की वह प्रार्थना ली जा सकती है जो शुनःशेप ने की है। ऋग्वेद मे इसका कोई वृत्त नही मिलता। आगे उपनिषदो तक पहुँचते पहुँचते इसका एक अच्छा कथानक बन गया है। इसमे 'वरुण' ने हरिश्चन्द्र को रोहित नाम के पुत्र होने का वरदान इस शर्त पर दिया कि वह अपने उस पुत्र को वरुण को प्रदान कर देगा। वरुण ने हरिश्चन्द्र से उसे कई वार मागा। हरिश्चन्द्र ने उसे कई वार टाला, कई बहाने किये। अन्त मे रोहित वन में चला गया। वहा अजीगर्त को कुछ गौए देकर शुनःशेप को उसने अपने स्थान पर बलि चढाने के लिए क्रय कर लिया। कुछ और गायो के लोभ से अजीगर्त स्वयं ही शुनःशेप को बलि चढाने के लिए भी तत्पर हो गया। विश्वामित्र ने उसे अपना पुत्र बनाया और वरुण से प्रार्थना करा उसे मुक्त कर दिया। यह कथा बडी महत्वपूर्ण है। राज्याभिषेक के अवसर पर इस वेदाग का पाठ इसके अर्थ गौरव को और भी बढा देता है।* ऋग्वेद के कुछ मन्त्रो से शुनःशेप के बलिदान की कहानी तो वैदिक साहित्य मे ही प्रस्तुत हो गयी। लोकवार्ता मे इसने और भी रूप बदला। यदि अत्यन्त सूक्ष्मदृष्टि से देखा जाय तो यही कहानी 'सत्य-हरिश्चन्द्र' की प्रसिद्ध लोक-गाथा बनी है। प्राय नाम सभी वैदिक हैं। हरिश्चन्द्र हैं ही, रोहित रोहिताश्व हो गया है, विश्वामित्र भी बदल नही सके। वैदिक कहानी मे मूल मे दो तत्व थे, विश्वामित्र का शुनःशेप के पक्ष मे हरिश्चद्र के यज्ञ का विरोध। इससे लोकवार्त्ता को यह सूत्र मिला कि विश्वामित्र हरिश्चन्द्र के विरोधी थे। रोहित वन-वन मारा-मारा फिरा, वरुण जब तब आकर अपनी बलि माँगने लगा। इस तत्व मे बहुत परिवर्तन हुआ। आगे वैदिक देवताओ का जो विकास हुआ, उसमे वरुण का कोई स्थान नही, कहानी मे भी वह स्थान कैसे रहता। वरुण हरिश्चन्द्र से बलि माँगता था, उसका स्थान विश्वामित्र को ही मिला। विश्वामित्र वार वार हरिश्चन्द्र से दक्षिणा माँगने आते हैं। 'रोहित' का वन-वन डोलना, हरिश्चन्द्र के सकुटुम्ब काशी

---

* विलियम एच० राबिन्सन लिखित 'दी गोल्डन लीजेंड आफ इण्डिया' की भूमिका।

जाने के रूप मे वदला। दूसरा प्रधान-तत्व है 'रोहित' के स्थान पर शुनःशेप की वलि की तय्यारी, कुछ ही क्षण शेप है कि उसकी वलि करदी जायगी, तभी विश्वामित्र-प्रेरित प्रार्थना से वरुण द्वारा उसकी मुक्ति। लोक-गाथा मे रोहित ही शुनःशेप वना है, उसे सर्प ने काटा है, वह मर गया है। अजीगर्त और बलि का काण्ड लोक-गाथा के ब्राह्मण और सर्प के रूप मे परिणत हो गया है। यहाँ भी देवताओ ने उसे प्राणदान दिया है।

और आगे विकास मे मूलत यही 'वरुण-कथा' 'सत्यनारायण' की कथा मे वदली है। दोनो के प्रधानतत्व यहाँ तुलना की दृष्टि से दिये जाते हैं।

१—हरिश्चन्द्र वरुण से पुत्र की याचना करता है, वरुण उसे पुत्र देता है। किन्तु यह वचन ले लेता है कि वह उस पुत्र को वरुण को दे देगा।	१—सेठ पुत्र-कामना से सत्य-नारायण की पूजा का सकल्प करता है।
२—पुत्र होता है, वरुण माँगता है। हरिश्चद्र उसे कभी कोई वहाना वनाकर कभी कोई वहाना वनाकर टालता है।	२—पुत्री होती है। सेठ सत्यनारायण की पूजाकथा को टालता जाता है। कभी किसी वहाने, कभी किसी वहाने।
३—रोहित वरुण से वचने के लिए घर छोडकर वन मे चला जाता है।	३—पुत्री का विवाह हो जाता है। जामातृ ने रोहित का स्थान ले लिया। सेठ जामातृ के साथ व्यापार के लिए वहाँ से वाहर चला जाता है।
४—रोहित कोई चारा नही देखता तो अपने स्थान पर शुनःशेप को वलि देने को प्रस्तुत होता है।	४—कई सकटो के वाद सत्य-नारायण की मानता करते हुए जव ये घर लौटते हैं तो जामातृ के साथ नाव पानी मे डूव जाती है।
५—विश्वामित्र आदि की प्रार्थना से प्रसन्न वरुण शुनःशेप के रूप मे रोहित को मुक्त कर देता है।	५—माता-पुत्री द्वारा पूजा की सविधि पूर्णता से प्रसन्न सत्यनारायण जामातृ को पुन प्रकट कर देते हैं।

देवताओ के विकास मे 'वरुण' विशेपत जल के देवता ही रह गये हैं। सेठ की कहानी मे अधिकाशत सत्यनारायण की कृपा की अभिव्यक्ति जल मे ही हुई है। लोक-वार्ता मे कथा की सृष्टि करनेवाला सत्यनारायण'[1] मे हमे उसी वरुण के दर्शन कराता मिलता है।

१—'सत्यनारायण' शब्द मे भी 'वरुण' का अर्थ दीखता है। 'सत्य' और 'ऋत' वेद मे 'अनृत' से विरुद्ध भाव रखते हैं। ऋत वेदों मे प्राय तीन

इससे और आगे इस कथा के 'पुत्र-दान' वाले अंश ने तो एकानेक रूप ग्रहण किये हैं। 'वरुण' का स्थान कहीं किसी देवता ने ले लिया है, कहीं किसी सिद्ध पुरुष ने, तो कहीं किसी दानव ने। जिस सम्प्रदाय ने इस कथा-वस्तु को ग्रहण किया उसने अपने अनुकूल ही 'वरुण' के स्थान पर किसी अपने इष्ट को स्थानापन्न कर दिया। गोरखपंथियों के प्रभाव से प्रभावित कहानियों मे यह कार्य सिद्ध ही करते मिलते हैं, बहुधा स्वयं गोरख या उनके कोई पहुँचे शिष्य।[१] किन्तु ब्रज

अर्थों में प्रयुक्त हुआ है—तीनों अर्थ परस्पर सुसम्बद्ध हैं। एक अर्थ ऋत का 'सत्य' भी है, तभी जो सत्य नहीं हैं उसे 'अनृत' कहा जाता है। वरुण 'ऋत' का स्वामी है, ऋत का रक्षक, ऋत का उद्गम (सा ऋतस्य, २, २८, ५) कहा गया है। 'नारायण' शब्दतः 'नार-अयण' है। यह सिंधुपति' का पर्याय माना जा सकता है। वेद मे 'सिंधुपति' शब्द मित्र और वरुण दोनों के लिए आया है। इसी नारायण=सिंधुपति के सूत्र से 'मित्र' और 'वरुण' का जो संयोग हुआ है उसने मित्र=सूर्य तथा वरुण को सत्यनारायण मे मिला दिया है। ऋत का सम्बन्ध वरुण से विशेष था, 'सत' का मित्र से। मित्रावरुण मिलकर 'ऋत-सत' (ऋतञ्च सत्यञ्च) के पालक हुए। यही मित्र तो 'सवितृ' भी है, जिसके सम्बन्ध मे नारमन ब्राउन ने लिखा है—

"यह भी तो पता चलता है कि एक ऐसा भी देवता था जिसका विशेष कर्तव्य यह भी था कि वह यह देखे कि दूसरे देवता अपना धर्म पालन कर रहे हैं या नहीं। यह सवितृ था। यह 'सत्य' अर्थात् 'सत' के नियमों के अनुसार लोगों से व्रतों का पालन कराता है। इसी कारण वह है 'सत्यधर्मन' यहाँ तक कि देवता भी उसकी आज्ञा के विरुद्ध चलने या उसकी अवज्ञा करने का साहस नहीं कर सकते (२, ३८, ७६; ५-८२-२) वह प्राणियों को उनके ध्येय तक पहुँचाता है (१. १२४. १, ५. ८१ २ [=वाजसनेयी संहिता १३. ३]; २. ३८. १; १. १५६. ५) अन्यत्र वह सौर देवता है, वह जलों को बाहर निकालता है (३ ३३.७) JOAS खंड ६२ पृ० ६६—The Creation Myth of the Rgveda by W Norman Brown.

इस उद्धरण से वह प्रक्रिया स्पष्ट हो जाती है जिसके कारण लोक-मानस मे वरुण, मित्र और सवितृ का समीकरण हुआ, और उसका एक नाम 'सत्य-नारायण' हुआ, जिसमे 'सत्य धर्मन' का 'सत्य' शब्द ज्यों का त्यों उतर आया है।

१—जाहरपीर मे गुरु गोरख ने फल अथवा जौ दिये हैं। नल का जन्म भी ऐसे ही साधु के वरदान से होता है। दशरथ के चारो पुत्र यज्ञ-चरु के हवि से होते हैं। आदि

मे प्रचलित एक कहानी मे लोक-मानस ने इस 'वरुण' को दानव का रूप भी प्रदान कर दिया है। दाना बाबाजी बन के आता है, पुत्र का वरदान देता है, पर कहता है कि वह पुत्र मुझे देना पडेगा। आखिर बाबाजी वरुण तो हो नही सकता। तब वह उसे खायेगा, मनुष्य को खाने वाला 'दानव या दाना'। लोक-मानस मे कहानी की रूपरेखा ठीक हो गयी, और 'वरुण' को यहाँ 'दाना' बनना ही पडा। अब वह तैल के कढाह मे पका कर उस बालक को खायेगा। उस बालक से सात परिक्रमाएँ भी करायेगा। 'दाना' तो बना, पर लोक-मानस उसे भी धार्मिक कर्मकाण्डी बना गया। यह दाना वह दाना नहीं जो अन्य कहानियो मे मनुष्यो को यो ही बिना किसी अनुष्ठान के मार-मार के खा जाता है। 'तैल का कढाह' यज्ञ का प्रतीक है, सात परिक्रमा उसे और भी धार्मिक रग दे देती हैं। इस कहानी मे कही तो वह बालक मारा जाता है, और बाद मे उसका बडा या छोटा भाई आकर उसे पुनरुज्जीवित करता है, दाने को मारता है, कही स्वय बालक ही दाने को अपने स्थान पर तैल के कढाह मे डाल देता है, और यहाँ वरुणत्व के द्योतक 'मणि-मूँगा' हमे मिल जाते हैं। वह दाना कढाह मे पडते ही मणि-मूँगो मे परिणत हो जाता है। बालक हर दशा मे शुन शेप की भाँति ही मुक्त हुआ है। किसी-किसी उदार लोक-मानस ने उस बाबाजी को दाना न बनाकर जादूगर ही बना दिया है, वह बालक वहाँ विद्या सीखता है और अन्त मे अपनी विद्या से अपने गुरु बाबाजी से झपटें करके और उसे मार कर अपने माता-पिता के पास आजाता है। वरुण मे दानवत्व का आरोप भी अकारण नही, उसका बीज ऋग्वेद मे आये शब्दो मे ही मिलता है। वरुण के लिए वेद मे 'असुर' शब्द का प्रयोग हुआ। भाषा-वैज्ञानिक जानते हैं कि यह 'असुर' जेन्दावस्ता का 'अहुर' है जो 'अहुरमज्द' नाम से जरथुस्त्र मतावलम्बियो के लिए 'वरुण' जैसा ही प्रधान देवता है। 'असुर' शब्दार्थत शक्तिशाली को कहा जायगा, किन्तु 'सुरो' के विरोध मे आगे चलकर 'असुरो' की जो कल्पना हुई उससे यह राक्षस और दानव का अर्थ देने लगे तो आश्चर्य की बात नही होगी।* वरुण को ऋग्वेद ने

---

* 'असुर' शब्द पर विद्वानों मे काफी विवाद रहा है। एक मत यह भी है कि असुर लोग असीरियन थे। 'वरुण' असुर थे और इनकी राजधानी 'सुषा' द्वारिका से पश्चिम समुद्र के मार्ग से १६०० मील दूर है। आजकल इसका नाम ईरानियों ने 'शुस्तर' रख छोडा है। यह अनार्य देवता हैं। 'वरुण' उसी प्रकार 'असुर' थे, जिस प्रकार बलि, बाणासुर, प्रह्लाद, हिरण्यकशिपु आदि। पुराण मे उषा-अनिरुद्ध के वृत्त मे बाणासुर का नगर 'शोणितपुर' या 'रुधिरपुर' बताया गया है। यह वरुण की नगरी 'सुषा' से आगे थी। बाण

मायिन भी वताया है प्रति यवनाचष्टे अनूनमनेया अ द्विता वरुणो मायीन सात। यही मायावी वरुण कभी वावाजी वन जाय, और जादू आदि के विविध चमत्कार दिखाये तो अपने विकास के मार्ग मे दूर नही पडेगा। यह 'वरुण' की कथा का एकरूप है। इन लोककथाओ मे वरुण का उल्लेख कही भी प्रत्यक्ष रूप में नहीं हुआ। किन्तु व्रज मे एक ऐसी भी कहानी मिलती है, जिसमे इस देवता का नाम भी सुरक्षित है। यह कहानी 'कातिक' मे 'कातिक-न्हान' के अनुष्ठान मे स्त्रियाँ कहती-सुनती हैं। यह कहानी 'वरन विदाक' की कहानी कही जाती है। यह 'वरन' 'वरुण' के अतिरिक्त और कौन हो सकता है? विदाक तो 'वृन्दारक' है ही। 'वरन विदाक' की कहानी मे निम्नलिखित मुख्य वातें हैं :—

१—एक राजा की वेटी, फूलों से तुलती, कार्तिक-स्नान करती पर वरन-विदाक की कहानी न सुनती . इस पर 'वरन-विदाक' रुष्ट हुआ।

२—दूसरे दिन इस देवता ने जल में इसका पैर छू दिया। अव वह फूलो से पूरी न तुली : इससे देवता का क्रोध विदित हुआ।

३—देवता से प्रार्थना . वह प्रसन्न हुआ . उसने प्रायश्चित वताया।

४—प्रायश्चित यह था

'राजा की वह वेटी अपने भाई को साथ लेकर, काले कपडे पहन, सवका उपहास सहते हुए धारा नगरी की यात्रा करे · धीरे-धीरे कपडे सफेद होने लगेंगे। वहाँ पत्थर के किवाड मिलेंगे। उन्हें खोलने पर जल के घडे और ध्वजा मिलेगी। पानी पीये नहीं। ध्वजा लेकर दोनो लौटें। उपहास सहते आयें। ध्वजा मुझ पर चढ़ाएँ। कपडे सफेद हो जायेंगे, कलक छूट जायगा।'

५—यही उन्होंने किया और कलक से मुक्त हुए।

'वरन विदाक' का भी जल से सम्वध है। यह भी राजा की वेटी के 'सत' के द्वारा उसके धर्म 'ऋत्' का प्रतिपालक है, क्योकि उसके रुष्ट होने पर राजा की वेटी जो फूलों से तुलती थी, न तुल सकी। यहाँ भी देवता अपनी उचित

को हराकर लौटते हुए श्रीकृष्ण को सुपा में वरुण से युद्ध करना पडा था। वाण की यह राजधानी 'निनेवा' थी। वाइविल मे इसी को 'व्लडी सिटी' या 'रुधिरपुर' कहा गया है। यदि विविध विद्वानों की इन मान्यताओं को स्वीकार कर लिया जाय तो 'वरुण' सवंधी कई वातों का स्पष्टीकरण हो जाता है। निनेवा के असुर क्रूर वताये गये हैं। इसीसे उनके नगर को रुधिर-पुर कहा गया था। 'वरुण' ने रोहित को प्राप्त करने के लिए इसी जातीय प्रवृत्ति के कारण क्रूरता दिखायी। असुरों में मायावीपन था ही। शुक्र इन्हीं असुरों के पुरोहित थे, वे मृतसंजीवनी विद्या जानते थे। (देखिये 'व्रजभारती —सं० २००६. पौष-फाल्गुन—] 'श्रीकृष्ण का असीरिया पर आक्रमण और विजय'—ले० श्री अमृत वसंत पंड्या)

माँग न पाने के कारण रुष्ट हुआ है। इस रोष का मूल वह वैदिक भाव है जो 'वरुण' को व्रत-अभिरक्षक मानता है 'वृत्राण्यन्य समिथेषु विघ्नते व्रतान्यन्यो अभिरक्षते सदा', वह न्यायकर्ता है। रानी की वेटी फूल से न तुल सकी, उसने सोचा, मैंने क्या पाप किया है ?—जैसे वेद के इस मन्त्र का भाव ही यहाँ ज्यो का त्यों लोकवार्ता मे विद्यमान हो

पृच्छे तदेनो वरुण दिदृक्षूपो एमि चिकितुषो विपृच्छम्।

समानमिन्मे कवयश्चिदाहुरय ह तुभ्य वरुणो हृणीते। (ऋ० ७, ८६, ३)

यह भी असदिग्ध है कि वरुण प्रार्थना से सतुष्ट होता है, और अपराध का प्रायश्चित चाहता है। प्रायश्चित कर लेने पर वह प्रसन्न होता है।

इस विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि ऋग्वेद मे हमे वे बीज और विन्दु और किसी सीमा तक उनका विकास मिलता है, जो ससार की लोक-वार्ता और लोक कहानी के एक विशद भाग का मूलाधार है। अनेको लोक-कहानियों का मूल, वेदो के द्वारा सौर देवताओं मे पाया जा सकता है, पाया भी गया है[1]। हम यहाँ इतने विस्तार से इस विषय की चर्चा नही कर सकते। कुछ प्रमुख वैदिक-कहानियो की रूप-रेखा 'व्रज साहित्य का अध्ययन' नामक पुस्तक के प्रथम अध्याय मे तथा यहाँ प्रस्तुत करदी गयी है। मैक्समूलर तथा उसकी शाखा के विद्वानो का यह अभिमत है कि इन वैदिक दिव्य देवताओ की कहानियाँ वेदो से भी पुरानी हैं। इन वार्त्ताओ का मूल ढाँचा विविध आर्य-परिवारो के एक दूसरे से पृथक होने से पूर्व ही गढा जा चुका था। यह हमारी शोध का विषय नही। इतना अवश्य मानना पडेगा कि वेदो मे जो सकेतात्मक उल्लेख है, उनसे तत्सम्बन्धी उस काल मे ज्ञात किसी भी कहानी के विकसित तथा लोक-प्रचलित रूप का ही पता चलता है। वेदोंमे अनेको कथाओ का सकेत है। वरुण, इन्द्र, सूर्य, उषा आदि के सम्बन्ध मे वैदिक कथाओ का कुछ उल्लेख यहाँ हुआ ही है। 'अश्विन' (जो बाद मे अश्विनीकुमार हो गये) की कथा कम आकर्षक और विचित्र नही।* श्री ऐच० एल० हरियाना ने 'ऋग्वैदिक लीजेण्डस थ्रू द ऐजेज' नामक पुस्तक मे बताया है कि 'शौनक' के 'वृहद्देवता' मे ४० आख्यानो (legends) का उल्लेख हैं। आख्यान-विषयक अध्ययन की दृष्टि से यही प्राचीनतम ग्रन्थ है। वृहद्देवता, कात्यायन की सर्वानुक्रमणी, सद्गुरुशिष्य की

१—देखिये 'दी माइथालोजी आव दी आर्यन नेशन्स' – लेखक रेवरेण्ड सर जी० डब्ल्यू काक्स तथा इस पुस्तक का तथा 'व्रजलोक साहित्य का अध्ययन' नामक पुस्तक का प्रथम अध्याय।

* देखिये घाटे महोदय की पुस्तक 'लैकचर्स आन ऋग्वेद', अध्याय ३, पृ० ७० तथा व्याख्यान आठवां तथा नवां।

उस पर टीका तथा सायरण का भाष्य, इन सब मे वैदिक आख्यानो पर प्रचुर सामग्री उपलब्ध हो जाती है। इन्द्र के पचहत्तर से भी ऊपर पराक्रमो का उल्लेख हुआ है। आश्विनो का चरित्र भी महत्वपूर्ण है, उसमे आधुनिक चिकित्साशास्त्र की उपलब्धियो के समान ही उपलब्धियो का सकेत है। श्री हरियाना आगे लिखते हैं कि इन दिव्यात्माओ (detıes) के अतिरिक्त ऋग्वेद मे सामान्य प्रकार की २९ आख्यायिकाएँ (legends) मिलती हैं। वे ये हैं—

१ सरमा १-६-५
शुनस्सेप १-२४-१
कक्षिवत् तथा स्वनय, १, १२५
दीर्घतमस १-१४७
५ अगस्त्य तथा लोपामुद्रा १-१७९
गृत्समद २-१२
वशिष्ठ तथा विश्वामित्र ३-५३., ७-३३ आदि
सोमावतरण ३-१३
वामदेव ४-१८
१० अयरुण तथा वृषजान ५-२
अग्नि-जन्म ५-११
श्यावाश्व ५-५२
सप्त-वध्रि ५-७८
ब्रवु तथा भरद्वाज-६-४५
१५ ऋजिश्वन तथा-अतियाज ६-५२
सरस्वती-तथा वध्रयश्व ६-६१
विष्णु के तीन पग ६-६९
वृहस्पति-जन्म ६-७१
राजा सुदाम—७-१८ आदि
२० नहुष-७-९५
असग ८१-३३
अपाला ८-९१
कुत्स १०-३८ (१, ३३, ५७, ९७ आदि)
राजा असमाति तथा चार होता १०-५७-६०
२५ नामानेदिष्ठ १०-६१, ६२
वृषाकपि १०-८६
उर्वसी तथा पुरुरवा १०-९५

देवापि तथा शान्तनु १०-६८
नचिकेतस १०-१३५

इनके साथ मे 'दान-स्तुतियो' मे पाकस्थासन, कुसग, कशु, तिरिन्दर, त्रस-दस्यु, चित्र, वरु, पृथु श्रवस, ऋक्ष, तथा अश्वमेघ, इन्द्रोन तथा अतिथिग्व आदि (८ वाँ मडल) की प्रशस्तियाँ हैं। इनका भी सबध उन घटनाओ मे हैं जिनसे दान प्राप्त हुआ और जिनके कारण यह प्रशसा की गयी।[1]

उपनिषद-कहानी—वेदो मे जा आख्यान मिलते है उनसे तो विद्वानो ने नाटक के मूल की भी कल्पना की है।* इन आख्यानो मे से प्रसिद्ध आख्यान है पुरूरवा तथा उर्वशी का, यम-यमी का। अगस्त्य और लोमामुद्रा की कहानी भी इसी वर्ग की है। वेद और वैदिक साहित्य की इन कहानियो को इस उपनिषद-काल से पूर्व का कह सकते हैं। उपनिषदो मे इन्हे कुछ नया रूप मिलता है। गार्गी और याज्ञवल्क्य का सवाद, सत्काम जावाल, प्रवाहण तथा अश्वमति की कहानियाँ उपनिषद-युग मे मिलती हैं। वैदिक काल की कहानियाँ किसी-न-किसी रूप मे यज्ञ की विधि और अनुष्ठान से अथवा स्तुतियों (जैसे दान-स्तुतियाँ) से सम्वन्धित थी। विविध देवताओ के कृत्य ही इन कहानियो के विशेष विषय थे। उपनिषद काल की कहानियो मे यह अलौकिकता और आनुष्ठानिक स्वरूप नही मिलता। देवताओ का स्थान राजा या ऋषिपुत्र ने ग्रहण किया है। इन उपनिषदो मे 'दृष्टान्त' कहानियो का भी उपयोग हुआ है। केन उपनिषद मे आई दिव्य पुरुष सम्वन्धी रोचक कहानी कौन भूल सकता है। कठोपनिषदऽ भी स्वय एक कहानी है, जो हिन्दी मे अपने दार्शनिक तत्व को गौण करके 'नासिकेतोपाख्यान' के रूप मे सदल मिश्र द्वारा सस्कृत से अनुवाद द्वारा लायी गयी है। उपनिषद युग प्रवल चिन्तना का युग था। फलत 'कहानी' के उद्घाटन की प्रेरणा इस युग मे दुर्वल हो गयी थी। किन्तु इस युग के वाद जो युग आता है, उसने तो कहानी को इतना महत्व दिया कि वही सव प्रकार के भावो का माध्यम वन गयी। यथार्थ मे 'कहानी' की वास्तविक प्रतिष्ठा इसी युग मे हुई।

---

१ देखिये Rgvedic Legends Through The Ages पृ० १३९-१४०

*'वैदिक आख्यान' लेखक जे०बी० कीथ तथा 'दसस्कृत ड्रामा' लेखक वही।

ऽ—केन उपनिषद की 'प्रकाश की लाट' (pillar of light) एक महत्वपूर्ण अभिप्राय है जो माइयालाजी मे वहुधा मिलता है। भारतीय धर्म-गाथाओं मे भी इसका एकाधिक वार उपयोग हुआ है। शिवलिंग भूपर पतित होने पर अनन्त प्रकाशस्तम्भ के रूप मे खड़ा होगया था। इसी प्रकार यमलोक या मृत्यु-लोक मे जाने की घटना भी लोक-कथा या धर्मगाथा का अत्यन्त प्रच-लित विश्व प्रसिद्ध अभिप्राय या मोटिफ है।

यह युग रामायण-महाभारत का युग कहा जा सकता है। रामायण और महाभारत पौराणिक युग के पूर्व-गामी महाकाव्य हैं। रामायण और महाभारत के स्वभाव मे बहुत अन्तर है। रामायण मे प्राय एक ही सुसम्बद्ध कथानक है। इतना होते हुए भी सदर्भ की भाँति इसमे भी कई कहानियाँ और पिरोयी मिलती हैं। 'गगावतरण' तथा 'गौतम या अहल्या' की दो प्रसिद्ध कहानियाँ तो बालकाण्ड मे ही मिल जाती हैं। और भी छोटी-बडी कहानियाँ इसमे मिलती हैं। 'महाभारत' तो कहानियो का वृहत्कोप ही है। इसमे कहानियो का मूल-कथा-सूत्र से उतना घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं। इसमे एकानेक उद्देश्य और अभिप्राय वाली अनेकानेक कहानिया हैं जो कही तो मुख्य कथा-वस्तु की प्रासगिक वस्तु का काम देती हैं, कहीं दृष्टान्त की भाँति हैं। कहीं पूर्वेतिहास के रूप मे हैं, और इनके द्वारा नीति और राजनीति, धर्म और समाज, प्रेम और मर्यादा के न जाने कितने सत्य और तथ्य प्रस्तुत किये गये हैं। इस महाभारत मे इतिहास और लोकवार्ता के तथ्य इतने घुलेमिले हैं कि इसके पात्रो के अस्तित्व के सम्बन्ध में भी सदेह होने लगता है। ऐसे विचारो का यह परिणाम हुआ है कि कुछ विद्वान कृष्ण, युधिष्ठिर आदि को काल्पनिक और अनैतिहासिक व्यक्ति मानते हैं। 'महाभारत' का हमारे यहाँ अत्यन्त महत्व है। धर्म और समाज का तथा हमारे इतिहास और विश्वास का यह स्रोत है। अनेको महाकवियो को इसमे से अपने काव्यो के लिए अखण्ड सामग्री और प्रेरणा प्राप्त हुई है। हमे यहाँ इसके ऐतिहासिक मूल्य का विचार नही करना है। हम यहाँ यह भी नही कहना चाहते कि महाभारत आदि से अन्त तक मात्र कहानी-कथा का ही सग्रह है। किन्तु लोक-वार्त्ता का रूप उसमे प्रकट हुआ है, यह निर्विवाद है। इसमे प्रधान-वस्तु के साथ दृष्टान्त-स्वरूप अनेकों आख्यान और उपाख्यान आये हैं। ये आख्यान और उपाख्यान महाभारत से भी पहले की लोक-प्रचलित कथाएँ ही हैं। वनपर्व मे 'नल' की कथा ऐसी ही है। इस कथा का उपयोग युधिष्ठिर को दुःख मे धैर्य और आशा जागृत करने के लिए किया गया है। इसी प्रकार शान्तिपर्व मे विशेष उपदेशों को हृदयङ्गम कराने के लिए कहानियो और उपाख्यानों को दृष्टान्त-स्वरूप दिया गया है। उपाख्यानो का महाभारत मे क्या मूल्य है इसे तो महाभारत की साक्षी से ही समझा जा सकता है। आदि पर्व १।१०२-१०३ मे कहा गया है —

> उपाख्यानैं सह ज्ञेयमाद्यं भारतमुत्तमम् ।
> चतुर्विंशति साहस्त्री चक्रे भारत सहिताम् ।
> उपाख्यानैर्विना तावद्भारत प्रोच्यते बुधैं ॥
> ततोऽप्य र्धशतभूय सक्षेप कृतवानृवि ॥

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि महाभारत के एकलाख श्लोको मे से २४००० श्लोको मे प्रधान वस्तु है। शेष ७६००० मे उपाख्यान हैं। एक चौथाई मूल कथा को तीन चौथाई उपाख्यानो के साथ महाकवि ने पल्लवित कर 'महाभारत' का निर्माण किया है। महाभारत मे एक नही अनेको लोक-वार्ता के रोचक तत्व मिलते है, जो विविध रूपो मे विविध लोक-वार्ताओ और कथाओ मे मिल जाते है। 'कर्ण' का नदी मे वहाये जाना, उसका सूत द्वारा पालन वह सूत्र है जो अनेको व्रज की कहानियो मे आज भी मिलता है।

इस वृत्त मे तीन तत्व है (१) पिटारे मे वद करके नदी मे वहाना। (२) सद्यजात शिशु का वहाना। इसी का रूपान्तर हुआ सद्यजात शिशु को माँ से अलग कर अन्यत्र फिकवा देना। (३) किसी अन्य द्वारा उसका पालन-पोषण। इन तीनो के मूल तथा रूपान्तर युक्त वृत्त कई तरह के रूप ग्रहण कर लेते हैं। ये विश्व की अनेको लोकवार्त्ताओ और लोक-कथाओ मे मिलते हैं। सख्या १ का अभिप्राय तो 'मूसा' से भी सम्वन्धित है और ईस्वी २-३ हजार वर्ष पूर्व मिस्र मे भी ओसीरिस को जीवित ही पिटारे मे वन्द करके नदी मे वहा दिया गया था। यह ओसिरिस शिशु नही, पूर्ण वय प्राप्त मनुष्य था। पर मूसा तो शिशु ही था, अत मूसा के साथ स० २ का तत्व भी विद्यमान है। इन प्रसिद्ध वृत्तो के अतिरिक्त शतश. अन्य लोक-कहानियो मे ये अभिप्राय मिल जाते हैं।

'हिरणावती' की कहानी मे ही नही, एक लोकगीत-कहानी मे भी एक राजा की रानी के पुत्र को उसकी सपत्नियाँ घूरे पर फिकवा देती हैं, उसे कुम्हार पालता है। वीर विक्रमादित्य की एक कहानी मे भी इसी प्रकार उस लडकी के पुत्र को सपत्नियाँ घूरे पर फिकवा देती हैं जिसने यह भविष्यवाणी की थी कि उसके जो लडका होगा वह लाल उगलेगा। इन कहानियो मे घूरे का उल्लेख है, अन्य कई कहानियो मे इसी प्रकार नदी का भी उल्लेख मिलता है। भीम की कहानी तो लोक-वार्त्ता की सार्वभौम सम्पत्ति है। भीम से विकल होकर कौरवो ने उसे विष खिलाकर गगा मे पटक दिया। भीम पाताल मे नागो के लोक मे जा पहुँचा। सर्पों ने उसे काट लिया। अव तो एक विष ने दूसरे को नष्ट कर दिया, भीम जग पडा, उसने सर्पों को खूव मारा। इस पराक्रमी मानवी वालक को देखने की उत्कण्ठा वासुकि मे उदय हुई। वासुकि के साथ आर्यक भी था। आर्यक भीम की माता का प्रपितामह था। वह वासुकि का भी अत्यन्त प्रिय था। वासुकि ने आर्यक के इस सम्वन्धी को मनचाही वस्तु भेंट करने की इच्छा प्रकट की। आर्यक ने कहा कि भीम को आप अमृत पी लेने दे। भीम ने आठ कटोरे यह शक्तिप्रद जल पिया। जल मे गिरकर सर्प-लोक पहुँचने

की वार्त्ता एक मे नही, अनेको कहानियो मे मिलती है। 'वासुकि' के प्रसन्न होकर कुछ देने की वात भी साथ ही रहती है। व्रज की प्रसिद्ध लोक-गीत-कहानी 'ढोला' मे इसी प्रकार समुद्र मे फेंक देने पर नल वासुकि के पास पहुँचा है। जहाँ उसने वह अँगूठी प्राप्त की है जिससे वह अपने मनोनुकूल चाहे जैसा रूप धारण कर सकता है। इसी प्रकार लोक-वार्त्ता के अनेको परिपक्व तत्व महाभारत में मिलते है, जिनके प्रयोग से महाभारत के महाकवि ने अपने प्रकृत कथानक को अद्भुत और रोचक वनाया है। तभी सर जार्ज ग्रियर्सन ने महाभारत के सबन्ध में यह अभिमत प्रकट किया है "कि महाभारत भी पहलेपहल लोक महाकाव्य (Folk Epic) के रूपमे एक प्राचीन प्राकृतभाषा मे अवतीर्ण हुआ, और वाद मे यह सस्कृत में अनूदित हुआ, जिस भाषा में इसमे काफी सशोधन परिवर्द्धन किया गया, तव कही इसे अन्तिम रूप प्राप्त हुआ"—(ऐनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका खण्ड XXII पृ० २५३)

महाभारत की भाँति पुराणों में भी कथा-साहित्य का अखण्ड भण्डार भरा पडा है। पर जैसा हम पहले अध्याय में कह चुके हैं, इनमें लोकवार्त्ता का अश रहते हुए भी ये धर्म-गाथाएँ हैं। इनसे भारत की धार्मिक भावनाओ का घनिष्ठ सम्वन्ध है।*

वृहत्कथा

कथा-साहित्य की दृष्टि से शुद्ध लोक-कहानियों का वृहत् सग्रह गुणाढ्य की पैशाची मे लिखी 'वड्डकहा' है। यह वृहत्कथा आज अप्राप्य है। इसका सस्कृत अनुवाद 'कथासरित्सागर' के रूप मे आज तक मिलता है। यह ग्रन्थ वास्तव मे कथाओ का सागर ही है। इसमें अति प्राचीन प्रचलित कहानियो का सग्रह है। महाभाष्य[1] मे एक महाकाव्य, तीन आख्यायिकाओ और दो नाटको का उल्लेख मिलता है। आख्यायिकाए ही लोक-कथाए हैं। ये लोक-कथाए हैं—वासवदत्ता, सुमनोत्तरा, और चैत्ररथी। 'वासवदत्ता' यथार्थ मे उदयन की कथा का मूलाधार प्रतीत होती है। 'कालिदास' ने मेघ को वताया है कि जव वह उज्जयनी मे पहुँचेगा तो उसे वहाँ 'उदयनकथा' कहने वाले वृद्ध मिलेंगे।[2] कथा-सरित्सागर का सक्षिप्त विवरण यहाँ दे देना उचित प्रतीत होता है। कथा-सरित्सागर मे अठारह खड हैं, जिनमे १२४ अध्याय हैं।

प्रथम अध्याय पूर्व पीठिका है। शिवजी ने एकान्त में पार्वतीजी को कहानियाँ सुनायी। पार्वती जी ने यह निषेध कर दिया था कि कोई भी उस समय

---

* देखिये इसी पुस्तक के इसी अध्याय का पृ० १४०-१४१

१— महर्षि पतजलि-कृत महाभाष्य।

२—प्राप्यावन्तीनुदयन कथा कोविद ग्रामवृद्धान्,
पूर्वोद्दिष्टामनुसर पुरीं श्री विशाला विशालम्। (मेघदूत २०)

उनके पास न जाय ।[1] किन्तु शिव के एक गरण पुष्पदन्त ने छिपकर वे कहानियाँ सुन ली । अपनी स्त्री जया को उसने वे कहानियाँ सुना दी । जया ने पार्वती को वे फिर जा सुनायी, तो रहस्य खुला । पार्वती ने रुष्ट होकर पुष्पदन्त को शाप दिया कि वह पृथ्वी पर मनुष्य योनि मे जन्म ले । माल्यवान ने उसके पक्ष मे कुछ कहना चाहा तो उसे भी वही शाप मिला । पार्वतीजी ने बताया कि एक यक्ष शाप वश कुछ काल के लिए पिशाच बन गया है, जब पुष्पदन्त की उससे भेंट होगी और उसे अपनी पूर्वस्थिति का स्मरण हो आयेगा, तब यदि वह पुष्पदन्त शिव से सुनी कहानियाँ उस पिशाच को सुना देगा तो अपने दिव्य स्वरूप को प्राप्त कर लेगा । माल्यवान इन्ही कहानियो को उस पिशाच से सुनकर मुक्त हो जायगा ।

पुष्पदन्त ने वररुचि का अवतार लिया, माल्यवान हुआ गुणाढ्य । वररुचि अनेको आश्चर्य-जनक घटनाओ मे से होता हुआ उस पिशाच से मिला । उसे कहानियाँ सुनाकर शाप मुक्त हुआ । इसी प्रकार गुणाढ्य पिशाच से मिला, उससे वे कहानियाँ सुनी, उन्हे पैशाची मे लिखा और सातवाहन राजा को भेंट-स्वरूप देने गया । राजा ने उन्हे स्वीकार नही किया, तो पशु-पक्षियो को सुना-सुनाकर वह एक-एक पृष्ठ जलाने लगा । तब राजा ने महत्व समझकर उस ग्रंथ के अवशेष को बचाया और सस्कृत मे लिखाया । इस प्रकार गुणाढ्य भी मुक्त हुआ । यही कथाए सरित्सागर की कथाए हैं । इस अध्याय मे कितनी ही रोचक और महत्वपूर्ण बातें मिलती हैं । वररुचि और पाणिनि दोनो वैयाकरण थे । उनके सबध मे किम्वदन्तियो का कुछ उल्लेख इसमे है । पर लोक-वार्ता की दृष्टि से वररुचि की पत्नी 'उपकोशा' की कथा महत्व की है ।

पाणिनि से परास्त होने पर वररुचि को बडा क्षोभ हुआ । वह व्याकरण की सिद्धि के लिए हिमालय मे महादेव की तपस्या करने चला गया । घर का प्रबन्ध अपनी पत्नी को सौंप गया । उपकोशा गगा-स्नान को जाया करती थी । उस पर राजपुत्र के गुरु, कोतवाल (नगर-रक्षको का अधिकारी) तथा राज-पुरोहित की दृष्टि पडी और सभी उन्मादग्रस्त होगये । उसने उन्हे अलग-अलग समय पर अपने घर आने का निमत्रण दे दिया । जिस महाजन के पास रुपये जमा कर दिये गये थे, उपकोशा ने जब उससे रुपये माँगे तो वह भी प्रेमोन्मादी हो गया । उपकोशा ने सबसे अन्त का समय उसे दे दिया । अब उसने उनके दड की व्यवस्था की । पहले राजगुरु आये, उन्हे अँधेरे कमरे मे लेजाकर स्नान

---

१ —यह कथानक रूढि या अभिप्राय शिव-पार्वती को लेकर भारत मे अनेकों कथाओ मे मिलता है । गणेश चतुर्थी की कहानी मे तथा शुकदेव-जन्म की कहानी मे यह अत्यन्त प्रख्यात है ।

कराने के वहाने तेल-कालौंच से खूब पोत दिया । तवतक राजपुरोहित आ धमके भेद न खुले इसलिए राजगुरु को एक मजूषा मे बन्दकर दिया गया । इसी प्रकार राजगुरु और नगर-रक्षक के साथ किया गया । तव महाजन हिरण्यगुप्त आया । वह उसे तीनो मजूषाओ के पास ले गयी और वहाँ उससे यह घोषित कराया कि वह उस सम्पत्ति को जो उसका पति उसके पास रख गया है, दे देगा । उपकोशा ने तीनों मजूषाओं को सम्बोधन करके कहा कि हिरण्यगुप्त की इस प्रतिज्ञा को हमारे तीनो देवता सुनलें । तव उस महाजन को भी कालौंच से पोता गया । तव तक सवेरा होने लगा और नौकरो ने उसे घर से वाहर नग-धडग निकाल दिया । उपकोशा प्रात काल राजा के यहाँ गयी और महाजन पर अपना अभियोग उपस्थित किया । राजा ने महाजन को बुलाया । उसने कहा कि मैंने कोई भी धन नही पाया । उपकोशा ने मजूषा के देवताओ की साक्षी दिला दी । महाजन मजूषा की वाणी से भयभीत हुआ । उसने सम्पत्ति लौटा देने का वचन दिया । मजूषा सभा मे ही खोली गयी, तीनो रसिको का उपहास हुआ । उन्हे देश-निष्कासन का दण्ड मिला । यह कहानी अत्यन्त लोकप्रिय कहानी है । यूरोप और फारस मे वहुत काल से लोककथा के रूप मे प्रचलित है ।[१] व्रज मे यही कहानी रूपान्तरित होकर ग्रामीण वातावरण के अनुकूल वन गयी है, और इसका नाम हो गया है 'ठाकुर रामप्रसाद' ।

दूसरी महत्व की वात है वररुचि के गुरुभाई इन्द्रदत्त का योगविद्या के द्वारा अपने शरीर को छोडकर राजा नन्द के मृत शरीर मे प्रवेश कर जाना । आत्मा का एक शरीर को छोड कर दूसरे में जाना भारतीय लोक-कहानियो मे वहुधा आता है । वीर विक्रमाजीत की कहानी मे तो इसका विशेष उल्लेख है ।

दूसरे भाग मे कौशाम्वी के राजा उययन के पराक्रमो तथा उज्जयिनी की राजकुमारी वासवदत्ता से उसके विवाह का वर्णन है । तीसरे भाग मे मगध की राजकुमारी से उसके विवाह का वृत्त है, चौथे भाग मे वासवदत्ता से नरवाहनदत्त नामक पुत्र के उत्पन्न होने की कहानी है । नरवाहनदत्त के साथ ही उदयन (वत्स) के मन्त्रियों के भी पुत्र उत्पन्न हुए । ये नरवाहनदत्त के सखा और मन्त्री वने । पाँचवें भाग मे एक ऐसे मनुष्य का वृत्त है, जिसने अपने पराक्रम से विद्याधर योनि मे जन्म लिया । विद्याधरो के राजा का भी वर्णन किया गया

१—स्काट ने 'ऐडीशनल अरेवियन नाइट्स' में यह कहानी 'लेडी आव कैरो एण्ड हर फोर गैलेण्टस' के नाम से दी है और 'टेल्स एण्ड ऐनैकडोट्स' मे मरचैण्टस वाइफ एण्ड हर सूटर्स के नाम से । अरौरा के नाम से यह फारसी कहानियों मे मिलती है । यूरोप में कहीं इसका नाम कस्टण्ट डु हैमिल अथवा 'ला डेम कुइ अट्प अन प्रिवीट् एट अन पारेस्टियर' है ।

है, क्योकि भविष्यवक्ताओ ने यह सूचना दी है कि नरवाहनदत्त भी विद्याधरो का राजा बनेगा।

इन अध्यायो मे देवस्मिता की कहानी ध्यान देने योग्य है। गुहसेन और देवस्मिता एक दूसरे को अत्यन्त प्रेम करते है, गुहसेन को काम मे बाहर जाना पडता है। स्वप्न मे शिवजी इन्हे एक-एक लाल कमल का फूल देते हैं। इस फूल से उनकी पवित्रता की परख हो सकती है। जब उनके चरित्र मे मलिनता आयेगी फूल कुम्हिला जायेगा।[1] गुहसेन से उसकी पत्नी के सत की प्रशसा सुनकर चार मनुष्य उसकी परीक्षा लेने चल पडे। उन्होने एक वृद्धा भिक्षुणी को इस कार्य सम्पादन के लिए नियुक्त किया। इस वृद्धा ने देवस्मिता से हेल-मेल बढाया। यह एक कुतिया को साथ ले जाती थी। उसकी आँखो मे मिर्च भर देती थी जिससे आँसू निकलते रहते। देवस्मिता ने रोने का कारण पूछा। उसने बताया, कि पहले जन्म मे यह कुतिया और मैं एक ब्राह्मण की पत्नियाँ थी। ब्राह्मण बहुधा बाहर जाया करता था, तब मैं तो मन की मौज के अनुसार एक मनुष्य के साथ रमा करती थी, यह पातिव्रत और सयम से रहती थी, फलस्वरूप मैं तो स्त्री बनी और यह कुतिया। पूर्व-जन्म की याद कर रोती है। देवस्मिता चक्र को ताड गयी। उसने बुढिया से कहा कि वह उसके लिए कोई प्रेमी बताये। बुढिया एक एक कर चारो को उसके यहाँ पहुँचा आयी। देवस्मिता ने उन्हे धतूरा पिलाकर बेसुध किया और हर एक के माथे पर कुत्ते के पजे से दाग कर दिया। उस वृद्धा भिक्षुणी के उसने नाक-कान काट लिये। चारो व्यापारियो के चले जाने पर देवस्मिता ने उनका पीछा किया, राजा की सभा मे जाकर उसने उन चारो को अपना भृत्य सिद्ध किया। इस कहानी मे कुतिया का जिस रूप मे उल्लेख हुआ है, कुछ वैसा ही अनेको पाश्चात्य कहानियो मे हुआ है।[2] यह कहानी भी अत्यन्त लोकप्रिय सिद्ध हुई हैं।

शक्तिदेव की कहानी भी अद्भुत है। वर्द्धमान की राजकुमारी उसी पुरुष से विवाह करना चाहती है जिसने 'स्वर्ण नगर' देखा हो। शक्तिदेव उस नगर को देखने के लिए चल पडता है। एक साधु के पास पहुँचता है, वह उसे अपने बडे भाई के पास भेज देता है। वहाँ से उसे किसी द्वीप पर जाने को कहा जाता है। समुद्र-यात्राओ मे उसका जहाज डूबता है, वह एक स्थान पर भँवर

१—जिस प्रकार यहाँ कमल का उपयोग हुआ है, उसी प्रकार 'सत' की परख के लिए और भी उपाय अन्य कहानियों मे उपयोग में आते मिलते हैं।

२—देखिये एच० एच० विलसन के सस्कृत साहित्य के विषय के लेखों का दूसरा भाग तथा टानी सपादित कथासरित्सागर अध्याय १३ के अन्त की टिप्पणी।

मे फँस जाता है, उसमे से एक वट वृक्ष की लटकती शाखा को उछलकर पकड लेने पर ही बच पाता है। वटवृक्ष पर से उसे गरुड ले उडता है और स्वर्ण-नगर मे पहुँचा देता है। वह विद्याधरियो का देश है। वहाँ उसका स्वागत होता है। सबसे बडी विद्याधरी उसे अपना भावी पति बताती है, किन्तु विवाह के लिए माता-पिता की आज्ञा आवश्यक है। वे विद्याधरियाँ वह आज्ञा लेने चली जाती हैं। शक्तिदेव अकेला रह गया है। उसे यह समझा दिया गया है कि वह मध्यवर्ती भवन मे न जाय। उसकी उत्सुकता बढ जाती है। आदेश की अवहेलना करके वह उसमे जाता है। वहाँ उसे तीन सुन्दरियो के शव मिलते हैं। एक उनमे से उसी वर्द्धमान सुन्दरी का शव है। वह बडे आश्चर्य मे पडता है। आगे बढकर उसे एक कसाकसाया घोडा मिलता है। वह घोडा उसे ठोकर से पास के तालाब मे गिरा देता है। शक्तिदेव तालाब से बाहर निकलता है तो देखता है कि वह अपने उसी वर्द्धमान नगर मे है। वर्द्धमान की राज-कुमारी को वह इस नगर का विवरण बताता है। वह राजकुमारी वास्तव मे विद्याधरी थी, उसी का शरीर वहाँ शव के रूप में वह देख आया था। उसके शाप की अवधि समाप्त हो गयी। वह उड गयी। शक्तिदेव उसे पाने के लिए पुन: स्वर्णनगर की खोज मे चला। उसे मार्ग में दो और विद्याधरियो से विवाह करना पडा। वह स्वर्णनगर में पहुँचा तो उसे वही वर्द्धमान सुन्दरी मिली। उससे तथा विद्याधरियो की रानी से उसका विवाह हुआ। उसने शक्तिदेव को विद्याधरो का राजा बना दिया।

यह कहानी भी पूर्व और पश्चिम में अत्यन्त लोक-प्रिय हुई है। कुछ ऐसी ही कहानी जैन-कथाओ मे भी प्रचलित हैं, जिनका अंग्रेजी में सग्रह और अनुवाद जे० जे० मेयर महोदय ने 'हिन्दू-टेल्स' नाम से किया है। वस्तुत विद्याधरो का अभिप्राय प्रधानत जैन अभिप्राय प्रतीत होता है। पुन-र्जन्म का स्मरण भी मूलत जैन अभिप्राय है। ब्रज म इसी कहानी के अनुरूप कई कहानियाँ हैं। किसी किसी कहानी में इस कहानी का कुछ अश ही मिलता है। राजा चन्द की कहानी में वृक्ष के ऊपर बैठने से, वृक्ष द्वारा ही एक दूरस्थ नगरमें पहुँच जाने की बात मिलती है। 'बेजान शहर' की कहानी में 'राजकुमार' गरुडपक्षी के द्वारा ही 'अखैवर' के पास पहुँचाया जाता है। होमर के 'ओडसी' महाकाव्य में भी 'यूलिसीज' समुद्र की भँवर में फँसने पर इसी प्रकार वृक्ष पर चढकर बचा है। 'तम्बोली की लडकी' की व्रज-प्रच-लित कहानी में तम्बोली की लडकी उसी से विवाह करना चाहती है जो 'बेजान नगर' का हाल बतायेगा। यह घटना 'शक्ति-देव' की घटना से मिलती है। जिस प्रकार 'स्वर्ण नगर' का हाल सुनकर कनकरेखा अपने मूल रूप को

प्राप्त कर लेती है, और यहाँ उसका शरीर पड़ा रह जाता है, इसी प्रकार ब्रज की कहानी में जैसे जैसे तम्बोली की लड़की वृत्त सुनती जाती है, पत्थर की होती जाती है। इन दोनो कहानियो मे और भी बहुत से साम्य है। तबोली की लड़की भी अप्सरा थी, जिसका वास्तविक शरीर 'बेजान नगर' में रहता था। राजकुमार अन्त में उसे प्राप्त ही कर लेता है। झील मे गिरने पर दूसरे लोक में पहुँच जाने की बात भी कई कहानियो मे है। हितोपदेश के कदर्पकेतु में भी ऐसी ही घटना है।*

छठे खड में कलिंगसेना की पुत्री का नरवाहनदत्त से विवाह होने का वृत्त ही प्रधान है। कलिंगसेना वत्स से विवाह करना चाहती है। पर वत्स और विवाह करना नही चाहता, दो पहले ही कर चुका है। विवाह किया जाय या नही इस सम्बन्ध मे कलिंगसेना और उसकी सखी विद्याधरी मे जो विचार होता है उसमे कितनी ही कहानियाँ दृष्टान्त स्वरूप दी गयी हैं। अन्त मे एक विद्याधर वत्स का रूप धारण कर आ जाता है, कलिंगसेना का उससे विवाह हो जाता है। उनके जो पुत्री होती है उसका विवाह नरवाहनदत्त से होता है। इस खण्ड की कहानियो मे से एक तो मूर्ख ब्राह्मण की स्त्री की है जिसने पिशाच से अपने पति को बचाया था। अट्ठाइसवें अध्याय मे राजा गुहसेन के राजकुमार और व्यापारी ब्रह्मदत्त के पुत्र की मित्रता की कहानी का मूल अश ब्रज की 'यारु होइ तौ ऐसो होइ' मे ही नही मिलता, अन्य कहानियो मे भी मिलता है। केवल कुछ अन्तर है। ब्रज मे 'भैया दौज' की कहानी मे भी ऐसे सकटो का उल्लेख है। दरवाजे के गिरने की घटना दोनो में समान है। कथा-सरित्सागर की कहानी मे हार और आम का उल्लेख है। ब्रज की कहानियो मे वृक्ष की शाखा के गिरने का उल्लेख है। सागर की इस कहानी मे मत्री-पुत्र ने आने वाले सकटो को विद्याधरियो से सुना है। उन्होंने ही क्रुद्ध होकर अभिशाप के रूप मे ये सकट डाले हैं। 'यारु होइ तौ ऐसो होइ' मे ये पक्षियो से सुने गये हैं। मित्र को राजकुमार की रक्षा के लिए अन्तिम बार राजकुमार के अन्तरग भवन मे भी जाना पड़ता है। सागर की कहानी मे तो राजकुमार को प्रत्येक छीक पर 'ईश्वर की कृपा याचना' करने के लिए मित्र की खाट के नीचे छिपना पड़ा है। उसे वहाँ से निकलते ही वह राजकुमार देख सका, 'यारु होइ तौ ऐसो होइ' मे आने वाले साँप से बचाने के लिए वह मित्र वहाँ गया है। साँप का विष रानी के ऊपर पड़ा है, उसे पोछने के उपक्रम मे राजकुमार ने मत्री-पुत्र को सदेह मे पकड़ा है। तात्पर्य यह है कि यह कहानी बहुत

*—राल्सन की 'रशियन' फोक टेल्स मे इस घटना के यूरोपीय सस्करणों का उल्लेख है। बङ्गाल मे यह बेजान-नगर के नाम से ही मिलती है।

महत्वपूर्ण है। ब्रज की प्रचलित लोक-कहानी सागर की कहानी से पुरानी परम्परा मे विदित होती है।

'हरिशर्मा' की कहानी, जो कथासरित्सागर मे बीसवें अध्याय के अन्त मे आयी है ब्रज की लोक कहानियो मे सगुनी कोरिया की कहानी बन गयी है। ब्रज की लोक-कहानी मे 'नीदरिया' ने जो काम किया है, वही यहाँ 'जिह्वा' ने किया है। सागर की कहानी के स्थूलदत्त के जामातृ का घोडा ब्रज की प्रचलित कहानी में कुम्हारी का गधा बन गया है।[1]

सातवें खड मे नरवाहनदत्त और एक विद्याधरी के विवाह की कहानी प्रधान है। यह विवाह हिमालय के शिखर पर होता है। विवाह हो जाने पर जब दम्पत्ति लौट कर घर आते हैं, तब कौशाम्बी मे तो विद्याधरी रत्न-प्रभा ने अपने भवनो के द्वार अपने राजा के सभी मिलने वालो के लिए खोल दिये। उसने कहा स्त्री का सतीत्व उसके मन मे होता है। इसके पक्ष मे उसने एक दृष्टान्त दिया, तब कहानियो का क्रम आरम्भ हो गया। राजा के मित्रो ने भी स्त्री-स्वभाव को प्रकट करने के लिए कहानियाँ कही। इन कहानियो मे स्त्री-चरित्र पर विविध प्रकाश डाला गया है। इसी खड मे वर्द्धमान के राजकुमार शृङ्गभुज की कहानी है। शृङ्गभुज ने एक सारस के तीर मारा वह भागा। शृङ्गभुज उसके पीछे भागा, वह सारस भयानक राक्षस था। शृङ्गभुज रक्त-बिन्दुओ के सहारे टोह लगाता इस राक्षस के यहाँ जा पहुँचा। उसकी पुत्री से इसका प्रेम हो गया। उसकी सहायता से अनेको कष्ट झेलकर और अनेको परीक्षाए पार करके शृङ्गभुज रूपशिखा को लेकर लौटा। इस कहानी के विविध तन्तुओ से बनी पश्चिम तथा पूर्व में एकानेक कहानियाँ मिलती हैं। ब्रज-क्षेत्र मे कहानी के नायक को पुडिया मिलती है। एक पुडिया छोड देने से तूफान उठता है—एक मे आग, एक मे पानी। इन्ही साधनो से नायक दानो और डाहिनो से अपनी रक्षा कर पाता है।

आठवें खण्ड में वज्रप्रभ नामक विद्याधरो का राजा नरवाहनदत्त को अभिवादन करने आता है। नरवाहनदत्त विद्याधरो के दोनो प्रदेशो का सम्राट होगा, इसीलिए यह राजा अपने भावी सम्राट से भेंट करने आया। यह एक

१—ग्रिम की संग्रहीत कहानियों मे डा० आल्विवस्लैंड की कहानी इस कहानी से मिलती जुलती है। इस कहानी का मंगोलियन, रूपान्तर 'सिद्धिकुर' मे सुरक्षित है। बेनफी के मतानुसार इस कहानी का वास्तविक रूप लिथुनियन अवदान में है। इस लिथुअनियन कहानी मे हरिशर्मा का स्थान एक दरिद्र झोंपडी में रहनेवाले ने ले लिया है। यह कहानी हेनरीकस बेकलियस (१५०६) के 'फेसिटी' मे भी है। यहाँ ब्राह्मण का काम कोयले-जलाने वाले को मिला है। देखो टानी का कथासरित्सागर पृ० २७४-२७५।

क्षेत्र के सम्राट सूर्यप्रभ की कहानी सुनाता है कि किस प्रकार मानव-योनि मे जन्म लेकर भी वह विद्याधरो के एक क्षेत्र का सम्राट हो सका। इसमे आकाश और पाताल के विविध लोको मे कहानीकार कथा-सूत्र को ले गया है। असुर मय का इन कहानियो मे विशेष भाग है।

नवे खण्ड मे कुछ कहानियाँ तो नरवाहनदत्त और अलकारावती के कुछ काल के वियोग मे धैर्य प्रदान कराने के लिए हैं। इनका अभिप्राय यह है कि वियुक्त हो जाने पर प्रियजनो का पुन मिलना असम्भव नही। कुछ कहानियाँ अन्य प्रासङ्गिक विषयों की पुष्टि के लिए हैं। वीरवर की कहानी स्वामिभक्त सेवक का आदर्श प्रस्तुत करती है। यह कहानी भी बहुत लोकप्रिय है। हितोपदेश मे भी आयी है। वीरवर ने राजा विक्रमतुङ्ग के जीवन के लिए प्रसन्नता पूर्वक अपने पुत्र को दुर्गा पर चढा दिया, उसकी पुत्री ने भाई के वियोग मे प्राण दिये, स्त्री दोनो बच्चो के साथ जल गयी। वीरवर भी अपना बलिदान देने को प्रस्तुत हुआ, तभी दुर्गा ने राजा को शतायु होने का वरदान देकर तथा उसके पुत्री-पुत्र और स्त्री को जीवनदान देकर वीरवर को सतुष्ट किया। लखटकिया की कहानियो का आरम्भ इसी कहानी की भाँति होता है। गुजरात और ब्रज मे प्रसिद्ध जगदेव की कहानी मे भी यही अभिप्राय मिलता है। इसी खण्ड मे राम-सीता, लव-कुश की कहानी आयी है, और अन्त नल-दमयन्ती की प्रसिद्ध कहानी से हुआ है।

दसवें खण्ड मे अन्य कहानियो के साथ हमे वे कहानियाँ मिलती हैं जो पचतत्र की कहानियाँ कही जा सकती हैं। इन कहानियो का इतिहास बडा रोचक है। ये भारत से ससार के विविध भागो मे गयी हैं। यूरोप मे 'पिल्पे' की कहानियो के नाम से चलती हैं। 'कलील वा दमना' भी इन्ही कहानियो का सग्रह है। बेनफी ने तुलना करके यह सिद्ध किया है कि कथासरित-सागर में कहानियो का पचतत्र की अपेक्षा अधिक प्राचीन रूप मिलता है। इस खण्ड की अधिकाश कहानियाँ ऐसी ही हैं, ये विविध देशो मे अनेक रूपो मे फैल गयी हैं। ये कलील वा दमना, पचतत्र, हितोपदेश, अनवार सौहिली, तूतानामा, बहारदानिश में सग्रहित हैं। इसी खण्ड मे बन्दर और शिशुमार (मकर) की कहानी है। ब्रज की लोककहानी में भी इसका रूपान्तर मिलता है। इसी खण्ड मे प्रसिद्ध ठग घटकर्पर की कहानी है, जिसके तन्तुओ से बनी ठग-शिरोमणियो की कई कहानियाँ ब्रज मे मिलती हैं।

ग्यारहवें खण्ड मे बेला की कहानी है। बेला का विवाह एक व्यापारी के पुत्र से हुआ है। उन दोनो को अनेको आपत्तियाँ झेलनी पड़ती हैं। प्रेमगाथा

की एक आरम्भिक रूपरेखा इसमे है। समुद्र मे जहाज डूबने मे ये बिछुडते हैं और पुन मिलते हैं।

बारहवें खण्ड मे ऐसी कई कहानियाँ आयी है जिनमे मनुष्यो को जादूगरि-नियो ने पशु बना लिया है। इस खण्ड का प्रधान कथा-सूत्र अयोध्या के कुमार मृगाकदत्त का उज्जियिनी की राजकुमारी से विवाह है। विवाह होने से पूर्व ही मृगाकदत्त का पिता उससे छूट कर उज्जयिनी को चल पडता है। मार्ग मे एक तपस्वी एक नाग से वह तलवार मन्त्र-बल से प्राप्त कर लेना चाहता है जिसे पाने से परामानवीय शक्तियाँ मिल जाती हैं। वह उन युवको की सहायता चाहता है। तपस्वी सिद्धि के समय भ्रमित हो जाता है, नाग उसको नष्ट कर देता है और इन युवको को शाप देता है कि ये बिछुड जायेंगे। ये बिछुड कर फिर मिलते हैं और तब अपनी-अपनी कहानियाँ कहते हैं। यही सविधान दण्डी के दशकुमार चरित्र मे है। इसी खण्ड मे वे प्रसिद्ध कहानियाँ भी आती हैं जो 'वैताल पच्चीसी' का विषय है, जो हिन्दी में भी रूपान्तरित हुई हैं।

तेरहवें खण्ड मे दो ब्राह्मण युवको के पराक्रम का वर्णन है। इन्होंने गुप्त रूप मे एक राजकुमारी और उसकी सखी से विवाह किया है। चौदहवें खण्ड मे नरवाहनदत्त एक और विद्याधरी से विवाह करता है। पन्द्रहवें मे वह विद्याधरो का सम्राट बनता है। सोलहवें खण्ड मे वत्स के स्वर्गारोहण का वृत्त है। वत्स अपने साले गोपालक को राज्य दे जाता है। गोपालक अपने छोटे भाई पालक को राज्य दे जाता है। पालक एक चाँडाली के प्रेमपाश मे फँस जाता है। उससे विवाह तभी हो सकता है जब उस चाडाल के घर ब्राह्मण भोजन करें। शिव के कहने से ब्राह्मण उस चाडाल के घर भोजन करते हैं।* वह चाडाल विद्याधर था, और ब्राह्मणो के भोजन करने पर ही वह शाप से मुक्त हो सकता था। सत्रहवें और अठारहवें खण्ड मे वे कहानियाँ हैं जो नरवा-हनदत्त अपने मामा गोपालक को काश्यप-आश्रम मे सुनाता है। सत्रहवें का मुख्य विषय मुक्ताफलकेतु नामक विद्याधर और पद्मावती नाम की गन्धर्व कुमारी की प्रेम-कथा है। अठारहवें मे उजयिनी के राजा महेन्द्रादित्य के पुत्र विक्रमादित्य या विक्रमशील सम्बन्धी कहानियाँ विशेष हैं।[1]

कथासरित्सागर की इस सक्षिप्ति से इस सागर के रत्नो का यथार्थ मूल्य

---

*. देखिये साम्य हेतु रैदास भक्त का जीवन परिचय।

१—कथासरित्सागर की यह संक्षिप्ति ऐच० ऐच० विल्सन के 'हिन्दू फिक्शन' नाम के निबन्ध के आधार पर दी गयी है। प्रस्तुत लेखक ने स्वयं टॉनी के कथासरित्सार के आधार पर उसमें आवश्यक संशोधन कर दिया है।

नही आका जा सकता। यह लोक-कहानियो का सग्रह है इसमे कोई सदेह नही। इसमे भारतीय कहानी के सभी तन्तु-सूत्र हमे मिल जाते हैं। बहुत सी प्रचलित कहानियो की कथासरित्सागर से तुलना करने पर कभी कभी तो ऐसा विदित होता है कि वह लोककहानी जो अब हमारे सग्रह मे आयी है, वह कथा-सरित्सागर के समय मे भी प्रचलित होगी, और कथासरित्सागर-कार ने उसे अपने कथा-प्रवन्ध मे स्थान देने के लिए कुछ हेरफेर किया है, और यह भी प्रकट होता है कि हेरफेर भी कोई विशेष अच्छा नही हुआ। 'यारु होइ तौ ऐसौ होइ' कहानी का जो उल्लेख हमने किया है वह एक उदाहरण है। 'यारु होइ तौ ऐसौ होइ' का कथानक बहुत पुराना है, अन्यत्र वही कथानक स्वतत्र रूप से मिलता है, सागर वाला नही मिलता।

कथासरित्सागर की भाँति के अनेको ग्रन्थ भारतीय साहित्य मे मिलते हैं और इनमे से अधिकाश मे धार्मिक उद्देश्य निहित है। कथासरित्सागर भी साम्प्रदायिक भावना से मुक्त नही है। शैव और शाक्त भावनाओ का इसमे प्राधान्य है। शिव और देवी की पूजा और बलि, इनके दिये वरदान तथा विद्याधरत्व प्राप्त करना ये सभी साम्प्रदायिक दृष्टि की पुष्टि करते हैं। ऐसी ही विलक्षण दिव्यतापूर्ण कहानियाँ जैनियो के साहित्य मे मिलती हैं। कथासरित्सागर के विद्याधर-विद्याधरियाँ आदि शिव-परिकर के हैं, जिन परि-कर के नही।

जातक

बौद्ध-साहित्य में 'जातक' कहानियो का सग्रह मिलता है। जातक कहानियाँ भगवान बुद्ध के पूर्वजन्म की कथाएँ हैं। इन कहानियो मे राजा-महाराजा, सेठ-साहूकार, श्रमिक, पशु-पक्षी आ जाते हैं। भगवान बुद्ध ने स्वय ही ये कहानियाँ विविध अवसरो पर अपने अनुयायियो को सुनायी हैं। बहुधा ये कहानियाँ भी किसी पृच्छा के समाधान के रूप मे दृष्टान्त की भाँति हैं, जिन्हे भगवान बुद्ध ने निजत्व के भाव से अभिमण्डित कर अनुयायियो को सुनाया है। इन सभी कहानियो मे नीति का उपदेश प्रधान है। इनके अध्ययन से विदित होता है कि अधिकाँश कहानियाँ ऐसी हैं जो भगवान बुद्ध के समय मे सर्वसाधारण मे प्रचलित थी।* उन्हे ही सुनाते हुए उपदेश की उनके द्वारा

* एनसाइक्लोपीडिया आव रिलीजन एण्ड ऐथिक्स—७ वाँ खण्ड, पृ० ४९१ मे स्पष्ट लिखा गया है कि बौद्धो ने 'कभी-कभी तो शुद्ध अवदान बनाये भी हैं, किन्तु बहुधा उन्होने कोई तन्त्राख्यान, परियों की कहानियाँ अथवा

पुष्टि करायी है और अन्त में जिस पात्र को कहानी में उपदेश का यथार्थ माध्यम बनाया गया है, उसी को भगवान बुद्ध ने पूर्वजन्म में अपना ही पूर्वावतार बना दिया है। इन जातकों में, कुछ विद्वानों की सम्मति है कि, रामायण से भी प्राचीन कहानियाँ मिलती हैं। उदाहरणार्थ दशरथ-जातक की कहानी रामायण से पूर्व की वस्तु है।* इन कहानियों का वातावरण साधारण, स्वाभाविक और मानवीय है पर उनमें प्राय: आकाशीय आश्चर्य, अलौकिक और दिव्य भाव नहीं मिलता। पंचतन्त्राख्यान की जैसी शैली है पर न उसकी सी जटिलता है, न उलझन है। यथासम्भव सुबोध और सरल किन्तु प्रभावोत्पादक ढंग में कहानी कह दी गयी

रोचक चुटकुले ही लिये हैं, उन्होंने इन्हें धार्मिक प्रचार की दृष्टि से संशोधन-पूर्वक अपने अनुकूल बना डाला है। पुनर्जन्म और कर्म के सम्बन्ध में बोधिसत्व का सिद्धान्त एक उत्तम साधन के रूपमें इनके हाथ में था, जिससे ये किसी भी लोककहानी अथवा साहित्यिक कहानी को बौद्ध अवदान में रूपान्तरित कर सकते थे।"

बृहत् कथाकोश की भूमिका पृष्ठ १६ पर डा० आदिनाथ नेमीनाथ उपाध्ये भी यही मत प्रकट करते हैं. "सम आव दी स्टोरीज दैट केम टू बी पुट इन्टू दी जातक फार्म आर आलरेडी फाउण्ड इन दी सुत्ताज ऐज सिम्पिल टेल्स, इफ दे आर स्ट्रिप्ड आव दी पर्सनालिटी आव बोधिसत्व एण्ड स्पेशल बुद्धिस्ट आउट लुक एण्ड टर्मिनालोजी, वी फाइण्ड दैट दियर कन्टेण्ट्स इन्क्लूड फेबिल्स, फेयरी टेल्स, ऐनैकडोट्स, रोमाण्टिक एण्ड ऐडवचरस टेल्स, मौरल स्टोरीज एण्ड सेइंग्स एण्ड लीजैंड्स। दीज हैव बीन ड्रान फ्राम दी कामन स्टाक आव इण्डियन फोकलोर विच, टू, हैव बीन यूटिलाइज्ड बाई डिफरेण्ट रिलीजस स्कूल्स इन दियर ओन वे।"

* दशरथ-जातक के सम्बन्ध में तो श्री कामिल-बुल्के ने इस मत का एक प्रकार से निराकरण का दिया है। किन्तु गम्भीरता पूर्वक विचार करने से जातक कहानियाँ बहुत प्राचीन प्रतीत होती हैं। डा० हिंज मोडे (Dr Hinz Mode) ने मोहनजोदड़ो, चन्हूदड़ो आदि में प्राप्त मुद्राओं (सीलों) पर अंकित अभिप्रायों (मोटिफो) को जोड़कर एक कहानी खड़ी की है, और उसे जातकों में दिखाया है। 'व्याघ्र जातक' के तन्तुओं का उल्लेख कर उन्होंने बताया है कि "हमें तुरन्त यह विदित हो जाता है कि एक नहीं कई प्राचीन भारतीय मुद्राओं के चित्रांकनों का स्पष्टीकरण इस जातक कथा से हो जाता है। (इण्डियन फोकलोर: जनवरी-मार्च १९५९ पृष्ठ १३) जातक कथाओं के प्राचीन सूत्र पर इससे कुछ प्रकाश पड़ता है।

है। चुटकलो, कहानियो, दृष्टान्तो का श्रवण करने वाले व्यक्तियो पर अच्छा प्रभाव पडता है।

विनयपिटक से आरम्भ करें तो इस ग्रन्थ के खण्डको मे जिन नियमो और विधियो को प्रस्तुत किया गया है, उनके साथ उनसे पहले उनका भूमिका-स्वरूप जो वर्णन दिया गया है, वह कहानी के समकक्ष है। छुल्लवग्ग मे कितने ही प्रशसनीय घटनाचक्र हैं। इनमे बौद्धधर्म मे मत-परिवर्तन द्वारा सम्मिलित होने वाले व्यक्तियो के विवरण है, कुछ स्वय भगवान बुद्ध के जीवन से सम्बन्ध रखते हैं। सारिपुत्त, मोग्गल्लन, महापजापति, उपालि, जीवक की कहानियाँ इसी मे है। सुत्तपिटक के दीघनिकाय और मज्झिमनिकाय मे बुद्ध-जीवन सम्बन्धी कितनी स्फुट कहानियाँ है। 'पयासीसुत्त' एक सवादात्मक आख्यान माना जा सकता है, और कितनी ही गाथाएँ तथा अवदान हैं, जो किसी धार्मिक सिद्धान्त अथवा नीति को अभिव्यक्त करते हैं। छन्न और अस्सलायन आदि की कथाओ मे तथ्य और सत्य का भी कुछ आधार मिलता है। अगुलि-माल डाकू अपनी वृत्ति छोडकर भिक्षु बना और अर्हत पद प्राप्त कर सका, महादेव ने जैसे ही अपने बाल सफेद होते देखे सघ मे सम्मिलित हो गया। रथपाल ने ससार का त्याग किया और सासारिक सुखो और आकाक्षाओ को सयमित रखा—ये सुन्दर कथाएँ भी इसमे है। कर्म-सिद्धान्त को सिद्ध करने वाली कहानियो का सग्रह विमानवत्थु और पेटवत्थु मे मिलता है। दूसरे लोक मे सुख अथवा दुःख का कारण इसी जन्म के सदसद कर्म होते हैं। थेर-गाथा और थेरीगाथा मे शान्ति की आकाक्षा रखने वाले भिक्षु और भिक्षुणियो की आत्माओ की आध्यात्मिक स्वीकारोक्तियाँ हैं।

उपरोक्त साहित्य के अतिरिक्त बौद्ध-साहित्य मे अवदान (अपदान) भी है। ये पावन-चरित्र पुरुषो और स्त्रियो की कहानियाँ हैं, इनमे भी कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धान्त को पुष्ट किया गया है। अवदान मे भी जातक की भाँति भूत और वर्त्तमान दोनो ही जन्म की कथाएँ रहती हैं, पर अवदान जातक से इस बात मे भिन्न हैं कि जातक में तो केवल बुद्ध के जीवन की ही कहानियाँ रहती हैं, पर अवदानो मे बहुधा किसी अर्हत की कथा रहती है। सन्तो और भिक्षुओ की कहानियाँ भी इसमे मिल जाती हैं। ये उत्तम पुरुष मे कही गयी हैं। इनमे से बहुत सी कहानियो का आधार ऐतिहासिक है। इनमे सारिपुत्त, आनन्द, राहुल, खेमा, गोतमी की आत्मकथाएँ हैं। ये बौद्धसघ के स्तम्भ माने जाते हैं। यही नही, बुद्धघोष तथा धर्मपाल जैसे भाष्यकारो ने भाष्यो मे एका-नेक कहानियो का उल्लेख उदाहरण और दृष्टान्त के रूप मे किया है।

जैन-साहित्य मे तो बौद्ध-साहित्य से भी अधिक कहानियो का भण्डार

मिलता है । ये कहानियाँ कुछ तो धर्म के सिद्धान्त ग्रन्थों में आयी हैं, ये बहुधा तीर्थङ्करों तथा उनके श्रमण अनुयायियों तथा शलाका पुरुषों की जीवन-झांकियों के रूप में जहाँ तहाँ मिल जाती हैं । कहीं-कहीं इन ग्रन्थों में किसी कथा का संकेत मात्र मिलता है । आचारांग और कल्पसूत्र में महावीर के जीवन पर प्रकाश पड़ता है । नेमीनाथ और पार्श्वनाथ के संबंध में भी इनमें कुछ वृत्त मिल जाते हैं । 'नाया धम्म कहाओ' में अनेकों दृष्टान्तस्वरूप रूपक-कहानियाँ (पैरेबिल) भी हैं । एक उदाहरण द्वारा इन रूपक कहानियों की रूप-रेखा समझी जा सकती है : एक सरोवर है, वह कमलों से परिपूर्ण है । इसके मध्य में एक विशाल कमल है । चार दिशाओं से चार मनुष्य आते हैं, वे उस विशाल कमल को चुन लेना चाहते हैं । अपने प्रयत्न में वे सफल नहीं होते । एक भिक्षु सरोवर तट पर कुछ शब्दोच्चार करके ही उस विशाल कमल को प्राप्त कर लेता है । यह 'सूयगडम' की रूपक-कहानी है । इसका अर्थ है कि जैन साधु ही राजा का सान्निध्य सरलता से पा सकता है, अन्य नहीं । विशाल कमल राजा का प्रतीक है । उत्तराध्ययन में भी ऐसी ही कहानियाँ मिल जाती हैं । इन ग्रन्थों में कृष्ण, ब्रह्मदत्त, श्रेणिक आदि विख्यात कथा-ग्रन्थों के नायक महापुरुषों से सम्बन्धित अवदान भी हैं । सूयगडम में शिशुपाल, द्वीपायन, पाराशर आदि का भी उल्लेख है, 'उवासगदसाओ' में दस श्रावकों की कथाएँ हैं । अन्तगड दसाओं में उन स्त्री-पुरुषों के विवरण हैं जिन्होंने तीर्थ करों के अनुयायी बन कर संसार त्यागा और मुक्ति प्राप्त की । अणुत्तरोववाइय दसाओं में तपस्या और उपवासों से स्वर्ग-प्राप्ति की कहानियाँ हैं । 'निरयावलियाओं' में श्रेणिय (श्रेणिक) के पुत्र 'कूणीय' (कूणीक) की कहानी विस्तार-पूर्वक दी गयी है, कप्पिया और पुप्फिया में क्रमशः महावीर और पार्श्व द्वारा धर्म में दीक्षित जिन व्यक्तियों ने विविध स्वर्गों को प्राप्त किया उनका वृत्त है । विवागसुयम में पाप और पुण्य के फलों को दिखाने की चेष्टा की गयी है, इसके पहले भाग में पाप तथा कुकृत्यों के फल का निदर्शन करने वाली दस कहानियाँ हैं, दूसरे भाग में एक ही कहानी विस्तारपूर्वक दी गयी है, जिसमें पुण्य का फल दिखाया गया है । पैन्नाओं में भी साधु पुरुषों और श्रमणों की कहानियाँ हैं । इनकी कहानियों का मूल उद्देश्य यह है कि इन महापुरुषों के शरीर को किसी ने जलाया, किसी ने टुकड़े-टुकड़े किया फिर भी वे दृढ़ रहे, कीड़े-मकोड़ों ने शरीर छलनी कर दिया, फिर भी इन्होंने उस कष्ट को अनुभव नहीं किया ।

धर्म के इन सिद्धान्त-ग्रन्थों पर 'निज्जुत्तियाँ' हैं, कुछ स्वतंत्र भी हैं, जैसे पिंड, ओघ और आराधना निज्जुत्तियाँ (निर्युक्तियाँ) । ये निर्युक्तियाँ सिद्धान्त-ग्रन्थों पर लिखे भाष्य माने जा सकते हैं । सिद्धान्त-ग्रन्थों में जिन कथानकों का

नामोल्लेख हुआ है, उनका विस्तारपूर्वक विवरण इन निर्युक्तियो मे मिल जाता है। साथ ही इनमे अन्य कथानक भी आये हैं। और कुछ कथानको का नामोल्लेख मात्र है। फलत इनकी व्याख्या के लिए वाद मे चूर्णियाँ, भाष्य और टीकाएँ लिखी गयी। इनमे उन कथानको को आवश्यक विस्तार से देकर उसके मर्म को स्पष्ट किया गया है।

इस प्राचीन साहित्य से वीज लेकर वाद मे जिनसेन, गुणभद्र, हेमचन्द्र आदि ने सस्कृत मे, शीलाचार्य, भद्रेश्वर आदि ने प्राकृत मे, पुष्पदन्त ने अपभ्र श मे चामु डराय ने कन्नड मे वडी-वडी कहानियाँ खडी करदी हैं। इन के ये ग्रन्थ 'पुराण' कहे जा सकते हे।

यही पउम-चरिअ[1] या 'पद्मचरित्र'[2] और वसुदेवहिंडि[3] का भी उल्लेख कर देना आवश्यक है। पहले का सम्वन्ध रामचरित्र से है, दूसरे का कृष्ण से। रामचरित्र के जैन-साहित्य मे दो रूप मिलते है। वे दो प्रकार की प्रचलित लोक-कहानियो के आधार पर वने हैं। वसुदेवहिंडि तो *'वृहत्कथा'* के समकक्ष हैं। कृष्ण-चरित्र के सूत्र के आधार पर अनेको कहानियाँ पिरोयी हुई हैं। इन कहानियो मे विद्याधरो और उनके चमत्कारो का समावेश हो जाने से ये अत्यत रोचक हो गयी है। जिनसेन का हरिवशपुराण सस्कृत मे तथा धवल का अपभ्र श मे वासुदेवहिंडि के समकक्ष हैं। एक प्रकार के वे ग्रन्थ हैं जिनमे जीवनधर, यशोधर, करकण्डु, नागकुमार और श्रीपाल के चरित्रो का वर्णन है। साथ ही ऐसी कहानियाँ भी है जिन मे गृहस्थो और साधारण पुरुपो की कहानियाँ दी गयी हैं—ये कथा, आख्यान और चरित्र सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश मे ही नही, हिन्दी मे भी उपलब्ध है।

एक वर्ग ऐसे ग्रन्थो का है जिन मे धार्मिक कहानियाँ रोमाटिक रूप मे प्रस्तुत की गयी हैं, तरगवती, समराइच्चकहा, उपमितिभव प्रपच कथा ऐसे ही ग्रन्थ हैं। इसी वर्ग मे वे कल्पित कहानियाँ भी हैं जिनके द्वारा अन्य धर्मों के सिद्धान्तो और गाथाओ पर आक्रमण किया गया है। हरिभद्र का 'धूर्ताख्यान' हरिषेण का 'धर्म-परीक्षा' ऐसे ही है। धूर्ताख्यान मे तो लोक-कथाओ को माध्यम वना कर ही उपहास उडाया गया है।

परिशिष्ट-पर्वन, प्रभावकचरित, प्रवन्ध चिन्तामणि आदि ग्रन्थो मे अर्द्ध-ऐतिहासिक धर्मनुयायियो की कहानियाँ दी गयी है। राजा, महाराजा, प्रसिद्ध

१—लेखक विमल

२—लेखक रविसेन

३—लेखक सघदास

सन्त, लेखक, सेठ-साहूकार आदि इन कहानियों के प्रधान विषय बने हैं।

कथाकोशों का एक विशाल समूह जैन लेखकों ने रच डाला है। इन कोषों का अभिप्राय विविध अवसरों के योग्य सुन्दर-सुन्दर उपयुक्त कथाओं का संग्रह कर देना है। जिससे धर्म-प्रचारक को सिद्धान्त-पुष्टि और प्रभावोत्पादन के लिए अच्छी सामग्री मिल जाय। ऐसे ही संग्रह व्रत-कथाओं के भी हैं, ऐसे सोलह कोषों का परिचय डा० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये एम० ए०, डी० लिट् ने 'वृहत कथा-कोश' की भूमिका में दिया है।[1]

जैन-साहित्य में विद्यमान इन विविध कथाओं में लोकवार्त्ता-तत्व किस मात्रा में विद्यमान है, इसे जानने के लिए 'पद्मावती चरित्र' को ले सकते हैं। यह राजवल्लभ की कृति है। राजवल्लभ ने इसे निश्चय लोक-क्षेत्र से लिया है। यह पूर्णतः एक लोक कथा है, और बहुत ही महत्वपूर्ण लोककथा है। लोक-कथा के विद्वानों ने इस कथा की बहुत चर्चा की है। हिन्दी की प्रसिद्ध पत्रिका 'ब्रज भारती' में मैंने सबसे पहले इस पर कुछ विचार हिंदी में प्रस्तुत किये थे। ब्रज में यह कहानी प्रचलित है, और इसे 'यारु होइ तौ ऐसौ होइ' शीर्षक से ब्रजभारती (२००२। २-४) में पहले प्रकाशित किया था, फिर ब्रज साहित्य मण्डल के प्रकाशन 'ब्रज की लोक कहानियाँ' शीर्षक संग्रह में भी इसे सम्मिलित किया गया। 'ब्रज लोक-साहित्य के अध्ययन' में भी इस कहानी पर विचार किया गया है[2]। संस्कृत के कथा-सरित्सागर में इसका लिखित रूप हमें मिल जाता है। कथासरित्सागर के 'मदन मंचुका' शीर्षक छठे खण्ड के अट्ठाइसवें अध्याय में राजकुमार और सौदागर के पुत्र की कहानी इसी कहानी का एक लिपिबद्ध रूप है। हिन्दी के मध्ययुग में लोककथाओं की ओर कवियों का ध्यान गया था। अनेक लोक-कथाओं से प्रेम और अचरज के कथानक लेकर काव्य-ग्रन्थ लिखे गये।[3] इनमें विश्व में प्रचलित और मान्य कई महत्वपूर्ण कहानियों

१—जैन साहित्य का यह विवरण यहाँ डा० आ० ने० उपाध्ये की भूमिका के आधार पर ही दिया गया है।

२—बुन्देलखंड में इस कहानी का संग्रह श्री शिवसहाय चतुर्वेदी जी ने 'मित्रों की प्राप्ति' शीर्षक से 'बुन्देलखंड की ग्राम-कहानियाँ' नामक पुस्तक में किया है। इस संग्रह की प्रस्तावना में विद्वद्वर श्री कृष्णानंद गुप्त ने संक्षेप में कुछ विचार किया है। (पृ० २८)

३—इन 'लोक कथाओं के ग्रंथों का और उनके विषय का संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित पुस्तकों से मिल सकता है १—ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन, चतुर्थ अध्याय, लोककहानियाँ। तथा इसी अध्याय का आगे (आ) खंड। २—हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य। ३—सूफी काव्य संग्रह। ४—कवि और काव्य ५—अपभ्रंश साहित्य। ६—"हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग" इस पुस्तक में भी कुछ उल्लेख है।

के रूप तो मिल गये, पर यह इतनी महत्वपूर्ण कहानी किसी कवि ने ग्रन्थ-रचना के लिए नही चुनी, इस पर किंचित आश्चर्य था। अनुसधान-मार्तण्ड श्री नाहटा जी ने इधर 'पद्मावती चरित'[१] का परिचय देकर जैसे यह घोषणा करदी कि आश्चर्य की बात नही, सस्कृत मे यह लोककथा भी है, जैन-साहित्य में विशेषत। अत आज इस लोक-कथा पर कुछ विस्तार से विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है।

पहले तो हम इस कथा के साहित्यिक रूपो की ही तुलना करेंगे—

कथासरित्सागर	पद्मावती चरित
१. पुष्करावती के राजा गुहसेन के पुत्र और सौदागर ब्रह्मदत्त के पुत्र मित्र हो गये।	१. कलिंग के राजा वीरसेन के पुत्र चित्रसेन की मत्री बुद्धिसार के पुत्र रत्नसार से मित्रता
२ दोनो विवाह के निमित्त यात्रा करते हुए मार्ग मे एक नदी किनारे ठहरे।	२. अ–चित्रसेन की सुन्दरता के कारण जनता परेशान, अत. चित्र-सेन को राज्यनिष्कासन, मत्री-पुत्र भी साथ। आ-रात को किन्नरियो की ध्वनि मे आकर्षित होकर ऋषभ-देव के मदिर मे जाकर एक पुतली को देखकर राजकुमार विमोहित। मूर्ति के रूपवाली राजकुमारी से विवाह करने की हठ। इ–एक ज्ञानी मुनि आये—उन्होने बताया कि यह मूर्ति पद्मपुर के राजा पद्मरथ की पुत्री पद्मावती की है। ई–वह पुरुष द्वेपिणी है। पुरुष द्वेपिणी होने के कारण के लिए एक पूर्वजन्म मे हस-हसिनी की कथा। वह हसिनी थी, यह राज-कुमार था हस। पुरुष-द्वेष दूर करने का उपाय।

२ देखिए—ना० प्र० प० अ० १ वर्ष ५९ सं० २०११

	पूर्वजन्म की घटना का चित्र दिखाया जाय, उससे इस के सम्बन्ध में उसका भ्रम दूर होगा और वह पुरुष-द्वेष त्याग देगी। उ—वताये उपायों से पद्मावती की प्राप्ति। ऊ—विदा कराके तीनों का एक वृक्ष के नीचे पडाव।
३. वहाँ एक कहानी कहते-कहते कहानी अधूरी छोडकर राजकुमार सो गया	३. राजकुमार और पद्मावती सो गये।
४. सौदागर-पुत्र जागता रहा	४. मन्त्री-पुत्र जागता रहा
५. उसने दो क्रुद्ध आवाजें सुनी कि कहानी अधूरी छोडने के दण्ड स्वरूप इसे—	५. वृक्ष पर यक्ष-यक्षिणी की बातें मन्त्री-पुत्र ने सुनी कि इसकी विमाता आगयी है वह इसे मारने के तीन उपाय करेगी।
क—हार दिखायी पडेगा जिसे यह पहन लेगा तो गला घुट जायगा और मर जायगा, और इससे वच जायगा तो—	१—नगर-प्रवेश से पूर्व एक दुष्ट घोडा भेजेगी
ख—एक आम का पेड मिलेगा, उसके आम खायेगा और मर जायगा। और इससे भी वचा तो—	२—यन्त्र से नगर-प्रवेश पर द्वार गिरा कर मृत्यु
ग—विवाह के समय घर घुसते समय द्वार गिर पडेगा और मर जायगा। इससे वचा तो—	३—विष-मिश्रित भोजन (लड्डू) देकर मृत्यु तथा इन सबसे वच निकला तो—
घ—रात्रि में शयन-कक्ष में आने पर सौ वार छींकेगा, और यदि वहाँ उपस्थित कोई व्यक्ति इसके लिए इतनी ही वार 'ईश्वर रक्षा करें' नहीं कहेगा तो यह मर जायगा।	४—रात में सर्प डस लेगा।

ङ—जो व्यक्ति हमारी बातें सुनकर उसे रक्षार्थ ये भेद बता देगा, वह भी मर जायगा।

६. सौदागर-पुत्र ने चारो सकटो से रक्षा की। अन्तिम बार रक्षा करने लिए वह पलग के नीचे लेट रहा। सो बार

७. 'ईश्वर रक्षा करें' कह चुकने पर जब वह चुपचाप वहाँ से खिस-कने लगा, तभी राजकुमार ने उसे देख लिया।

८. उसे राजकुमार ने बन्दी बना लिया और प्राणदण्ड के लिए आज्ञा दी

९. तब मित्र ने समस्त रहस्य सम-झाया और सभी प्रसन्न होकर रहने लगे।

५—जो व्यक्ति सुन लेगा और बातें प्रकट कर देगा, वह पत्थर हो जायगा।

६. मन्त्री-पुत्र ने चारो सकटो में रक्षा की।

क—द्वार से एकदम पीछे हटा के

ख—वैसे ही दूसरे लड्डू परोसकर

ग—रात्रि मे पलग के पास पहरा देकर, सर्प को मारकर

७. सर्प के विष मिश्रित रक्त की बूँद पद्मावती की जाँघ पर जा पड़ी। उसे हानिकर समझ वस्त्र के अचल से पोछने के समय चित्रसेन ने देख लिया।

८. चित्रसेन ने आग्रह किया कि वह बताये कि उसकी स्त्री के ऊपर इस प्रकार हाथ क्यो रखा?

९. विवश हो मन्त्री ने रहस्य बताया और पत्थर का हो गया।

१०. चित्रसेन यक्षवाले वृक्ष के नीचे जाकर सोया और यक्ष-यक्षिणी की बातो से जाना कि विशुद्ध चरित्रवाली सती स्त्री अपने नवजात पुत्र को गोद मे ले उस पाषाण-मूर्ति का स्पर्श करे तो वह स्वस्थ हो जायगा।

११. रानी पद्मावती के पुत्र हुआ। उसने स्पर्श करके मन्त्री-पुत्र को पुनरुज्जीवित किया।

वेन्फी[1] ने इस कहानी को हितोपदेश के स्वामिभक्त सेवक वीरवर के तुल्य माना है। यह वीरवर की कहानी वैतालपचविंशति मे भी मिलती है। वीरवर की पचविंशति वाली कहानी मे वीरवर एक स्त्री का रुदन सुनता है। यह स्त्री राजा की भाग्यलक्ष्मी है, जो राजा का परित्याग करने को प्रस्तुत है। उसे सतुष्ट कर राजा मे ही अनुरक्त रखने के लिए, वह अपने पुत्र और अपना बलिदान कर देता है। इसे राजा छिपकर देखता है। वह स्वय भी अपनी बलि चढा देने को सन्नद्ध होता है तभी दुर्गा प्रकट होकर उसे रोक देती है और वीर-वर तथा उसके बच्चे को जीवित कर देती है।[2] (देखिये 'दि ओसिन आव स्टोरीज' सपादक टानी तथा पेंजर वाला सस्करण)।

अभी तक तो अनुसधित्सुओ को इस कहानी के इतने ही लिखित रूप मिले हैं। मेरा अनुमान है कि हिन्दी में भी इस कहानी को लेकर प्रेमगाथा काव्य-रूप में लिखित साहित्य उपलब्ध होगा। क्योकि इसके मौखिक रूप भारत-भर में प्रचुर मात्रा में मिलते हैं।

इस कहानी का मौखिक रूप ग्रिम के द्वारा सग्रहीत जर्मन कहानियो मे 'देर ट्रिपुइ जोहेन्नेस' में मिलता है। इसको अग्रेजी लें 'फेथफुल जोह्न' नाम दिया गया है। यह पेन्टा मैरोन (penta merone) में 'द क्रो' नाम से है। वर्नार्ड स्किम्दित के ग्रिस्कस्वे मार्खे में तीसरी सख्या की कहानी इसी के

१—वेन्फी का समय है १८०६ से १८८१। इसका जन्म नोएरलैन हनोवर मे हुआ था। यह जर्मन था और संस्कृत का विद्वान तथा तत्त्वविद था। इसकी प्रमुख रचनाएँ हैं पंचतन्त्र (अनुवाद), यूनानी धातुओं का कोष, सस्कृत भाषा का व्याकरण तथा संस्कृत-अग्रेजी कोष। वेन्फी लोकवार्ता-क्षेत्र मे बहुत प्रसिद्ध हैं इसने लोक-वार्त्ता तत्व (फोकलोरिस्टिक्स) के भारतीय सम्प्रदाय (इण्डिक स्कूल) का प्रवर्त्तन किया था। इसकी मान्यता थी कि लोक कहानियो का जन्म, (कुछ फेबिलों को छोडकर) भारत में हुआ है, और वहीं से वे अन्य देशों मे गयी हैं। इसने उनके विविध मार्गों का भी निर्देशन किया, जिनसे हो कर कि ये कहानियाँ गयीं। (दे० स्टैंडर्ड डिक्सनरी आव फोकलोर-वेन्फी पर निबन्ध)

२—यह कहानी ऐतिहासिक लोककथा के रूप मे गुजरात मे जगदेव पवार के विषय में प्रचलित है। सिद्धराज जयसिंह के लिए जगदेव देवी पर अपने पुत्र-कलत्र की बलि चढ़ा देता है, और अपनी भी। ब्रज मे प्रचलित लखटकिया की कहानी के किसी-किसी रूपान्तर मे भी यह अभिप्राय मिलता है। विक्रमाजीत की कहानी मे भी यह अभिप्राय आता है।

अनुरूप है। इस कहानी मे तीन मोइरइ (Moirei) हैं, उनसे भावी सकटो की सूचना मिलती है। राजकुमार की बहिन, राजकुमार का वचपन में जलने से, तथा गिरने से बचाती है और विवाह के दिन सर्प से रक्षा करती है।[1] पेट्रोसो के 'पोर्तुगीज फोक टेल्स' मे भी ऐसी कहानी है।

भारत मे इसका सग्रह कुमारी फ्रेरे (Miss Frere) ने अपनी पुस्तक 'ओल्ड डैकन डेज़' मे किया है। नटेश शास्त्री के सग्रह ग्रन्थ 'ड्रवीडियन नाइट्स' में भी इसका रूपान्तर है। लाल बिहारी दे के सग्रह 'फोकटेल्स आव बङ्गाल' में इसका शीर्षक 'फकीरचद' है। उडीसा में भी यह प्रमुख कहानियो में है, इसमे सन्देह नही। कुजविहारीदास जी ने "स्टडी आव ओरिस्सन फोकलोर' में इसका सक्षिप्त वृत्त दिया है।[2]

इस सक्षिप्त विवरण से स्पष्ट है कि यह लोककहानी अत्यत महत्वपूर्ण है। इसके सम्बन्ध मे लोकवार्ता तत्व के विद्वानो का कहना है कि इसमे मिलने वाला स्वामिभक्त सेवक विषयक अभिप्राय लगभग दो हजार वर्ष पूर्व भारत से यूरोप मे गया होगा।[3] जिसका स्पष्ट अर्थ है कि इस कहानी के इस मूल अभिप्राय का जन्म भारत मे हुआ होगा।

सर जी० काक्स महोदय ने 'माइथालाजी आव दि आर्यन नेशन्स' में इस कहानी पर विस्तारपूर्वक विचार किया है और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि इस कहानी का मूल ढाँचा इतिहास पूर्व युग में उस समय निर्मित हुआ होगा जब आर्यलोग अपने मूल स्थान में रहते होगे और यूरुप तथा भारत में फैले नही होगे। इस दृष्टि से इस लोककहानी का जन्मकाल दूर अतीत में जाता है जब कि आधुनिक आर्य जातियो की सभ्यता का नाम भी नही था।

मैंने इस कहानी के व्रज के रूपान्तर पर विचार करते समय लिखा था कि पहली दृष्टि मे यह कहानी हमे तीन छोटी मौलिक कहानियो का मिश्रण प्रतीत होती है। एक तो साँप को मारने और रानी को पाने की, दूसरी दूती और मनिहार की, तीसरी तोते की भविष्यवाणी और बढई के कुमार के पत्थर होने की।

किंतु भारत के अन्य जनपदो मे तथा जर्मनी आदि मे इस कहानी के इस

१—दे० स्टैण्डर्ड डिक्सनरी आव फोकलोर—निबध फेथफुल जोह्न पृ० ३६६

२—दे० स्टडी आव आरिस्सन फोकलोर—पृष्ठ ११।

३—इसी प्रकार की कहानी व्रज मे तथा भारत मे अन्यत्र लोक प्रचलित है, और बहुधा 'भैया दूज' के दिन कही जाती है।

पूर्णरूप को देखकर मैंने यह विचार त्याग दिया था। इस कहानी के समस्त उपलब्ध रूपों पर विचार करके स्टिथ टामसन ने इसका जो आदर्श रूप खड़ा किया है वह उन्होंने अपनी पुस्तक 'द फोकटेल्स' मे दिया है। उन्होंने सबसे आरम्भ में ही लिखा है।

"समस्त लोक-कहानियो मे सबसे अधिक रोचक एक है स्वामिभक्त जोह्न (५१६ वी कोटि) जिसका सम्बन्ध एक नौकर की स्वामिभक्ति से है, यद्यपि इस कहानी के कुछ सस्करणो मे कभी कभी नौकर के स्थान पर भाई, धर्म-भाई अथवा हितू मित्र का उल्लेख मिलता है।"

अब इस कहानी का आदर्श रूप यह होता है—

१—एक राजकुमार और एक नौकर साथ साथ पलते है।

२—अपने पिता की अनुपस्थिति मे कहानी नायक राजकुमार स्वामिभक्त नौकर के मना करने पर भी एक वर्जित कक्ष मे प्रवेश करता है।

३—उस कक्ष मे वह एक सुन्दरी का चित्र देखता है और उस पर विमोहित होकर उसे प्राप्त करने का सकल्प करता है।

४—अपने सहायक (नौकर, भाई, मित्र आदि) की सहायता से वह उसे प्राप्त कर लेता है—या तो

१—सौदागरी जहाज मे धोखे से लेजाकर

या २—स्त्री का वेष धारणकर उसके पास पहुँचकर

या ३—किसी भूमिगर्भ के मार्ग से उसके पास पहुँचकर

या ४—नौकर (सहायक) के दूतत्व से

५—घर लौटने के मार्ग मे दम्पति तीन प्राण-संकटो मे बचकर निकलते हैं। ये सकट या तो

१—वधू के पिता द्वारा प्रस्तुत किये जाते है

या २—नायक के पिता द्वारा

या ३—नायक की सौतेली माता द्वारा

६—तीन सकटो की कल्पना में बहुत भेद है—जैसे—

१—विषैला भोजन

२—विषैला वस्त्र

३—डाकुओ से मुठभेड

४—डूबता मनुष्य

५—नदी पार करना

६—किसी द्वार के नीचे मे जाने पर द्वार का गिरना

७—अतिम सकट है दम्पति के शयनकक्ष मे साँप का प्रवेश।

७—सहायक को इन सकटो की सूचना साधारणत पक्षियो के वार्तालाप द्वारा मिलती है। वह इनसे अपने नायक को बचाता है।

८—अन्तिम साँप वाले सकट से रक्षा करते समय उसे नायक की सोती पत्नी का अगस्पर्श करना पडता है। और पकडा जाता है।

९—वह अपनी सफाई देने मे रहस्य का उद्घाटन करता है और पत्थर होजाता है।

१०—राजकुमार के अपने बच्चो के रक्त-स्पर्श से ही वह स्वामिभक्त पुन अपना मानव शरीर प्राप्त करता है। (उडीसा की कहानी मे नायक शिलारूप सहायक को बारह वर्ष तक सिर पर रखकर रुदन करता हुआ घूमता है। तब एक विशिष्ट पक्षी स्वर्ग से अमृत लाकर पाषाण-मित्र को जीवित कर देता है।)

११—वे मृत पुत्र भी फिर स्वामिभक्त के प्रयत्न से जीवित हो उठते हैं। इस आदर्शरूप से तुलना करने पर एक बात तो यह विदित होती है कि प्रेयसी को प्राप्त करले और प्रेयसी के निवास की कल्पनाए विविध हैं और भिन्न भिन्न हैं।

१—ब्रज और बगाली कहानी मे वह स्त्री साँप की वन्दिनी है। सर्पकन्या, भी हो सकती है। वह स्त्री राक्षस के वन्धन मे भी हो सकती है।

वस्तुत प्रेयसी को प्राप्त करने की कहानी एक स्वतन्त्र कहानी है और उसका विकास अपनी तरह स्वतत्र रूप से हुआ है, ऐसा विदित होता है[७]। इस कहानी मे निम्नलिखित अभिप्राय आते हैं।

७—इस अनुमान के लिए निम्नलिखित कारण दिये जा सकते हैं — १. यह अश कथासरित्सागर की कहानी मे नहीं। इसकी लोकपरंपरा भी रही है जो बुन्देलखण्ड से प्राप्त हुई है। 'मित्रों की प्रीति' नाम की कहानी मे इस कथाश का उल्लेख नहीं। बुन्देलखण्ड की कहानी 'कथासरित्सागर' की परंपरा मे है। दे० बुन्देलखण्ड की ग्रामकहानियाँ। २—इस कथांश के वृत्त का आगे के संकटों वाले वृत्त से कोई अनिवार्य सबंध नहीं। ३—श्री स्टिथ टामसन द्वारा प्रस्तुत आदर्श रूप मे इस वृत्त का उल्लेख केवल यही सिद्ध करता है कि वह रूप विशेष व्याप्त है। इसका अर्थ केवल यह है कि इसका प्रसार तभी हुआ होगा जब यह वृत्तांश उसमे मिल गया होगा। उसके मूल का सकेत उसमें नहीं।

अ[1]—किसी मनुष्येतर प्राणी के अधीन एक सुन्दरी राक्षस, साँप आदि

आ[2]—उसका निवास-स्थान जल से आवृत्त यथा—द्वीप, समुद्र-गर्भ, या तालाब या कूप गर्भ।

इ—उस सुन्दरी के किसी चिन्ह से नायक आकर्षित यथा—एक जूती, एक लट, चित्र, मूर्ति, चौपड की गोट आदि।

ई[3]—नायक जल-मार्ग मे होकर सुन्दरी के पास पहुँचने का साधन किसी सहायक से पाकर अकेला सुन्दरी के पास पहुँचता है यथा—मणि (जिससे समुद्र का जल फटकर मार्ग देता है) या जहाज

उ—नायक सुन्दरी को या तो शय्या पर सोते हुए अथवा मृत पाता है और विधि मे उसे जगाता है अथवा जीवित करता है।

ऊ—सुन्दरी उसे अपने पोषक प्राणी के मारने की विधि बताती है, जिससे वह उसे मारकर प्राप्त करता है। [4]कही कही नायक उसे पहले ही मारकर

१—यह अभिप्राय (ई० पूर्व) २०००-१७०० पूर्व की मिश्र की कहानी मे मिलता है। उस कहानी में यह मनुष्येतर प्राणी सर्पेंट या नाग है। वह प्राणी नागदेव मे रहने वाली दिव्यात्माओं (स्प्रिट्स) का राजा है। उसके पास कभी एक मर्त्य सुन्दरी भी थी।

२—उक्त नागराज दूर समुद्र मे एक द्वीप मे रहता था। उसी द्वीप में उसके साथ वह मर्त्य सुन्दरी थी।

३—नायक मनुष्य है जो जहाज टूट जाने पर बच कर वहता उस नाग के द्वीप पर जा पहुँचता है। इस मिश्र की २००० ई० पू० की कहानी के सबंध मे स्टिथ टामसन ने यह मन्तव्य दिया है—'यह कहानी ऐसी उलझी हुई है कि यह प्रतीत होता है कि जिस मनुष्य ने यह कहानी आज रूपान्तरित की है वह प्राचीन कहानी की अभिप्राय व्यवस्था को ठीक ठीक समझ नहीं सका था। उस विशालकाय नाग के समक्ष, इस रूपान्तरकार ने, नायक को अत्यन्त भयत्रस्त बताया है जिसने नायक पर बहुत दया दिखायी तथा उस (मर्त्य) सुन्दरी का समावेश क्यो हुआ है, इसकी कोई न तो व्याख्या दी है, न इस सूत्र का समुचित विकास ही हुआ है।" देखिए 'द० फोकटेल्स पृ० २७३।

४—ये कथाश भी ३-४ हजार वर्ष ईस्वी पूर्व मिस्र में प्रचलित थे। बाटा तथा अनपू दो भाइयो की कहानी में ये मिल जाते हैं। इसमे बाटा की स्त्री को एक दूती ही फुसलाकर ले गयी है। बाटा की स्त्री के भेद बताने पर बाटा की मृत्यु हुई है। बाटा के प्राण-एक पेड़ के पुष्प मे रखे हुए थे। उस पेड को काट डाला गया और बाटा की मृत्यु होगयी। (देखिये ईजिप्शियन मिथ ऐण्ड लीजेंड—लेखक डोनाल्ड-ए-मेकेन्जी-पृ० ५२-५३

उसके पास पहुँचता है। इस कहानी मे एक और उपकहानी जुड जाती है, जिसमे वह सुन्दरी (क) किसी दूती के बहकावे मे आकर, (ख) अपने निवास से बाहर जाने का साधन अपने पति से प्राप्त कर (ग) दूती के साथ बाहर जाकर पर-पुरुष के हाथ मे पड जाती है (घ) छ महीने की अवधि माँगती है (ङ) कोई व्यवस्था इस आशा मे करती है कि उसका पति खिचकर आ सके, जैसे प्रतिदिन नई चूटी पहनना, सदावर्त खोलना, पति विषयक कहानी सुनने वाले को पुरस्कार देना आदि (च) नायक का सहायक पहुँचकर उस व्यवस्था से लाभ उठाकर उसका उद्धार करता है और नायक से मिलाता है।

इन सभी अभिप्रायो का समावेश मूल कहानी मे प्रक्षेप माना जासकता है।

२—दूसरी बात यह विदित होती है कि 'तीन सकट' तो सब मे है, उन सकटो का रूप प्राय: प्रत्येक कहानी मे भिन्न है।

तीन सकटो के अभिप्राय का प्राचीनतम उल्लेख भी हमे मिश्र की ई० १६०० से २००० ई० पू० तक के काल मे प्राप्त एक कहानी मे मिलता है जिसे 'द ऐंचाटेड प्रिंस' का नाम दिया गया है। इस कहानी मे राजकुमार के जन्म पर यह भविष्यवाणी की गयी है कि इसकी मृत्यु साँप, कच्छप अथवा कुत्ते के द्वारा होगी। साँप से रक्षा करने के लिए राजकुमार को एक शीशे के महल में रख दिया जाता है। बडा होने पर राजकुमार बाहर निकलता है। और एक शर्त को पूरा कर एक राजकुमारी से विवाह करता है। यह राजकुमारी सर्प से राजकुमार की रक्षा करती है। कच्छप से राजकुमार स्वय बच निकलता है—कुत्ते वाली बात को बिना कहे ही यह कहानी समाप्त हो जाती है[१]। सकटो में तीन की गिनती ध्यान में रखने की बात है।

३—तीसरी बात यह भी विदित होती है कि प्रत्येक कहानी मे दपति के शयनकक्ष मे सहायक के पहुँचने की बात आती है। मृत्यु का अन्तिम विधान शयन-कक्ष मे किया गया है। यहाँ साँप का उल्लेख 'कथासरित्सागर' को छोड, कहानी के अन्य सभी सस्करणो मे आया है।[२]

१—देखिये स्टिथ थामसन की 'द फोकटेल्स' पृ० २७४ तथा ईजिप्शियन मिथ एड लीजेंड पृ० २६४

२—मिस्र की उस कहानी मे जिसे 'द ऐंचाटेड प्रिंस' नाम दिया गया है या जिसे 'द डूम्ड प्रिंस' नाम दिया गया है, यह अभिप्राय शयन-कक्ष मे ही घटित हुआ है। इस कहानी मे राजकुमार की पत्नी सर्प को कमरे मे आते देखती है। उसे दूध और शहद से छकाती है, फिर मार डालती है। दे० वही पृ० २६६

४—चौथी बात यह कि प्रत्येक मे सकट प्राय भविष्यवाणी के द्वारा बताये गये हैं। भविष्यवाणी को कहनेवाले, भविष्यवक्ता मनुष्य, शिला, आकाशवाणी यक्ष, पक्षी, कोई भी हो सकते हैं।

५—पाँचवी बात यह भी विदित होती है कि कहानी का वह अतिम भाग जिसमे सहायक समस्त रहस्य का उद्घाटन करके पत्थर हो जाता है, बाद मे जोडा गया होगा। क्योकि पत्थर होना और रक्त-स्पर्श या रज से पुनः जीवन प्राप्त होना एक अलग ही अभिप्राय है जिनका अलग इतिहास और विकास है।[1]

अत मूल कहानी मे तीन अभिप्राय ही मुख्य विदित होते हैं—

१—राजकुमार द्वारा वर्जित राजकुमारी की खोज और प्राप्ति—[2]

२—तीन सकटो की भविष्यवाणी और सहायक द्वारा उनसे रक्षा—तथा

३—अन्तिम सङ्कट शयन-कक्ष में, जहाँ सहायक का निपटारा या रहस्य का उद्घाटन। (बुन्देलखण्ड की कहानी मे शयन-कक्ष मे दो सङ्कट प्रस्तुत किये गये है। एक तो सामान्य ही है, दूसरा रानी की नाक से रात को सर्प निकलेगा, यह सङ्कट विशेष है। निश्चय ही यह एक दूसरी कहानी का अंश है, जो यहा जोड दिया गया है)। इन अभिप्रायो का मूल मर्म भी केवल एक है वर्जित प्रेम के उपभोग मे घातक बाधाओ का उदय और निराकरण।

जैसा हम ऊपर सकेत कर चुके हैं इस लोक-कहानी पर 'माइथालोजिकल सप्रदाय' के विद्वान काक्स द्वारा विचार किया गया—वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि इस कहानी का निर्माण उस प्रागैतिहासिक युग मे हुआ होगा, जब समस्त आर्य जातियों के पूर्वज अपने किसी मूलस्थान मे साथ-साथ रहते होगे।

१—कथासरित्सागर में पत्थर होने की घटना का उल्लेख नहीं, जिससे यह तो सिद्ध है कि एक ऐसी परम्परा भी थी जिसमे पत्थर होने का अभिप्राय समाविष्ट नहीं था। कथासारित्सागर में रहस्योद्घाटन के साथ एक शाप तो लगा हुआ है पर वह समय सापेक्ष्य है, यदि बचाने के उद्देश्य से कोई रहस्य प्रकट करेगा तो नष्ट हो जायगा। रक्षा हो जाने के बाद इस शाप का प्रभाव नहीं रहता। फलत कहानी का सपूर्ण अभिप्राय इस युक्ति से प्रकट हो जाता है। कहानी यहीं समाप्त हो जानी चाहिये।

२—प्राप्ति के लिए जाने भर का अभिप्राय ही मूल प्रतीत होता है। कितनी ही कहानियों में विवाह के लिए जाते समय की घटनाओं का उल्लेख है। जैसे कथासारित्सागर और बुन्देलखण्ड की कहानी मे। ढोला और मारू की लोककहानी मे भी गौने के लिए जाते समय की बाधाओं का उल्लेख है। ब्रज की 'भैयाबूज' विषयक कहानी मे ये सङ्कट विवाह के लिए जाते समय ही आते हैं। आदि

ऊपर यह भी हम देख चुके हैं कि इस कहानी का सकट-विषयक मूल अभिप्राय ईस्वी पूर्व २००० वर्ष मे मिस्र मे प्रचलित था।

किन्तु वाद के विद्वानो मे से राश्च (Rosch) तथा कार्ल क्रोह्न ने इस कहानी पर बहुत विस्तार से विचार किया है। उन्होंने सिद्ध किया है कि ये कहानी-तत्व भारत से आये। और पुर्तगाल तक फैले। ये दोनों विद्वान बेन्फी के यात्रा-विश्वासी सप्रदाय के हैं, जो यह मानते हैं कि कहानियाँ भारत से चल कर यूरोप मे तथा अन्यत्र फैलीं।

विश्व की लोकवार्ताओ पर ध्यान देने से कुछ ऐसा आभास मिलता है कि स्टिथ टामसन द्वारा प्रस्तुत किया गया आदर्शरूप स्वीकार किया जाय तो यह समस्त वृत्त कुमारियो के पुष्पवती होने से कौमार्यभग तक का प्रतीकात्मक उल्लेख है। पाषाण होना पौरुष की जडता है। जो पुत्रोत्पत्ति के उपरान्त जीवित हो उठता है। (आगे 'रक्त-लेपन' पर भी टिप्पणी देखिये)

यथार्थतः इसकी मूल उद्भावना कहाँ हुई यह विषय तो अभी और अनुसधान चाहता है। किन्तु यहाँ इस सम्पूर्ण कहानी के विविध अभिप्रायो पर कुछ विचार कर लेना समीचीन प्रतीत होता है—

१—नायक और सहायक—दो भाइयो वाला रूप—दो भाइयों वाले रूप का विशेष अध्ययन राके (Ranke) महोदय ने किया है। दो भाइयो की इस कहानी में एक ड्रेगन को मार कर सुन्दरी को पाने की बात अधिकाशतः आती है। ऐसी समस्त कहानियाँ जिन मे दो भाई हो और सुन्दरी को प्राप्त करने के लिए किसी कठिनाई को दूर करना पडे, इसी कोटि मे रखी जायगी। राम-लक्ष्मण के साथ धनुष तोड कर सीता को प्राप्त करने का राम-कथा का अश, इन्ही दो भाइयो की कहानी का रूपान्तर है। सात मुख वाला सपक्ष अजगर 'धनुष' बन गया है। नल की कहानी मे मोतिनी को प्राप्त करने के लिए धूमासुर या भौमासुर दाने का सहार नल को करना पडा है। अजगर का स्थान दाने ने ले लिया है। पदमावती चरित मे यह बाधा तो भयानक है पर उसका स्वरूप बहुत कोमल हो गया है। वह सुन्दरी पुरुष-द्वेषिणी है, क्योकि वह समझती थी कि वह उसे असहाय अवस्था मे छोड गया था। चित्र से पूर्व-जन्म की घटना का स्मरण दिलाकर यह घृणा दूर करायी गयी, तब राजकुमार उसे पा सका। दो भाइयो वाली इस कहानी का बहुत अधिक प्रचार

मिलता है[1]। इस दो भाइयोवाले अभिप्राय मे भारतीय अश्विनों की वैदिक कहानी को भी रखा जा सकता है। अश्विन दो भाई हैं। ये अनेक साहस के कृत्य करते हैं। इन्द्र और विष्णु का वैदिक वृत्त अहिवृत्र को मारने और उसके वधन से सूर्य अथवा उषा को मुक्त करने का अभिप्राय भी, इस कहानी के मूल अभिप्राय से वहुत मिलता है। यह सहायक 'भैयादूज' की कहानी मे 'वहिन' है। वही सकट से रक्षा करती है।

नायक वर्जन[2] का उलघन करके प्रेम मे फँस जाता है। वर्जन का एक

१—इस संवन्ध मे श्री कृष्णानन्द गुप्त ने 'वुन्देलखण्ड की ग्राम कहानियाँ' नाम की पुस्तक की प्रस्तावना मे लिखा है कि—'संत-वसत कहानी वहुत रोचक है। और इस वात का एक उत्तम उदाहरण है कि किस प्रकार एक ही कहानी विभिन्न रूपों मे प्रचलित हो जाती है। यह कहानी 'दि दू ब्रदर्स' (दो भाई) शीर्षक से 'इण्डियन एन्टीक्वेरी' के सन् १८८२-८८ के अकों में दो विभिन्न रूपों मे छप चुकी है। एक काश्मीरी, और दूसरा मध्य-प्रान्तीय पाठ 'सत-वसत' के पाठ से वहुत कुछ मिलता है। ..पर उल्लेखनीय वात यह है कि यह कहानी 'सीत-वसत' नाम से वंगाल मे भी प्रचलित है .. और चार विभिन्न रूपों मे वहाँ छपी मिलती हैं। इस कहानी पर रांके (Ranke) महोदय ने विस्तृत अध्ययन किया है। इस कहानी के ११०० उदाहरण तो उस समय तक यूरोप मे मिल चुके थे जव कि स्टिथ टामसन ने अपनी 'दि फोकटेल' नाम की पुस्तक लिखी थी।

२—ऐसे वर्जन का घनिष्ठ सम्वन्ध फ्रेजर महोदय की राय मे विश्वव्यापी उस मूढग्राह से है जिसमे प्रथम पुष्पवती होते समय किशोरियों को पृथ्वी-स्पर्श अथवा सूर्य-दर्शन का वर्जन किया गया है। भारत में भी 'असूर्यपश्या' स्त्री को महत्व दिया गया है। यह पृथ्वी न छूने अथवा सूर्य के दर्शन न करने की प्रथा अत्यन्त प्रचलित है। अनेक जातियों मे कुमारियो को अलग कमरे मे वन्द कर दिया जाता है। इस प्रथा के विश्वव्यापी रूप का रोचक दर्शन फ्रेजर ने अपनी पुस्तक 'गोल्डेन वाउ' मे कराया है—वहीं अन्त मे उन्होंने लिखा है

A superstition so widely diffused as this might be expected to leave traces in legends and folktales and it has done so The old Greek story of Danae who was confined by her father in a subterranean Chamber or a brozen tower but impergnated by Zeus who reached her in the shape of a shower of Gold perhaps belongs to this class of Tales" (Golden Bough p. 602)

रेयड डेलाय जेमशन का मत है कि इस वर्जन का मूल वर्जित फल या वृक्ष है। इसका एक रूप आदम-हव्वा के कथानक मे मिलता है। इसमें भले-वुरे के ज्ञान के पैदा होने के साधन का वर्जन प्रतीत होता है। यही वर्जन रूपान्तरित होकर कक्ष-वर्जन, चित्र-मूर्ति वर्जन, दिशा-वर्जन वन गया है। (स्टैंडर्ड

रूप है किसी कक्ष का वर्जन। नायक वर्जित कमरे मे जाता है और वहाँ सुन्दरी का चित्र देखकर विमोहित हो जाता है। 'वर्जित कक्ष' का अभिप्राय कितनी ही कहानियो मे मिलता है। उसमे कहीं-कही दक्षिण दिशा के कक्ष का अथवा दक्षिण मे जाने का वर्जन होता है। जो कहानियाँ हमे हिन्दी क्षेत्र मे मिली हैं उनमे स्पष्ट वर्जन नही, अप्रत्यक्ष वर्जन है। मूर्ति पर मिट्टी थोप दी गयी है। अथवा पद्मावती चरित के रूप मे मदिर की मूर्तियो के साथ वह मूर्ति है। मिस्र ने वाटा की कहानो मे वाटा ने अपनी पत्नी को घर से वाहर जाने से वर्जित किया है।

वर्जन के उल्लघन से प्रेम मे ग्रस्त होने की वात तो प्रस्तुत कहानियो में है ही। किन्तु वर्जन के उल्लघन से किमी सकट में फँमने[1] अथवा किसी सकट से मुक्ति पाने की कहानियाँ भी कम नही है।

३—चित्र, मूर्ति अथवा वस्तुदर्शन मे प्रेम—इस कहानी के समग्र रूप में इस अभिप्राय १ का कही-कही दो वार प्रयोग हुआ है। एक आरभिक है, जिसका सम्वन्ध चित्रदर्शन अथवा मूर्तिदर्शन से है। किन्तु जैसे व्रज की कहानी में है, सुन्दरी की जूती को देखकर एक दूसरा राजकुमार 'परपुरुष' मुग्ध हो जाता है, और दूती भेज कर सुन्दरी को वलात् प्राप्त करना चाहता है। नल-मोतिनी की कहानी में 'सार-पाँसे' (चौपड) की गोट भी वैसा ही काम करती है। कही-कही सुनहले वाल नदी में वहते मिलते हैं, राजकुमार उस सुनहले वालो वाली सुन्दरी को प्राप्त करना चाहता है। मिस्र की वाटा वाली कहानी मे वाटा की स्त्री के सुगधित वाल वहकर मिस्र के किनारे पहुँचते है। उनसे मिस्र का राजा वाटा की स्त्री को प्राप्त करने के लिए सन्नद्ध होजाता है। 'लखटकिया' की प्रसिद्ध कहानी में कभी एक पैर की जूती यही काम करती है, कभी हार या अन्य आभूपण। चित्रदर्शन (तथा मूर्तिदर्शन भी) तो साहित्य के क्षेत्र में भी एक उपयोगी विधान स्वीकार किया गया है :

४—प्रेयसी की प्राप्ति में किसी वाधा का विधान और उसका निराकरण। इस अभिप्राय के कई रूप इस कहानी मे मिलते हैं —

डिक्सनरी आव फोकलोर) फ्रेजर ने जो सभावना प्रस्तुत की है वह अधिक उपयुक्त प्रतीत होती है। वर्जन के साथ उनका उल्लघन भी वहाँ विद्यमान है। जियस भी सूर्य या उसकी किरणों का ही प्रतिरूप है।

१—वर्जन के उल्लघन से सकट मे फँसने की एक कहानी वह है जिसमे एक सुनार को कुए से निकालने का वर्जन कई प्राणी करते हैं। ये प्राणी उसी कुए मे गिरे हैं और निकाले जाने पर सुनार को निकालने का वर्जन करते जाते हैं—

दे० व्रज की लोक कहानियाँ पृ० १५, कहानी 'नारद की घमड दूरि करयो'

(क)—कही तो सुन्दरी तालाव या कुएँ में या नाग के वधन मे हैं। सर्प के अधीन सुन्दरी, उससे जलाशय का सम्वन्ध, और वहाँ नायक का पहुँचकर उस सुन्दरी से विवाह। इन अभिप्रायो का ही एक रूप शेषशायी भगवान विष्णु के चित्र में मिलता है। शेष का सम्वन्ध भी क्षीर समुद्र से है। लक्ष्मी सागर से निकली हैं। सागर भगवान विष्णु और लक्ष्मी दोनो साथ दिख यी पडते हैं। नाग और दाने की कुछ ऐसी कहानियो पर विचार के लिए देखिये 'द फोक टेल्स' पृ० ५० (लेखक स्टिथ टामसन) मे निवन्ध—'द ग्रेटफुल डेड'। नाग को मारकर मणि प्राप्त की जाती है। उससे पानी में मार्ग मिलता जाता है और नायक सुन्दरी को प्राप्त कर लेता है।

मणि पाकर पाताल मे जाने और सर्पलोक मे जाने की वात कितनी ही कहानियो मे मिलेगी। नल-मोतिनी की कहानी मे नल वासुकि के यहाँ पहुँचता है। कृष्ण कथा मे कृष्ण अपनी दिव्यता के कारण नागो मे पहुँच गये हैं।

(ख) कही सुन्दरी दूर द्वीप मे (अ) किसी राक्षस या दाने के अधीन है वहाँ नायक पहुँच जाता है और वाद मे राक्षस या दाने को मारता है (आ) किसी राजा की पुत्री है[1] जिसे वहका कर व्यापारी जहाज पर विठाकर भगा ले जाता है।

(ग) कही सुन्दरी पुरुष-द्वेपिणी है—वह पुरुष से दूर रहना चाहती है—जैसे पद्मावती चरित मे। इस चरित मे मिलनेवाला वाधा विपयक यह अभिप्राय वुन्देलखण्ड की 'मित्र हो तो ऐसा हो' शीर्षक कहानी मे भी सन्निवेशित है।[2] दोनो में यह पुरुष-घृणा पूर्व जन्म के पुरुष-विपयक किसी निर्मम व्यवहार के कारण है। 'चरित' मे हस हसिनी है, तो दूसरी मे चिरौटा-चिरैया हैं।

इसमे निराकरण की विधियाँ भिन्न हैं। चरित में पूर्व-जन्म के चित्र के सहारे उसे स्मरण दिलाकर भ्रम दूर कराया गया है। वुन्देलखण्डवाली कहानी मे पुरुषद्वेप के तुल्य ही स्त्री-द्वेप रखनेवाले साधु का छद्म कराके पूर्वजन्म

---

१. पाश्चात्य धर्मगाथाओं मे अएनीज अपने स्वामिभक्त मित्र एकदीज के साथ दूर समुद्र मे तूफान के कारण एक द्वीप पर पहुँचता है, जहाँ डीडो नाम की सुन्दरी स्वय ही राज्य कर रही हैं। अएनीज और इस सुन्दरी मे प्रेम हो जाता है। अएनीज एक दिन जहाज द्वारा चुपके से उस द्वीप से चला जाता हैं। सुन्दरी वहीं वियोग मे जल मरती है।

२ दे० पाषाण नगरी—श्री शिवसहाय चतुर्वेदी।

मे चिरैया द्वारा किये गये दुर्व्यवहार को घृणा का कारण बताया गया हैं। जिससे वह सुन्दरी उसे अपना पति समझकर फिर आकृष्ट हो जाती है। और इस प्रकार बाधा का निराकरण हो जाता है।

बाधाओ के विधान और उनके निराकरण के अनेक रूप हमे कहानियो मे मिलते हैं। सीता की प्राप्ति के लिए धनुष तोडने की शर्त भी बाधा के रूप मे ही है।

५—प्रेयसी सोती मिलती है। जिसे युक्ति से नायक जगाता है—सुषुप्त सौंदर्य (स्लीपिंग ब्यूटी) से सम्बन्ध रखने वाली कहानियो की गिनती कठिन है।[1] यह निद्रा कभी कभी तो साधारण होती है। सोते से जगाने के लिए नायक या तो सिरहाने के तकिए को पैरो की ओर और पैरो के तकिए को सिरहाने की ओर रखता है या कभी शय्या को हल्का धक्का लगा देता है।

कभी यह निद्रा मृत्यु के समान होती है, राक्षस या नाग उसे अपने दिव्य साधन से मृतवत् करके चला जाता है और आकर फिर उसे जीवित कर लेता है। बहुधा ऐसा दो लकडियो से होता है जिन्हे सिरहाने और पायताने बदल देने से वह या तो मर जाती है या जीवित हो उठती है। नायक या तो बुद्धि से या छिप कर इस विधि को देख कर जान लेता है और लाभ उठाता है।

कभी सिर और धड अलग मिलते हैं जिन्हे जादू की छडी से छू कर जीवित कर लिया जाता है।

६—प्रेयसी को प्राप्त कर अथवा पुन' प्राप्त कर नायक, सहायक और सुन्दरी चलते है और एक वृक्ष के नीचे ठहरते हैं। जहाँ वे भविष्यवाणियाँ सुनते हैं—

प्रथम प्राप्ति के उपरान्त सुन्दरी का अपहरण होता है, और उसकी पुन. प्राप्ति का प्रयत्न होता है। यह स्वय एक नई कहानी बन जाती है—नल और मोतिनी की कहानी में भी ऐसा ही होता है। बगाल की कहानी 'फकीर-चन्द' में भी यह अभिप्राय विद्यमान है।

सुन्दरी का यह अपहरण बहुत व्यापक अभिप्राय है।

७—भविष्यवाणिया कहने वाले प्राय दो प्राणी होते हैं—वे अलौकिक

---

१. देखिये "स्टैंडर्ड डिक्सनरी आव फोकलोर" निबन्ध—लिटिल ब्रायर रोज पृ० ६३३। लैटिन की धर्मगाथा मे क्यूपिड को साइक दिव्य निद्रा मे मग्न मिलती है। क्यूपिड उसकी वह मोह-निद्रा भग्न करता है और साइक से विवाह करता है।

यक्ष भी हो सकते हैं, पक्षी हो सकते हैं[1], कहीं कहीं एक ज्योतिषी ही यह कार्य सम्पन्न करता है, कहीं कहीं केवल आकाशवाणियां ही हो सकती हैं। मिस्र से मिलने वाली प्राचीन कहानी मे ऐसी भविष्यवाणी का उल्लेख है।[2]

८—भविष्यवाणियो में तीन सामान्य सकटो का उल्लेख होता है। ये तीन सकट अलग अलग कहानी में अलग अलग रूप ग्रहण कर सकते हैं। इन सकटो का स्वरूप यह है—

क—जादू का हार जिससे गला घुट जायगा (कथासरित्सागर की कहानी में)

ख—जादू का आम्रवृक्ष। जिसका आम खाने वाला मर जायगा। (यह अभिप्राय वस्तुत· विष देने के अभिप्राय के ही समान है। केवल इसका रूप दिव्य है)

ग—दरवाजा टूट कर गिर पडेगा। (यह वृक्ष की शाखा गिरने के समान ही है[3]।)

१—सिरी जातक में दो मुर्गे लड़ पडते है, और लड़ते लड़ते बातें करते हुए ऐसी बातें कहते हैं जिनसे सुनने वाला उन्हें मार कर लाभ उठाता है। कथाकोष की रानी मदनावती तोता-तोती की बातें सुनकर अपने शरीर की दुर्गन्ध का कारण भी जान लेती है और दूर करने का उपाय भी। कथाकोष मे ललितांग की कहानी मे अधा राजकुमार भारुण्ड पक्षियो से नेत्र-ज्योति पाने का उपाय जान लेता है। दक्षिण की कहानियों मे दो सांप परस्पर बातें कर के सुनने वाले के मन में उन्हें मार कर लाभ प्राप्त करने की इच्छा पैदा कर देते हैं। पचफूल रानी गीदडों की बातों से अपने पति को जीवित करने का उपाय जान लेती है। एक कहानी मे उल्लू के मुख से लक्ष्मण अपने भविष्य का वृत्तान्त सुनते हैं।

२—इस मिश्र की कहानी मे हथोर नाम की भाग्यलिपि लिखने वाली बेमाता जैसी देवियां भविष्य बताती हैं।

३—दरवाजे अथवा वृक्ष के गिरने का अभिप्राय भी बहुत प्रचलित अभिप्राय है। ढोला और मारू के कथानक में भी दरवाजे के गिरने से ढोला की मृत्यु का विधान है। जिससे करहा (ऊंट) उसे बचा ले जाता है यद्यपि उसकी पूंछ गिर जाती है। करहे के स्थान पर घोड़े की पूंछ गिरने का उल्लेख एक आयरिश रोचक कहानी में मिलता है। जिसमे एक किसान को शैतान डू शाप देता है कि जब तक तुम प्रकाश की तलवार लाकर नहीं दोगे तुम अपनी सुन्दरी प्रियतमा के साथ सुख नहीं पा सकोगे, अपनी प्रियतमा से बिना परामर्श किये वह किसान एक विशेष घोड़ा लेकर एक तीन परकोटे के किले पर आक्रमण करता है। जब पहले परकोटे को उसका घोड़ा अपने स्वामी के प्राणों की रक्षा करने के लिए लौटता हुआ फलाङ्गता था तभी किले के शैतान के फेंके अस्त्र से उसकी पूंछ कट कर गिर गयी। पर वह स्वामी को बचा कर ले भागा। देखिये—सनलोर आव आल एजेज, पृ० १११-११४।

दरवाजे के स्थान पर वृक्ष के गिरने की बात भी बहुधा मिलती है। कहीं कहीं दोनों का भी समावेश है। कहीं—जैसे भयाडूज की कहानी मे—'सरकनी शिला' गिरने का भी विधान है।

घ—शयन कक्ष में सौ वार छीक (कथासरित्सागर में है)

ङ—एक दुष्ट घोडा (यह घोडे का अभिप्राय भी काफी प्रचलित है। पर इस कहानी के साथ इधर नही मिलता)

च—विपमिश्रित भोजन (विपैले भोजन के अभिप्राय में कोई विशेपता नही, यह तो वहुत सामान्य है।)

छ—शयन कक्ष में सर्पदश[1] (यह अभिप्राय इस कहानी में अत में अवश्य ही मिलता है। केवल कथासरित्सागर में यह नही है)

ज—जलकर मरना (वहुत ही कम सस्करणो में इसका समावेश है)

झ—चट्टान पर गिरना (इसका भी वहुत कम प्रयोग किया गया है)

ञ—विवाह के दिन सर्पदश (इसमें और ७ वें में कोई विशेप अतर नही)

ट—विपैले अथवा अग्नेय वस्त्र (यह अभिप्राय भी वहुत प्राचीन है, और पौराणिक भी है। हरक्यूलीज की मृत्यु ऐसे ही विपैले वस्त्र से हुई थी।[2])

ठ—डाकुओं से मुठभेड—(एक सामान्य अभिप्राय है)

ड—नदी में डूवना—(सूखी नदी में होकर जाते ही वीच मे वाड आ जायगी और डूव जायगे। यह कई कहानियो में है)

१—सर्प किसी न किसी रूप मे पुष्पवती होने की अवस्था और सस्कार से संवध रखता है। यह दक्षिण-पूर्वी वोलिविया के चिरिगुआनो मे मिलने वाली एक प्रथा से विदित होता है। वहाँ जव कोई कन्या सवसे पहले पुष्पवती होती है, तो तीसरे महीने घर की वडी वूढी स्त्रियाँ डण्डे लेकर उस कोठरी मे जाती हैं जिसमे वह पुष्पवती कन्या छत से लटकायी गयी रहती है। और जो चीज उन्हें वहाँ मिलती है उसी मे डण्डे मार कर कहती है, 'हम उस साँप को मार रही हैं जिसने इस लडकी को घायल किया है'। (दे० गोल्डन वाउ पृ० ६०७)

२—हरक्यूलीज देइअनीरा से विवाह करके घर लौट रहा था। मार्ग मे एक नदी पडी। सैण्ठर नेस्सस (Centaur Nessus) देइअनीरा को कन्धे पर विठाकर जव पार उतारने गया तव वीच नदी मे उसके साथ अभद्र व्यवहार किया। हरक्युलीज ने इस दुष्ट को मार डाला। मरते मरते उसने देइअनीरा से कहा कि मेरे शरीर का कुछ रक्त लेकर अपने पास रख लो। यदि कभी हरक्यूलीज किसी स्त्री को तुमसे अधिक प्रेम करने लगे तो इस रक्त मे रँग कर उसे वस्त्र पहना देना। यह तुम्हारे प्रेम की रक्षा करेगा। देइअनीरा ने उसे अपने पास रख लिया। एक वार इयूरीटस से युद्ध करते हुए कई स्त्रियाँ वदिनी हुई। उन्हें हरक्यूलीज ने अपनी स्त्री के पास भेज दिया। उनमे से इयोंले नाम की राजकुमारी विशेष सुन्दर थी। देइयनीरा को यह भ्रम पैदा कराया गया कि हरक्यूलीज उसे वहुत प्रेम करता है। देइअनीरा ने तव उस रक्त से एक वस्त्र रँग कर हरक्यूलीज के पास भेजा। पहनते ही हरक्यूलीज तड़प कर मर गया। इसी प्रकार जादूगरनी मीडिया ने जादू के वस्त्र से अपने प्रेमी जेसन की दुल्हन को जला दिया था।

ढ—वृक्ष की शाखा गिरना—(यह ३ के समान है)

ण—चित्र का सिंह या वाघ जीवित होकर खा जायगा। (यह विशिष्ट अभिप्राय कुछ कहानियो में मिलता है)। उडीसा में मिलने वाली एक 'सत्य-नारायण' विपयक कहानी में भी चित्र के वाघ के जीवित हो जाने का उल्लेख है। राजा पद्मलोचन के पुत्र की आयु सत्यनारायण ने वारह वर्ष की ही नियत करायी। जिस दिन वारहवाँ वर्ष पूर्ण हो रहा था, उस दिन वह अपनी पत्नी के आग्रह पर एक वाघ का चित्र वनाने वैठा। चित्र वन जाने पर चित्र का वाघ जीवित हो उठा और राजकुमार को उसने मार डाला। (दे० स्टडी आव ओरिस्सन फोकलोर)

९—सहायक भविष्यवाणी सुनता है। वह सकटो से रक्षा करता है।

१०—अतिम शयन-कक्ष वाले सकट से रक्षा करते समय पकडा जाता है सन्देह में मृत्यु दण्ड की आज्ञा होती है। (वुन्देलखण्ड की कहानी में, मित्रो की प्रीति में एक और सकट प्रस्तुत किया गया है। वह है रानी की नाक से सर्प निकलने का। रानी की नाक से सर्प निकलने का अभिप्राय भी वहुत प्रचलित है, पर वह इस कहानी से भिन्न वर्ग की कहानियो में मिलता है।

११—वह सहायक रहस्य-उद्घाटन कर देता हैं—जिससे वह पत्थर का हो जाता है[1]।

१२—नायक के प्रथम पुत्र का स्पर्श, या उसके वलिदान का रक्त उसे पुन: जीवित कर देता है[2]।

१—पत्थर होने का अभिप्राय अत्यंत प्राचीन और अत्यंत प्रचलित है। अहिल्या के पत्थर होने की कहानी तो हम सभी जानते हैं। पाषाण नगरी की प्रसिद्ध वुन्देलखण्ड की कहानी सभी क्षेत्रों में मिलती है। वह भी शाप का ही परिणाम है। ऐसी कहानियाँ भी वहुत हैं जिनसे किसी कठिन कार्य को करने से संकल्प से गया हुआ व्यक्ति किसी शोर को सुनता है और पत्थर हो जाता है। पाश्चात्य जगत में भी इसके अनेक प्रयोग हुए हैं। एक अभिशप्त शहर से भागते हुए लोट की स्त्री नमक का स्तभ वन गयी थी,क्योंकि उसने पीछे फिर कर सोडीव और गोमोरा पर दृष्टि डाली थी। गौरगन मेड्यूसा का रूप इतना भयावना हो गया था कि जो उसे देखता था पत्थर हो जाता था। अरेवियन नाइट्स में एक पाषाण नगर का उल्लेख है। ऊपरी मिस्र में इशमोनी नाम का नगर ही पत्थर का हो गया है। (दे० स्टैण्डर्ड डिक्सनरी आव फोकलोर-निवन्ध (पैट्रीफिकेशन)

२—रक्तलेपन—अहिल्यावाली कथा मे यह चरण की रज का स्पर्श है। पाषाण नगरी मे कहानी को दुहराना ऐसा ही अभिप्राय है। रक्त के स्पर्श अथवा लेप से प्राण पाने के अभिप्राय मे वह आदिम विश्वास विद्यमान हैं जिसमे यह माना जाता है कि रक्त मे प्राण है। उसके स्पर्श से रक्त का प्राण

१२—मृतक पुत्र को सहायक जीवित कर देता है। १. उनके सिर धड से मिला कर, २. देवी की कृपा पाकर।

इस प्रकार इन अभिप्रायो पर विचार करने के उपरान्त यह विदित हो जाता है कि कहानी ही पुरानी नही, उसमें आने वाले विविध अभिप्राय भी पुराने हैं और वे अत्यन्त विशद क्षेत्र से सबधित हैं। उनमें से कुछ का सम्बन्ध निश्चय ही पुष्पवती अवस्था से है। पुष्पवती अवस्था के संबन्ध में आदिम मानव में अत्यन्त ही आशका के भाव विद्यमान मिलते हैं। इस प्रकार जैन कथा-साहित्य में लोकयार्त्ता के तत्व पूर्ण रूपेण विद्यमान हैं।

वस्तुत जैनियो की इस कथा-परम्परा से ही हिन्दी का सीधा सम्बन्ध उसके आरम्भ-काल में था। हिन्दी में लिखित साहित्य में लोककथा और लोक-वार्ता सम्बन्धी जो ग्रन्थ खोज में मिले हैं, अब यहाँ उनका सक्षिप्त परिचय दे देना उचित प्रतीत होता है। इससे वेदो से लेकर हिन्दी के समय तक के लोक-साहित्य के रूप का पूर्ण किन्तु सक्षिप्त विकास समझा जा सकेगा।

हिन्दी में लोकवार्त्ता-कहानी

इसके लिए हमे 'खोज' रिपोर्ट तथा इतिहासो से वह सामग्री एकत्र करनी होगी जो हिन्दी के कहानी-साहित्य से सबधित है। इस साहित्य के उस भाग पर भी यहाँ विचार नही करेंगे जो बहुत उच्चकोटि का है, और अत्यन्त प्रसिद्ध है। यहा हम यह देखेंगे कि क्या इस खोज से हिन्दी में कोई ऐसी सामग्री मिलती है जिसमें लोक-वार्ता की सीधी परम्परा विद्यमान हो। और जब हम हस्तलिखित ग्रन्थो की शोध के पन्ने पलटते हैं तो हमें आश्चर्य में पड जाना पडता है। अनेको पुस्तकें हैं जो लोकवार्ता को प्रकट करती हैं। यहाँ हम सक्षेप में सभी का सामान्य लेखा-जोखा दिये देते हैं। विषय प्रतिपादन की दृष्टि से हम उन पुस्तको को साधारणत सात विभागो में बाँटे लेते है। एक लोक-कहानी का। इस वर्ग में वे पुस्तकें आयेंगी जो लोक-प्रचलित कहानियो को कहानियों के लिए ही ग्रहण करती है। दूसरा है धर्म-महात्म्यकथा का—इस वर्ग में ऐसी कहानियाँ आती है जो या तो (अ) किसी व्रत से घनिष्ठ सम्बन्ध

स्थानान्तरित हो जायगा। वोर्नियों के ओट डनोमो मे जब लड़की स्त्रीत्व की अवस्था पर पहुँचती है तो उसे कोठरी से बाहर निकाला जाता है। जिसमे वह ७ साल तक, एक प्रकार से बन्द रही। और एक बडा भोज होता है। एक गुलाम को मारकर उसका रक्त उस लडकी के शरीर पर लेपा जाता है। देखिये—गोल्डेन बाउ, पृष्ठ ५६७ यह पुष्पवती होने के समय का कृत्य पाषाण पर रक्त लेपन के विश्वास से कुछ संबन्ध रखता है, ऐसा विदित होता है।

रखती है। जब तक यह कहानी न सुन ली जाय व्रत पूर्ण नही होता। जैसे गणेश चौथ की कथा या (आ) ऐसी कथाऐं जो किसी व्रत या तीर्थ के महात्म्य को प्रकट करती हैं। (इ) या ऐसी कथाऐं जो साधारणतः ऊपर के प्रकार में नहीं आती पर जिनका धार्मिक महत्व हो, जिनसे कोई पुण्य लाभ हो। तीसरे वर्ग में वे कथाऐं आयेंगी जो 'अवदान' अथवा (legends) कही जाती हैं। चौथे वर्ग में वीर-गाथाऐं अथवा वैलेड (ballads) हैं। पाचवे में मातृ-कथा है (hegeological)। छठे में पौराणिक कथाऐं (Mythological) है। सातवाँ वर्ग उन पुस्तको का होगा जिनमें विविध लौकिक सस्कारों का उल्लेख पाया जाय। एक आठवाँ वर्ग विविध का हो सकता है।

१ कहानी	२ धर्म महात्म्य	३ अवदान	४ वीरगाथा
१, मूल ढोला	१, गणेशजू की कथा	१, हरदौल चरित्र	१, खानखवास की कथा
२, सिहासन वत्तीसी	२, गणेश जी की कथा चार युग की	२, हरदौलजी का ख्याल	२, पृ० रा० रासो
३, वैताल पच्चीसी	३, श्री सत्यनारायण कथा	३, पन्ना वीरमदे की वात	(पद्मावती समय)
४, कनक मजरी	४, यमद्वितीया की कथा		३, कृष्णदत्त रासौ
५, राजा चित्रमुकुट की कथा	५, एकादशी महात्म्य		
६, माधवानल कामकदला	६, अनन्तदेव की कथा		
७, कथा चारदरवेश	७, यशोधर चरित्र		
८, चित्रावली	८, व्रत कथाकोप		
९, माधव विनोद	९, लघु आदित्यवार की कथा		
१०, प्रेम-पयोनिधि	१०, पूर्णमासी और शुक्र की कथा		
११, हितोपदेश	११, शिव व्रत कथा		
१२, विक्रम विलास	१२, सूर्य महात्म्य		
१३, किस्सा	१३, नर्मद सुन्दरी		
१४, सैटा कौ ढोला	१४, पच कल्याणक व्रत		
१५, चदन मलयागिर कथा	१५, आदित्यवार कथा		

१	२	३	४
१६, रसरत्न	१६, निश भोजन त्याग व्रत कथा		
१७, कथा सग्रह	१७, शील कथा		
१८, मनोहर कहानियाँ	१८, वारागकुमार चरित्र		
१९, शुक बहत्तरी	१९, भक्त महात्म्य		
२०, मृगावती	२०, पद्मनाभि चरित्र		
२१, मकरध्वज की कथा	२१, रौहिनी व्रत कथा		
२२, शुकरम्भा सवाद	२२, अघविनास		
२३, रूपावती	२३, मोहमर्द की कथा		
२४, लक्ष्मण सेन पद्मावती	२४, सयुक्त-कौमुदी भाषा		
२५, लैला-मजनू	२५, आकाश पचमी की कथा		
२६, इन्द्रावती	२६, ध्यानकुमार चरित्र		
२७, राजारिसालू	२७, षट कर्मोपदेश		
२८, चदायन	२८, धर्म परीक्षा		
२९, मैनासत	२९, रत्न ज्ञान		
	३०, श्रीपाल चरित्र		
	३१, पुण्याश्रवकथा		
	३२, रुक्मागद की कथा		
	३३, रविव्रत कथा		
	३४, विष्णुकुमार की कथा		
	३५, रवि कथा		
	३६, वन्दीमोचन		
	३७, हरतालिका कथा		

५	६	७	८
सत कथा	पुराण कथा	सस्कार वर्णन	विविध
१ जन्मसाखी : कवीर की ·	१ धर्मसपद की कथा	१ ठाकुर जी की घोडी	१ व्रजभान की कथा
२ नामदेव की	२ जैमुन की कथा	२ रामकलेवा	२ विसइ कथा
३ राजा पीपा की जन्मसाखा	३ हरिश्चन्द्र की कथा	३ पट रहस्य	३ अन्तरिया की कथा
४ रैदास की परिचई	४ नासकेत	४ वना	
५ सेऊ सम्मन की परिचई	५ चण्डी चरित्र		
६ रांका वाका	६ नृसिह चरित्र		
७ नवल्लद नामा	७ वहुला कथा		
८ घना परचई	८ सुदामा जी की वारहखडी		
	९ श्रवणाख्यान		
	१० नृगोपाख्यान		
	११ शिवसागर		

१२ वीर विलास :द्रोणपर्व'
१३ उपा चरित्र
१४ प्रद्युम्न चरित्र
१५ सुन्दरी चरित्र
१६ आदि पुराण की
वालवोध भाषा वचनिका
१७ महापद्म पुराण
१८ प्रह्लाद पुराण
१९ राम पुराण
२० वहुला व्याघ्र संवाद
२१ सुख सागर कथा
२२ सुधन्वा कथा
२३ सीता चरित्र
२४ हनुमान चरित्र
२५ पाण्डव यशेन्दु चन्द्रिका
२६ महादेव विवाह
२७ उर्वशी
२८ पुरन्दर माया
२९ दसम पर्व
३० हरिचद सत
३१ जानकी विजय

यह सूची पूर्ण भी नही और ऐतिहासिक क्रम से भी नही। किन्तु इससे हिन्दी-साहित्य मे लोक-वार्त्ता विपयक रचनाओ का सामान्य परिचय अवश्य मिल जाता है। लोक-वार्त्ता साहित्य मे किस वर्ग की विशेप लोक-प्रियता रही है, यह भी विदित हो जाता है। लोक-वार्त्ता साहित्य के वैविध्य का भी ज्ञान हो जाता है। सिंहासन वत्तीसी, वैताल पच्चीसी, माधवानल-कामकदला, कथा चारदरवेश, हितोपदेश, माधव-विनोद, शुकवहत्तरी, विक्रम-विलास. प्रसिद्ध कहानियो से सम्बन्ध रखने वाली कृतियाँ हैं। माधव-विनोद मे मालती-माधव की कहानी है। मूल ढोला तथा सेंटा का ढोला, 'ढोला मारू' की कहानी से सम्वन्वित है। मूल ढोला प्रसिद्ध ढोला की तर्ज मे नही है। इसके लेखक नवलसिंह ने ढोला की शैली से मिलती जुलती शैली के साहित्यिक छन्द को अपनाया है। उसने लिखा है:—

"   सुतुकों सुमिरि हियँ धरि ध्यान।
कहौं मूल ढोला रुचिर हित ढोला रुचियान।।
    ढोला गावँ जोग छन्द रोला तजवीजौ।
    ढोला ही सी भपट लटक गावत मे कीजौ।।
चौथी तुक को अन्त अर्ध दुहराकें गावौ।
तापं अछ्छर चारि अर्थ के मिलवत आवौ।।
    रे पै स्वर विश्राम ठहर कर रापत जाई।
    ढोला कैसी पीन प्रगट जह रीति जगाई।।
धमाइच पंजरी ताल तवला वजवानों।
निज रुचि की चातुर्ज करव औरहु कौ जानौ।

रोला की सहायता से ढोला का दृश्य उपस्थित करने की लालसा कवि मे है। ढोले को उसने साहित्यिक रूप देने का उद्योग किया है। इससे ढोले की व्यापक प्रियता भी विदित होती है। इन ढोलो मे ढोला मारू ही की कहानी है। वर्त्तमान समय मे इस लोकगीत मे ढोला के पिता नल की औखा (कष्ट) का जो वर्णन वढ गया है, उनका उल्लेख इनमे नहीं। मूल ढोला से विदित होता है कि ढोला वढाकर भी गाया जाता था। विक्रम-विलास, किस्सा, कथा-सग्रह, मनोहर कहानियाँ आदि कहानियों के संग्रह हैं। किसी किसी मे तो १०० कहानियाँ तक हैं। इन सवका विस्तृत विवेचन यहाँ अनावश्यक है।

शेप कुछ ग्रन्थो के परिचय अत्यन्त सक्षेप में यहा देना समीचीन होगा। इन परिचयो से इन रचनाओ के लोकतात्विक रूप का परिज्ञान हो सकेगा। कनकमंजरी[1] की कहानी (रचना-काल स० १६२३ से १७७७ के वीच) की सक्षिप्त यह हैं।

रतनपुर मे घनघोर शाह थे। कनकमजरी स्त्री थी। शाह समुद्र यात्रा को गया तो एक तोता-मैना उसको वहलाते थे। उसका हार स्नान करते समय एक कौआ ले गया। इस हार को देखकर एक राजकुमार उस पर आसक्त हो गया[2]। उसने अनूप दूती ढूढने को भेजी। वह भिखारिणी वनी, दु:खिनी

१—लेखक—काशीराम, राजकुमार लक्ष्मीचन्द के लिए वनायी गयी।

२—हार को देखकर हार पहनने वाली पर आसक्त होने की घटना कुछ अद्भुत है। अन्यत्र एक कहानी में चील तो हार को सर्प समझकर ले गयी है। किंतु उस हार से मोहित होने की वात नहीं हुई। लखटकिया की कहानी मे पैर की जूती देखकर मोहित होने की वात मिलती है। वालों को देखकर या उनकी सुगंध से तो कई कहानियों के नायक मोहित हुए हैं। इस सम्वन्ध मे मिस्र की एक पुरानी कहानी का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

से भीख न लेना उसने ठहराया। कनकमजरी से मिली, पति-प्रवास का हाल पूछ लिया, दूसरे दिन पान-मिठाई बाँटी, कनक-मंजरी से कहा कि ये चिन्ताहर की पूजक एक तपस्विनी का प्रसाद है। और वहाँ जो चिंताहर की पूजा करता है, उसका उसके प्रिय से मिलन हो जाता है। कनकमजरी चिंताहर की पूजा के लिए चली। मैना ने रोका, किंतु उसने एक न सुनी। दूसरे दिन एक दूती तपस्विनी बनकर उसे पूजा को ले जाने लगी। उसी समय तोते ने महावर डाल दिया और कनकमजरी को रजस्वला बताकर पाँच दिन ठहराया। पाँच दिन के बाद उसने कहा—

पीपा गये न द्वारिका, बदरी गए न कबीर।
भजन भावना से मिले, तुलसी से रघुवीर॥

और घर मे ही पूजा करायी। तोते ने एक दृष्टान्त देकर कुसगति और जल्दबाजी का परिणाम बताया। दूसरे दिन अनूप आयी तो कनकमजरी ने कहा 'चिंताहर घट माही'। वह गयी और एक नाव बनवा लायी। सारिका ने एक दृष्टान्त देकर उसे चढने से रोका। राजकुमार ने सिंहलपुर को फौज ले जाने की डौंडी पिटवायी। अनूप ने उसे पति के पास जाने को तैयार किया। सारिका ने छींक दिया। साहूकार आया। हार दिखाकर राजकुमार ने कनक को कलकित बतलाना चाहा। तोता हार को लेकर उड आया। दूती के नाक कान काटे, प्रेमी मिल गये।

कनकमजरी कहानी मे लोकवार्ता के अत्यन्त प्रचलित कई तत्व मिलते हैं। कौए द्वारा हार उडा ले जाना, हार को देख कर एक राजकुमार का मोहित होना—दूती का नियुक्त किया जाना, मैंना द्वारा उसको बार-बार दूती के चक्र से बचाये जाना, तोते का हार लेकर उड जाना जिससे राजकुमार उसके द्वारा कनक मजरी को लाछित न कर सके। ये सब घटनाएँ इसी रूप मे अथवा रूपान्तरित होकर शतश कहानियो मे मिलती हैं।

राजा चित्रमुकुट की कथा तो प्राय इसी रूप मे ब्रज मे प्रचलित है, और अन्यत्र भी मिलती है। खोज मे मिली पुस्तक की कथा का सक्षिप्त रूप यह है :—

राजा चित्रमुकुट के १०,००० रानियाँ थी, ६०० पुत्र थे। राजा शिकार खेलते रास्ता भूले। छाँह मे बैठे, इतने मे एक व्याध ने एक हस को फदे मे फँसाया। राजा ने बलात् उसे छुडा दिया। वह हस राजा के साथ ही महल मे आया। रानी मिलने आयी। एक रानी ने पूछा—"मैं तुम्हे कैसी लगती हूँ? राजा ने कहा, 'मैं तुम्हारा गुलाम हूँ।' इस पर हस हँस पडा। राजा ने हँसने का कारण पूछा तो उसने कहा कि तुम ऐसी ही रानी के चेरे हो गये। इसी बात

पर मैं हँसा। ऐसी के हाथ का तो पानी न पिये। हंस ने राजा से चन्द्रभान की वेटी चन्द्रकिरन का वर्णन किया। राजा ९०० पुत्रो सहित योगी वन कर उसकी खोज मे निकला। समुद्र किनारे पहुँचे। अकेला राजा हँस पर चढ़ कर समुद्र पार अनूपनगर मे पहुँचा। हस के द्वारा चन्द्रकिरन से भेंट की। विवाह हुआ। रानी के गर्भ रहा। हँस पर चढकर आ रहे थे कि एक टापू मे लड़का हो गया। राजा सूतिकागृह की सामग्री लेने गये। सोंठ, घृत, अग्नि लेकर लौट रहे थे कि हंस के पखो पर अग्नि और घी गिर गया, वह जल गया। उसी दिन उस नगर का राजा मर गया। मत्रियो ने इसी राजा को गद्दी दी। वहाँ चन्द्रकिरन टापू पर पत्तो के सहारे जीने लगी। एक व्यापारी जहाज पर आया। चन्द्रकिरन को अपने घर ले गया। रानी व्यभिचार को राजी न हुई। उसने उसे वेश्या के हाथ वेच दिया। लड़के को व्यापारी ने रख लिया। वालक वड़ा हुआ। वेश्या इसे धनिक जान उसे उसकी माँ के पास ले गयी। माँ का दूध उतर आया। लडके को उसने सव कथा सुना दी। लडका व्यापारी को पकड राजा के पास ले गया। सव कथा सुनकर राजा ने अपने वेटे को छाती से लगाया। चन्द्रकिरन ने हस का हाल पूछा। उसकी हड्डियाँ निकालीं, जल छिडका और कहा यदि मैं निर्दोप हू तो जी उठ। वह जी उठा। चन्द्रमुकुट उसी मृत राजा के पुत्र को गद्दी देकर वहाँ से चला। इस पार आकर राजा अपने ९०० वेटो से मिला।

उसमान की चित्रावली भी प्रसिद्ध है। उसे श्रीगणेशप्रसाद द्विवेदी ने 'हिंदी के कवि और काव्य' भाग ३ में सम्मिलित कर लिया है। यह सूफी कवियों की 'प्रेमगाथाओ' की कोटि की है। यद्यपि उसमान ने यह दावा किया है कि—

कथा एक मैं हिए उपाई। कहत मीठ औ सुनत सुहाई॥
कहीं वनायें वैस मोहि सूझा। जेहि जस सूझ सो तैसे वूझा॥

किन्तु इस चित्रावली की कहानी के प्रमुख-तत्त्व इधर-उधर लोकवार्ताओ मे विखरे मिलते हैं। उन्हीं से लेकर यह चित्रावली उसमान ने 'उपाई' है।

सूफी प्रेम-आख्यान-काव्य के समकक्ष ही मृगेन्द्र कवि की प्रेम-पयोनिधि है। इसका सक्षिप्त वृत्त यहा दिया जाता है :—

जगत प्रभाकर नाम का एक राजकुमार था। इसने एक तोते से राजा सहपाल की कन्या का रूप वृत्तान्त सुना। वह उस पर मोहित हो गया। उसके दरवार में एक शशिकला नाम की स्त्री थी। उसी की सहायता से राजकुमार सफल मनोरथ हुआ। फिर सहपाल की कन्या का दुखित होना, मन्त्री-पुत्र का उसको धोखा देना, किसी योगी की सहायता से दुःख छूटना, और फिर किसी पिशाच

और यक्ष के द्वारा क्लेश पाना आदि दुखद घटनाएँ हैं। फिर उसी तोते से मिलना और उसकी सहायता से अपनी प्रिया को प्राप्त करना। मत्री-पुत्र को वध करना और राज्याभिषिक्त हो सुख से राज्य करना।

इस कहानी मे कोई विशेष उल्लेखनीय बात नही है। सूफी प्रेम-आख्यान की परम्परा की क्षीण-काय आवृत्ति मात्र है।

चन्दन और मलयागिरि रानी की कहानी अम्बा, आमिली, सरवर और नीर की लोक-कहानी के समकक्ष है। सरवर और नीर ज्यो के त्यो इसमे हैं। यह भी प्रसिद्ध प्रचलित कहानी है। स० १६७० से स० १७७६ तक के विविध लेखको द्वारा लिखित इस कथा के आठ ग्रन्थो का उल्लेख तो नाहटा जी ने ही किया है।

चन्दन राजा और मलयागिरि रानी का सौन्दर्य वर्णन, कुलदेवता का राजा चन्दन को भविष्य कष्ट से आगाह करना। राजा चन्दन का और रानी का अपने दोनो पुत्र सहित कनकपुर पहुँचना, रानी का जगल मे लकडी चुनने जाना और एक सौदागर से भेंट होना, सौदागर का आसक्त होना और अपने नौकरों द्वारा रानी को मँगाना, सौदागर और रानी की बातचीत, सौदागर का जहाज चला देना, राजा चन्दन, मलयागिरि, सरवर और नीर को पृथक-पृथक कर देना, लडको का पालन-पोषण होना और अन्य राजा के यहाँ नौकर होना, सौदागर का उस स्थान पर पहुँचना, दोनो भाइयों का आपस मे अपनी विपत्ति वर्णन करना। अन्त मे सबका मिल जाना।

'रसरत्न' (रचना-काल १६१६ ई०) यथार्थ मे लोकवार्त्ता अथवा कहानी पुस्तक नही। यह रसो का वर्णन करने के लिए लिखी गयी है। रसो का वर्णन करते हुए, 'कथा विषय वह महात्म्य' वर्णन करते हुए सूरसेन और रम्भा की प्रेम कहानी लिखी गयी है। यह कहानी भी लोक-कहानियो के आधार पर है, इसमे सन्देह नही। यह इसकी सक्षिप्ति देखने से ही विदित हो जाता है।

'कथा विषय वह माहात्म्य वर्णन', वैरागढ के राजा सोमेश्वर का पुत्रार्थ काशी जाना और शिव-भक्ति करना—पुत्र-उत्पत्ति, पडितो का भविष्य-कथन, चम्पावती नगरी और वहाँ के राजा का वर्णन, पुत्रार्थ देवी की उपासना-विजयपाल के यहाँ कन्या-जन्म, कन्या का बालपन, यौवन, वयसन्धि वर्णन, सूरसेन और रम्भा मे स्वप्न-द्वारा प्रेम उत्पन्न—आकाश वाणी, वैद्य उपचार-सखी का उन्माद, मदना सखी का सम्वाद, रम्भा का पुन स्वप्न देखना, मदना सखी का कुमार को खोजने का प्रयत्न। सूरसेन का विरह। 'चित्रकार का वैरागढ़

पहुँचना तथा नगर वर्णन, कुअर से मिलाप करना, रम्भा का चित्र दर्शन, चित्र-कार का पयान ।'

मृगावती का उल्लेख जायसी, उसमान आदि ने प्रसिद्ध कथा-ग्रन्थ के रूप मे किया है । यह भी सूफी ढग की प्रेम कहानी मानी जा सकती है ।

इस प्रकार हमे अवतक की शोध मे प्राप्त लोक कहानियो का सक्षिप्त परिचय प्राप्त हो जाता है । ये कहानियाँ कहानियो की दृष्टि से ही लिखी-पढी गयी, इसमे कोई सदेह नही ।

दूसरे प्रकार का लोकवार्ता साहित्य जो ग्रन्थ-रूप मे खोज मे मिला है 'धर्म महात्म्य-कथा' है । ये ग्रन्थ कई विभागो मे रखे जा सकते हैं—इनमे पहले तो ऐसे ग्रन्थ हैं जो धार्मिक-व्रत के अनुष्ठान के प्रधान अग हैं । उदाहरण के लिए 'गणेश जी की कथा' । गणेश-चतुर्थी को गणेशजी की प्रसन्नतार्थ व्रत रखा जाता है । इस व्रत का फल विना कथा सुने नही होता । व्रत-कथा तथा चद्रमा के उदय पर जल चढ़ाना ये इस गणेश-चतुर्थी के धार्मिक अनुष्ठान के प्रधान अग हैं । ऐसी कथाए दो सप्रदायो से सम्बन्ध रखने वाली मिली हैं । एक हिंदुओ की, दूसरी जैनो की । हिंदुओ की कथाएँ कम मिली हैं । वे ये हैं—

१—श्री गणेश जू की कथा
२—श्री सत्यनारायण की कथा
३—यमद्वितीया की कथा
४—पूर्णमासी और शुक्र की वार्ता
५—शिव व्रत कथा
६—एकादशी महात्म्य
७—हरतालिका कथा

शेष निम्न ग्रन्थ जैनियो के व्रतो से सम्बन्धित हैं ।

१—अनन्त देव की कथा
२—लघु आदित्यवार कथा
३—पच कल्याणक व्रत
४—आदित्यवार कथा
५—निशिभोजन त्याग व्रत-कथा
६—शील कथा
७—श्रुत पचमी कथा
८—रोहिनी व्रत की कथा
९—आकाश पचमी की कथा

१० – रविव्रत कथा

११—रवि कथा

इनमे एक वर्ग ऐसे ग्रन्थो का है जो 'माहात्म्य' से सम्बन्ध रखते हैं, अथवा किसी व्रत का महत्व और आवश्यकता बताते हैं, उसके अनुष्ठान के अङ्ग नही विदित होते। इनमे ये ग्रन्थ आ सकते है १ सूर्य महात्म्य, २ व्रत-कथा-कोष। इनमे से व्रत-कथा कोष जैन-ग्रन्थ हैं। कुछ वे ग्रन्थ हैं जो धर्म के प्रचार की दृष्टि से उपयोगी है। इसमे किसी विशेष धर्म की श्रेष्ठता सिद्ध की गयी है। ऐसे ग्रन्थ बहुधा जैन-धर्म की महत्ता के द्योतक है। सयुक्त कौमुदी भाषा, वाराग-कुमार चरित, नर्मद सुन्दरी, पद्मनाभि चरित्र मे जैन धर्म का महत्व प्रतिपादित किया गया है। 'मोहमरद की कथा' जैसे ग्रन्थ मे धर्म के मर्म की सूक्ष्म परीक्षा की कहानी दी गयी है। 'चण्डी-चरित्र' भी धार्मिक महत्व की पुस्तक है। यह दुर्गापाठ का अनुवाद है।

एक बहुत बडी सख्या उन ग्रन्थो की है जो धार्मिक-अनुष्ठान अथवा उसके माहात्म्य से तो सबन्धित नही, पर जो धार्मिक दृष्टि से लिखे गये हैं। वे धर्म-ग्रन्थो मे गिने जा सकते हैं और उनका स्वभाव पुराणो से मिलता जुलता है। उनका विषय अँग्रेजी शब्द माइथालाजी से अभिव्यक्त किया जा सकता है। ये ग्रन्थ या तो किसी पुराण के अथवा उसके किसी अश के अनुवाद हैं, अथवा पुराणो से लिये गये किसी विषय पर स्वतन्त्रता पूर्वक लिखे गये हैं। इन सबके विषय उनके नामो से विदित हैं। इनमे से आदिपुराण जैनियो का पुराण है। महापद्मपुराण भी उन्ही का है। धर्मसपद की कथा मे युधिष्ठिर सवाद महाभारत से लिया हुआ है। जैमुन कथा मे जैमिनी अश्वमेघ का विषय है। हरिश्चन्द की कथा कही कही आदित्यवार की कथा का अङ्ग मानी गयी है। नासकेत कठोपनिषद के नचिकेता का हिन्दी मे आवर्त्तन है। चण्डी-चरित्र प्रसिद्ध दुर्गापाठ का अनुवाद है। नृसिंह चरित्र मे नृसिह अवतार का, वहुला-कथा मे 'भविष्योत्तर पुराणान्तर्गत वहुला व्याघ्र सम्वादे' से लेकर वहुला कथा का, सुदामाजी की वारहखडी मे सुदामाचरित्र का, श्रवणाख्यान मे श्रवण-कुमार के चरित्र का, नृगोपाख्यान मे राजा नृग के चरित्र का, शिवसागर मे नारद-चरित्र, देवी-देव-चरित्र, जालन्धर कथा, तुलसी चरित्र, सावित्री चरित्र आदि का, वीर-विलास मैं महाभारत के द्रोण प्रद्युम्न के चरित्र का, सुन्दरी-चरित्र मे राजा सुरथ और समाधि वैश्य के सवाद द्वारा देवी की उपासना के फल तथा देवी-चरित्र का वर्णन है। 'आदि पुराण' 'रचना काल (१८६७ ई०) मे निम्न विषय है :

गघिल नामक देश का राजा अतिवल—उसका पुत्र महावल—पुत्र को

राज्य देकर स्वय दीक्षा ले लेना। महावल का प्रताप—स्वयवुद्धि उसका मत्री उसे विविध कथा सुनाकर धर्म की ओर ले जाता है। मत्री का सुमेरु पर जाना, आदित्यगति और अरिंजय नामक दो साधुओ का आगमन—मत्री का अपने स्वामी का अदृष्ट पूछना—साधुओ के भव्य होने की, इस भव से दसवें भव मे होने की भविष्यवाणी—राजा जम्बू द्वीप का प्रथम जिन हुआ—सिहपुर नगर के श्रीसेन राजा की सुन्दरी नाम्नी स्त्री से जयवर्मा और श्रीवर्मा नाम के दो पुत्रो की उत्पत्ति—श्रीवर्मा को राज्य-प्राप्ति—जयवर्मा का वन जाकर मुनि होना—विद्याधर के वैभव की इच्छा करना—उसी समय सर्प द्वारा डसा जाना—उसका महावल होकर उन्ही भोगो का भोगना—उसका ललितादेव होकर विषय भोग करते हुए पुन योग की ओर दृष्टिपात करना—ललितांगग की कान्ति का मन्द हो जाना—शोक—स्वर्गीय सज्जनो द्वारा शोक-विनाश—मित्र द्वारा उसका सोलहवें स्वर्ग मे पहुँचना। उत्कल पेट नगर के राजा वज्रवाहु की रानी वसुन्धरा से इसका जन्म होना—स्वयप्रभा देवागना का भी इसी समय जन्म लेना—राजा को स्वप्न—अपनी पत्नी तथा उसके पति भव का वृत्तान्त जानना—उसकी पुत्री वज्रजघ का विवाह—उसकी वहिन अनुधरी का चक्रवर्ती के पुत्र सहित अमिततेज से विवाह—वज्रजघ का विरक्त हो जाना—कुटुम्वियो का शोक—इत्यादि—

यह महा ग्रन्थ जैनियो का आदि पुराण है। इसके मूल लेखक सेनाचार्य हैं।

'महापद्मपुराण' (रचना-काल १७६६ ई०) मे जैनियो की दृष्टि से राम-चरित्र का वर्णन है। इसका सक्षिप्त व्यौरा इस प्रकार है —

मगलाचरण आदि—वर्द्धमान स्वामी का वर्णन—द्वितीय अधिकार—लोक-स्थिति—सूर्य तथा चन्द्र वश की उत्पत्ति—आदिनाथ का वर्णन—सगरपुत्रों की कथा, नरक स्वर्ग का वर्णन—रावणादि की पूर्व जीवन-कथा।

तीसरा महाधिकार—राम वनवास

चौथा महाधिकार—राम-रावण युद्ध

पाँचवाँ महाधिकार—लवकुश का वृत्तान्त

छठवाँ महाधिकार—राम का निर्वाणगमन

राम-चरित की जैनियो मे मान्यता है, इसे सभी जानते हैं।

हिन्दी* की एक अत्यन्त पुरातन रामायरा स्वयभू की रामायण है। यह

---

* हिन्दी से यहाँ अभिप्राय. प्राचीन हिन्दी अथवा उत्तर कालीन अपभ्रंश से हैं।

'स्वयभू रामायण' अनेको स्थानो पर जैनियो के यहाँ मिलती है। यह यथार्थ में उनके पुराण का प्रधान विषय है। प्रह्लाद-चरित्र मे हिरण्यकश्यप तथा प्रह्लाद-चरित्र है। रामपुराण रामचरित ही है। बहुला व्याघ्रसवाद और बहुला-कथा का एक ही विषय है। भविष्योत्तर पुराण से लिया गया है। सुखसागर-शुकसागर है। सुधन्वा कथा मे अर्जुन और उसके पुत्र सुधन्वा के युद्ध का वर्णन है। सीता-चरित्र, हनुमान-चरित्र विख्यात हैं--पाँडव यशेन्दुचन्द्रिका मे महाभारत की सपूर्ण कथाएँ हैं। इसी प्रकार महादेव विवाह, उर्वशी तथा पुरन्दर माया आदि पुराणो से लिये गये विषयो पर कथाएँ हैं।

यहाँ तक हमने ग्रन्थ-रूप मे मिलने वाले कथा-कहानी साहित्य की उन शाखाओ पर विचार किया है, जिनके ग्रन्थ अधिक मात्रा मे मिलते हैं। किन्तु इस प्रकार खोज मे मिलने वाले ग्रन्थो मे 'सन्त-कथा' सम्बन्धी भी कई ग्रन्थ है। इनमे किसी महात्मा के चरित्र का वर्णन होता हैं। कबीर, नामदेव, पीपा, रैदास, नानक, धना, सेऊ सम्मन आदि के चरित्रो का इन ग्रन्थो मे वर्णन है। किन्तु ये जीवन-चरित्र नही कहे जा सकते। इनमे जीवन के ऐतिहासिक वृत्त की अपेक्षा, उनके सम्बन्ध मे प्रचलित लोक-प्रवादो का विशेष समावेश होता है। सन्तो के चमत्कारो का अद्भुत वर्णन इनमे होता है। ऐसे वर्णन लोक-वार्त्ता का अग माने जाते हैं। क्योकि इनके निर्माण मे लोक-तत्व और लोक-रूढियो को ही काम मे लाया जाता है। इसका सकेत सतो के वर्णन मे भी ऊपर दिया गया है। उदाहरणार्थ सेऊ-सम्मन चोरी करने जाते हैं, प्रात पता न लग जाय, इसलिए एक का सिर काट लाते है। यह घटना ईसापूर्व २-३ हजार वर्ष पूर्व की मिस्र की कहानी मे ज्यो की त्यो मिलती हैं। सिंहल मे गुरुनानक का वारहवर्षीय पुत्र को माता-पिता के हाथो से कत्ल कराना और रँधवाना तथा पुनरुर्जीवित करना, मोरध्वज के पुराण प्रसिद्ध कथा-रूप से साम्य रखता है। सन्त बन्दी बनाये जाते हैं, पर ताले-कूँचे खुल जाते है, और सन्त मुक्त हो जाते हैं। यह अभिप्राय देश-विदेशो मे लोक-प्रचलित है। देखिये जैनरल आव अमेरिकन फोकलोर स्लैविक फोकलोर ए सिम्पोजियम पृष्ठ २०७। भक्त प्रह्लाद के पौराणिक आख्यान की तरह ये सन्त कही नदी मे फेके जाते है, कही हाथी से कुचलवाये जाते हैं, कही आग मे जलाये जाते हैं, हर स्थान पर आश्चार्यजनक चमत्कार घटित होते हैं, फलत सन्तो की जीवनियो का निर्माण लोक-मानस के पूर्णत अनुकूल हैं। इसी प्रकार तीन ग्रन्थ ऐसे है जिनमे किसी वीर पुरुष के वीर-चरित्र का वर्णन किया गया है। ऐसे चरित्र जब लोक-पद्धति मे विशेप लोक-वैलक्षण्य युक्त लिखे जाते हैं तो अवदान या लीजेण्ड कहलाते हैं। इनमे ऐतिहासिकता कम लोक-तात्विकता अधिक रहती है।

'हरदौल' बुन्देलखण्ड का प्रसिद्ध वर्चस्वी महापुरुष हुआ है। घर-घर उसकी पूजा होती है। 'पन्ना वीरमदे की वात' मे पन्ना और विक्रमदेव का वर्णन है। इनसे भिन्न वे रासौ हैं जिनमे लोक-वार्त्ता ने भी कुछ साहित्यिक धरातल प्राप्त कर लिया है, और वीर पुरुषों का चरित्र-वर्णन रस-परिपाक की दृष्टि से किया गया है। इनमे गेयत्व भी हो सकता है। ऐसी रचनाएँ वीरगाथाएँ कहलाती है। 'खान खवास की कथा' ऐसी ही रचना हैं।

शेरशाह और उसकी वेगम का वर्णन—शेरशाह का अपनी वेगम को पादने पर निकाल देना—वेगम गर्भवती—एक खिदमतगार के यहाँ रही—वहाँ खाँ खवास का जन्म—साधू से आशीर्वाद मिलना—शेरशाह को खाँ खवास को उहदेदार वनाना—वयाना की रानी की कथा जो कर नहीं देती थी—युद्ध मे वादशाही सेना का हारना—अन्त मे सेना सहित खाँ खवास का जाना-भीषण युद्ध—रानी को घेर लेना—सेना का भागना—रानी का खाँ खवास को अपनी ओर मिला लेना—शेरशाह की मृत्यु—सलेमशाह को गद्दी—खाँ खवास को उसके विरुद्ध रहने की प्रतिज्ञा।

खवास की दानवीरता का वर्णन—सलेमशाह के बुलाये हुए मत्री पर वेगम का आसक्त हो जाना—मत्री से अपनी इच्छा प्रकट करना—मत्री का निषेध करना—वेगम की वादशाह से मत्री के दुराचरण की शिकायत—मरवाने की आज्ञा—मत्री का खाँ खवास की शरण जाना—सलेमशाह की वयाने पर चढाई—वादशाही सेना विचलित—वादशाह की हार—खाँ खवास को सादर सेना मे वुलाना—खाँ खवास को घेर लेना—वादशाह का उससे सिर माँगना—उसका दे देना—वादशाही सेना की खुशी—वयाने वालो का दुख, खाँ खवास की स्त्री और पुत्र का मरना—सलेम को धिक्कारना।

कृष्णदत्त रासा (रचना-काल १८४४ ई०) भी इसी कोटि की रचना है, उसका विषय-परिचय इस प्रकार है महमूदअली खाँ को नवाव ने शरवार देश इजारे मे दिया—पाडे गोडा के महमूद अली से मिल गये और रामदत्त पाडे भिनगा पर चढा ले गये।

कृष्णदत्तसिह के चचा उमरावसिह का वर्णन—और दूसरे चाचाओ का वर्णन—पृथ्वीसिह के पुत्र क्षेत्रपाल और हरभक्त सिह का वर्णन तथा उमराव-सिह के पुत्र युवराजसिह का वर्णन—क्षेत्रपालसिह के पुत्र अर्जुनसिह हुए—म्लेछो ने हमला किया—सेना का वर्णन—युद्ध—महमूदअली के साले का मारा जाना—सेना का भागना—पुन युद्ध की तय्यारी-सात दिन का युद्ध—वाग का युद्ध—नवाव का पुन सेना भेजना—नाजिम के भाई के युद्ध का वर्णन—गर्गव-शियो की सहायता से युद्ध करना—भिनगा नरेश का भागना—गोंडा नरेश ने भिनगा राज को मेल करने के लिए पत्र लिखा—उस समय गोडा मे अमानसिह

राजा थे—मेल होने पर फौजी सरदारो के साथ पहाड मे शिकार खेलने चले गये फिर वदग्रमली होने से नवाव ने नाजिम को कैद कर दिया और कृष्णदत्त-सिंह को राजा वनाया।

जिन अन्य रासो को इस वर्ग मे गिनाया गया है, उनका परिचय साहित्य के इतिहासो मे मिल जाता है। 'कृष्णदत्त रासा' के सम्वन्ध मे यह आपत्ति की जा सकती है कि इसका विपय प्राय ऐतिहासिक है, इसे लोक वार्त्ता साहित्य के अन्तर्गत सम्मिलित नही करना चाहिये।

कुछ ऐसे ग्रन्थ भी हैं जिनमे विविध सस्कारो से सम्वन्धित लोकाचारो का वर्णन भी है। 'ठाकुरजी की घोडी' मे विवाह के अवसर पर घोडी चढने के अवसर पर होनेवाले आचारो का उल्लेख है। उदाहरणार्थ 'रामव्याह' मे राम-भरत-लक्ष्मण शत्रुघ्न आदि का कलेवा करने जाना—वहाँ लक्ष्मी, निधि सिद्धि सलहजो से हास-विलास के प्रश्नोत्तर। 'यह राम के विवाह के प्रसग से जोड दिया गया है।' 'षट रहस्य' मे भी रामविवाह का आश्रय लेकर छ वैवाहिक आचारो का वर्णन है। इसका सक्षिप्त विपय-परिचय यह है राम से देवियो के पैर लगने के लिए सखियो का कहना, वत्ती मिलना, लहकौरि खिलाना, कलेवा करना, ज्यौनार, सखियो और राम का सवाद, हास-विलास।

'वना' मे 'वरना' दिये हुए है। वरना भी विवाह के लिए तय्यार हुए 'वर' को कहते हैं। उससे सम्वन्धित गीत भी 'वना' या 'वन्ना' या 'वरना' कहलाते है। उसी पर रचनाएँ इस पुस्तक मे हैं।

कुछ ऐसी पुस्तकें भी है जैसे व्रजमान की कथा, विमह कथा, अन्तरिया की कथा जिनका उल्लेख ऊपर के वर्गों मे नही हुआ। इनमे से अन्तरिया की कथा वुखार को दूर करने के तान्त्रिक उपचार से सम्वन्ध रखने वाली कथा है।

यह लोक-वार्त्ता सम्वन्धी ग्रन्थो का साधारण विवरण है। अव इनमे से कुछ विशेष ग्रन्थो का भी विपय-सम्वन्धी सक्षिप्त परिचय यहाँ दे देना इसलिए आवश्यक है कि उससे कुछ उन वातो का पता चल सकेगा जो आज के लोक-प्रचलित मौखिक वार्त्ता मे भी जहाँ तहाँ मिलती है साथ ही जो लोक-तात्विक सम्भावनाओ से ओत-प्रोत है।

कहानियो मे 'माधवानल कामकदला' (रचना-काल ६६१ हिजरी) की कथा अत्यन्त प्रचलित है। इसकी जो प्रति मिली है वह १५८३ ई० की लिखी है। आलम कवि की लिखी हुई है। माधव व्राह्मण और कामकदला वेश्या के प्रेम की गाथा है। वह वीर विक्रमादित्य की अनेको कहानियो मे से एक है। कही कही लोक मे प्रचलित कहानियो मे केवल विक्रमाजीत का तो नाम रह

गया है, मावव तथा कामकदला का नाम लुप्त हो गया है । इसका सक्षिप्त वृत्त इस प्रकार है —

पुहपावती नगरी का एक गोपीचन्द राजा था । उसके दरवार मे एक गुण-वान ब्राह्मण माववानल था । एक दिन वह स्नान कर तिलक लगाकर वीणा से कुछ गान करने लगा । नगर की सव स्त्रियां विमोहित हो गयी । एक स्त्री विशेष मोहित हुई । एक दिन वह अपने पति को भोजन करा रही थी । इतने में मावव गान करता हुआ उस गली मे से आ निकला । स्त्री ने भोजन थाली की जगह घरती मे परोस दिया । पति के कारण पूछने पर उसने कहा कि मैं मावव के गान से मोहित हो गयी हूँ । पति ने नगर के सव आदमियो को एकत्रित करके राजा से पुकार की कि या तो माधव को निकाल दो या हम नगर छोड देंगे । राजा ने माघव को निकाल दिया । दस दिन पीछे मावव कामावती नगरी मे पहुँचा जहाँ कामकदला नामक वेश्या रहती थी । राजा के दरवार मे वह शृङ्गार करके पहुँची । मावव भी चला । माघव को द्वारपालो ने रोका, वह वही वैठ गया । दरवार मे वारह मृदग वज रहे थे । एक मृदगी का एक अँगूठा न था । मावव ने इस मृद-गची के द्वारा तालभग होने की वात द्वारपाल के द्वारा राजा से कहलायी । परीक्षा करने पर राजा ने जाना कि उसके मोम का अँगूठा है । मावव को वुलाकर राजा ने उसका सम्मान किया । वेश्या की कला से प्रसन्न हो मावव ने जो कुछ राजा से पाया था सव वेश्या को दे दिया । राजा ने क्रुद्ध होकर उसे नगर से निकल जाने की आज्ञा दे दी । वेश्या मोहित हो गयी थी । वह उसे अपने घर लायी । दूसरे दिन भी वेश्या ने उसे छिपाकर रखा । तीसरे दिन माघव विदा हुआ । दोनो को दु ख हुआ । वह विक्रमादित्य की उज्जैन नगरी मे गया । राजा के शिवमन्दिर मे एक दोहा लिख आया । राजा उस ब्राह्मण की खोज करने लगा । ज्ञानमती स्त्री ने उसे मन्दिर मे पाया और राजा के पास ले गयी । राजा ने उसका सम्मान किया और समझाया कि वेश्या की प्रीति स्थिर नही रहती, वह धन की प्रीति हैं । पर माघव न माना । विक्रम ने राजा कामसेन पर चढ़ाई की । कामावती के पास डेरा डालकर राजा वेश्या की परीक्षार्थ गया और कहा कि मावव तेरे वियोग मे मर गया । उसने भी प्राण त्याग दिये । जव मावव ने वेश्या के प्राण-त्याग की वात सुनी तो उसने भी प्राण त्याग दिये । राजा भी इन दोनो प्रेमियो की मृत्यु कराके जीवित नहीं रहना चाहता था । वह भी चिता वनाकर जल मरने को तैयार हुआ । राजा के अधीन कुछ वैताल थे । वे आये । पाताल से अमृत लाये और मावव को जिला दिया । विक्रमादित्य वैद्य वन अमृत लेकर गये और वेश्या को

माघव

जिला दिया और उसे अपना परिचय भी दिया। विक्रम ने श्रीपति क्षत्री को राजा कामसेन से वेश्या माँगने के लिए भेजा। कामसेन ने कहा कि युद्ध करके ले लो। चार पहर लड़ाई हुई। कामसेन हारा, सन्धि हुई और कामकन्दला विक्रमादित्य को दे दी। माधव को कामकन्दला देकर और राजा अपने नगर मे आया। राजा ने उसे अपना मन्त्री बनाया, जागीर दी। माधव सुखी रहने लगा।

चित्रावली

चित्रावली (रचनाकाल स० १६१३) की कहानी मे कितने ही चमत्कारपूर्ण अश हैं। इस कहानी का आधार निश्चय ही लोकवार्ता है। यह जायसी के पद्मावत तथा आलम की कामकदला की भाँति ही प्रेमगाथा है। 'चित्रदर्शन' से प्रेम उदय हुआ है। और उसके लिए अनेकों कष्ट उठाने पड़े है। इसका सक्षिप्त कथा-परिचय यह है:—

नैपाल का राजा धरनीधर पँवार कुल का क्षत्रिय था। राजा के सन्तान न थी, तप के लिए वह जगल जाने लगा। मत्रियो ने घर पर हीं शिवाराधना की सलाह दी। शिव-पार्वती ने आकर परीक्षार्थ उससे सिर माँगा। राजा सिर देने को तैयार हुआ। शिव-पार्वती ने एक पुत्र होने का वरदान दिया, जो योग साधेगा और किसी स्त्री से प्रेम भी करेगा। पुत्र हुआ, उसका नाम सुजान रखा गया। वह गुणनिधान था। एक बार शिकार खेलते मे रास्ता भूल गया। हार कर एक पर्वत की मढी मे जा सोया। वह एक देव का स्थान था। उसने इसकी रक्षा की। इसी समय देव का एक मित्र आया और उसने रूपनगर मे चित्रावली की वर्षगाठ का वर्णन किया। उससे भी चलने के लिए कहा। वे कुमार को भी साथ ले उड़े और उसे चित्रावली की चित्रसारी में सुलाकर स्वय उत्सव देखने लगे। राजकुमार की आँखे खुली, चित्रावली का एक चित्र वहाँ देखा। राजकुमार ने अपना भी एक चित्र बनाकर उसके पास रख दिया और सो गया। सवेरे देव उठाकर उसे ले आये। जब वह जगा तो चित्रावली के प्रेम मे विह्वल हो गया। सेवक लोग ढूढकर उसे राज मे ले गये पर वह विरह मे बेसुध रहा। सुबुद्धि ब्राह्मण ने युक्ति से सारा हाल जाना। ये दोनो उसी मढी पर जाकर रहे। अनशन जारी कर दिया। चित्रावली भी चित्र देखकर मोहित हो गयी। उसने अपने नपुसक भृत्यो को उसे ढूढने भेजा। एक यहाँ भी आ पहुँचा। एक चुगल ने कुमारी या हीरा से चुगली कर दी। उसने उस चित्र को धो डाला। कुमारी ने उस कुटीचर को उसका सिर मुड़वाकर निकलवा दिया। वह कुमार से मिला। उसके साथ कुमार रूपनगर पहुँचा, शिवमन्दिर मे दोनो का साक्षात हो गया। इसी अवसर पर कुटीचर ने उसे अपना शत्रु मान कर

उसे अन्धा एक कर पर्वत की गुफा मे डाल दिया । वहाँ एक अजगर उसे निगल गया किंतु उसकी विरहाग्नि मे व्याकुल हो उसे फिर उगल दिया । वन में घूमते हुए एक हाथी ने उसे पकड़ा । उस हाथी को एक सिंह ले उड़ा । हाथी ने भी इसे छोड़ दिया । समुद्र तट पर एक वनमानस मिला जो इनके रूप पर मोहित हो गया । जड़ी बूटी लगाकर नेत्र ठीक कर दिये । फिर घूमता हुआ सागरगढ़ मे जा पहुँचा । वहाँ के राजा सागर की फुलवारी मे यह विश्राम कर रहा था कि कौला आ गयी । वह भी मोहित हो गयी । जोगी जिमाने के बहाने उसे बुलाया । भोजन मे हार डाल कर उसे चोर साबित कर दिया और बन्दी बना दिया । एक राजा कौलावती की रूप-प्रशंसा सुन कर उसे लेने को चढ़ आया । सुजान ने उसे हरा दिया । और कौला ने चित्रा-मिलन की प्रतिज्ञा करा ब्याह कर लिया । इधर चित्रा ने फिर वही पहलेवाला योगी कुमार की खोज मे भेजा । सुजान कौला को लेकर गिरनार यात्रा को गया था । वह फिर उसे रूपनगर ले आया । उसे सीमा पर बिठाकर कुमारी से कहने गया । इसी अवसर पर कथक ने, जो सागर का निवासी था, राजा को सोहिल राजा के युद्ध का गान सुनाया । सुनकर राजा को कन्या-विवाह की चिन्ता हुई । राजा ने चार चितेरे राजपुत्रों के चित्र लाने को भेजे । रानी ने चित्रा को उदास देखकर उदासी का कारण पूछा । उसने तो बहाना किया किंतु एक चेरी ने दूत भेजने का हाल सुना दिया । इसी समय वह दूत आरहा था । रानी ने उसे बीच ही मे पकड़ लिया । इधर विलंब होने से राजकुमार चित्रा का नाम लेकर पागल-सा हो दौड़ने लगा । राजा ने हाल सुना । राजा ने गुप्त रूप से उसे मारने के लिए एक हाथी छोड़ दिया । कुमार ने उसे मार डाला । तब राजा उसे मारने को चढ़े । इसी अवसर पर एक चितेरा सागर से कुँवर का चित्र लेकर पहुँचा । सोहिल के मरने का समाचार कहकर चित्र दिखाया । चित्र इसी कुमार का था । राजा ने उससे अपनी चित्रा ब्याह दी ।

कौला ने एक हंस मिश्र को दूत बनाकर भेजा । कुमार ने अपने पिता और कौला का स्मरण कर विदा मांगी और सागर आकर कौला को भी विदा कराया । जगन्नाथपुरी होते हुए अपने देश को गये । माता अंधी हो गयी थी । पुत्र के आगमन से उसके नेत्र खुल उठे । राजा ने पुत्र गद्दी पर बिठाकर भजन करना आरम्भ कर दिया । कुमार राज्य भोग करने लगा ।

इस कहानी के विश्लेषण से इसके कथा-विधान मे निम्न तत्वों की संयोजना मिलती है :

१—दैवी तत्व . अ—शिव-पार्वती का आना, सिर की भेंट मांगना, वरदान देना ।

आ—देवी की मढी, सुजान को उडाकर रूपनगर मे ले जाना, ले आना ।

२—अद्‌भुत-विलक्षण-तत्व—अ—सुजान को अजगर लीलता है, विरह की अग्नि से व्याकुल हो उगल देता है।

आ—पुन उसे हाथी पकडता है, हाथी को सिंह ले उडता है। हाथी पर्वत पर छोड-देता है। वनमानुस उसे वनौषधि से सूझना कर देता है।

इ—पागल सुजान का हाथी को मारना ।

ई—अंधी माता का पुत्र आगमन से दृष्टि पाना।

३—चित्र-दर्शन द्वारा प्रेम—सुजान तथा चित्रावली मे ।

४—प्रत्यक्ष-दर्शन से प्रेम—अ—वनमानस का,

आ—कौला का ।

५ मिलन और विवाह मे विविध वाधाऐ—अ—कुटीचर द्वारा ।

आ—मा द्वारा ।

ई—पिता द्वारा, जो सुजान पर युद्ध करने चढे ।

६—चित्र द्वारा विवाह का मार्ग खुलना—युद्ध के लिए आरूढ राजा चित्र पाकर सुजान से चित्रा का विवाह करने को सन्नद्ध ।

७—मुख्य विवाह से पूर्व एक और विवाह, कौला से ।

८—नायक का अन्धा किया जाना, तथा पुन. एक प्रेमी के माध्यम से औपधोपचार से पुन. दृष्टि पाना—

अ—कुटीचर द्वारा अन्धा किया गया ।

आ—वनमानस ने प्रेम मे पडकर औषधोपचार से अच्छा किया ।

'राजाचन्द की वात' नामक एक ग्रन्थ मिला है। उसमे एक छोटी सी कहानी भर है। यह व्रजभारती के अङ्क स० ४-५-६ वर्प ४ स० २००३ मे पृ० १२-२० पर प्रकाशित हो चुकी है। अगरचन्द नाहटाजी ने व्रजभारती के अक स० १०-११-१२, वर्प ४ स० २००३ मे एक लेख द्वारा यह वताया है कि चन्द की वात जैनसाहित्य मे वहुत प्रचलित है । इस कथानक पर कितने ही ग्रन्थ लिखे गये ।

इस कहानी मे—

(१) चन्द का शिकार मे मार्ग भूलना और एक वुढिया के पास पहुँचना

ऐसा तत्व है जो एकानेक कहानियो मे मिलता है। बुढिया 'वहमाता' है जो जूडी वाघती है।

(२) चद की 'मा' कामरू-मत्र जानती है। पीपर उडता है, उन्हें गिरनेरी पहुँचाता है और लाता हैं। पीपल का वृक्ष वातें भी करता है। मन्त्र मे उडने की शक्ति के कितने दृष्टान्त मिलते हैं। यहाँ मन्त्र से वृक्ष को उडाया गया है। यह उडन खटोले, या उडनी खडाउओ, या काठ के घोडे के समकक्ष है।

(३) वास्तविक वर काना है, सुन्दरी कन्या परिमलाच्छ के लिए विवाह के अवसर पर सुन्दर वर दिया जाय। वास्तविक वर के स्थान पर भाँवरो के अवसर के लिए चन्द को वर वनाया गया।

(४) सासु-वहू घर जाकर राजा चन्द पर जव विवाह के चिह्न देखती हैं तो भयभीत होती हैं। वहू राजा को तोता वनाकर पिंजडे मे रख लेती है। लीला तागा वाध देती है।

(५) तोता उड जाता है, और परिमलाच्छ के पास पहुँचता है।

(६) परिमला वियोग मे पागल, पवन-दूत वनाती है। सूआ वनकर आये चन्द से भी सदेश कहती है।

(७) परिमला ने लीला तागा तोडा। दोनो मिले।

(८) सासु-वहू दोनो चील वनकर उड गयी। परिमला वाज वन कर उन्हे दवा लायी। राजा चन्द ने एक तीर से दोनो को मार दिया।

पहली दृष्टि मे यह कहानी मात्र कहानी प्रतीत होती है। कोई आध्यात्मिक रूपक नही लगती। किन्तु कुछ सकेत कहानी मे ऐसे है जो उसे स्पष्ट ही रूपक सिद्ध करते है। फिर भी कहानी का लोक-कहानी की दृष्टि से भी कम मूल्य नही है। कई ऐसे तत्व इसमे विद्यमान है जो लोक-वार्ता की महत्वपूर्ण सम्पत्ति हैं।

जैन साहित्य मे ही इसका महत्व हो, ऐसा नही। यह लोक-कहानी पजाव और वगाल तक मे किंचित भिन्न भूमिका से मिलती है।

पजाव के रावलपिडी जिले के हजरो से जनवरी १८८१ मे स्विन्नर्टन ने से प्राप्त किया। वहाँ यह 'राजा नेकवख्त' की कहानी के नाम से मिली है। इस कहानी मे यो तो और भी कुछ कथाँश मिले हुए हैं, पर अधिकाश यही कहानी घेरे हुए है। इसमे (१) वही है जो राजा चन्द की वात मे है। पर राजा वुढिया के पास भूल-भटक कर नहीं पहुंचा। घोडे पर सवार होकर घूमने निकला है, तभी नदी किनारे उसे वह वुढिया वैमाता मिली है। राजा नेकवख्त उसे भाग्य और कर्म के झगडो का फैसला करते देखता है।

कथाश (२) भी वही है। नेकवख्त की कहानी मे भी पीपल का ही पेड

है। हाँ, यहाँ पीपल का पेड वातें नही करता । मन्त्र से ही पेड उडता है। राजा की माँ तथा पत्नी लाल डोरे पर मत्र पढकर पीपल की शाखा से वाँधती हैं, तभी वह उडने लगता है।

(३) यहाँ पजाव की कहानी मे वास्तविक वर कुरूप था। काना नही। चंद की भाँति ही यहाँ नेकवख्त को वर वनाया गया। दुलहिन का नाम परिमलाच्छ न होकर 'अजीज' था।

(४) चद मे भी सास-वहू हैं। यहाँ भी सास-वहू हैं। चद की वात मे ये दोनो चद के शरीर पर विवाह के चिह्न देखकर पहचानती हैं। नेकवख्त कहानी मे उन चिह्नों के अतिरिक्त एक और विधि से नेकवख्त का भेद जान लिया है। दोनो स्त्रियों ने जाने से पूर्व राजा के चारो ओर अभिमन्त्रित सरसो वखेर दी थी, जो तुरत ही उग आयी। सरसो के पौधो के अस्त-व्यस्त होने से भी उन्होंने राजा के जाने-आने का हाल जान लिया था। ये उसे तोता नही मोर वनाती हैं। और वाग में छोड देती हैं। जैसे तोता परिमलाच्छ के पास पहुँचता है। उसी तरह मोर भी अजीज के पास पहुँचता है। पर इस मोर को सौदागर चुराकर ले जाते है। उन्ही से वह अजीज को मिलता है।

६ठा कथाश या अभिप्राय दोनो मे समान है।

७वाँ भी दोनो में है, पर 'नेकवख्त' मे नयी पत्नी चील वनकर उडी है, वाज वनकर नही। राजा ने पहली दो चीलो को ही मारा है, नवविवाहिता को नही मारा। नेकवख्त ने तीनो को मार डाला है।

पूर्व मे वगाल से यही कहानी मिली है। वहाँ यह सत्यपीर के भक्त की कहानी वन गयी है। यह वाजिदअली की लिखी हुई है, इसका मूल ढाँचा 'चद की वात' से मिलता है, वीच मे सत्यपीर की दया और चमत्कार दिखाने के लिए कुछ कथाँश जोडे गये हैं। यह कहानी चदन नगर के व्यापारी के पुत्रो की है। यहाँ 'चद' के स्थान पर 'सुन्दर' है। सास-वहू की जगह मदन और कामदेव नाम के 'सुन्दर' के दो वडे भाइयो की पत्नियाँ सुमति तथा कुमति हैं। ये दोनो जादूगरिनियाँ हैं। दोनो वडे भाई व्यापारार्थ वाहर चले जाते हैं। दोनो भाभियाँ सुन्दर को वेहोश कर पेड के द्वारा उडकर कयनूर (आसाम) में पहुँचती है। चद की वात से इस कहानी में अतर इस प्रकार है—

१—सुन्दर को अपने मार्ग की वाधा समझकर पहले वे यों ही मत्र से मार डालती हैं, और जगल में फिकवा देती हैं। सत्यपीर उसे जीवित कर देता है।

२—सुन्दर को दुवारा वे दोनो मार डालती है, और शरीर के कई

टुकडे करके जगल में एक-एक टुकडे को अलग अलग दफना देती है। सत्यपीर उसे फिर जीवित कर देता है।

३—यहाँ तक सुन्दर को भाभियो के कही जाने का कुछ भी पता नही। वह सत्यपीर के कहने से एक घने पेड पर चढकर छिपकर बैठ जाता है। अब उसी पेड पर वे दोनो आती हैं और उमी से उडकर कत्यूर जाती है।

४—सुन्दर किसी के वदले में दुलहा नही वनता। यहाँ स्वयवर है। सत्यपीर के चुपचाप कहने मे कत्यूर के राजा की पुत्री सुन्दर को ही जयमाला पहनाती है। सुन्दर रात मे उसके आँचल पर अपना वृत्त लिखकर फिर उसी पेड पर चढ भाभियो के विना जाने भाभियो के साथ चन्दननगर आ जाता है।

५—इस वार वे उसे जादू से शुक वना लेती हैं।

६—इम शुक को वहेलिये पकड ले जाते हैं। वहेलिये से उस शुक को व्यापार से लौटते हुए मुन्दर के दोनो भाई खरीद लाते है -

७—कत्यूर के राजा की पुत्री आँचल से हाल जानकर चदननगर आ जाती है।

८—दोनो भाई उस तोते को उम राजकुमारी को दे देते हैं। इस प्रकार इम कहानी में भी सुन्दर पक्षी के रूप में राजकुमारी के पास पहुँचा है।

९—राजकुमारी ने तागा तोडकर सुन्दर को जादू से मुक्त किया। भाइयो को सच्चा हाल विदित हुआ। उन्होंने अपनी पत्नियो को गहरे गड्ढे में दवा दिया ×

इम विवेचन से यह स्पष्ट है कि यह लोक-कहानी अत्यन्त लोक-प्रिय रही है। इसे दो क्षेत्रो मे तो धार्मिक अभिप्राय मे ग्रहण किया गया। एक जैनियो में, दूसरे सत्यपीर के अनुयायियो में।

'राजा चद की वात' के सवध मे श्री अगरचद नाहटा जी ने लिखा था कि हमारी यह लोकवार्ता इतनी लोकप्रिय है कि भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक उनकी वडी भारी प्रसिद्धि एव प्रभाव है। "चद राजा की वात" भी वैसी ही एक वात है। इसका प्रचार गुजरात, राजपूताना, कच्छ, काठियावाड मे तो ज्ञात ही था, पर व्रजभारती के गताङ्क (वर्ष ४ अक ४-५-६) मे 'राजा चद की वात' शीर्षक के द्वारा यह जानकर वडा आश्चर्य एव आनन्द हुआ कि इसकी प्रसिद्धि व्रजमंडल मे भी व्याप्त है।" पर ऊपर हमने जो दो और उल्लेख दिये हैं, उनसे यह कथा पजाव तथा वगाल मे भी अत्यन्त प्रचलित

× देखिए 'फोकलिटरेचर आफ वगाल' लेखक श्री दिनेशचन्द्र सेन (१९२० का संस्करण) पृ० १०३-११२,

मिलती है। अत इसमे अब कोई सदेह नही रह जाता कि यह लोककथा समस्त उत्तरी भारत मे किसी समय अत्यय लोकप्रिय थी । उसी लोक-क्षेत्र से इसे साहित्यकारो ने लिया था। नाहटा जी ने उक्त लेख मे 'राजा चद की बात' विषयक कई ग्रन्थो का उल्लेख किया है।

नाहटा जी के प्रमाण से चद की कहानी सबधी प्राप्तग्रंथों मे सबसे पहला ग्रन्थ स० १६८९ कार्तिक शुक्ल ५ को बुरहानपुर के शेखूपुरे मे लिखा गया था। इससे यह स्पष्ट है सत्रहवी शती मे यह कथा इतनी लोकप्रिय थी कि इसे धर्म प्रचारको ने अपने उपयोग मे लाना आवश्यक समझा। इसी दृष्टि से जैन-साहित्य मे इसे ऐसा महत्वपूर्ण स्थान मिला। इस पर कितनी ही कृतियाँ लिखी गयी।

इस कहानी को धार्मिक उपयोग के योग्य समझा गया, यह इस बात से ही सिद्ध है कि केवल जैनियो ने ही नही बगाल के सत्यपीर उपासको ने भी इसे अपनाया। और इसके माध्यम से लोक मे सत्यपीर की शक्ति मे आस्था उत्पन्न करने की चेष्टा थी।

धर्म और महात्म्य सम्बन्धी कुछ पुस्तको का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। यहाँ कुछ अन्य का विवरण दिया जाता है—

आदित्यवार की कथा की सक्षिप्ति यह है—

काशी मे मतिसागर नामक श्रेष्ठी के होने का वर्णन तथा अपनी स्त्री सहित उनकी श्रद्धा जैन-धर्म मे होना—आठ पुत्र होना।

एक मुनि का आगमन—सेठानी का उनसे आदित्य व्रत के विपय मे पूछना—मुनि का आसाढ मे रविवार के दिन सत्य सयम-युक्त व्रत करने का विवान—नव वर्ष तक पालन करने का आदेश—आदेश के ठीक पालन न हो सकने के कारण हानियाँ।

पुत्रो के विछोह से सेठानी का विकल होना। एक मुनि से उनके आने के विषय मे पूछना—मुनि का सेठानी का ध्यान व्रत की ओर आकर्षित करना—व्रत करना—पुत्रो को उन्नत अवस्था में प्राप्त करना—

इन व्रत कथाओ मे प्राय सभी मे 'तिथि' अथवा 'वार' को व्रत रखने का महात्म्य वर्णन है। विवाह, पुत्र-प्राप्ति, धन-प्राप्ति जैसे फल व्रत रखने से मिलते दिखाये गये हैं। व्रत मे विघ्न डालने वाले को कष्टो का सामना करना पडा है। व्रत रखने वाले के सकट दूर होते दीखते हैं। 'श्रुत पचमी' की कथा[1] मे सेठ धनपति की कथा है। मुख्य उद्देश्य है श्रुत पचमी के व्रत से खोये हुए पुत्र का मिलना। सुरेन्द्रकीर्ति विरचित 'रविव्रत कथा' मे उस मस्तसागर सेठ की कहानी है, जिसने अपनी स्त्री के रविव्रत लेने की निन्दा की, फलत सब धन

१—लेखक ब्रह्मरायमल, रचना काल संवत् १६३३।

नष्ट हो गया। पुन लडको द्वारा व्रत साधन करके पूर्व समृद्धि मिली। आकाश पचमी[1] का व्रत रखने से एक स्त्री लिङ्गभेद कर पुरुष रूप मे जन्म ग्रहण करती है। निशिभोजन त्याग व्रतकथा[2] मे अत्यन्त प्रचलित लोक-कहानी के एक तत्व का उपयोग है। पत्नी के निशिभोजन त्याग पर शैव पति रुष्ट होता है। वह सर्प लाकर पत्नी के गले मे डालता है। वहाँ वह हार हो जाता है,वह पति के गले में सर्प वनकर उसे डस लेता है। पत्नी फिर उसे जिला लेती है। 'धर्म परीक्षा'[3]—मे जैन और ब्राह्मण धर्म का विवाद है, जिसमे ब्राह्मणो को परास्त हुआ दिखाया गया है। 'पुण्याश्रव कथा[4]' तो पुण्यकथाओ का छोटा कोश है। रुक्मागद की कथा[5] मे एकादशी व्रत का महात्म्य वताया गया है। वहू से लडाई हो जाने के कारण वुढिया को एकादशी का उपवास करना पडा था, इसी उपवास के प्रताप से उसके स्पर्श से उस मोहिनी का रुका हुआ रथ चल पडा था, जिस मोहिनी को इन्द्र ने छल करके रुक्मागद के राज्य मे एकादशी व्रत वद करने भेजा था। 'वन्दी मोचन कथा' अ-जैन है। काशी की वन्दी देवी की पूजा से पुत्र-प्राप्ति का इसमे उल्लेख है। सुदर्शन लिखित 'एकादशी महात्म्य'[6] में प्रत्येक मास की एकादशी व्रत का फल वताने के लिए एक कथा दी हुई है। उदाहरणार्थ कुछ अश की सक्षिप्ति यहाँ दी जाती है—

अगहन शुक्ला एकादशी की उत्पत्ति, कृष्ण अर्जुन सवाद, देवासुर सग्राम विष्णु का गुफा मे छिपना, स्त्री का गुफा से निकल कर राक्षस को मारना, वह एकादशी थी।

माघ कृष्णा एकादशी के व्रत का नियम उसका इतिहास, एक ब्राह्मणी की नारायण द्वारा परीक्षा, भिक्षा माँगने पर मिट्टी डालना,उसका स्वर्ग होना, वहाँ केवल मिट्टी का घर मिलना, नारायण का खाली मकान देने का कारण वताना, मुनि-नारियो का उसे व्रतदान का फल प्रदान करना, उसके घर में सव कुछ हो जाना।

एकादशी व्रत का नियम, इतिहास—पतित और अभिशप्त गधर्व और पुष्पवती अप्सरा का पिशाच-पिशाची होना, एकादशी के अज्ञात व्रत से उनका उद्धार।

१—लेखक खुसाल कवि, रचना काल संवत् १७८५।

२—लेखक भारमल्ल।

३—लेखक मनमोहनदास, रचना संवत् १७०५।

४—लेखक—रामचन्द्र, रचना संवत् १७९२।

५—लेखक सूर्यदास कवि।

६—रचना सम्वत् १७७०।

फागुन शुक्ल पक्ष की एकादशी का नियम—सुरथ का एकादशी के प्रभाव से शत्रुओं का नाश।

चैत्र कृष्ण एकादशी—एक ऋषि की तपस्या देख कर और इन्द्रासन जाने के भय से इद्र का विघ्न डालना। मुनि का स्त्री के साथ ५७ वर्ष निवास, ज्ञात होने पर स्त्री को मुनि द्वारा अभिशाप, एकादशी व्रत से दोनो का कल्मष दूर होना।

चैत्र शुक्ल एकादशी—नागपुर के ललित नामक पुरुष का अपनी पत्नी ललिता के एकादशी व्रत करने का फल पति को देने से ललित का शाप मोचन।

वैसाख कृष्ण एकादशी—लखनपुर के राजा हरिसेन के एक चमार द्वार एकादशी का फल प्राप्त करने पर एक गदहा बने हुए ब्राह्मण का उद्धार।

वैसाख शुक्ल एकादशी—सेठ के पापी बेटे का एकादशी व्रत से उद्धार।

ज्येष्ठ कृष्ण एकादशी—एक अप्सरा का विमान बेंगन के धूए से नीचे गिरा, एक एकादशी को भूखी दासी के फल से ऊपर चढा।

ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी गन्धर्व जिद हुआ, एकादशी व्रत का माहात्म्य सुनने मे राजकुमार हुआ, एकादशी से उसका उद्धार।

आसाढ कृष्ण एकादशी—एक कोढी ब्राह्मण का उद्धार।

आसाढ शुक्ल एकादशी—बलि की कथा, इस प्रकार सभी एकादशियो का वर्णन।

फिर सब का फल।

"गणेश चतुर्थी' की कथा की भी कई पुस्तकें मिली हैं। सत्यनारायण की कथा भी मिली है।

इन व्रतो और उनके महात्म्य की कथाओ के साथ ही अन्य धार्मिक आख्यायिकाओ का भी कुछ परिचय देना आवश्यक है। जिनमे धर्माचरण करने वाले महापुरुषो के अद्भुत पराक्रमो का उल्लेख है, जो पौराणिक कोटि के ग्रन्थ कहे जा सकते हैं।

"प्रद्युम्नचरित्र' मे कृष्ण-रुक्मिणी विवाह के उपरात प्रद्युम्न-जन्म और दैत्य द्वारा प्रद्युम्न के चुरा लिये जाने तथा उसके पश्चात प्रद्युम्न के विविध चमत्कारो के प्रदर्शन का वर्णन है। मोहमर्द राजा[1] की कथा जगन्नाथ की लिखी हुई है। इसमे नारदजी द्वारा राजा मोहमर्द की परीक्षा का वर्णन

---

१ रचना स० १७७६।

है। राजा, स्त्री तथा पुत्रवधू किसी को भी पुत्र के मरने का शोक नही हुआ, यह दिखाया गया है।

सुन्दरदास लिखित 'हनूमान चरित्र'[1] हनुमान जी की अद्भुत कथा लिखी गयी है। मुख्य भाग महेन्द्र विद्याधर की पुत्री अजनाकुमारी और राजकुमार पवनजय के सयोग और हनुमान के उत्पन्न होने से सम्बन्ध रखता है। बाद मे शूर्पणखा की पुत्री अनगपुष्पा और सुग्रीव की पुत्री पद्मरागी से हनूमान का विवाह कराया गया है। रावण युद्ध मे राम की सहायता का भी उल्लेख है। हनूमान जी का यह वृत्त रामायण आदि के ज्ञात वृत्त से बहुत भिन्न है। जैन दृष्टि ने जिस रूप मे इन कहानियो को अपनाया, उसी का एक रूप इसमे भी मिलता है। इसी प्रकार 'बलि-वामन' की हिन्दू-पुराण प्रसिद्ध कथा का एक जैन सस्करण हमे विनोदीलाल कृत विष्णुकुमार की कथा[2] मे मिलता है। इसमे बलि उज्जयिनी के राजा के चार मन्त्रियो मे से एक प्रमुख मन्त्री हो गया है। इसकी सक्षिप्ति यह है—

उज्जयिनी के राजा सिवाराम के चार मत्रियो द्वारा एक जैन मुनि की अविनय होना, मुनि ने उन सब को कील दिया, राजा का उनको प्राणदण्ड की आज्ञा देना, मुनि का उन्हे क्षमा करना, राजा का देश निकाला देना, मत्रियो का हस्तनागपुर के राजा पदुम के यहाँ पहुँचना। एक शत्रु को वश मे लाकर सात दिन का राज्य पाना, वहाँ पर उन्ही मुनि की श्रद्धा न करना। विष्णुकुमार की सहायता से कष्ट से मुक्त होना। विष्णुकुमार का वामन रूप धर कर बलि मत्री (चारो मे श्रेष्ठ) को छलना, उन चारो का श्रावक व्रत धारण करना। 'वारांगकुमार चरित्र'[3] जैन पुराण है। जैनियो मे वाराग-कुमार का चरित्र अत्यन्त प्रसिद्ध है। सातवी (ईसवी) मे जटासिंहनन्दी नाम के कवि ने संस्कृत मे भी 'वारांग चरित्र' लिखा था। इस प्रसिद्ध चरित्र की उक्त हिन्दी ग्रन्थ के आधार पर सक्षिप्त रूपरेखा यह है—

कानपुरनगर के राजा धर्मसेन की रानी गुनदेवी के गर्भ से वारागकुमार का जन्म—वाणिको ने राजा धर्मसेन से आकर कहा कि समृद्धिपुरी के राजा धृतिसेन की पुत्री 'गुनमनोज्ञा' कन्या आपके पुत्र के योग्य है—मत्रियो से परामर्श, अन्त में सभी प्रस्तावित कन्याओ से विवाह का निश्चय, सब राजाओ का अपनी-अपनी कन्या लाकर वाराग से वही विवाह।

जिन गणधरो के आगमन की सूचना वनमाली द्वारा—राजा का वहाँ

---

१ रचना सं० १६१६।

२ प्रतिलिपि स० १९५५ सन् १८६८।

३ लेखक कंजहग, रचना संवत् १८१४।

जाना, जैन धर्म का उपदेश, पुत्र सहित राजा का श्रावक व्रत लेना, नगर मे आना।

वाराग कुमार को राज्य देना, राजकुमार का दुष्ट मन्त्री के सिखाये हुए घोड़ो के द्वारा एक सघन वन मे पहुँचना, एक तालाव के पास पहुँचना, मगर ने पैर पकडा, जिन की कृपा से वचना, भीलो का मार्ग-दर्शन, एक वनजारे से मिलना, राजकुमार को उसे 'सागर वृद्धि' राजा के पास ले जाना, उसकी रक्षा भीलो आदि से, उस सेठ की कन्या से विवाह, ललितपुर निवास।

उधर राजा धर्मसेन का विलाप, सुखेन को राज्य दे देना।

मथुरापुर के राजा ने ललितपुर के नरेश से हाथी माँगे, मना कर दी, मथुरेश की चढाई, वारागकुमार की सहायता से मथुरेश की पराजय।

ललितपुर के राजा का अपनी पुत्री सुनन्दा का उससे व्याह करना, दूसरी लड़की मनोरमा का भी प्रस्ताव अस्वीकृत—

राजा धर्मसेन पर शत्रुओ का आक्रमण—राजा का अपनी ससुराल समाचार भेजना—जहाँ वारागकुमार था, राजा का वाराग को पहचान लेना, मनोरमा का विवाह भी होना। ससुर-जमाई का कांतपुर आना, राजकुमार का गद्दी पर विठाया जाना, पिता के शत्रुओ का पराजित करना, अनर्तपुर पर चढाई करना, हार मान कर वाराग से अपनी पुत्री विवाह देना, वाराग का जैन धर्म स्वीकार करना, वाराग के पुत्र का जन्म और उसका विवाह।

वाराग का विरक्त होना, सव का मुनि की दीक्षा लेना।

जिस प्रकार इस 'वारागकुमार चरित' मे मन्त्री के द्वारा सिखाये हुए घोडे वारागकुमार को वन मे सकट मे डालने के लिए ले जाते हैं, उसी प्रकार एक दूसरे चरित्र मे भी ऐसे सिखाये घोडे का उल्लेख हुआ है। उसमे भी राजा को वह सिखाया हुआ घोडा वन मे ले जाता है। यह चरित्र 'पद्मनाभि-चरित्र' है। यह भी प्रसिद्ध जैन कथानक है। 'संयुक्त कौमुदी भाषा'[1] तो नाम से ही स्पष्ट 'सयुक्त कौमुदी' का अनुवाद है। कार्तिक शुक्ल-पक्ष की पूर्णिमा को कौमुदी महोत्सव की महिमा को लेकर मथुरा के राजा उदितोदय और अर्हद्दास की आठ भार्याओ की कहानियाँ है। यह भी प्राचीन कथा है। सयुक्त कौमुदी मूल कव लिखी गयी होगी इसका तो पता नही चलता, पर 'अर्हद्दास कथानक' हमें जैन कथाकोशो में मिल जाता है[2]। इन कोशो के कथानको का मूल वहुत प्राचीन है। इसमें सदेह नही। परमाल का 'श्रीपाल चरित्र'[3]

---

१ लेखक जोधराज गोदी। रचना · सं० १७२४।

२ देखिये हरिषेणाचार्य रचित वृहत् कथा-कोश मे ६३ वाँ कथानक।

३ रचनाकाल सं० १६५१।

लोक-वार्त्ता की दृष्टि से इसलिए महत्व पूर्ण है कि इसमें हमें कई घटनाएं ऐसी मिलती हैं जो मौखिक लोक महागीत 'ढोला' के अन्तर्गत 'नल' के सम्बन्ध में प्रचलित हैं, तथा अन्य ग्रथो में भी जिनका उपयोग हुआ है। 'श्रीपाल चरित्र' की सक्षिप्ति यह है।

रानी को स्वप्न—राजा के यशस्वी पुत्र होने का कथन—गर्भ की दशा—श्रीपाल का जन्म, राजा बना, चक्रवर्ती हो गया। राजा को कुष्ट-वीरदमन को राज्य देकर वन को चले जाना, सात सौ कोढी साथियो का भी जाना।

उज्जैन नरेश पहुपाल की पुत्री मैना, छोटी मैना का जैन चैत्यालय जाना, बडी का गुरु से विद्याध्ययन, जैन मुनि से मैना की शिक्षा, बडी का कौशाम्वी के राजा से विवाह, छोटी मैना का राजा से कर्म के विषय में विवाद, राजा द्वारा उसका निष्कासन।

राजा को जंगल में कुष्टी राजा से मिलना, मित्रता, कुष्टी ने उसकी पुत्री मांगी, विवाह हो जाना। मैना का जन्म-पर्यन्त सेवा करने का कथन, जिन की प्रार्थना करके मैना ने कुष्ट अच्छा किया।

जिनेन्द्र के कथनानुसार श्रीपाल की माँ का उसके पास आना, आने का समय निर्दिष्ट करके श्रीपाल का कही जाना, विद्याधर से मिलाप, विद्याधर को मत्र-सिद्ध करने मे श्रीपाल की सहायता, विद्याधर ने जल-तारिणी और शत्रु-निवारिणी विद्याए दी।

श्रीपाल का निर्जन वन में पहुँचना, एक वणिक के जहाज का अटकना, बलि के लिए श्रीपाल का पकडा जाना, श्रीपाल के छूते ही जहाज चल दिया। सेठ उसे साथ ले चला, धन दिया, बेटा माना, चोर मिलना, श्रीपाल का उन्हे बांध लेना।

हस-द्वीप—कनककेतु राजा की स्त्री कचन के चित्र-विचित्र दो पुत्र और रैन-मजूषा नाम की तीसरी पुत्री का वर्णन, विवाह के लिए सहस्र-कूटन चैत्यालय के फाटक को हाथ से खोलने की शर्त, श्रीपाल का वह कृत्य करना, विवाह—सेठ का रैन मजूषा के लिए श्रीपाल को समुद्र में गिरा देना, रैन मजूषा की प्रार्थना, चार देवियो का प्रकट होकर सेठ को दण्ड देना, श्रीपाल तैरता हुआ कुकुम द्वीप में पहुँचा, वहाँ के राजा की पुत्री से विवाह, जिसकी शर्त थी कि जो समुद्र में तैर कर आवे, विवाह करे। सेठ का उसी नगर में पहुँचना, सेठ का भांडो का तमाशा करा उसे भांड सिद्ध कर मरवाने की आज्ञा दिलवाना, गुण-माला का राजा से युद्ध समाचार कहलाना और श्रीपाल की मुक्ति, श्रीपाल का सेठ को क्षमा कर देना, सेठ का हृदय फटकर मर जाना।

मुनिराज की भविष्यवाणी के अनुसार श्रीपाल का विवाह कुण्डलपुर मे

राजा मकरकेतु की पुत्री चित्ररेखा से होना, बाद में कचनपुर के राजा वज्रसेन की पुत्रियो से विवाह, कु कुमपट के राजा की सोरह सौ पुत्रियो से व्याह, सब को ले कु कुमद्वीप लौटन, अपनी प्रथम स्त्री मैनासुन्दरी को दिये हुए वचनो को पूर्ण करने के लिए उज्जैन नगरी पहुँचना, प्रात. सब स्त्रियो को बुलाना, मैना को पटरानी बनाना।

मैनासुन्दरी के कथनानुसार उसके पिता को कवल ओढ कुल्हाडी लेकर बुलाना—उसका भयभीत होकर आना, कर्म का महत्व समझना, जैन धर्म स्वीकार करना।

मैना के पिता ने श्रीपाल को अपनी राजधानी में बुलाया, श्रीपाल का श्वसुर से आज्ञा लेकर अपनी जन्मभूमि में जाना, मार्ग मे चम्पावती के राजा वीरपाल से युद्ध, मल्लयुद्ध में श्रीपाल की विजय, वीरदमन का जैन धर्म मानना—

मैनासुन्दरी के धन्यपाल नामक पुत्र---१२१०८ पुत्र होने का कथन, राजा का दीक्षित होकर वन को जाना, पुत्र को राज्य देना, मुनिराज से भेंट, उनसे उपदेश, तप, मुक्ति।

इस कथा मे छोटी पुत्री मैनासुन्दरी का कर्म के सवध मे पिता से विवाद हो जाने पर निकाले जाने की घटना तो लोकवार्त्ता की साधारण घटना है, जो ब्रज की कहानी मे भी मिलती है। ब्रज की कहानी मे राजा ने छोटी लडकी को इसलिए निकाल दिया था कि वह कहती थी कि मैं भाग्य का दिया खाती हूं। एक कहानी में राजा ने अपनी ऐसी भाग्यवादिनी पुत्री का ऐसे राजकुमार से विवाह कर दिया था, जिसके पेट मे साँप प्रवेश कर गया था, और जिसके कारण राजकुमार मरणासन्न हो रहा। यह अभिप्राय भी अन्तर्राष्ट्रीय है। शेक्सपीयर के नाटको मे भी मिलता है। मैनासुन्दरी ने इस कहानी मे 'जिन' की कृपा से राजकुमार श्रीपाल का कुष्ट दूर कर दिया है। कोढ़ी, अथवा लु ज या अगहीन से विवाह होने का वृत्त देश-विदेश में एकानेक कहानियो मे मिलता है। ब्रज की कहानी मे 'राजा विकरमाजीत पर दुख भजनहार' अगहीन है, उसके हाथ-पैर काट दिये गये हैं, राजकुमारी उसी को वरती है। इसी प्रकार अटके जहाज का श्रीपाल के छू देने से चल पडने का उल्लेख भी इसी कहानी की विशेपता नहीं। एकानेक कहानियो मे यह घटना भी मिलती है। सहस्त्रकूटन चैत्यालय फाटक को हाथ से खोलना और ढोला में भीमासुर दाने के महलो की शिला सरकाना एक सी बातें है। ढोला मे 'मोतिनी' के लालच में सेठ मामाओ ने नल को समुद्र मे गिरा दिया है, यहाँ रैन मजूपा के लिए श्रीपाल को समुद्र मे गिरा दिया गया है।

'धन्यकुमार चरित्र'* भी ऐसी ही लोकवार्ता सम्वन्धी सामग्री रखता है। दीवारो के वदले में गाडी ईधन खरीदना, ईधन के वदले में मेप, मेप के वदले में चार अधजले पाये खरीदना। फिर उन जले पायो में चार लाल निकलना, लोकवार्ता की साधारण वस्तु है, जिसका उपयोग जैन कहानीकार ने अपने नायक के चरित्र को रोचक वनाने के लिए किया है। धन्य-कुमार के पहुँचने से वाग का हरा हो जाना भी लोक-परम्परा में है जिससे अपेक्षित व्यक्ति के आने की सूचना मिलती है।

प्रियमेलक तीर्थ[1] श्री अगरचन्द नाहटा जी ने जैन ग्रन्थो मे लोक-साहित्य विषयक वहुत सी सामग्री इधर प्रकाशित की है।[2] यह ग्रन्थ भी उनके प्रयत्न से प्रकाश मे आया है। इसकी सक्षिप्ति उन्ही के शब्दो मे यहाँ दी जा रही।

सिंहलद्वीप के नरेश्वर सिंहल की रानी सिंहली का पुत्र सिंहलसिंह कुमार शूरवीर, गुणवान और पुण्यात्मा था। वह माता-पिता का आज्ञाकारी, सुन्दर तथा शुभ लक्षण युक्त था। एक वार वसत ऋतु के आने पर पौरजन क्रीडा के हेतु उपवन मे गये, कुमार भी सपरिकर वहाँ उपस्थित था। एक जगली हाथी उन्मत्त होकर उधर आया और नगर सेठ धन की पुत्री को, जो खेल रही थी, अपने शुण्डा-दण्ड मे ग्रहण कर भागने लगा। कुमारी भयभीत होकर उच्च स्वरसे आक्रन्द करने लगी—मुझे वचाओ! वचाओ! यह दुष्ट हाथी मुझे मार डालेगा। हाय! माता, पिता, कुलदेवता, स्वजन सव कहाँ गये, कोई चाँदनी रात्रि का जन्मा सत्पुरुष हो तो मुझे वचाओ। राजकुमार सिंहलसिंह ने दूर से विलापपूर्ण आक्रन्द सुना और परोपकार वुद्धि से तुरन्त दौडा हुआ आया।

---

*लेखक खुसाल कवि।

१ नाहटाजी ने वताया है कि सिंहल-सुत-प्रिय-मेलक—चौपई 'कविवर समयसुन्दर' ने स० १६७२ मे लिखी थी—

"संवत सोल वहूत्तरी समइ रे, मेडता नगर मझारि।"

यही कहानी पूर्ववर्ती मलयचद्र के 'सिंहलसी चरित्र' मे है। इसका रचना सवत् १५१६ है।

इसी विषय पर एक रचना स० १७४६ में 'सिंहल कुमार चापई' के नाम से लिखी गयी, इस कथा की अनेकों प्रतियाँ मिलती हैं, कई सचित्र भी हैं।

२ इस सम्वन्ध मे एक निवन्ध मे स्वयं विद्वद्वर नाहटाजी ने यह सूचना दी है कि प्राचीन राजस्थानी व गुजराती भाषा की लोक कथात्मक रचनाओ का कुछ परिचय में नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ५७ अंक १ मे प्रकाशित अपने लेख मे और विक्रम सम्वन्धी लोक-कथाओ पर रचे गये जैन-ग्रन्थों का 'विक्रम-स्मृति ग्रन्थ' मे दे चुका हूँ।

उसने बुद्धि और युक्ति के प्रयोग से कुमारी को उन्मत्त गजेन्द्र की सूँड से छुडा कर कीर्ति-यश उत्पन्न किया ।[1]

सेठ ने कुमारी की प्राण-रक्षा हो जाने से वधाई बाँटनी शुरू की । राजा भी देखने के लिए उपस्थित हुआ, सेठ ने कुमार के प्रति कुमारी का स्नेहानुराग ज्ञात कर धनवती को राजा के सम्मुख उपस्थित किया और सर्व सम्मति से कुमार के साथ पाणिग्रहण करा दिया । सिंहलसिंह अपनी प्रिया धनवती के साथ सुखपूर्वक काल निर्गमन करने लगा ।

राजकुमार जिस गली जाता उसके सौन्दर्य से मुग्ध हो नगर वनिताएँ गृह-कार्य छोडकर पीछे पीछे घूमने लगती । पचो ने मिल कर सिंहल नरेश्वर से प्रार्थना की कि आप कुमार को निवारण करो अथवा हमे विदा दिलाओ ।[2] राजा ने कुमार का नगर वीथिकाओं मे क्रीडा करना बद कर महाजनो को तो सतुष्ट कर दिया पर राजकुमार के हृदय मे यह अपमान-शल्य निरन्तर चुभने लगा । कुमार ने भाग्य-परीक्षा के निमित्त स्वदेश-त्याग का निश्चय किया । अपनी प्रिया धनवती के साथ अर्द्ध रात्रि मे महलो से निकल कर समुद्र-तट पहुँचा उसने तत्काल प्रवहणारूढ होकर पर-द्वीप के निमित्त प्रयाण कर दिया ।

सिंहलकुमार का प्रवहण समुद्र की उत्ताल तरगो के बीच तूफान के प्रखर झोको द्वारा झकझोर गया । भग्न प्रवहण के यात्रीगणो को समुद्र ने उदरस्थ कर लिया ।[3] पूर्व पुण्य के प्रभाव से धनवती ने पाटिया पकड लिया और जैसे-तैसे कष्टपूर्वक समुद्र का तट प्राप्त किया । वह अपने हृदय मे विकल्पो को लिए हुए उद्वेगपूर्वक वस्ती की ओर वढी । नगर के निकट एक दण्ड, कलश और ध्वज युक्त प्रासाद को देख कर किसी धर्मिष्ठ महिला से नगर-तीर्थ का नाम पूछा । उसने कहा—यह कुसुमपुर नगर है और यह विश्वविश्रुत प्रियमेलक तीर्थ है, यहाँ का चमत्कार प्रत्यक्ष है । यहाँ जो मौन तपपूर्वक शरण लेकर बैठती है, उसके बिछुडे प्रियजन का मिलाप निश्चयपूर्वक होता है । धनवती भी निराहार मौनव्रत ग्रहण कर वहाँ पतिमिलन का सकल्प लेकर बैठ गयी ।

इधर सिंहलकुमार भी सयोगवश हाथ लगे हुए लम्बे काष्ठ खड के सहारे किनारे जा पहुँचा । आगे चलकर वह रत्नपुर नगर मे पहुँचा जहाँ के राजा

---

१. यह हाथी या सिंह के आकस्मिक आक्रमण का अभिप्राय और उससे एक कुमारी की रक्षा का अभिप्राय अत्यन्त प्राचीन अभिप्राय है । प्रसिद्ध नाटककार भवभूति ने इसका उपयोग मालतीमाधव मे किया है ।

२. यह अभिप्राय पुराणो मे शिवजी के सम्वन्ध मे भी आया है । अनेको लोककथाओ मे इसका समावेश है । माधवानल कामकदला, चतुर्भुज दास की मधुमालती तथा अन्य अनेको लोककथाओं मे है ।

३. नौका डूवने, नायक नायिका के अलग अलग वह जाने की घटना प्रेमगाथाओ मे तो सामान्य रूप से मिलती ही है ।

रत्नप्रभा की रानी रत्नसुन्दरी की पुत्री रत्नवती अत्यन्त सुन्दरी और तरुणावस्था प्राप्त थी। राजकुमारी को साँप ने काट खाया जिसे निर्विष करने के लिए गारुडी मन्त्र, मणि, औषधोपचार आदि नाना उपाय किय गये पर उसकी मूर्च्छा दूर नही हुई। अन्ततोगत्वा राजा ने ढिंढोरा पिटवाया। कुमार सिंहलसिंह ने उपकार-बुद्धि से अपनी मुद्रिका को पानी मे फिरा कर राजकुमारी पर छिडका और उसे पिलाया जिससे वह तुरत सचेत हो उठ बैठी।[४] राजा ने उपकारी और आकृति से कुलीन ज्ञात कर कुमार के साथ राजकुमारी रत्नवती का पाणिग्रहण करा दिया। रात्रि के समय रंगमहल मे कोमल शय्या को त्याग कर धरती पर सोने पर रत्नवती ने इसका कारण पूछा। कुमार यद्यपि अपनी प्रिया के वियोग मे ऐसा कर रहा था पर उसे भेद देना उचित न समझ कहा कि—प्रिये। माता-पिता से बिछुडने के कारण मैंने भूमिशयन व ब्रह्मचर्य का नियम ले रखा है। राजकुमारी ने यह सुन उसके माता-पिता की भक्ति की प्रशसा की। राजा को ज्ञात होने पर उसने कुमार का कुल वश ज्ञात कर पुत्री व जमाता के विदाई की तैयारी की। एक जहाज मे वस्त्र, मणि रत्नादि प्रचुर सामग्री देकर दोनो को विदा किया व साथ मे पहुँचाने के लिए रुद्र पुरोहित को भी भेजा। जहाज सिंहलद्वीप की ओर चला।

रत्नवती के सौन्दर्य से मुग्ध होकर रुद्र पुरोहित ने सिंहलकुमार को अथाह समुद्र मे गिरा दिया और उसके समक्ष मिथ्या विलाप करने लगा। राजकुमारी ने यह कुकृत्य उसी दुष्ट पुरोहित का जान लिया।[५] उसके आगे प्रार्थना करने पर रत्नवती ने कहा कि मैं तो तुम्हारे वश मे ही हूँ। अभी पति का वारिया हो जाने दो, कह कर पिण्ड छुडाया। आगे चलने पर समुद्र की लहरो मे पडकर प्रवहण भग्न हो गया। कुमारी ने तख्ते के सहारे तैर कर समुद्रतट प्राप्त किया और प्रियमेलक तीर्थ पहुँची। प्रियमेलक तीर्थ का भेद ज्ञात कर जहाँ आगे धनवती बैठी थी, रत्नवती ने भी जा कर मौन पूर्वक आसन जमा दिया। पापी पुरोहित भी जीवित बच निकला और उसने कुसुमपुर आकर राजा का मन्त्री-पद प्राप्त किया।

सिंहलकुमार को समुद्र मे गिरते हुए किसीने पूर्व पुण्य के प्रभाव से, ग्रहण

४, सर्प काटने और नायक द्वारा विष उतारे जाने की लोककथा जाहर पीर के गीत मे है, औरो मे भी मिलती है।

५, समुद्र मे नायक को गिराने और नायिका की ओर आकृष्ट होने की कथा ब्रज के ढोला मे तथा अन्यत्र भी मिलती है।

कर लिया और उसे तापस आश्रम मे पहुँचा दिया। शुभ लक्षण वाले कुमार को देखकर हर्षित हुए तापस ने अपनी रूपवती पुत्री के साथ पाणिग्रहण करा दिया। करमोचन के समय कुमार को एक ऐसी अद्भुत कथा दी जो प्रतिदिन खखेरने पर सौ रुपये देती थी, इसके साथ एक आकाश-गामिनी खटोली[६] भी दी जिस पर बैठकर जहाँ इच्छा हो जा सके। कुमार अपनी नव परिणीता पत्नी के साथ खटोली पर आरूढ हो गया, खटोली ने उसे कुसुमपुर के निकट ला उतारा। रूपवती को धूप और गरमी के मारे जोर की प्यास लग आयी थी। अत कुमार जल लाने के लिए अकेला गया। ज्योही वह जलकूप के निकट पहुँच कर पानी निकालने लगा कि एक भुजग ने मनुष्य की भाषा मे अपने को कुँए मे से निकाल देने की प्रार्थना की। कुमार ने उसे लम्बा कपडा डालकर बाहर निकाला। साँप ने निकलते ही उस पर आक्रमण कर काट खाया जिससे कुमार कुब्जा और कुरूप हो गया।[७] कुमार के उपालम्भ देने पर साँप ने कहा—बुरा मत मानो, इसका गुण आगे अनुभव करोगे। तुम्हारे ऊपर सकट पडने पर मैं तुम्हे सहायता दूँगा। कुमार सविस्मय जल लेकर अपनी प्रिया के पास आया और उसे जल पीकर प्यास बुझाने को कहा। रूपवती ने कुब्जे के रूप मे पति को न पहिचान कर पीठ फेर ली और तुरत वहाँ से प्यासी ही चल दी। उसने इधर-उधर घूम कर सारा वन छान डाला, अन्त मे पति के न मिलने पर निराश होकर वही जा पहुँची, जहाँ प्रिय-मेलक तीर्थ की शरण लेकर दो तरुणियाँ बैठी थी। रूपवती भी उनके पास जाकर मौन तपस्या करने लगी।

सिहलकुमार कथा और खाट कही छोड कर नगरी की शोभा देखता हुआ घूमने लगा, उसने अपनी तीनो प्रियाओ को भी तपस्यारत देख लिया। कुछ दिन बाद यह बात सर्वत्र प्रचलित हो गयी कि तीन महिलाएँ न मालूम क्यो मौन तपश्चर्या मे लगी हुई है। जिन्होने सौन्दर्य्यवती होते हुए भी तप द्वारा देह को कृश बना लिया है। यह वृतान्त सुनकर राजा के मन मे उन्हे बुलवाने की उत्सुकता जगी। नरेश्वर ने नगर मे ढिंढोरा पिटाया कि जो इन तरुण तपस्विनियो को बोला देगा उन्हे मैं अपनी पुत्री दूँगा। घूमते हुए वामन रूपी सिहलकुमार ने पटह स्पर्श किया। राजा के पास ले जाये जाने पर वामन ने दूसरे दिन प्रात काल युवतियो को बोलाने को कहा। दूसरे दिन राजा, मत्री, महाजन आदि सब लोग प्रियमेलक तीर्थ के पास आकर जम गये। वामन ने कोरे पन्ने निकाल कर वाचने का उपक्रम करते हुए कहा कि ये अदृश्याक्षर

६, अक्षय थैली तथा उडनखटोला तो प्रसिद्ध लोक-अभिप्राय हैं ही।

७, यह पुराणो मे भी है, नल की लोककथा मे भी है।

हैं । राजा आदि आश्चर्य पूर्वक सावधानी से सुनने लगे । वामन ने कहा—सिंहलकुमार अपनी प्रिया के साथ प्रवहणारूढ होकर समुद्र यात्रा करने चला । मार्ग मे तूफान के चक्कर मे प्रवहण भग्न होगया । इतनी कथा आज कही, आगे की वात कल कहूँगा । धनवती ने कहा—आगे क्या हुआ ? वामन ने कहा—राजन् । देखिये यह वोल गयी ।

दूसरे दिन फिर सवकी उपस्थिति मे वामन ने कोरे पन्नो को वाचते हुए कहा – "काष्ठ का शहतीर पकड कर कुमार रत्नपुर नगर पहुँचा, वहाँ उसने राजकुमारी रत्नवती से व्याह किया फिर वहाँ से विदा होकर आते समय माग मे पापी पुरोहित ने कुमार को समुद्र मे गिरा दिया । उसने पोथी वाँचते हुए कहा–आज का सम्वन्ध इतना ही है, आगे का सुनना हो तो कल आना । रत्नवती ने उत्सुकता वश कहा—"हाथ जोडती हूँ, पण्डित ! आगे का वृतान्त कहो ।" इस प्रकार दूसरी भी सव लोगो के समक्ष वोल गयी ।

दूसरे दिन प्रात काल फिर लाखो की उपस्थिति मे वामन ने पुस्तक वाचनी प्रारम्भ की । उसने कहा–कुमार को जल मे गिरते हुए किसी ने ग्रहण कर लिया, फिर उससे तापस ने अपनी कन्या रूपवती का विवाह कर दिया । वे दोनो दम्पति खटोलडी मे वैठकर यहाँ आये, कुमार जल लेने के निमित्त कुँए पर गया जिस पर वहाँ साँप ने आक्रमण किया । इस प्रकार यह तीनो वातें हुई । वामन के चुप रहने पर रूपवती से चुप नही रहा गया, उसने भी आगे का वृतान्त पूछा । वामन ने कहा—अव तीनो वोल चुकी । मुझे कुसुमवती कन्या देकर अपना वचन निर्वाह करो । राजा ने वचन के अनुसार घर आकर चौंरी माडकर विवाह की तैयारी की । वामन और राजकुमारी के सम्वन्ध से खिन्न होकर औरतो के गीत गान मे अनुद्यत रहने पर, आगे का वृतान्त जानने की उत्सुकता से तीनो कुमार-पत्नियाँ विवाह-मण्डप मे जाकर गीत गाने लगी । करमोचन के समय उल्लासरहित साले ने कहा—साँप लो । कुमार ने कुए के साँप को याद किया, उसने आते ही कुमार को डस लिया, जिससे वह मूर्छित हो गया । अव वे सव कन्याए मरने को उद्यत हो कहने लगी—हम भी इसके साथ ही मरेंगी, हमे इन्हे की शरण है । इतने मे देव ने प्रकट होकर कुमार को अपने असली रूप मे प्रगट कर दिया, सव लोग इस नाटकीय पटपरिवर्तन को देखकर परम आनन्दित हुए । कुसुमवती को अपार हर्ष था, अपने पति को पहचान कर चारो पत्नियाँ विकसित कमल की भाँति प्रफुल्लित हो गयी । अव कुसुमवती का व्याह वडे धूम-धाम से हुआ और कुमार सिंहलसिंह अपनी चारो पत्नियो के साथ आनन्द पूर्वक काल निर्गमन करने लगा । कुमार ने देव से पूछा—तुम कौन हो ? मेरा उपकार कैसे किया ? देव ने कहा—मैं नागकुमार देव हूँ, मैंने

ही तुम्हे समुद्र मे डूबने से बचाकर आश्रम मे छोडा, तुम्हे कुब्जे के रूप मे परिवर्त्तन करने वाला भी मैं हूँ। तुम्हारे पूर्व पुण्य तथा प्रबल स्नेह के कारण मैं तुम्हारा सान्निध्यकारी बना। कुमार के पूछने पर देव ने पूर्व भव का वृत्तान्त बतलाना प्रारभ किया।

धनपुर नगर मे धनजय नामक सेठ और धनवती नामक सुशीला पत्नी थी। एक बार मासक्षमण तप करने वाले त्यागी बैरागी निर्ग्रन्थ मुनिराज के पधारने पर धनदेव ने उन्हे सत्कार पूर्वक वहोराया, पुण्य प्रभाव से वह मर कर महर्द्धिक नागकुमार देव हुआ। धनदत्त भी भाव पूर्वक मुनिराज को सेलडी (ईख) का रस दान करते हुए तीन बार भाव खडित हो जाने से मर कर तुम सिहलसिह हुए। तीन बार परिणाम गिरने से तुम समुद्र मे गिरे, फिर वहराते रहने से स्त्रियो की प्राप्ति हुई। तुम्हे कुरूप वामन करने का मेरा यह उद्देश्य था कि अधम पुरोहित तुम्हे पहिचान कर मारने का प्रयत्न न करे। कुमार को अपना पूर्व भव सुनकर जाति स्मरण ज्ञान हो आया, जिससे अपना पूर्व भव वृतान्त सिहलसिह को स्वय ज्ञात हो गया। राजा ने पुरोहित पर कुपित हो उसे मारने की आज्ञा दी, कृपालु कुमार ने उसे छुडा दिया।

अब कुमार के हृदय मे माता-पिता के दर्शनो की उत्कण्ठा जागृत हुई, उसने स्वसुर से विदा मागी, उडन खटोली पर आरूढ हो चारो पत्नियो को चारो ओर तथा मध्य मे स्वय विराजमान हो आकाश मार्ग से सत्वर अपने देश लौटा। माता-पिता के चरणो मे उपस्थित हो सब का वियोग दूर किया। चारो बहुओ ने सासू के चरणो मे प्रणाम कर आशीर्वाद पाया। राजा ने कुमार को अपने सिहासन पर अभिषिक्त कर स्वय योग-मार्ग ग्रहण किया।

राजा सिहलसुत (सिह) श्रावक व्रत को पालन करता हुआ न्याय पूर्वक राज्य करने लगा। उसने उत्साह पूर्वक धर्मकार्य करने मे अपना जीवन सफल किया। जिनालय निर्माण, जीर्णोद्धार, शास्त्र लेखन, साधु, साध्वी, श्रावक-श्राविका की भक्ति, औषधालय निर्माण, दानशाला तथा साधारण द्रव्य इत्यादि दसो क्षेत्रो मे प्रचुर द्रव्य व्यय किया। दिनो-दिन अधिकाधिक धर्म ध्यान करते हुए धर्म का चिरकाल पालन कर आयुष्य पूर्ण होने पर समाधि-पूर्वक मरकर सौधर्म देवलोक मे उत्पन्न हुआ। यहाँ च्यव कर महाविदेह क्षेत्र मे मोक्ष पद प्राप्त करेगे।

इसके कथा-तत्व

१—पति से बिछुडकर पत्नियाँ एक तीर्थ पर एकत्र होती हैं।

२—वे वहाँ व्रत (मौन) अनुष्ठान करती है।

३—पति प्राप्त करती है।

४—वसत क्रीडा हेतु उपवन मे नगर निवासी, राजकुमार(भवभूति के मालती माधव से तथा अन्य लोक-कथाओ से साम्य)

५—जगली हाथी छूटता है (भवभूति के मालती माधव से साम्य)

६—(अ) वह एक सेठ कन्या धनवती लडकी को उठाकर भागता है। (आ) वह चिल्लाती है।

(इ) राजकुमार उसे वचाता है।

७—इस उपलक्ष्य मे सेठ कन्या राजकुमार को दी गयी।

८—राजकुमार के सौन्दर्य से नगर वनिताएँ गृहकार्य छोडती—
(मधु मालती—माधवानल कामकदला)

९—इससे नगर व्यग्र—राजा ने राजकुमार को अवरोधा (मधु मालती)

१०—राजकुमार धनवती के साथ परद्वीप के लिए

११—प्रभजन से नाव डूबी पटिया पकड कर धनवती वची और कुसुमपुर पहुँची। (पद्मावती तथा नल कथा आदि)

१२—कुसुमपुर मे प्रियमेलक तीर्थ, जहाँ मौन तप से खोया पति मिलता है।

१३—राजकुमार काष्ठ खण्ड के सहारे रतनपुर पहुँचा—(पद्मावत)

१४—रतनपुर की राजकुमारी को सर्प-विष से राजकुमार ने अगूठी के जल से मुक्त किया। (राजानल, जाहरपीर)

१५—राजकुमार का रत्नवती से विवाह

१६—राजकुमार का भूमिशयन

१७—राकुमार तथा रत्नवती का घर के लिए जहाज मे प्रस्थान।

१८—रुद्र पुरोहित राजकुमारी पर आसक्त, राजकुमार को समुद्र मे फेका (नल-ढोला तथा अन्य कथाएँ)

१९—रत्नवती का जहाज डूवा, वह भी वचकर प्रिय मेलक तीर्थ पहुँची और तपस्या मे लगी।

२०—राजकुमार सिंहल को समुद्र मे से निकाल तापसाश्रम पहुँचाया।

२१—तापसाश्रम मे रूपवती से विवाह—तपस्वी ने एक कथा दिया १०० रुपये देने वाला, एक उडन खटोली दी।

२२—उडन खटोली ने दोनो को कुसुमपुर मे उतारा।

२३—रूपवती पियासी—राजकुमार पानी लेने गया।

२४—कुए मे सर्प ने मानवी भाषा मे निकालने को कहा—निकालने पर सर्प ने सिंहलकुमार को डस लिया जिससे वह कुवडा और कुरूप होगया—(नल और कर्कोटक)

२५—सर्प ने कहा समय पर मै सहायता करूँगा।

२६—रूपवती अपने पति को न पहचान कर घूम फिर कर प्रियमेलक तीर्थ मे पहली दोनो के पास पहुँच तपस्या करने लगी ।

२७—तीनो की मौन तपस्या की बात राजा के कानो मे पडी–जिसने घोषणा की कि जो इन्हे बुलवा देगा—उसे अपनी कन्या प्रदान करूँगा ।

२८—सिंहलकुमार ने बीडा उठाया ।

२९—दूसरे दिन सभी तीनो के पास एकत्र । सिंहल के कोरे पन्नो को पढकर पहली रानी की अपने से बछुडने की कथा सुनायी—आगे की कल कहने पर वह बोल उठी, आगे (नल-ढोला)

३०—रत्नवती की कथा दूसरे दिन बिछुडने के ममय तक की—तब रत्नवती बोल उठी ।

३१—तीसरे दिन रूपवती की कथा कही—तब रूपवती बोल उठी, 'आगे क्या हुआ ?'

३२—कुबडे सिंहल ने कुसुमपुर के राजा से कहा कि अब अपना प्रण निवाहो–कुसुमवती से विवाह कीजिये ।

३३—कुसुमवती की तय्यारी पर साले ने कहा—सांपलो–तभी सिंहल को साप का स्मरण हुआ—उसने आकर उसे डस लिया वह मूर्छित हुआ–पहली तीनो उसके साथ सती होने को प्रस्तुत ।

३४—तभी एक देव प्रकट हुआ उसने राजकुमार को पूर्ववत् जीवित कर दिया और बताया कि मैंने ही तुम्हें समुद्र से बचाया, मैंने ही सर्प बन कर डसा—रक्षार्थ । मैं नागकुमार देव हूँ ।

३५—कुमार ने पूछा तो देव ने उसका पूर्व भव बताया ।

पूर्व भव की कथा

३६—धनदेव ने निर्ग्रन्थ मुनिराज को वहोराया ।

३७—पुण्य प्रभाव से मुनिराज नागदेव हुआ ।

३८—धनदेव सिंहलसिंह हुआ—

(१) तीन वार ईख का रसदान करने मे भाव खडित होने से समुद्र में गिरा

(२) वहोराने के कारण स्त्रियो की प्राप्ति हुई

३९—सिंहलकुमार विराहोपरान्त चारो पत्नियो सहित घर लौटा—

यह कथा समयसुन्दर के प्रियमेलक तीर्थ—प्रबन्धे सिंहलसुत चौपई से है ।

शोध में प्राप्त इन ग्रन्थो के विवरण से हमे यह स्पष्ट विदित हो जाता है कि अधिकांश कहानी साहित्य जैन है । इनमे प्राचीन जैन-परपरा के समस्त

लक्षण हमे मिल जाते हैं। यो सामायत ये जैन-कथाऐं भले ही दो वर्गों मे बाँटली जायँ। १—पौराणिक कोटि की, २—लोक-कथा कोटि की। ऊपर वाराग कुमार या श्रीपाल चरित्र का उल्लेख हुआ है। ये पौराणिक कोटि की मानी जा सकती है। किन्तु इनमें भी लोक-तत्वो की प्रवलता स्पष्ट लक्षित होती है। अत दूसरी कोटि से इन्हे यदि भिन्न कहा जा सकता है तो धार्मिक अभिप्राय के भेद से ही कहा जा सकता है। किन्तु यह विभेद भी समीचीन नही।

क्योकि सभी जैन-कहानियाँ 'धर्मोपदेशता' का अग मानी जानी चाहिये। जैन धर्मोपदेश के लिए प्रधान माध्यम कहानी को रखा गया।[1] इन कहानियो मे 'मनुष्य' के वर्तमान जीवन की यात्राओ का ही वर्णन नही रहता, मनुष्य की 'आत्मा' की जीवन-कथा का भी वर्णन मिलता है।[2] आत्माओ को शरीर से विलग कैसे-कैसे जीवन-यापन करना पडा, इसका भी विवरण इन कहानियो मे रहता है। 'कर्म' के सिद्धान्त मे जैसी आस्था और उसकी जैसी व्याख्या जैन कहानियो मे मिलती है वैसी उतनी दूसरे स्थान पर नही मिल सकती। कहानी प्राय अपने स्वाभाविक रूप को अक्षुण्ण रखती है, यही कारण है कि जैन कहानियो मे वौद्ध जातको की अपेक्षा लोक-वार्ता का शुद्ध रूप मिलता है। अपने धार्मिक उद्देश्य को सिद्ध करने के लिए जैन-कथाकार साधारण कहानी की स्वाभाविक समाप्ति पर एक 'केवलिन' को अथवा सम्यग्दृष्टा को उपस्थित कर देता है, वह कहानी मे आये दु ख सुख की व्याख्या उनके पिछले जन्म के किसी कर्म के सहारे कर देता है। ऊपर 'प्रियमेलक तीर्थ' की कहानी में तीन सामान्य लोक कथाओ को जोडकर नागकुमार देव के द्वारा पूर्वभव का वृत्तान्त अन्त में बताया गया है। राजाचद की वात का जो जैन-रूप दिया गया है उसमे पूर्वभव का उल्लेख नही दिया गया। इससे यह न समझना चाहिये कि इस वात का उपयोग उस शैली में नहीं किया जाय। पजाव में जडियाला गुरु के भडार में एक लिखित ग्रन्थ मिला है। उसमें अन्त में पूर्व-जन्म का वृत्तान्त जोडा गया है। यह ग्रन्थ सत्रहवी शती का लिखा हुआ होगा, ऐसा श्री भँवरलाल नाहटा जी का अनुमान है। (दे० 'मरु भारती' अक्तूवर १९५८)। इसी विधान के कारण जैन कहानियो का जातको से मौलिक अन्तर हो जाता है। यद्यपि रूपरेखा मे ये कहानियाँ भी

१—दे० हर्टल का निवन्ध आन दी लिटरेचर आव दी श्वेताम्वराज आव गुजरात।

२—ए० एन० उपाध्ये, वृहत्कथाकोष की भूमिका।

बौद्ध कहानियो के समान है। वह मौलिक अन्तर यह हो जाता है कि जैन कहानियाँ वर्तमान को प्रमुखता देती है, भूतकाल को वर्तमान के दु ख-सुख की व्याख्या करने और कारण-निर्देश के लिए ही लाया जाता है । बौद्ध जातको मे वर्तमान गौण है, भूतकाल अर्थात् पूर्वजन्म की कहानी प्रमुख होती है। जैन कहानियो के इसी स्वभाव के कारण उनमे कहानी के अन्दर कहानी मिलती है, जिससे कहानी जटिल हो जाती है। हिन्दी मे इतनी अधिक जैन कहानियाँ लिखी गयी हैं किन्तु वे सभी अभी तक प्रकाश मे नही आ सकी हैं।[1]ये जैन कहानियाँ

१—श्री अगरचंद नाहटा जी ने अत्यन्त परिश्रम पूर्वक जैन लोक-कथाओं की कुछ सूचिया प्रकाशित की हैं—इनमे उन्होने तरंगवती, मलयवती, मगध-सेना, बधुमती, सुलोचना का उल्लेख किया है । ये वे कथाएँ हैं जिनके नाममात्र बच रहे हैं, ग्रथ लुप्त हो चुके हैं। ये प्राचीन कथा-ग्रथ हैं। प्राप्त ग्रथों मे उन्होंने धूर्त्ताख्यान, पंचतत्र, प्रबध चिंतामणि, चतुराशीति कथा सग्रह, भोज प्रबंध, सदयवच्छ चरित्र का उल्लेख किया है।

इनके अतिरिक्त उन्होने २१ अन्य लोकभाषा मे लिखी गयी लोक-कथाओ की सूची दी है। इनमे से गोरा बादल चौपाई, (सं० १६४५ से १७०७ के बीच ३ ग्रथ), चदन मलयागिरि चौपाई (स० १६७० से सं० १७७६ के बीच ८ ग्रथ), ढोलामारू चौपाई (सं० १६१७ का ग्रन्थ), पचाख्यान (स० १६२२ से स० १७२२ के बीच ३ ग्रथ), प्रियमेलक (सिंहलसुत) चौपाई (स० १६७२ तथा १७४८ के दो ग्रथ), माधवानल कामकदला (स० १६१६ तथा १६८९ के पूर्व दो ग्रथ) शुक बहोत्तरी (स० १६३८ और १६४८ के बीच २ ग्रंथ), सदयवत्स सार्वलिगा चौपाई (सं० १६९७ से १७८२ के बीच ३ ग्रथ) वे हैं जिनका उल्लेख ऊपर हो चुका है। किन्तु १—अवड चरित्र (स० १५९९ से १८८० के बीच ४ ग्रथ), २—कर्पूर मजरी (स० १६०५ से स० १६६२ के बीच २ ग्रथ) ३—नंदवत्तीसी चौपई (स० ५४८ से १७८३ के बीच ५ ग्रन्थ), ४—पदरहवीं विद्या (कला) रास (स० १७६८ का एक ग्रन्थ), ५ भोजचरित्र रास (स० १६२५ से १७२९ के बीच ४ ग्रथ), ६—विद्याविलास रास (स० १४८५ से स० १८४० के बीच १० ग्रन्थ), ७—विनोद चौंतीसी कथा (सं० १६४१ का एक ग्रन्थ), ८—विल्हण पचासिका (स० १६२६ के पूर्व से सम्वत् १६३९ मे २ ग्रन्थ), ९—शशिकला चौपई (सम्वत् १६२६ के पूर्व १ ग्रन्थ), १०—शृङ्गारमञ्जरी चौपई (सम्वत् १६१४ एक ग्रन्थ), ११—स्त्री चरित्र रास (सम्वत् १६२३ से १७१० के बीच २ ग्रन्थ), १२—सगाल शाह रास(सम्वत् १६६७ का एक ग्रन्थ), १३—सुक साहेली कथा रास (सम्वत् १८५० के लगभग १ ग्रन्थ)—इस प्रकार तेरह नये कथा विषयों का उल्लेख नाहटाजी ने किया। कान्हड कठियारा चौपाई, चन्द राजा रास, लीला वती सुमति विलास रास, वीरमणि उदयभाण रास को सम्भावित लोककथा माना है। इनमे से चन्द राजा की लोक कथा पर ऊपर प्रकाश डाला जा चुका है। विक्रमादित्य के कथा-चक्र से संबधित जैन विद्वानो के लगभग ६० ग्रन्थों का उल्लेख यही लेखक अन्यत्र कर चुके हैं।

लोक-भाषा मे स० १४८५ से स० १८८० के बीच लगातार लिखी गयी है। नाहटा जी की सूची से शताब्दी-क्रम में जैन लोक-कहानियों का यह रूप ठहरता है—

१५ वी शताब्दी	१
१६ वी ,,	७
१७ वीं ,,	३०
१८ वी ,,	२६
१९ वी ,,	३

किन्तु आगे का वह साहित्य जो प्रकाश मे आया, और जिसने साहित्य-कारो का विशेष ध्यान आकर्षित किया सूफियो का प्रेमगाथा साहित्य था। प्रेमगाथा-काव्य की एक लम्बी परपरा हिंदी मे मिलती है। इस परपरा के सब से अधिक चमकते सितारे मलिक मुहम्मद जायसी हैं। पद्मावत के काव्य के कारण जिनका यश बढा है। इस परपरा मे हमें लोक-कहानियो का उपयोग हुआ मिलता है। इन कहानियो की साधारण रूपरेखा यह रहती है—

'अ' राजकुमार है। उसे स्वप्न, चित्र, चर्चा (गुण अथवा दर्शन) आदि से एक राजकुमारी से प्रेम हो जाता है। इस प्रेम को दूत, तोता या अन्य कोई और पुष्ट करता है। राजकुमार राजकुमारी के विरह मे जलता हुआ उसकी खोज में चलता है। तोता या अन्य दूत उसकी सहायता करता है। अनेको कठिनाइयाँ झेलता हुआ वह प्रेयसी के स्थान पर पहुँचता है, विविध चमत्कारो और पराक्रमो के प्रदर्शन के उपरान्त वह प्रेयसी को प्राप्त कर लेता है। उनके मिलन मे फिर बाधाएँ आती हैं, अन्त मे वे फिर मिलते हैं।

इन गाथाओ मे इतिहास का जो पुट मिला है, वह सब लोक-वार्त्ता का सहायक ही है। और अपनी ऐतिहासिकता खो बैठा है। उदाहरण के लिए 'जायसी' के पद्मावत की कथा को लिया जा सकता है। सूफियो की प्रेमगाथाएँ ही नहीं सूर का कृष्ण-चरित्र और तुलसी का रामचरित्र भी धर्म के माध्यम बने, पर वे लोकवार्त्ता से परिपूर्ण हो गये हैं। कृष्ण और राम के सम्बन्ध मे पाश्चात्य विद्वानो और उनके आदर्श पर भारतीय विद्वानो मे जो चर्चा चलती रही है उससे यह भले ही न कहा जा सके कि राम और कृष्ण मात्र काल्पनिक व्यक्तित्व हैं, ये कभी हुए ही नहीं थे, पर इतना तो निस्सकोच कहा जा सकता है कि इनकी कथाओ मे सामयिक आवश्यकताओ तथा लोकवार्त्ताओ के प्रभाव से अनेको परिवर्तन हुए हैं, और अब उनके कृत्यो मे जो आद्भुत्य है वह सब लोकवार्त्ता की देन है। कहानियो के क्षेत्र में जैनो के साथ हिन्दुओ और

सूफियों की रचनाएँ मिलती हैं। किन्तु राम और कृष्ण की धर्मगाथाओं के आजाने पर अन्य कोई भी कहानियाँ अथवा गाथाएँ ठहर नहीं सकती थी। फलतः हिन्दी में इन्हीं दो चरित्रों पर साहित्य-क्षेत्र में विशेष ध्यान दिया गया। यों कुछ अन्य प्रकार की कथाओं को कहने के भी प्रयत्न किये गये, जैसे जोधराज ने 'हम्मीर रासो' लिखा। यह पूर्वजों के गौरव-वृद्धि के लिए लिखा गया किन्तु इसमें भी ऐतिहासिकता की प्रामाणिकता की अपेक्षा लोकवार्त्ता का समावेश विशेष हो गया है। हम्मीर और अलाउद्दीन के जन्म की कहानी ही अलौकिक है, फिर महिमा के निकाले जाने की कल्पना लोक-वार्ता से मिली है। इसी प्रकार और भी कितनी ही बातें हैं। भारतेन्दु-काल में साहित्यकारों का ध्यान दूसरी ओर रहा, पर लोक-साहित्यकार फिर भी लोकवार्त्ता की रचना में और पुरानी परम्परा के पोषण में प्रवृत्त रहा। ऊपर उन्नीसवीं शताब्दी तक के लोक-कथा साहित्य की अविच्छिन्न धारा को प्रवाहित हम देख चुके हैं। उन्नीसवीं के बाद भी यह परम्परा समाप्त नहीं हुई यह आगे दी गयी सूची से भी विदित होता है। इनके अतिरिक्त लोक-कवि ने स्वाँग लिखे; इनके विषय थे गोपीचंद भरथरी, आल्हा के मार्मिक स्थल, मोरध्वज, लैला-मजनू, हरिश्चन्द्र आदि। यह ध्यान देने की बात है कि साहित्यकार ने जिन कथाओं को लिया, लोक-रचयिता ने उनसे प्रायः हाथ भी नहीं लगाया।

नये युग के आरम्भिक स्तंभ भारतेन्दु जी में लोकवार्त्ता का भी पूरा उपयोग है। हरिश्चन्द्र की कथा को भी लोकवार्त्ता का रूप मानना ठीक होगा। धर्मगाथा होते हुए भी उसमें लोक-गाथा की मात्रा विशेष है। 'अँधेर-नगरी बेवूक़ राजा' तो केवल लोक-वार्त्ता ही है।[1]

यह एक सूक्ष्म दिग्दर्शन है, जिससे हिंदी में ग्रहीत लोकवार्त्ता तथा लिखित लोक-कहानी की सामान्य रूपरेखा स्पष्ट हो जाती है। यहाँ तक के इस विवेचन से हिन्दी में ग्रहीत लोक-कथा साहित्य की उस परम्परा का भी कुछ उद्घाटन हो जाता है जो साहित्य के विविध युगों में से होती हुई सुदूर अतीत के लोकमानस से सम्बद्ध मिलती है।

१, ईलियट महोदय ने 'रेसेज आव नार्थ वेस्टर्न प्राविन्स आव इण्डिया' में बताया है कि 'अन्धेर नगरी बेवूक़ राजा, टका सेर भाजी टका सेर खाजा' यह कहावत हरभूमि (झूसी) के हरबोंग राजा के सम्बन्ध में प्रचलित है। मछन्दर नाथ और गोरखनाथ ने ऐसा प्रपंच खड़ा किया कि हरबोंग राजा स्वयं फाँसी पर चढ़कर मगर या। अन्य अद्भुत बातें भी इस राजा के राज्य और न्याय की दी गयी हैं। दे० उक्त पुस्तक का पृष्ठ २६१।

—२—

हिन्दी के इस कथा-साहित्य पर अब हम काल-क्रमानुसार दृष्टि डाल सकते हैं, इस समस्त साहित्य को कालक्रम से यो प्रस्तुत किया जा सकता है —

१००० ढोला मारूरा दूहा[1]

१२१२ वीसल देव रासो नाल्ह

१३७० चन्दायन · मुल्ला दाऊद

१४११ प्रद्युम्न चरित · अग्रवाल[2]

१४५३ हरिचद पुराण जाखू मणिहार[3]

१४९२ महाभारत भाषा विष्णुदास

....[4]

१५०० सदयवत्स सार्वलिगा . केशव

१५१६ लखमसेन पद्मावती . दामो (७)[5]

१५४७ नद बत्तीसी चौपई लावण्य समय

१५५० } मैनासत } साधन
१५५५ } चदायन }

---

१. ढोला मारूरा दूहा को १००० से आरम्भ हुआ माना जा सकता है, उसको अन्तिम रूप तो संभवत सत्रहवीं शताब्दी मे ही मिला है।

२. रचना काल स० १४११ का स्पष्ट उल्लेख जयपुर के श्रीकस्तूरचद कासलीवाला की प्रति मे है । किन्तु एक उज्जैन की प्रति मे यह लिखा भी मिलता है

संवत पंच सइ दुई गया। ग्यारहोतराभि अरु तह भया ॥
भादववदि पंचमि तिथि सारु, स्वाति नक्षत्र सनिच्चर वारु।

(दे० ब्रजभारती वर्ष १४ अंक १, पृष्ठ २१, नाहटाजी का भाषण)

३. चवदेइसं त्रिपनी विचार।
चैत्रमास दिन आदित्त वार।
मनमांहीं समर्‌यौ आदीत।
दिन दसराहैं किया कवीत।

(दे० ब्रजभारती, वर्ष १४ अक १, पृष्ठ २१ वही)

४. प्रेमवन जीव निरजन रज्जन कवि। 'प्रेमगाथा काव्य की परंपरा' नामक लेख में साहित्य सदेश नवम्बर १९५७ मे श्रीसतीशचंद जोशी ने इसका उल्लेख किया है, और रचना काल १५२०–१५८१ विक्रमी के बीच माना है। आगे इन्होंने यह भी लिखा है कि 'हम ऊपर कवि रज्जन का उल्लेख कर चुके हैं, जिसका समय १४९० से १५८१ तक माना जाता है, शेख कुतवन भी हिंदी काव्य रचना मे अपना नाम 'रज्जन' रखते थे। तो क्या सम्भव है कि ये दोनों ही कवि एक ही व्यक्ति थे ?

५. सम्वत पनरइ सोलोत्तरा मझारि, ज्येष्ठ वदी नवमी बुधवार।

१५५७ वसुदेव कुमार चउपई [६]

१५५८ सत्यवती की कथा : ईश्वरदास

१५५९ अगद पैंज ईश्वरदास

१५६० (१) मृगावती : कुतवन

(२) नदवत्तीसी . सिंहकुल

१५७८ (१) पद्मावत जायसी

(२) चित्ररेखा जायसी

१५८४ माधवानल कामकदला चउपई ' गणपति

१५८७ (१) डगवै कथा ' भीम [७]

(२) हरिचरित्र भागवत दशमस्कद लालचदास तथा असनद [८]

१५९९ अवड चरित्र विनय समुद्र

१६०० (से पूर्व) माधवानल कामकदला } १५९३-१६८७ प्रेमवाईसी

१६०२ मधुमालती . मलिक मझन

१६०५ कपूरमजरी पतिसार

१६१३ प्रेमविलास प्रेमलता कथा . जटमल

१६१६ माधवानल कामकदला चउपई कुशल लाभ [९]

१६१६ हनूमान चरित्र 'सुन्दरदास

१६१७ ढोलामारू चौपाई . कुशललाभ

---

६. वरलास नयरि घरि हरिस
सय पनर सतावन बरिस
कुल चरण सुपंडित सीस
वहइ हरख कुल निस दीस ।
(दे० भारतीय साहित्य, अक्तूबर १९५६, पृष्ठ २०४)

७. सम्वत पंद्रा सै सत्तासी भयेऊ
दुरमुख नाम संवतु चलि गयेऊ
सावन सुकुल सत्तिमी आई ।
भीम कथा डगव वनाई । (सा० सं०, मार्च १९५९)

. साहित्य-संदेश, दिसंवर १९५८, पृ० २६८

९. "सवतू सोल सोलोत्तरइ, जैसलमेर मझारि
फागुण सुदि तेरस दिवसि, विरची आदितवार ।"
पाठ भेद मे 'सोल सतोत्तरई' है ।

१६२१	श्रेणिक रास	?[1]
१६२२	पचाख्यान	रत्नचन्द्र सूरि
१६२५ (लगभग)	रूपमजरी	नन्ददास
१६२५ (के लगभग)	भोजचरित्र	मालदेव
१६२६ (से पूर्व)	अवडचरित्र	भाव
१६३०	उषा की कथा	परशुराम
१६३०	श्रीपाल रास	ब्रह्मराय[2]
१६३३	(१) भविसदत्त कहा	ब्रह्मराय
	(२) सुरति पचमी कथा	ब्रह्मराय
१६३६	सिंहासन बत्तीसी	हीर (कलश)[3]
१६३७	वेलिक्रिस्न रुक्मिणीरी	पृथ्वीराज
१६३६	अवडचरित्र	मगल
१६४०	माधवानल कामकदला	आलम
१६४५	(१) नामदेव की कथा	अनन्तदास
	(२) राजा पीपा की कथा	"
	(३) गोरावादल चौपाई	हेमरतन
	(४) रस-विलास	कवि गुपाल[4]
१६४७	छिताई वार्त्ता	नारायणदास
१६४८	पचाख्यान	वच्छराज

---

१. इसमे पुष्पिका है 'वर पट्ठनयर संवत सोल एक वीसइ भाद्रपद सुदि सुभ वार प्रारंभ दीसई १७०५ लिपि चैत्र सुदि ३ भौमे धर्मशील ने लिखा रामपुरा मध्ये।" यह धर्मशील सभवत लिपिकार ही है।

२. "हो मूल संग मुनि प्रगटो जाणि, कीरति अनंत सील की षानि।
ता सुतणो सिष्य जाणिज्यो हो ब्रह्मराय।
मल दिढ करि चित भाव भेद जाणै। नहीं होतहि दीठो
श्रीपालचरित रास ॥६३॥
हो सोलह सै तीसै सुभ वरस हो मास असाढ भण्यौ करि हरष:
तिथि तेरसि सित्त सप्तमी हो अनुराधा नष्यत्र सुभसार,
वरण योग दीसै भला हो शोभन योग सनीसर वार रास।
(दे० भारतीय साहित्य, अक्तूबर १६५६, पृ० २०३)

३. 'संवत सोलह सइ छत्रीस', कही हीर सुणी यथा
(दे० भारतीय साहित्य, अक्तूबर ५६, पृ० २०४)

४. देखिये ब्रजभारती स० २००६, आषाढ़-भाद्र—नाहटा जी का लेख। यह 'रस-विलास' वोलि श्री कृष्ण रुक्मिणी का ब्रजभाषानुवाद है।

१६५१	(१) श्रीपाल चरित्र	परमाल[५]
	(२) भोजचरित्र रास	
१६५४	भोजचरित्र	हेमाणद
१६५५	हरिवश पुराण	शालिवाहन
१६५७	रूपावती	?[६]
१६५९	साब प्रद्युम्न चतुष्पदिका	समयसुन्दर
१६६२	कर्पूरमजरी	कनकसुन्दर
१६६८(?)	मृगावती	समयसुन्दर[७]
१६७०	चित्रावली	उसमान
१६७०	(के लगभग) चदन मलयागिरि चौपाई	भद्रसेन
१६७२	धनाशाल भद्र चौपई	भवियरण या भविक जे[८]
१६७२	प्रियमेलक चौपाई	समयसुन्दर
१६७५	(१) रसरतन	पुहकर
	(२) कनकावती	जानकवि
१६७६	ज्ञानदीपक	शेख नवी[९]
१६७८	कामलता	जान कवि

---

५. किसी किसी ने इसका रचनाकाल १६५७ माना है।

६. सन हजार निवोतरै रवील आखिर मास।
सवत् सोलह सतपनै हम कीनी बुधि परगास
[ना० प्र० प० वर्ष ६०, अक ३–४]

७. हमने अजमेर मे मुनि कान्तिसागर जी के द्वारा जो प्रति देखी थी उसमे एक पुष्पिका यो थी 'श्री संवत् १६०४ वर्षे शाके १६६८ प्रव० मिती पोष बदी १३ भृगुवासरे, प० तिलकविजय गणिनि लिपी कृत श्री पीपलाजनयरे "सोलसइ अठसठरास्यै वरषे. हुई चउपई घणे हरषे बे
(दे० भारतीय साहित्य, अक्तूबर १९५६, पृष्ठ २०४–५)

८. सौलै सय बहत्तरि वरस्यै आसौज वदि छठि दिवस्यै जी।
(दे० भारतीय साहित्य, अक्तूबर १९५६, पृ० २०४)

इसी सवत की समयसुन्दर की भी 'धनाशाल भद्र चौपई' मिलती है। हो सकता है यह उन्हीं की प्रति हो। भवियरण या भाविक जे का उल्लेख कुछ सदिग्ध प्रतीत होता है।

९. एक हजार सन रहे छवीसा, राज सुलही गनहु वरीसा,
समत सोरह सै छिहँतरा, उचित गरत कीन्ह अनुसारा।
अलदेमऊ दोसपुर थाना, जाउनपुर सरकार सुजाना।
तँहवा सेष नवी कवि कही, सब्द अमर गुन पिंगल मही।
[१७ वाँ दोहा]

१६८२ नल दमयन्ती : नरपति व्यास[२]
१६८४ गोविन्द चरित्र इच्छाराम
१६८६ गोरा बादल चौपाई : जटमल
१६८८ नाशकेतु गरुड पुराण . भगौतीदास
१६८९ (से पूर्व) माधवानल कामकदला : अज्ञात
१६९१ (१) मधुकर मालती : जानकवि
(२) रतनावति : जानकवि
१६९३ छीता . जान कवि
१७०० (१) भक्त महात्म्य : गगासुत
(२) रुक्मिणी मंगल : मिहिरचद,
१७०४ चन्दन मलयागिरि चौपाई : क्षेमहर्ष तया
जिन हर्ष
१७०७ गोरावादल चौपाई
१७११ चन्दन मलयागिरि चौपाई . सुमतिहस
१७१३ सीता चरित्र : रामचन्द (अथवा राहचन्द)
१७१४ (१) नन्दबत्तीसी चौपाई : जिनहर्ष (नन्द वहुतर विरोचन
महतानी वार्त्ता)
(२) नल दमन : सूरदास
१७१७ (१) पद्मिनी चरित्र ढाल मापा बध : श्री लब्धोदय[३]
(२) माधवानल नाटक : केस (या केसि)
१७१८ (१) चन्द चउपई .[४]
(२) नल चरित्र : मुकुंदसिंह
१७२२ (१) प्रद्युम्न चरित देवेन्द्र कीर्ति

---

२. किसी-किसी के अनुसार इसका काल १६८३ है।
३. पुष्पिका है :
'भागचन्द कुल माँण विनयवंत गुणवत सोया जी सेह रौरे। वरदाता गुण जाण। वसु आग्रह करि संवत सतर सतोत्तर इ रै, चैत्र पुनिम शनिवार नवरस सहित सरस वंध, नवो रच्यौ रे निज बुद्धि अनुसार।
४. यह चंद चउपई राजा चन्द विषयक प्रतीत होती है। किन्तु निश्चायपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता ? क्योंकि चंद विषयक अलग अलग प्रकार की कथाएं मिलती हैं। लेखक का नाम नही मिला। संवत का उल्लेख है : 'सवत सतरै वरस अठारें ए ग्रन्थ रच्यौ अणुवासारै वे।'
(दे० भारतीय साहित्य, अक्तूबर १९५६, पृ० २०५)

(२) पचाख्यान

१७२३	मृगावती कथा	मेघराज प्रधान[५]	
१७२४	सम्यक्त कौमुदी भाषा	जोधराज गोदी	
१७२४	विक्रम चौवोली चौपाई	(?)[६]	
१७२६	पुहुपावती	दुखहरन	
१७२९	भोजचरित्र रास	कुशलधीर	
१७३१	नन्दवत्तीसी	नित्य सौभाग्य	
१७ २	चन्दनमलयागिरि चौपाई	अजितचन्द्र	
१७३७	माधवानल कथा	दामोदर	(५)
१७३८	त्रिषष्टि लक्षण महापुराण—?[१]		
१७३९	वैताल पचीसी	गणेश मिश्र	(३६)
१७४०	(१) चन्द्रकवररी वात	हस	(४७)
	(२) रविव्रत की कथा	सुरेन्द्र कीरति	(४८)
१७४२	रोहिनी की कथा	हेमराज	(४९)
१७४६	भक्तामर चरित्र	विनोदीलाल	(५०)
१७४७	चन्दनमलयागिरि चौपाई	यशोवर्द्धन	
१७४८	प्रियमेलक चौपाई	मानसराम	
१७५० (से पूर्व)	कनकमजरी	काशीराम	
१७५४ (पूर्व)	पचाख्यान भाषा	श्रावक निर्मलदास[२]	
१७६७	लीलावती रास	उदयरत्न	(०१)

---

५. सत्रहसै तेइस को जेठो महीना जानि।
किस्न पछि की त्रयोदसी भाषा करी बखानु ॥१॥ (दे० हिन्दी अनुशीलन वर्ष १०, अङ्क ३, पृ० ५६, पं० उदयशङ्कर शास्त्री का निबध। किसी-किसी ने इसे १९०६ की रचना माना है। किन्तु तिथि के उक्त स्पष्ट उल्लेख से भ्रम को स्थान नहीं रहता।

६. पुष्पिका है— 'सतर चौबीसे किसन दसमी आदि आषाढ़ै सही। लि० १७७४ आसोज सित ८ लोभें शांतिसागर लिषते सुमेल नगरी।

१—इसकी पुष्पिका मे उल्लेख है कि 'सवत १७३८ वर्षे द्वितीय आश्विन सुक्लाष्टम्यां श्रीमदंवावती महानगर वासत्य सुश्रावक पुण्य प्रभावक श्री जिनाज्ञा प्रतिपालक साह श्री मथुरादासानुग्रहेणेंषा भाषा समर्थिता वाच्यमानाश्चिरनदतु।

२. दे० साहित्य-सदेश—दिसवर १९५६, पृ० २५३. श्री अगरचन्द नाहटा का निबंध।

१७६८ भवानी चरित्र . मुनीराम श्रीवास्तव
१७७० एकादशी महात्म्य . सुदर्शन
१७७१ चन्दनमलयागिरि चौपाई चतुर
१७७६ चन्दनमलयागिरि (चौपाई) . केशर
१७८० हरिवंश . खुस्यालचंद
१७८२ वैताल पचीसी : नौरतनलाल
१७८३ (१) भद्रबाहु चरित्र सिंघही किसनसिंह
(२) रामपुराण : खुशालकवि[1]
(३) धन्यकुमार चरित
(४) नन्दबत्तीसी चौपाई
१७८५ आकाशपचमी की कथा खुशाल कवि
१७८७ व्रतकथा कोष · चन्दखुस्याल
१७९२ पुण्याश्रवकथा : रामचन्द्र
१७९३ (१) हसजवाहिर : कासिमशाह
(२) नलचंद्रिका . हरदास[2]
१७९८ (१) कथा काम रूप : सभाचद सौंधी[3]
(२) नल-चरित्र · मुकुन्दसिंह
(३) पदरहवीं विद्या (कला) रास . वीरचन्द्र
१८०० नेमिनाथ पुराण · भट्टारक जिनेन्द्र भूषण
१८०१ (१) इन्द्रावती . नूर मुहम्मद
(२) कामरूप चरित्र · आचार्य हरिसेवक[4]
१८०३ नैषध गुमान मिश्र
१८०९ [१] वैतालपच्चीसी : शभूनाथ त्रिपाठी
[२] विरहवारीश : वोधा

१—किसी-किसी ने इसका रचनाकाल १७८५ बताया है।

२—संवत सत्रासै वर्ष, बीते नव्वे तीन।
कार्तिक सुदि तिथि पूर्णिमा रवि दिन पूरण कीन॥
× × ×
जम्बू द्वीप शुभ देश मे, साँव देश शुभ वासु
दमयन्ती नलराव की कथा करी हरदास।
(साहित्य-संदेश, नवम्बर १९५८)

३—हि० सम्मेलन पत्रिका, भाग ४४, संख्या—१, श्री महेन्द्र का निबन्ध।

४—पुष्पिका है . "इति श्री कामरूप चरित्रे कथा संपूरण समापता सावन वदी संवत् १८०१ विक्रमी जानिए", (हिन्दी अनुशीलन, वर्ष ८, अंक १-२)

१८१३ [१] चारुदत्त चरित्र : भारमल्ल
[२] सप्तव्यसन चरित्र : भारमल्ल
शीलकथा

१८१४ [१] वारागकुमार चरित्र कज हग
[२] नलोपाख्यान मुरलीधर
[३] समुच्चय कथा सघी परसराम

१८१५ सुदामा चरित्र जेठमल[४]

१८१८ षटकर्मोपदेश रत्नमाला लालचद्र पाडे

१८२२ महापद्मपुराण दौलतराम

१८२४ आदिपुराण बालाबोधमाया बचनिका . दौलतराम

१८२५ उषा चरित्र परशुराम

१८२६ हरिवशपुराण भाषा वचनिका दौलतराम

१८३१ उषा चरित्र[५]

१८३२ आदिपुराण . भट्टारक जिनेन्द्रभूषण

१८३५ बहुला व्याघ्र संवाद : मानसिंह

१८३७ मधुमालती चतुर्भुज

१८३९ उषा चरित्र जनकुज

१८४७ यूसुफ जुलेखा शेखनिसार (जामी की पुस्तक जुलेखा का फारसी से अनुवाद ।)

१८५३ कामरूप चन्द्रकला की कहानी प्रेमचन्द

१८५३ (से पूर्व) नल दमयती चरित्र सेवाराम

१८६२ गणेश चौथ की कथा मोतीलाल

१८७० तेरह दीप पूजन कथा लालजीत

१८८० (१) प्रह्लाद चरित्र देवीसिंह
(२) अवड चरित्र . रूपचन्द्र

१८८३ उषा चरित मुरलीदास[१]

४—दे० साहित्य सन्देश, फर्वरी, १९५७, पृ० ३३०, श्री अगरचन्द नाहटा का निबन्ध ।

५—१८३१ कार्तिक सुदी दूज । एक अन्य स्त्रोत से विदित होता है कि उषा चरित के लेखक 'जनकुंज' हैं, किन्तु 'जनकुंज' ने तो १८३९ मे उषा चरित लिखा था । १८३१ के उषा चरित का लेखक कोई और ही है ।

१. किसी विद्वान ने इसका रचना काल १८८८ माना है ।

१८८५	हम्मीर रासो	जोधराज
१८८६	(१) रुक्मागद की कथा (एकादशी महात्म्य)	सूरदास
	(२) उषाहरण	जीवनलाल (नागर)
१८८७	यशोधर चरित	औसेरीलाल
१८९०	(१) एकादशी महात्म्य	हीरामनि
	(२) उत्तमाचरित	अक्षर अनन्य
	(३) विक्रमविलास	भोलानाथ
१८९३	गणेशपुराण भाषा	मीतीलाल
१८९४	उषा की कथा	रामदास[2]
१९००	जानकी विजय	सूर्यकुमार
१९०१	एकदशी व्रत महात्म्य	सूर्यदास
१९०५	(से पूर्व) रमणशाह छबीली भटियारी	
१९०५	(१) अतरिया की कथा	मेडइलाल
	(२) कामरूप कथा	हरिसेवक[3]
१९०६	रुक्मिणी मगल	रामलाल
१९०७	(१) रुक्मिणी परिणय	रघुराज
	(२) एकादशी व्रत की कथा	माधवराम
	(३) रुक्मिणी पुराण	महाराज रघुराजसिंह
१९१०	गणेश कथा	मीतीलाल
१९११	(से पूर्व) नल दमयन्ती की कथा	
१९१२	प्रेमपयोनिधि	मृगेन्द्र
१९६८	देवी चरित सरोज	माधवसिंह
१९२७	शिवपुराण	महानन्द वाजपेयी
१९२८	,, (उत्तरार्द्ध)	
१९३१	विक्रमबत्तीसी	कृष्णदास
१९३१	शुकबहत्तरी	
१९३८	मनोहर कहानियों का सग्रह	

---

२. किसी ने इसे १८८४ मे रचित माना है।

३. यह वस्तुत वही कवि और कृति है जिसे ऊपर सं० १८०१ मे लिखा जा चुका है। १९०५ लिपिकाल हो सकता है, उसी के आधार पर इसे एक भिन्न लेखक मान लिया गया प्रतीत होता है।

१६३८ विक्रमादित्त चौवोली[1] ?

१६४० गणेश कथा · मोतीलाल

१६५५ विष्णुकुमार की कथा विनोदी लाल

१६६२ नूरजहाँ . ख्वाजाग्रहमद

१६७२ भाषा प्रेमरस : शेखरहीम

१६७४ प्रेमदर्पण कवि नसीर

इस कथा-साहित्य को शताब्दी क्रम से देखा जाय तो यह गणना वैठती है—

	कुल कथा	धर्मकथा जैन—हिन्दू	प्रेम कथा	वीर कथा	अन्य कथा
१० वी शती	१	×	१	×	×
११ वी शती	×	×	×	×	×
१२ वी शती	×	×	×	×	×
१३ वी शती	१	×	१	×	×
१४ वी शती	१	×	१	×	×
१५ वी शती	४	१—२	१	×	×
१६ वी शती	१६	४—३	६	×	×
१७ वी शती	५२	१३—६	२४	२	७
१८ वी शती	४७	१६—३	११	१	१३
१६ वी शती	३६	१३—७	१४	२	३
२० वी शती	२३	१—८	१०	×	४
योग	१८४	५१—२६	७१	५	२७

कथा-साहित्य की इस दीर्घ परपरा की जो सूची ऊपर दी गयी है, उस पर ग्रनायास ही दृष्टि डालने से विदित होता है कि सवसे ग्रधिक कथा-लेखन का प्रेम १७ वी, १८ वी तथा १६ वी शताब्दियो मे मिलता है।[2] इनमे से

१—इसके लेखक का नाम नहीं मिल सका। संवत १६३८ ॥ वर्ष जेठ सुदी १५ तिथि दी हुई है।

२—यह गणना ऊपर दी गयी सूची के ग्राधार पर ही की गयी है। यह सूची भी पूर्ण नहीं कही जा सकती। क्योंकि ग्राज भी शोध मे नये-नये ग्रन्थ उपलब्ध हो रहे हैं। कुछ ऐसे ग्रन्थ भी हैं जिनका नाम तो सामने ग्राया है, पर विशेष परिचय नहीं मिल सका। वे भी इसमे सम्मिलित नहीं हैं। किन्तु कथा-कृतित्व का सामान्य ग्रनुमान तो लगता भी है। कुछ नाम ग्रसमजस के कारण भी छूट गये होगे।

९—उपा की कथा	१६३०, १८२५, १८३९, १८८३, १८८४, १८८६—	६
१०—सिंहासन वत्तीसी	१६३६, १६३१,—	२
११—पचाख्यान—	१६२२, १६४८, १७२२—	३
१२—श्रीपाल चरित्र	१६५१, १६७७—	२
१३—चन्दनमलयागिरि	१६७०, १७०४, १७११, १७३२, १७४७, १७७१, १७७६—	७
१४—कामलता	१६७८, ओरछा, पजाव	३
१५—नलदयमन्ती	१५८२, १७१४, १७१८, १८५३, १९११—	५
१६—वैंताल पच्चीसी	१७३९, १७८२, १८०९, १८९०—	४

सव से अधिक लोकप्रिय 'माधवानल कामकदला' है। यह विक्रम-कथा-चक्र की कहानी है। हिन्दी मे इमका आरम्भ सोलहवी शताव्दी से ही मिलता है।

चन्दन मलयागिरि की कहानी का लोकप्रियता की दृष्टि से दूसरा स्थान है। इसका हिन्दी मे आरम्भ सत्रहवी शताव्दी मे हुआ। माधवानल से लगभग ८६ वर्प उपरान्त।

उपा-चरित्र लोकप्रियता की दृष्टि से तीमरे स्थान पर प्रतीत होती है। इसका भी आरभ सत्रहवी शताव्दी से हिन्दी मे हुआ। चन्दन मलयागिरि से लगभग ४० वर्प पूर्व।

जैन-धर्म की नन्दवत्तीमी और नलदमयन्ती की ममान लोक-प्रियता विदित होती है।[1]

१—'लोक कथा संवधी जैन-साहित्य' के जिस निवन्ध का ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, उसके अनुसार जैनधर्मानुयायियों मे लोक-प्रियता का अनुमान लगाया जाय तो यह होगा—

प्रथम स्थान	विद्याविलास रास	१० ग्रन्थ
द्वितीय	चंदनमलयागिरि चौपाई	८ ग्रन्थ
तृतीय	नंदवत्तीसी चौपाई	५ ग्रन्थ
चतुर्थ	१–अवंड चरित्र २–भोज चरित्र रास ३–चद राजा रास	४ ग्रन्थ (प्रत्येक)
पंचम	१–गोरा वादल चौपाई २–पंचाख्यान ३–सदयवत्ससावलिगा	३ ग्रन्थ (प्रत्येक) आदि।

सदयवत्स सावलिया पर श्री नाहटा जी ने राजस्थान–भारती अप्रेल १९५० मे जो लेख लिखा है, उसमे इस ग्रन्थ की अव तक मिली प्रथम प्रति स० १४६६ की भीम कवि की गुजराती सदयवत्स चउपई या प्रवन्ध मानी

कुछ कथा-ग्रन्थ पूरक कृतित्व के द्वारा भी अपनी लोकप्रियता प्रकट करते रहे है। डा० माताप्रसाद गुप्त के अनुसार माधवानल कामकदला, ढोला मारु-कथा, नन्दबत्तीसी, लक्ष्मणसेन पद्मावती कथा के पूरक कृतित्व कुशललाम, जगीजाण, तथा किसी बगाली कवि के द्वारा प्रस्तुत हुए और बहुत लोक-प्रिय हुए। 'लोरकहा' या 'चन्दायन' मुल्लादाऊद के नाम से पहले पहल मिलती है दौलत काजी तथा अलाओल ने बँगला मे पूरक कृतित्व सहित इसे प्रस्तुत किया। लोर का मैनासत सम्बन्धी वृत्त 'साधन' के मैनासत मे मिलता है। यही साधन नामांकित कथा चतुर्भुज की मधुमालती मे साक्षी कथा के रूप मे आयी है, दौलत काजी मे साधन के अश है। दाऊद की रचना मे साधन के एक पूरक कृतित्व के रूप मे ही मैनासत का प्रसग आया है। फिर चतुर्भुजदास की मधुमालती मे माधव का पूरक कृतित्व है। नारायनदास की छिताईवार्ता मे रत्नरग ने पूरक कृतित्व किया। रत्नरग के बाद देवचन्द ने पूरक कृतित्व किया। 'अनिरुद्ध उपाहरण कथा' लालदास लालच ने लिखी, रामदास ने उस पर पूरक कृतित्व किया, और यह रामदास के नाम से ही प्रसिद्ध हुई। इसी पर पहारसिंह प्रधान का पूरक कृतित्व मिलता है।[2] किन्तु इनके अतिरिक्त भी और पूरक कृतित्व मिलते है। चतुर्भुजदास की मधुमालती पर माधव के अतिरिक्त कवि गोयम ने भी पूरक कृतित्व किया। मृगावती पर भी इसी प्रकार की रचनाएँ हुई है। मेघराज प्रधान की मृगावती कुछ इसी प्रकार के पूरक कृतित्व मे आ सकती है। 'राजा चन्द की वात' पर जो जैन ग्रन्थ श्री भँवरलाल नाहटा को पजाब मे मिला है उसे भी पूरक कृतित्व मानना होगा। इसी प्रकार काम-रूप कामलता कथा का हरिसेवक का ओरछा का ग्रन्थ तथा सभाचन्द सोंधी का पजाबी ग्रन्थ एक पर दूसरे का पूरक कृतित्व माना जा सकता है। जान की कामलता मे भी उसी पूरककृतित्व का रूप दिखायी पडता है। यह भी कहा जा सकता है कि ये सभी वृत्त लोक-कथा के रूप मे प्रचलित थे, और वही से मूल लेखक और उन रचयिताओं ने लिये जिन्हे पूरक कृतित्वकार माना गया

है। इसकी लोकप्रियता के संबंध मे उन्होंने यह टिप्पणी दी है—"सदयवत्स कथा का सर्वाधिक प्रचार राजस्थान मे रहा प्रतीत होता है। केवल हमारे सग्रह में ही इस कथा की (राजस्थानी भाषा की) १० प्रतियें उपलब्ध हैं। बीकानेर की अनूप संस्कृत लाइब्रेरी में १२, सरस्वती भडार, उदयपुर मे ५, कुवर मोतीचन्दजी के सग्रह मे ३, बृहद ज्ञान भडार मे ३ प्राप्त हैं"

२—देखिये 'हिन्दुस्तानी', जनवरी-मार्च १९५९, —डा० माताप्रसाद गुप्त का लेख।

है ।[1] जो भी हो, ये लोक-कथाए भी साहित्यकारो को अत्यन्त प्रिय रही, और कई प्रकार से इनका प्रसार-प्रचार वढा । सार्वलिगा सदयवत्स विपयक कथा साहित्य भी प्रचुर है । इस विवेचन से कुछ उन कथाओ के नाम तो उभर ही आते हैं जो विशेष लोक-प्रिय रही हैं ।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि कितनी ही ऐसी कहानियाँ मिली है जिनका रचना-काल ज्ञात नही, और इसी कारण वे ऊपर की सूची मे सम्मिलित नही की गयी । कुछ ऐसी रचनाऐ ये है—

सुर सुन्दरी कथा
उदय सुन्दरी कथा
अजना सुन्दरी कथा
शनिश्चर कथा
माहिरा नरसी
कृष्ण-रुक्मिणी का विवाह लेखक 'पद्म भगत'
वैदक लीला—ध्रुवदास
रिसाल कुँवर की वात—'नरवदो' रचित
पना की वार्ता वीरमदेपना—ब्राह्मण वल्देव ने अजयनगर मध्ये लिखी
पचतत्र भाषा
कालिकाचार्य कथा
करकडे महारथ चरित्र
मयण रेहा चौपाई
गोरा वादल सती चरित
विक्रमादीत चरित पच दड सावन

इस सूची मे रिसाल कुँवर की वात, पचतत्र, गोरावादल, विक्रमादीत चरित को छोड शेष धर्मकथाएँ हैं । मयणरेहा चौपाई के सम्वन्ध मे निश्चय-पूर्वक कुछ कहा नही जा सकता ।

कुछ ऐसी कृतियाँ भी मिली हैं जिनमे कथा का रूप तो है, पर उसे लोक-

---

१—पूरक कृतित्व के सम्वन्ध मे सामान्य प्रथा यह रही है कि मूल कृतिकार की रचना और उसकी अपनी पुष्पिका ज्यों की त्यों रहने दी जाती है, पूरक कृतिकार उसमे अपनी पुष्पिका और जोड़ता चला जाता है । अत पारिभाषिक इस दृष्टि से 'राजा चन्द की वात' और कामलता के विविध कृतित्व एक दूसरे के पूरक नहीं माने जा सकते, न मेघराज प्रधान का ही पूरक कृतित्व कहा जायगा ।

कथा नही माना जा सकता। जैसे १७११-१२ की एक रचना हैं 'पँचान राजा की कथा'—इसमे लेखक ने बताया है कि "जातै हो चाहत कह्यो नायक भेद अनूप"—इसकी शैली वाद-विवाद की है—

यथा—"बाद भये द्वै सखिन मे, सुनहु प्रगट चितलाय।
उत्तर प्रति उत्तर दये निश्चै भेद बताय,
एक विवेकिनि जानियौ, इक्क अविवेकिनि नाम। आदि।

इसका रचना काल यो दिया गया है "सत्तरासै अरु ग्रासिये (ग्रासिये) सुदि दसमी ससिवारु।

इसी प्रकार 'राजा पचक कथा'— यह कथा अन्योपदेश रूपक प्रणाली में लिखी गयी है ।

"धर्म पाल अरु सिद्ध सुभट
धन सचय पुनि भूप
भयो नृपति नारी कवच
अधम पाप को रूप
पाँचौ राजा भये
समये निज निज पाय
जस अपजस नृप प्रकृति सौं
रह्यौ धरनि मे छाय

इसी प्रकार का एक ग्रन्थ प्रवीणसागर भी हैं। यह ग्रन्थ स० १८३८ मे रचा गया है। यह ग्रन्थ यो तो कथा-रूप के साथ है किन्तु कथा तो आश्रय मात्र है। ग्रन्थ तो विविध विषयो का ज्ञान कराने के लिए प्रस्तुत किया गया है। अत कथा भी कल्पना से गूँथी गयी है, और लोक-कथा के तत्वो से रहित है। केवल रचयिताओ के सम्वन्ध मे पूर्वभव मे शिव के गण होने का जो उल्लेख है, उसी मे कुछ लोक-तत्व से अनुकूलता है। इसी प्रकार पन्द्रहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे लिखा गया काव्य 'त्रिभुवन दीपक प्रबंध' भी इसमे सम्मिलित नही किया जा सकता। यह कथा युक्त तो है, पर रूपक-कथा है। इसके रचयिता कवि श्री जयशेखरसूरि जी ने प्रकृति, मन और आध्यात्मिक तत्वो को अपनी कहानी का पात्र बनाया है। ऐसे आध्यात्मिक रूपक-प्रवन्ध के लिए समस्त कथा कवि को कल्पना से ही गठित करनी पडती है। (दे० हिन्दुस्तानी, जनवरी-मार्च, १९५९, श्री हरिशकर शर्मा, 'हरीश' का निवन्ध पृ० ६८)। नूर मुहम्मद की 'अनुरागे बाँसुरी' भी इसी प्रकार का एक रूपक

काव्य है, किन्तु नूर मुहम्मद ने इस रूपक काव्य मे भी कथा-तत्व की रोचकता और कुछ विलक्षणता भी संयोजित रखी है।

ऊपर एक स्थान पर कहा जा चुका है कि इस कथा-परम्परा के कितने ही काव्यों का सम्बन्ध ऐतिहासिक व्यक्तित्वों, घटनाओ और स्थलों से है। जैसे जायसी का पद्मावत चित्तौड़ के राणाओं और अलाउद्दीन से सम्बन्धित है। छिताई वार्ता देवगिरि के राजा रामदेव यादव तथा अलाउद्दीन से सम्बन्धित है। लखमसेन पद्मावती के पात्रों मे भी ऐतिहासिक व्यक्तित्वो की झलक पायी गयी है। माधवानल कामकदला से सम्बन्धित नगरों और स्थानो तक का ऐतिहासिक दृष्टि मे अनुसंधान किया जा चुका है। इसी प्रकार अन्य प्रेम-कथाओ तथा सामान्य कथाओं मे ऐतिहासिक तत्व ढूँढे जा सकते हैं, किन्तु कथाकार के लिए वस्तुतः ये नव नाम ही रहे हैं, और उसकी लोक-कथा मे वे अपनी ऐतिहासिकता को अत्यन्त गौण कर बैठे हैं। ये तो कथाएँ ही हैं, किन्तु कुछ ऐतिहासिक दृष्टि वाले काव्य भी लोक-तत्व और लोक-कथा तत्वो से आक्रान्त हो गये हैं।

हम्मीर रासो इसका एक ज्वलंत उदाहरण है। जोधराज का हम्मीर रासो रासो परम्परा के लोक-तत्व से ओत-प्रोत है। उदाहरणार्थ—

मीरमहिमा के निष्कासन के कारण का वृत्त—रूप-विचित्रा के अद्भुत कथानक की सृष्टि। यह कथानक रूढि पृथ्वीराज रासौ मे 'हुसेन कथा' मे भी मिलती है। चतुर्भुज की मधुमालती में भी है इसका स्रोत लोक-मानस है। इसका इतिहाससे कुछ भी सम्बन्ध नहीं।

शिवजी पर चढ़ाया हुआ हम्मीर का शीश अलाउद्दीन को आदेश देता है। अलाउद्दीन तदनुसार रामेश्वरम् मे जाकर प्राण त्यागता है।

चन्द्रकला नृत्य का विधान जिसमे महिमा के भाई गभरू के वाण से चन्द्रकला नर्तकी घायल होकर गिर पड़ी, उत्तर मे महिमा ने वाण छोडा जिससे अलाउद्दीन के मुकुट गिर गये।

हम्मीर और अलाउद्दीन देवों और पीरो को याद करते हैं और ये आकर सहायता करते हैं।

इसी प्रकार 'गोराबादल' की कथा मे भी ऐसे लोक-कथा के अंश सम्मिलित किये गये हैं। उदाहरणार्थ जटमल कृत 'गोरा-बादल की कथा' मे योगी की कृपा से मृग-चर्म पर बैठकर सिंहल द्वीप पहुँचना।

अलौकिक तत्वो से कथानकों को युक्त करने की प्रवृत्ति इस काल में इतनी प्रबल थी कि बड़े महात्माओं के चरित्रों में भी इनका समावेश कर दिया गया था। वि० सं० १३१४ में प्रभाचंद्र सूरि ने 'प्रभावक चरित्र' में सिद्धसेन दिवा-

कर के सम्बन्ध मे लिखा है कि वे एक बार चित्रकूट पर्वत पर पहुँचे। वहाँ उन्होने एक अद्भुत स्तम्भ देखा। उन्होने स्तम्भ की परीक्षा करके कुछ ऐसी अद्भुत औषध बनायी कि उसके प्रयोग से उस स्तम्भ मे छेद हो गया। उसमे पुस्तको का एक विशाल सग्रह था। एक पुस्तक मे से उन्होने सुवर्ण सिद्धि का प्रयोग सीखा, और सरसों से घोड़े बनाने की विद्या जानी। वहाँ की शासन-देवी को भय हुआ कि आगे की बातो का ज्ञान हो गया तो उनका दुरुपयोग हो सकता है अत' उसने वह पुस्तक चुराली और जैसलमेर के भण्डार मे गुप्त स्थान मे पहुँचा दी। सिद्धसेन जी ने उन सीखी विद्याओ का उपयोग कर्मार के राजा देवपाल की सहायता के लिए किया, जिससे उस राजा ने इन्हे 'दिवाकर' की पदवी से विभूषित किया।

पुरातन प्रबध मे 'चित्रकूटोत्पत्ति प्रबध' चित्तौड के बसने से सम्बन्ध रखता है। उसमे दाने द्वारा मनुष्य को कडाह मे पकाने की योजना के सफल हो जाने पर मनुष्य द्वारा दाना ही कडाह मे डाल दिया गया, जो मूँगामोती मे परिणत हो गया, इस अत्यन्त प्रचलित लोक-कहानी का एक रूप मिलता है। यह इस प्रकार है :—

> शिवपुर के राजा चित्रांगद की सभा मे एक योगी प्रतिदिन छ महिने तक आता रहा। राजा ने कारण पूछा—
>
> योगी ने कहा—मुझे एक सिद्धि मे आपकी सहायता अपेक्षित है। आप देवी-अष्टमी के दिन तलवार लेकर कूटाद्रि पर आइये। राजा यथावसर कूटाद्रि पर गया। रानी को पता चल गया, उसने पीछे से मत्री को भी भेजा। वहाँ अग्नि-कुण्ड था। जब योगी स्नान करने गया, तब मत्री ने राजा से कहा कि यह आपको इस कुण्ड की परिक्रमा करने के लिए कहेगा। आप कहियेगा कि पहले आप परिक्रमा देकर बता दीजिये। राजा ने ऐसा ही किया, जब योगी बताने के लिए अग्निकुण्ड की परिक्रमा देने लगा तो राजा और मत्री ने उसे आग मे धकेल दिया। उसमे गिरते ही वह स्वर्ण-पुरुष हो गया। उसे राजा घर ले आया। इससे उन्हे धन की कमी न रही। तभी उन्होंने चित्रकूट या चित्तौड का किला बनाने का निश्चय किया ..... 'आदि।

इन सस्कृत ग्रन्थो के उदाहरणो से हमने यह प्रकट करने का प्रयत्न किया है कि ये लोक-कथा-तत्व किस प्रकार प्रामाणिक वृत्तो मे भी ऐतिहासिक आस्था के साथ नियोजित हो जाते थे। ये वृत्त चाहे राजा से सम्बन्धित हो, या किसी योगी या महात्मा से। महात्माओ सम्बधी अलौकिक-तत्वो की परम्परा अपनी

पूर्ण प्रवलता से आगे भक्ति-धारा के भक्तो मे भी विद्यमान मिलती है।

इन कथाओ मे मिलने वाले कुछ सामान्य तत्वो की ओर श्री ऐम० आर० मजूमदार ने ध्यान आकर्षित कराया है। उन्होंने लिखा है कि--

"इनमे सवमे एक सामान्य तत्व यह था कि इनमे चमत्कारिकता की प्रधानता थी · जादू-टोना, जत्र-मत्र, मनुष्य शरीर का परिवर्तन, मृतक का पुनरुज्जीवन, एक शरीर से दूसरे शरीर मे (परकाय) प्रवेश आदि वातें खुलकर काम में लायी जाती थी। ऊल-जलूल जीवन के कृत्यो का भी कम उपयोग नही था। कुछ का तो वूर्जुआ वातावरण था, जिसमे यात्राओ और व्यापारिक उद्योगो का वर्णन रहता था। चोरी-जारी, पर-स्त्री-आकर्पण और उन्हें भगाने की घटनाओ को भी छोड़ा नहीं गया था।

इनमे एक निर्वन्ध समाज का चित्रण है। इनमे जिन वातो का जिक्र हैं वे हैं सह-शिक्षा तथा स्त्री की स्वतन्त्रता, उनकी शिक्षा तथा ललित कला-दक्षता, हठी स्त्री का चरित्र, अत्यन्त सस्कृत तथा निष्ठावान वेश्या, सामान्य शिक्षा का प्रसार, अत्यन्त उग्र तथा स्वोद्भूत प्रेम, अथवा विश्वासघात, ये प्रमुख अभिप्राय हैं, साधारणत आकस्मिक रूप से अथवा जानवूझकर वियुक्त प्रेमियो की दुर्दशा का सूत्र कहानी में आवेगमय रोचकता वनाये रहता है। प्रहेलिका के उपयोग का वहुत शौक है। नायिका का विरह युक्त वारहमासा तो अवश्य ही मिलता है।"[1]

इन लोक-कथाओ मे मजूमदार द्वारा वताये गये तत्वो का तो समावेश मिलता ही है, इनमे से एक वात विशेप ध्यान आकर्षित करती है। प्रायः प्रत्येक प्रेम-कथा मे 'वारहमासे' का प्रयोग अवश्य हुआ है। यो तो इन कथाओ मे और भी कई प्रकार के कलात्मक-रूपो का उपयोग जहाँ-तहा मिलता है, किंतु 'वारहमासा' तो जैसे इन कथाओ का एक अनिवार्य अङ्ग ही हो। स्वाभाविक प्रेम-कथाओं मे इसे छोडा नही गया। उधर 'सदेशरासक' जैसा प्रमुख काव्य मिलता है, जो केवल वारहमासा ही है। फिर 'मैनामत' मे भी कथा-भाग अत्यन्त अल्प है, जैसे वह वारहमासे की भूमिका और उपसहार ही हो। यह दशा 'वीसलदेव रास' की है इसी प्रकार वारहमासे के केन्द्रविन्दु से प्रेम-कथाएँ लिपट कर विकसित होती मिलती हैं। और यह निर्विवाद है कि 'वारहमासा' मूल मे लोक-गीत है। वही से कवियो ने लेकर उस पर प्रेम-गाथाएँ खडी की हैं।

यह भी स्पप्ट है कि 'वारहमासे' का वियोग सहन करनेवाली नायिका

---

१. देखिये माधवानल-कामकवला प्रवध--प्रिफेस, पृ० ६।

'सतवती' ही होगी। इन कथाओ मे सत विषयक एक अन्तर्धारा निश्चय ही व्याप्त है। सामान्य लोक-कथाओ मे इस सत से जीवन की नीव को दृढ किया गया है, उधर कुछ धार्मिक पौराणिक गाथाओ मे 'सत' को 'शक्ति' के रूप मे दिखाया गया है। सत एक ऐसा प्रवल अस्त्र है, जिसका वार विफल नही होता और उसे स्पर्श नही किया जा सकता। ईश्वरदास की 'सत्यवती' कथा इसका एक उदाहरण है। जहाँ तक यह सत मैना के सत की भाँति दृढ प्रेम की कसौटी रहा है, वहाँ तक तो उसे सामान्य चारित्रिक तत्व माना जा सकता है, उससे कवियो को भाव-सौन्दर्य और भाव की उज्ज्वलता की अनुभूति का अवसर मिला है, पर जव यह 'सत' एक अलौकिक सत्ता की भाँति दिव्य शक्ति का रूप ग्रहण करता है, तो लोकमानस की भूमि पर ही हमे पहुँचा कर यह अपना अभीष्ट सिद्ध करता है।

ऊपर दी गयी सूची के सम्वन्ध मे कुछ अन्य बाते भी ध्यान देने योग्य हैं।

वीसलदेव रास को हम 'वीरकथा' नही मान सकते। वह एक प्रकार से प्रेम-कथा ही।

डगवैकथा यो तो पौराणिक कथा है, और एक शाप और उसकी मुक्ति से सम्वन्धित है, किन्तु कथा के समस्त तन्तु प्रेमकथा विषयक हैं। घोडी नायिका है जो रात मे अपने मूल अप्सरा रूप मे आ जाती है, और दिन मे घोडी वन जाती है। राजा दग को उससे प्रेम होगया है,और वह उसी के साथ रहता है। उसी के लिए अन्त मे युद्ध भी होता है। अत इसे प्रेमकथा ही मानना समीचीन प्रतीत होता है। मृगावती मे इसी कथा का लोक-रूप मिलता है। इसमे नायिका हारणी वनती है।

समयसुन्दर के नाम से एक मृगावती मिलती है। यह कुतवन की मृगावती नही। यह मृगावती उदयन की मा है। इसका सवध उदयन कथा से है।

रूपमजरी नददास जी ने धार्मिक और साम्प्रदायिक दार्शनिक और भक्ति-विषयक तत्वो को हृदयगम कराने के लिए लिखी है, किन्तु है प्रेमकथा ही। इसे लोक-तत्व युक्त प्रेमकथा नही माना जा सकता है।

वेलिकृष्ण रुक्मिणी भक्ति भाव से युक्त होते हुए भी प्रधानत प्रेमकथा ही मानी जानी चाहिये। इसी प्रकार उषा कथा या उषाहरण पौराणिक होते हुए भी प्रेमकथा ही मानी जायगी। यो तो इसका तान्त्रिक मूल्य भी है। उषा-कथा सुनना जूरी उतारने के लिए एक टोटका भी है।

चन्दन मलयागिरि की कथा 'अवा-आमिली' के लोक-कथा-चक्र की है। इसे वस्तुत: तो प्रेमकथा नही कहा जा सकता। यह वैचित्र्य युक्त है।

हमने उक्त सूची मे कितने ही रासो नामक काव्य सम्मिलित नहीं किये। जैसे पारीछत रायसौ, आदि। वात यह है कि ये रासौ ऐतिहासिक ही हैं, वास्तविक कहानी तत्व इनमे नही, इस दृष्टि से ये पृथ्वीराज रासौ, हम्मीर रासौ, वीसलदेव रासौ से भिन्न हैं।

गोरावादल की भूमिका विपयक कथा तो प्रेमकथा है किन्तु प्रमुखता 'गोरावादल' की होने के कारण यह वीरकथा मानी जानी चाहिये। 'जानकी विजय' यों तो धार्मिक वृत्त ही हैं, किन्तु जानकी जी की देवी रूपी वीरता का वर्णन होने से इसे वीर कथा मे रखना ही समीचीन प्रतीत होता है। यह 'शाक्त' परपरा की कृति प्रतीत होती है। 'रुक्मिणी मङ्गल' भी यो तो वैवाहिक गीत सा विदित होता है, और धार्मिक महत्व भी इसका विदित है, भक्ति-तत्व भी हैं। किन्तु मूलत. प्रेमकथा ही है, वेलि की कोटि में ही मानी जानी चाहिये।

जानकवि ने लगभग २१ प्रेमकथाऐं १६७५ से १७२० के वीच लिखी। हमने उक्त सूची मे केवल कुछ प्रमुख कथाएँ ही सम्मिलित की हैं।

इसी प्रकार संत कवियो की परिचिइयाँ भी कितनी ही हैं। सूची मे जिनका उल्लेख हुआ है, उनके अतिरिक्त निम्नलिखित और प्राय हो चुकी हैं त्रिलोचन की परिचई, धना जी की परिचई, रैदास की परिचई, राका-वाका की परिचई, सेऊ सम्मद की परिचई, इनके लेखक हैं १७ वी शताब्दी के अनतदास। हरिदास निरजनी की परिचई तथा सेवादास की परिचई (१८ वी शदी) तथा वैष्णवो की वार्ता आदि।

अन्य कथाओ मे ये ग्रन्थ भी और सम्मिलित किये जायेंगे—

१६०७	ढोला मारवणी चौपाई	. हरराज
	दसमस्कंध भागवत भापा	नरहरदास वारहट
	रामचरित्र कथा	„
	अहिल्या पूर्व प्रसङ्ग	„
	नरसिंह अवतार कथा	„
	अवतार चरित्र	„
	रामायण	विश्वनाथसिंह
१८१५	हरिदौल चरित्र	विहारीलाल
	मकरध्वज	मेघराज प्रधान
१६७७	राणारासा	दयालदास भाट

१८२८	व्रजविलास	व्रजवासी दास
१६८८	जैमिनि पुराण	रतिभान
१८१२	विक्रम वत्तीसी	अखैराज
१८११	कृष्ण चन्द्रिका	,,
	विक्रम विलास	नेवजीलाल दीक्षित
१६२८	जैमिनि कथा	कृष्णदास
	मैनसत के उत्तर	गगाराम
१६६३	सुदर्शन चरित्र	नद
१६७०	यशोधर चरित्र	नद
१५१२	ओखाहर	परमानद

—३—

हिन्दी के कथा-साहित्य की कथानक रूढियाँ

प्रद्युम्न चरित्र

टिप्पणी	रूढ़ि	कथानक
	१—सत्यमामा से नारद रुष्ट	१—नारद सत्यमामा के कक्ष मे गये तो वह शृङ्गार मे मग्न
सीता चरित मे भी सीता से नारद रुष्ट		२—नारद को दर्पण में देखकर नाक भौं सिकौडीं

२—सत्यमाया को सौतिया डाह से जलाने का नारद जी का सकल्प।

३—नारद का कुडनपुर में जाकर रुक्मिणी को देख कृष्ण से उसके विवाह की भविष्यवाणी।

चित्र का अभिप्राय वहुत प्रचलित — ४—रुक्मिणी का चित्र भेज कर नारद ने कृष्ण को मोहित किया।

५—रुक्मिणी के भाई ने शिशुपाल को रुक्मिणी की लग्न भेजी। वह आया। नारद ने उसे नगर में प्रवेश करने से रोका।

तु० सीताहरण, सयोगिताहरण, सुभद्रा-हरण — ६—कृष्ण हलधर सहित कुडनपुर गये और रुक्मिणी की वुआ की सहायता से प्रमोद-वन में पूजा को गयी रुक्मिणी का हरण।

७—शिशुपाल-कृष्ण में युद्ध। नागफांस में।

८—रुक्मिणी तथा सत्यभामा में शर्त जिसके पहले पुत्र दूसरी उसके चरणो में केश रखेगी ।

९—दोनो के पुत्र जन्म ।

तु० प्रथम पुत्र की चोरी सीता के भाई भामंडल की चोरी

१०—रुक्मिणी-पुत्र को एक दैत्य चुरा ले गया । यह दैत्य पूर्व जन्म का राजा हेमराय था जिसकी स्त्री को पूर्व जन्म में रुक्मिणी-पुत्र नमु राजा के रूप में हर ले गया था ।

११—एक पत्थर के नीचे उसे दवा दिया ।

१२—मेघकूट नरेश काल सवर अपनी रानी कनकमाला सहित ऊपर विमान द्वारा जा रहे थे, विमान वहाँ स्वय रुक गया ।

नल-कथा, कवीर-कथा, भामंडल-कथा सीता-चरित में

१३—विमान नीचे उतरा, पत्थर के नीचे से वालक को निकाल कर घर ले गये । उसे अपना पुत्र घोषित किया—नाम रखा प्रद्युम्न

१४—कृष्ण-रुक्मिणी के पुत्र-शोक को देखकर नारद जी पुंडरीकपुर में जिनेन्द्र की शरण में पहुँचे प्रद्युम्न का वर्तमान वृत्त और पूर्ववृत्त जानना, उसे कृष्ण-रुक्मिणी को वताना ।

तु० कौरव-पाण्डव का द्वेष, नल-मामाका द्वेष, जाहर तथा अरजन-सरजन द्वेष, आदि

१५—प्रद्युम्न से सवर की दूसरी रानी के पुत्रो को द्वेष ।

१६—द्वेषी भाई प्रद्युम्न को विजयार्ध शिखर पर मारने ले गये पर वहाँ उसे अमूल्य मणि जटित आभूषण मिले ।

१७—कालगुफा मे ले गये, वहाँ से जीवित

१८—नाग-गुफा मे ले गये वहाँ नाग को पराजित कर नाग-शय्या ले लौटा ।

१९—देव-रक्षित वावडी मे ले गये । देव ने आधीनता स्वीकार की और मकर की ध्वजा दी ।

प्रह्लादादि भक्तों की कथा

२०—जलते अग्निकुण्ड मे से जीवित निकला ।

२१—मेपाचार पर्वत से जीवित लौटा, कुंडल भेंट मे लाया ।

२२—अन्य अनेक सकटों से पार निकला ।

२३—विपुलन मे सर्वाङ्ग सुन्दरी तपस्या करते मिली, उससे देवाज्ञा से विवाह ।

२४—सपत्नीक घर लौटा ।

२५— का मोहित होना ।

२६—प्रद्युम्न का उससे दोनो विद्याओ को ले लेना ।

२७—राजा सवर तथा प्रद्युम्न-युद्ध, नारद द्वारा निपटारा, द्वारका लौटना ।

२८—दुर्योधन की पुत्री

२९—भील का रूप धारण कर ले आना ।

३०—माया-रचित घोडे से भानुकुमार को हरा देना

ढोला के ऊँट ने मारू का वाग उजाडा, हनुमान ने रावण का वाग उजाड़ा । शकट चौथ कथा

३१—सत्यभामा का वाग—उसमे घोडो को चराना

३२—ब्राह्मण रूप रख कर सत्यभामा के यहाँ भोजन करते-करते उसे थका देना ।

३३—वमन से उसका घर भर देना ।

३४—मायावी रुक्मिणी के केश देकर माया द्वारा सम्पूर्ण स्त्रियो की नाक कटवाना ।

३५—सत्यभामा की शिकायत पर हलधर ने रुक्मिणी पर सेवको की सेना भेजी, जिसे प्रद्युम्न ने विद्यावल से वाँध दिया । एक को खुला छोडा ।

३६—वल्देव स्वय आये प्रद्युम्न ने उन्हे सिंह वना दिया हलधर गिर गये, लज्जित हो लौट गये ।

३७—रुक्मिणी ने ब्राह्मण के रूप मे पुत्र को पहचाना, उसकी वहू के समाचार भी जाने

३८—पिता कृष्ण से मिलने माता को लेकर सभा मे पहुँचा और ललकारा कि मैं कृष्ण की प्राणवल्लभा का हरण करके जाता हूँ, कृष्ण अपनी शक्ति से जीत सकें तो लें ।

लव-कुश-राम-लक्ष्मण, अर्जुन और उसका पुत्र

३९—प्रद्युम्न तथा कृष्ण की सेना मे युद्ध—कृष्ण सेना की पराजय ।

४०—प्रद्युम्न कृष्ण के मल्ल युद्ध की तैयारी । नारद का निपटारा करना, प्रद्युम्न का परिचय देना ।

४१—रुक्मिणी ने क्रुद्ध होकर सत्यभामा के केश मुडवाकर, उससे पैर मैलवाये। सत्यभामा का मनोमालिन्य।

४२—कैटभ ने कृष्ण को हार दिया। वे जिस रानी को उसे पहना देंगे उसी के गर्भ से वह स्वय जन्म लेकर अपने पूर्व भ्राता प्रद्युम्न का साथ देगा।

४३—कृष्ण ने हार सत्यभामा को पहनाया, पर सत्यभामा के उस गर्भ को प्रद्युम्न ने जामवन्ती के उदर मे स्थानान्तरित कर दिया।

४४—सत्यभामा के दूसरा गर्भ।

४५—दोनो के पुत्र जन्म।

४६—रुक्मिणी ने अपने भाई रूपवान की दोनो कुमारियो का विवाह दोनो कुमारो से कर देने का परामर्श।

४७—रूपवान ने कहा, डोमो को लडकियाँ दे दूँगा, तुम्हे नही।

४८—प्रद्युम्न ने दोनो कुमारो को डोमो का रूप देकर कुडनपुर भेजा।

४९—रूपवान की कुमारियो को लेकर द्वारका आया तब दोनो कुमारो से विवाह हुआ।

५०—कृष्णादि के मृत्यु के समाचार पर प्रद्युम्न ने तपस्या की और निर्वाण प्राप्त किया।

हनुमान चरित्र

१—विद्याधर महेन्द्र ने अपनी पुत्री अजना का सबध राजा प्रह्लाद के पुत्र पवनजय कुमार से किया।

तु० नल-दमयन्ती

२—पवनजयकुमार अदृश्य होकर विवाह से ३ दिन पूर्व प्रहस्त के साथ अपनी ससुराल में अंजना को देखने गये।

३—पति में अश्रद्धा के कारण अजना का एकान्त वास।

४—रावण की सहायता के लिए कुवेर से युद्ध

करने जाने पर मानसरोवर पर वियोगी चक्र-
वाक को देखकर पवनजय विमान से उसी
समय अजना के पास पहुँचा। चलते समय
निशानी देते जाना।

तु० नल-जन्म, जाहर-पीर,

५—गर्भ प्रकट होने पर श्वसुर-सास तथा माता-
पिता द्वारा अजना का परित्याग, निशानी को
भी न मानना।

नल-जन्म,

६—पुत्र हनूमान होने पर राजा प्रतिसूर्य (जो
अजना के मामा थे) उसे ले गये।

७—मार्ग में बालक हनुमान विमान से गिरा, पर
चोट नही लगी।

८—पवनजय युद्ध से लौटे तो अजना को ढूँढने
निकले और अजना जहाँ मिली वही कुछ
समय रहे।

९—हनूमान के दो विवाह . शूपर्णखा की पुत्री
अनगपुष्पा से तथा सुग्रीव-सुता पद्मरानी से।

१०—रावण की युद्ध में सहायता।

११—राम की सहायता करना।

१२—अत में योग-साधना से परमात्मपद।

सुरति पचमी

[र १६३३ स०
लि० १८४९ :सं०]

१—कमलश्री ने मुनि को आहार दिया, जिसमे
मुनि ने पुत्र होने का वर दिया। पुत्र हुआ
भव्यसुदत्त।

अजना का निष्कासन

२—कमलश्री को उसके पति घनपति ने निकाल
दिया। माता-पिता को सदेह मत्री के सम-
झाने पर कमलश्री को आश्रय देना।

३—घनपति का दूसरा विवाह—पुत्र वन्धुदत्त

४—भव्यसुदत्त तथा वन्धुदत्त जहाज से व्यापार
को।

५—मार्ग मे भव्यसुदत्त को जहाज से छोड दिया,
वह भटकता हुआ जिन मन्दिर मे पहुँचा।

६—वहाँ रूपमाला से विवाह और राज्य-प्राप्ति।

७—सयोग से फिर बन्धुदत्त के लौटते जहाज भव्येसुदत्त को मिले। उसमे सपत्नीक वह घर को चले।

श्रीपाल चरित्र,

८—मार्ग मे बन्धुदत्त ने पुन धोखा देकर भव्येसुदत्त को छोड़कर जहाज चला दिया।

९—भव्येसुदत्त भटकते हुए चला। यक्ष की सहायता से सेज्यनाग, मुदरी और पचवरन माणिक लेकर लौटा।

१०—राजा के यहाँ स्त्री के लिए बन्धुदत्त से न्याय चाहना। बन्धुदत्त को दण्ड।

११—बन्धुदत्त मेदिनीपुर के राजा को भव्येसुदत्त की स्त्री छीनने के विचार से चढा लाया।

१२—भव्येसुदत्त ने राजा को हराया। राजा ने अपनी पुत्री उसे दी।

१३—तीर्थयात्रा दोनो पत्नियो के साथ।

राजा पीपा की कथा

[र-१६४५ :स० ले० अनन्तदास]

१—गागरौन पाटन का खीची राजा पीपा देवी का उपासक। देवी ने प्रसन्न होकर कहा कि मुक्ति चाहो तो रामानन्द के शिष्य बनो।

२—रामानन्द ने परीक्षा के लिए कहा कि अधकूप मे गिरो। ये गिरने को तैयार हुए तो रामानन्द ने शिष्य बनाया।

४—द्वारिकापुरी जाने लगे तो सब रानियाँ साथ चलने को हुई, पर केवल सीता साथ रही।

५—दोनो ईश्वराराधन मे लगे, उनकी कई वार परीक्षा हुई, जिनमे पार उतरे।

श्रीपाल चरित्र

[ले० परमाल आगरा र० १६४९ स०]

१—रानी कुन्दप्रभा ने स्वप्न देखा।

२—राजा अरिमर्दन ने फल बताया कि यशस्वी सुत श्रीपाल होगा।

३—श्रीपाल पिता की मृत्यु पर चक्रवर्ती राजा हुए।

४—श्रीपाल को कुष्ट रोग होना। अपना राज्य छोडकर अन्यत्र जाना।

५—उज्जैन के राजा पहुपाल की छोटी पुत्री मैनासुन्दरी के कर्म पर विश्वास के कारण उसके पिता का चिढकर कुष्टरोग रोग्रस्त श्रीपाल से विवाह कर देना।

स-यवती-कथा, ६—श्रीपाल तथा मैनासुन्दरी का जिन राज की पूजा करके कुष्ट रोग दूर करना।

७—श्रीपाल का भ्रमण : एक स्थान पर एक विद्याधर को मन्त्र-सिद्ध करने मे सहायता देना।

८—विद्याधर ने बदले में जलतारिणी और शत्रुनिवारिणी विद्याएं दीं।

९—कौशाम्बी के धवल सेठ का जहाज अटका तो बलि के लिए श्रीपाल को वन में से पकड ले जाना।

१०—श्रीपाल के स्पर्श से ही जहाज चल पडा।

११—सेठ ने श्रीपाल को पुत्रवत् मान साथ लिया।

१२—श्रीपाल ने चोरो से सेठ की रक्षा की और अन्त में चोरों को भी मुक्त कर दिया। चोरो ने रत्नो के सात जहाज श्रीपाल को दिये।

सुरतिपचमी कथा १३—हंसद्वीप मे सहस्त्रकूटन चैत्यालय के फाटक को हाथ से खोल देने के कारण भविष्यवाणी के अनुसार वहाँ के राजा की पुत्री रैनमंजूषा से विवाह।

१४—रैनमंजूषा के साथ श्रीपाल सेठ के जहाज पर आगे चला।

१५—रैनमंजूषा पर सेठ मुग्ध।

१६—सेठ ने श्रीपाल को समुद्र मे गिरा दिया।

१७—बलात्कार करने के लिए प्रस्तुत सेठ से चार देवियों का प्रकट होकर रैनमंजूषा की रक्षा करना।

१८—धवल सेठ को दंड से रैनमंजूषा ने बचा दिया।

१९—श्रीपाल समुद्र मे तैर कर कुंकुमपुर पहुँचा।

२०—वहाँ के राजा की लडकी गुणमाला से विवाह क्योकि भविष्यवक्ता मुनि ने वताया कि जो तैर कर आयेगा उससे विवाह होगा।

२१—धवल सेठ का जहाज उसी द्वीप में पहुँचा। सेठ ने श्रीपाल को पुत्र वताकर उसे प्राण दण्ड की आज्ञा दिलायी।

२२—श्रीपाल के वताने पर जहाज पर रैनमजूषा से मिल समस्त समाचार जान गुणमाला ने अपने पिता को वताया।

२३—श्रीपाल की मुक्ति, सेठ को प्राणदड।

२४—श्रीपाल ने सेठ को प्राणदड से वचाया। पर हृदय के फट जाने से सेठ की मृत्यु।

२५—श्रीपाल का विवाह—कुदनपुर के राजा मकर-केतु की पुत्री चित्ररेखा के साथ।

२६—कचनपुर के राजा वज्रसेन की ९०० पुत्रियो से विवाह।

२७—कुकुमद्वीप के राजा यशसेन की १६०० पुत्रियो से विवाह—यह विवाह आठ पहेलियो को हल करके हुआ।

२८—अन्य वहुत से विवाह। समस्त रानियो को लेकर कुकुम द्वीप मे।

२९—मैनासुन्दरी से मिलने का निश्चित समय आते ही श्रीपाल अकेला रात्रि के अन्तिम पहर मे घर पहुँचा।

३०—मैनासुन्दरी अपने वचन के अनुसार अवधि के उस अन्तिम दिन तपस्विनी होने को प्रस्तुत।

३१—श्रीपाल के पहुँचने पर प्रव्रज्या स्थगित, समस्त रानियां वुला ली गयी।

३२—मैनासुन्दरी के कहने से धर्म की दृष्टि से मैना-सुन्दरी के पिता को कम्बल ओढ कुल्हाडी लेकर वुलाया।

३३—भय से मैनासुन्दरी के माता-पिता का यथा-देश आना।

३४—मैनासुन्दरी तथा श्रीपाल का उनके चरणो मे गिर कर कर्म का महत्व सिद्ध दिखाना। पिता का लज्जित होना।

३५—श्रीपाल का युद्ध में राजाओ को दमन करते हुए अपने राज्य मे लौटना।

३६—अपने नगर चम्पावती को घेरना। वीरदमन से (जो शासक था) युद्ध। वीरदमन हारा।

३७—श्रीपाल राजा, बारह सहस्त्र एक सौ आठ पुत्रो का जन्म।

३८—राजा का अन्त मे दीक्षित होकर वन मे जाना।

भक्त महात्म्य

[लि०—गगासुत कड़ा निवासी
र० १७०० स०]

१—अजामिल की कथा—

अ—अजामिल धर्मभ्रष्ट और वेश्यारत

आ—ग्राम निवासियो ने हास्य मे अजामिल को भक्त बता उनके यहाँ अतिथि सतों को भेजा।

इ—सतो ने कहा-अपने पुत्र का नाम नारायण रखना।

ई—मृत्यु समय 'नारायण' पुकारने से मुक्ति।

२—मोरध्वज—अ—यमदूतो का देखना कि मोरध्वज के नगर की रक्षा सुदर्शन करता है, अत लौटना।

आ—धर्म को भक्त का रूप दिखाने ईश्वर मोरध्वज की परीक्षा के लिये गये।

इ—धर्म को सिंह बनाया।

ई—सिंह के लिए प्रसन्नतापूर्वक पुत्र की बलि मोरध्वज ने दी।
ईश्वर तथा धर्म का वर देना।

उ—भक्तो के वेश मे सात चोरो ने रानी को मारकर धन लिया।

ऊ—वन मे राजा मिला। चोरो को क्षमा कर साथ लाया।

ए—चोरो के चरणामृत से रानी जीवित।

ऐ—राजा का नरक जाना, वहाँ माता-पिता को रोते देख उनकी मुक्ति के लिए प्रयत्न।

ओ—सतो के साथ चित्रगुप्त के पास जाकर उन्हे नरक से छुडाना।

३—राजा की कथा

१—स्वपच को गौदान

२—उसस छीन कर ब्राह्मण को

४—ब्राह्मण के यहाँ से गौ माँगकर फिर राजा की गायो मे।

४—राजा ने फिर उस गौ का दान किया।

५—अभिशाप से राजा गिरगिट हुआ।

६—कृष्ण द्वारा उद्धार

४—कृष्णदत्त विप्र की स्त्री की कथा

१—कृष्णदत्त विप्र की स्त्री पतिव्रता

२—पति के परदेश जाने पर स्त्री ने गुरुदीक्षा नारद से ली।

३—पति लौटा, पत्नी पर क्रुद्ध, पत्नी के समझाने पर नारद से दीक्षा लेने का विचार।

४—नारद ने सूर्य-स्नान का आदेश दिया।

५—ब्राह्मण के बहकाने पर कृष्णदत्त विप्र बिना स्नान लौटा और दीक्षा का समय टाला।

६—कृष्णदत्त विप्र दम्पत्ति की मृत्यु।

७—कृष्णदत्त विप्र का राजा के हाथी के रूप मे जन्म। उसकी स्त्री का राज कन्या-रूप मे जन्म।

-—हाथी तथा कन्या मे प्रेम

८—कन्या के स्वयम्वर की घोषणा पर हाथी

का भोजन छोडना। कन्या द्वारा परितोष देने पर खाना।

१०—स्वयम्वर मे कन्या ने हाथी को वरमाला दी।

११—राजा क्रुद्ध। नारद ने आकर हाथी को दीक्षा दी, तो वह कुमार रूप मे परिणत।

१२ कुमार तथा कन्या का विवाह

५—नहुष की कथा

१—नहुप का इन्द्रप्रद के लिए अश्वमेघ

२—नहुष के अहकार को देख नारायण ने उसे दीक्षा लेने के लिए कहा। नहुप को अस्वीकार।

३—गौतम-शाप से सहस्र भग होने पर इन्द्र छिप गये।

४—इन्द्रासन पर नहुष

५—इन्द्राणी से मिलने सप्तऋषियो की पालकी पर।

६—सप्तऋषियो के शाप से सर्प होना।

७—शाप का उद्धार युद्धिष्ठिर द्वारा होगा।

८—युधिष्ठिर के भाइयो का अजगर 'सर्प' वाले तालाव पर पानी के लिए जाना, चार प्रश्नो का उत्तर न देने पर अजगर ने उन्हें निगला।

९—अन्त मे युधिष्ठिर ने प्रश्नो के उत्तर दिये।

१०—नहुप का अजगर योनि से उद्धार और

११—युधिष्ठिर के भाइयो का पुनरुज्जीवन

१२—काशीराज ने रानी के कहने से भक्ति छोडी।

१३—इससे राजा के पुरखे पुन नरक मे

१४—नारद द्वारा राजा को प्रवोध कि स्त्री का फदा बुरा—

१५—उदाहरण—इन्द्र, चन्द्र, शृगी की कथा

१७—उदाहरण—स्त्री भक्त तेली की दुर्दशा

१८—उदाहरण—एक दरिद्र ब्राह्मण—
सर्प सेवा से प्रतिदिन धन प्राप्त करता। स्त्री ने भेद जान कर पुत्र को भेज, सर्प को मार समस्त धन एक साथ पा लेने का आदेश। सर्प द्वारा विनाश

१९—नारदोपदेश से राजा ने दीक्षा ली, पुरखो का नरक से उद्धार।

२०—नारद का भगवान के दर्शन हेतु स्वर्ग जाना।

२१—स्वर्ग के कपाट वन्द।

२२—प्रार्थना पर कपाट खुले और भगवान मिले।

२३—कपाट वन्द क्योकि नारद ने उत्तमा भक्ति सब पर प्रकट कर दी, अब नरक की क्या आवश्यकता।

२४—नारद ने यमराज को सत्सङ्ग की महिमा समझायी कि विश्वामित्र के लाख वर्ष के तप के आधे फल से पृथ्वी न साध सकी।

२५—वशिष्ठ के सत्सग के फल से पृथ्वी टिक गयी।

सीता चरित्र

[लें०—रायचन्द्र रच० १७१३ वि०]

१—सीता ने स्वप्न देखा

२—राम ने स्वप्न मे अशुभ की सम्भावना बतायी।

३—सीता को लेकर रावण सम्बन्धी अपवाद नगर मे।

४—सेनापति द्वारा सीता का वन मे निर्वासन

५—वन में सीता का विलाप

६—वज्रसघ मिला, सीता को वहिन मान कर रखा

७—दो पुत्र होना

८—विवाह की अवस्था होने पर लवण-कुश के लिए वज्रसघ ने पृथ्वीधर से कन्याएँ माँगी

९—पृथ्वीधर द्वारा निषेध करने पर युद्ध की तैयारी

१०—लवण-कुश ने पहले ही जाकर पृथ्वीधर को परास्त किया

११—नारद ने वन मे लवण-कुश को राम-कथा सुनायी

अ—जनक महात्म्यमैन की स्त्री विदेहा से जुड़वाँ पुत्र तथा पुत्री ।

आ—पूर्वभव के वैर से पुत्र को देव उडा ले गया ।

इ—फिर दया से छोड दिया · रथपुर के चन्द्रगति विद्याधर द्वारा पालन ।

ई—नारद जनक के गये तो सीता डर से घर मे घुस गयीं ।

उ—नारद ने अपमान समझ चन्द्रगति विद्याधर के पालित पुत्र भामडल को सीता का चित्र दिखाकर उसे सीता पर मोहित किया ।

ऊ—चन्द्रगति विद्याधर ने जनक से भामडल के लिए सीता माँगी ।

ए—जनक ने अस्वीकार किया क्योंकि राम से विवाह निश्चय

ऐ—चन्द्रगति विद्यावर ने कहा कि राम धनुप तोडेंगे तभी विवाह हो सकेगा ।

ओ—राम ने धनुप तोडा—सीता से विवाह

औ—भामडल को विदित हुआ कि सीता तो उसकी भगिनी है। राम-सीता दोनो से उसका प्रेम ।

क—चन्द्रगति भामडल को राज्य दे मुनि हुए ।

ख—दशरथ ने कैकेई को दिये वचन के अनुसार राम को वनवास दिया। भरत को नहीं ।

ग—राम-लक्ष्मण-सीता वन मे ।

घ—भरत राम को वन से लौटाने आये पर विफल ।

ङ—मार्ग मे राजा वज्रकरण को सिंहोरा से अभय किया ।

च—लक्ष्मण के कई विवाह

छ—१—एक कृपण ब्राह्मण के यहाँ राम-लक्ष्मण ठहरे ।

२—ब्राह्मणी ने राम-लक्ष्मण से प्रेम सहित व्यवहार किया ।

३—ब्राह्मणी पर ब्राह्मण कुपित ।

४—लक्ष्मण ने ब्राह्मण की टाग पकड के घुमा दिया ।

५—राम ने वचाया ।

ज—एक देव ने राम का असम्मान किया ।

झ—वाद मे अपने स्वामी से राम का परिचय जान उसी देव ने राम की सेवा की ।

ट—उनके लिए भवन वनवाया, जहाँ वही कृपण ब्राह्मण आकर राम कृपा से मुनि वना ।

ठ—१—वीनापुर के विजयसिंह की पुत्री वन-माला का वन मे लक्ष्मण से विवाह होने की भविष्यवाणी

२—लक्ष्मण को पति रूप मे पाने की प्रतीक्षा मे पहले से ही वनमाला का वनवास ।

३—लक्ष्मण आये तो विवाह हुआ ।

ड—राजा अनन्तवीर्य ने भरत पर चढाई करने के लिए विजयसिंह से सहायता मांगी ।

ढ—राम-लक्ष्मण उलटे विजयसिंह की सेना सहित अनन्तवीर्य पर चढ दौड़े ।

ण—उसे पराजित कर उसकी कन्या का विवाह भरत से कर लौटे

त—पद्मावती का लक्ष्मण से विवाह ।

थ—राम ने सुना कि ४९९ जैन मुनि कोल्हू मे पेले गये जिससे वह नगर उजड़ है ।

द—खरदूषण की स्त्री चन्द्रनखा लक्ष्मण पर मोहित ।

व—चन्द्रनखा को अपमानित करना

न—खरदूषण से राम-लक्ष्मण का युद्ध और परास्त होना।

प—सीताहरण रावण द्वारा

फ—रावण का मन्दोदरी द्वारा सीता से प्रस्ताव, सीता द्वारा धिक्कार।

ब—राम की सुग्रीव से भेंट—राम ने साहस-विद्याधर से सुग्रीव की स्त्री दिलायी।

भ—सुग्रीव ने सीतानुसंधान के लिए दूत भेजे।

म—विद्याधर से समाचार कि रावण ने सीता को हरा है।

य—सभी विद्याधर भयभीत। राम से कहा कि सीता का ध्यान त्यागिये।

र—राम ने कहा हम अकेले ही उसे मारेंगे—मार्ग बताइए।

ल—विद्याधरो ने कोटिशिला दिखायी कि जो इसे उठा लेगा वही रावण को मार सकेगा।

व—लक्ष्मण ने उसे उठा लिया।

श—विद्याधरो द्वारा राम की सहायता, हनूमान सीता का सन्देश लाये।

ष—लका पर चढायी।

स—लक्ष्मण ने रावण को मारा

ह—सीता-प्राप्ति। राम-सीता-लक्ष्मण का लका मे रहना

क्ष—नारद कौशल्या की ओर से राम के समाचार लेने लका आये।

त्र—नारद से माँ के समाचार सुनकर अयोध्या जाना।

ज्ञ—राम के हाथी के एक दिन बिगड़ने पर उसके पूर्वजन्म की कथाओ मे मुनियो नें उसका भरत से सम्बन्ध बताया।

अ—भरत का वैराग्य

अउ—सीता-चरित्र पर लोक-अपवाद सुन सीता को वनवास।

१२—सीता के दोनो बालको का यह सुन राम पर

चढाई करना, राम की सेना से युद्ध ।
१३—दोनो की पारस्परिक पहिचान ।
१४—सिद्धार्थ के कहने से सीता को अयोध्या बुलाना ।
१५—सीता के सतीत्व की परीक्षा के लिए अग्निकुंड
१६—देव प्रभाव से अग्निकुंड तालाब बन गया जो उमड कर वह चला ।
१७—उस पानी मे डूबने का भय देख लोगो ने सीता से प्रार्थना की तो पानी सीता की विनय से रुका ।
१८—सीता जल से निकल विरक्त हो आर्यिका बन गयी ।
[रविषेण के रघुपुराण से राइचन्द ने यह रचना की ।]

रविव्रत कथा

[लि०—सुरेन्द्र कीरत र०१७४० सं० लि० १९२५ : सं० :]

१—काशी सेठ मतिसागर की पत्नी गुणसुन्दरी ने चैत्यालय मे जाकर मुनि से रविव्रत लिया ।
२—सेठ ने रविव्रत की बुराई की ।
३—सेठ और उनके पुत्र की व्यापार मे अत्यत हानि
४—एक मुनि के कहने से पुन: रविव्रत लेना ।
५—सेठ मतिसागर के पुत्र गुणधर ने नागेन्द्र सेवा से धनधान्य पाया ।
६—ईर्ष्यालुओ ने उसे चोर बना राजा से शिकायत की ।
७—राजा का भ्रम दूर, राजा ने अपनी पुत्री प्रीतिमती का उससे विवाह किया ।
८—पुत्र राजा से विदा ले घर लौटा, माता-पिता से मिला ।
९—व्रत के प्रताप से समस्त वैभव लौटा ।

रोहिनी की कथा

[लि० हेमराज र० १७४२ स० लि० १९५१ स०]

१—बिना ऋतु के फूल फूले श्रेणिक राजा वनमाली ने देखे ।
२—मुनि से कारण पूछते हुए रोहिनी व्रत जानने की जिज्ञासा

३—अशोक तथा उसकी पत्नी की कथा—
अ–रोहिणी का पुत्र चौखडे से फेंका गया।
आ–भक्ति के प्रभाव से वह जीवित रहा।
इ—कुम्भ मुनि के आने पर अशोक ने अपनी रानी के हर समय प्रसन्न रहने का कारण पूछा।
उ—मुनि ने पूर्वभव के पुण्य की कथा बतायी।
४—श्रेणिक राजा ने रोहिणी व्रत गुरु से ग्रहण किया।

भक्तामर-चरित्र

[ले०–विनोदिनीलाल र० १७४६ : सं० लि० १८८३ : सं० .]

१—उज्जैनी के राजा सिन्धुसुजान की रानी रत्नावली निपुत्री।
२—वन मे भ्रमण मे एक बालक पडा मिला।
३—राजा ने उस बालक को अपना बालक बना लिया, नाम "सिन्धु"।
४—उसका विवाह। रानी से पुत्र—नाम सिंघुल
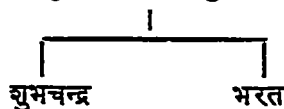
५—सिंघु ने मुनि व्रत धारण किया मुज राजा
६—तेली द्वारा भूमि मे ठोकी कुदाल किसी योद्धा से न उखडी तो सिंघुल ने उखाड़ी।
७—सिंघुल ने उसे गाडकर फिर ललकारा--कोई उखाडो।
८—कोई न उखाड सका, केवल राजकुमारो ने उखाडा
९—मुज का राजकुमार से द्वेष, उन्हे मारने की चेष्टा
१०-मत्री के परामर्श से राजकुमार राज्य से निकल विरक्त, विविध मत्रो के सबध की कथाएँ।

भवानी चरित्र भाषा

[ले०–गुनीराम श्रीवास्तव र० १७६८ सं० .]

१—जैमुनि महामुनि की सेवा मे देवी-चरित सुनाना
२—महामुनि ने चरित सुनाया।
३—मुख्य राजा राजपाट त्याग वन मे ऋषि से मिले। उन्होंने माया भेद बताया—

४—महिषासुर वध
५—चंड मुंड वध
६—रक्तवीर्य वध
७—निशुंभ वध
८—शुंभ वध
९—ऋषि द्वारा देवी महात्म्य कथन और राजा को वरदान ।

एकादशी महात्म्य

[लि०—सुदर्शन र० १७७० सं० लि० १९२२ सं० .]

१—अर्जुन-कृष्ण संवाद
२—सुर राक्षसी का देवों पर अत्याचार
३—देवता विष्णु की शरण
४—देवासुर संग्राम । देव-पराजय ।
५—विष्णु गुफा मे छिपे ।
६—गुफा से एक स्त्री निकली, उसने राक्षसो को मारा ।
[यह स्त्री अगहन शुक्ल एकादशी थी ।]

कृष्ण एकादशी

७—हैहय देश के राजा ने अपने पिता नरक मे देखे ।
८—अगहन कृष्ण एकादशी का व्रत करने से उनका उद्धार हुआ, स्वर्ग गये ।

पौष एकादशी शुक्ल

९—पचावती के राजा महाजीत ने अपना पुत्र लम्बु ज्वारी होने के कारण निकाल दिया ।
१०—माघ की एकादशी को भूखा रहा—इसमें एकादशी का फल मिला ।
११—पिता का राज्य मिला ।

पौष एकादशी कृष्ण

१२—चन्द्रावतीपुर का सुकेतु राजा पुत्रहीन ।
१३—शोक मे वन को प्रस्थान ।
१४—ऋषि ने एकादशी का व्रत कराया ।
१५—पुत्र जन्म ।

माघ कृष्ण

१६—एक ब्रह्मणी ने नारायण को भिक्षा मे मिट्टी डाली ।
१७—मृत्यु पर स्वर्ग मे उसे मिट्टी का खाली घर मिला ।

	१८—एकादशी का महात्म्य वताने पर सव कुछ प्राप्त ।
माघ शुक्ल	१९—एक गधर्व इन्द्र की पुष्पावती अप्सरा पर मोहित ।
	२०—इन्द्र शाप से दोनो पिशाच ।
	२१—एकादशी के अज्ञात व्रत से उनका उद्धार ।
फाल्गुन कृष्ण	२२—एकादशी के व्रत से विजय प्राप्त
चैत्र कृष्ण	२३—मेघावी ऋषि की तपस्या
	२४—इन्द्र ने तपस्या भग के लिए मजुघोपा अप्सरा को भेजा ।
	२५—कामदेव सहायक ।
	२६—अप्सरा ने मुनि को ५७ वर्ष तपस्या से विरत रखा ।
	२७—यह जानकर मुनि ने अप्सरा को शाप दिया ।
	२८—एकादशी व्रत से दोनो के कल्मप दूर ।
चैत्र शुक्ल	२९—नागपुर की ललिता ने एकादशी व्रत किया ।
	३०—उसके फल से पति की पिशाच योनि से मुक्ति ।
वैशाख कृष्ण	३१—एक चमार के एकादशी फल से गदहा वने ब्राह्मण का उद्धार ।
वैशाख शुक्ल	३२—एक देश-निष्कासित जुआरी का एकादशी व्र। से उद्धार ।
ज्येष्ठ कृष्ण	३३—वगन के धुए से अप्सरा का विमान नीचे गिरा ।
	३४—दासी ने एकादशी का फल देकर विमान आकाश मे चढाया ।
ज्येष्ठ शुक्ल	३५—इन्द्र के शाप से एक गन्धर्व जिन्द ।
	३६—एकादशी व्रत के फल से हुए एक राजा के पुत्र पर वह चढ वैठा ।
	३७—एकादशी का फल देने पर गधर्व का उद्धार ।
	३८—कुवेर शापित कुष्टी का रोग दूर होना ।
	३९—हरिश्च का मृत पुत्र एकादशी व्रत से जीवित ।
	४०—एकादशी व्रत से वर्षा होना ।

४१—एकादशी व्रत से नाश होने वाला नगर स्थिर रहा।

४२— अ—राजा के व्रत से इन्द्र को भय।

आ—मोहिनी भेष रख राजा को घर लौटाया।

इ—मार्ग मे उटनी ने चेताया, पर ध्यान नही।

ई—मोहिनी ने घर पहुँच एकादशी का फल या पुत्र माँगा।

उ—पुत्र देने को प्रस्तुत तब ईश्वर प्रकट।

जैंदेव की कथा

अ—ब्राह्मण ने तपस्या से वरदान मे सन्तान माँगी शर्त पहली कन्या हुई तो ईश्वर को भेंट।

आ—पहली कन्या ईश्वर को भेंट की तथापि ईश्वर ने स्वप्न मे कहा कि जैंदेव को यह कन्या दी।

आ—जैंदेव ने उसे ग्रहण किया।

इ—चोरो ने जयदेव का अगभग किया।

ई—राजा ने उसे दान-कार्य पर नियुक्त किया।

उ—चोर आये, जयदेव ने उन्हे धन और अभय दिया।

ऊ—चोर गये तो दूत से कहलाया कि जैंदेव तो हमारा साथी चोर है, ऐसा कहते ही वे पृथ्वी मे समाये।

ए—जयदेव की रानी प्रभावती के सत की जाच के लिए उसे खवर दी गयी कि जयदेव को सर्प ने डसा—प्रभा ने वता दिया कि यह झूठ है।

ऐ—पति मृत्यु का झूठा सवाद सुनकर भी प्रभा ने प्राण त्याग दिये।

ओ—जयदेव ने उसे जिला दिया।

ओ— चोरो ने धर्मार्थ जयदेव को मारना चाहा, जयदेव ने शीश झुका दिया पर उन्होंने मारा नही।

ढोला मारू

१—अकाल के कारण पिंगल नल के देश मे

[नाग जी नागवन्ती कथा मे अकाल के कारण पुत्री का पिता नायक के नगर मे आया है।]

२—पिंगल की पुत्री मारवणी का नल के पुत्र ढोला या साल्हकुमार से अत्यन्त छोटी वय मे विवाह

३—पिंगल मारवणी को लेकर अपने देश पूगल मे लौट गया।

४—बडे होने पर ढोला का मालवणी से विवाह

५—मारवणी के बडे होने पर पिंगल ने ढोला के पास सदेशवाहक भेजे, वे मालवणी द्वारा मार्ग मे ही मरवा डाले गये।

६—मारवणी ने स्वप्न मे ढोला को देखा—विरह सतप्त।

[स्वप्न-दर्शन का उपयोग यहाँ उद्दीपन के रूप मे हुआ है।]

७—नरवर से आये सौदागरो से ढोला के दूसरे विवाह का वृत्त पिंगल को विदित।

८—ढाढियो को ढोला के पास सदेश लेकर भेजा।

९—ढाढियो ने अपने गायन से मालवणी के पहरे-दारों को प्रसन्न किया और ढोला के पास सदेश पहुँचाया।

१०—ढोला मारवणी को लाने के लिए जाने को उद्यत, मालवणी ने ग्रीष्म और वर्षा भर युक्ति से रोका।

[यह अभिप्राय लोक-वार्ता मे नायक को रोकने के लिए काम मे लाया जाता है। पृथ्वी राज रासो मे भी है]

११—शरद में आधीरात को मालवणी को सोता

छोड, तेज ऊँट पर ढोला पूगल के लिए चल पडा।

[प्रेमाख्यान का तोता यहाँ भी विद्यमान है। पर उसका उपयोग भिन्न रूप में हुआ है]

१२—मालवणी ने तोते को ढोला के पीछे भेजा कि वह उसे लौटा लाये।

१३—तोते को ढोला एक तालाव किनारे दातुन करते मिला। तोते ने कहा कि मालवणी भर गयी।

१४—ढोला चाल समझ गया—तोते से कहा—तू जाकर उसकी सविधि क्रिया कर देना।

१५—ढोला आगे बढा—मार्ग में ऊमर-सूमरा का चारण मिला। उसने ढोला को वताया कि मारवणी बुढिया होगयी।

(ऊमर-सूमरा मारवणी से विवाह करना चाहता था। उसने इसी सदेश के साथ अपना चारण भेजा था। यह चारण वहाँ से हताश लौट रहा था। तभी उसने ईर्ष्यावश यह झूठा समाचार दिया।

१६—आगे वीसू नाम के चारण ने ठीक हाल वताया। ढोला आश्वस्त हो पूगल पहुँचा।

[नायक और नायिका के मिलन मे सांप की वाधा प्रसिद्ध वाधा है]

१७—मारवणी विदा कराके लौटा। मार्ग मे विश्राम स्थल पर पीवणे सांप से मारवणी की मृत्यु।

[योगी-योगिन लोक-कथा के शिव-पार्वती हैं]

१८—ढोला साथ मे जल मरने को प्रस्तुत। तभी योगी-योगिनी आयी। योगिन के कहने से योगी ने अभिमन्त्रित जल से मारवणी को जिला दिया।

१९—आगे मार्ग मे प्रतिद्वन्द्वी ऊमर-सूमरा ने ढोला को घेरा। छल से अपनी सेना मे ले जाने लगा।

२०—ऊमर की सेना मे मारवणी के पीहर की

गायिका डूमणी ने गान द्वारा मारवणी को षडयत्र वता दिया।

२१—मारवणी ने ऊँट को छडी मार दी। वह विगड खडा हुआ। ढोला उसे सँभालने आया तो मारवणी ने उसे षडयन्त्र वताया।

२२—ऊँट पर सवार हो ढोला-मारवणी एक दम भाग निकले और नरवर पहुँच गये।

यशोधर चरित्र

१—राजापुर के राजा यशोधर से एक योगी ने देवी पर स्त्री-पुरुष के जोडे को वलि देने का आदेश दिया।

२—वलि के लिए वन मे आते हुए क्षुल्लक भाई-वहिन पकड कर लाये गये।

३—राजा को उन पर दया आयी और क्षुल्लक वनने का कारण पूछा। इस कथा मे निम्न अभिप्राय विशेष उल्लेखनीय

४—राजा का एक रानी अमृतवती में विशेष अनुरक्ति, उस रानी का एक कुवडे वौने से गुप्त प्रेम।

५—राजा ने उसे देखा और विरक्त हो गया।

६—राजा की माता ने राजा को रोकने के लिए आटे के मुर्गे की वलि दी।

७—राना ने पति और सासु को लड्डुओ मे विष खिलाकर मार डाला।

८—माता तथा पुत्र दोनो ने मोर, श्वान, स्याही, उरग, मीन, कुक्कुट के जन्म लिए। [अन्त मे एक रानी के दोनो वहिन और भाई के रूप में उत्पन्न—और दोनो का क्षुल्लक के पास जाकर क्षुल्लक वनना। यशोधर का भी क्षुल्लक होम]

निशिभोजन त्याग

इसमे उल्लेखनीय अभिप्राय ये हैं

१—पति शैव—पत्नी जैन। पति को निशिभोजन त्याग का परामर्श

२—पति रुष्ट हो जगल से साँप पकड लाया और पत्नी के गले मे डाला, वह साँप हार वन गया।

३—वही पति के गले मे पड़ते ही साँप वना और

[सम्यक्त कौमुदी भाषा मे सोमा की कथा मे साँप सोमा के लिए माला वन जाता है, कनकलता को

साँप डस लेता है। सोमा द्वारा कनकलता जीवित।

पति को डस लिया।

४—पति को जीवित किया

ध्यानकुमार चरित

(मुख्य अभिप्राय ये हैं ·)

१—सेठ-पत्नी ने शुभ स्वप्न देखा, स्वप्न का अर्थ सुन्दर पुत्र का जन्म

२—सेठ धनपाल के सात पुत्र, आठवाँ पुत्र ध्यान-कुमार होने पर दान दिया, जिससे सातो पुत्र रुष्ट।

३—आठवें पुत्र का नाल गाढने के लिए गढा खोदते समय धन निकला।

४—सात भाइयो के प्रपच से ध्यानकुमार को दस दीनारें देना।

५—दस दीनारो के वदले मे खरीदी एक गाडी ईंधन—ईंधन के वदले मेष, मेष के वदले चार अधजले पाये।

६—पायो मे चार लाल और एक पत्र।

७—भाइयो के षडयन्त्र से ध्यानकुमार वापी मे डाला गया जहाँ से महामन्त्र के जाप से वाहर निकला।

८—ध्यानकुमार का परदेश गमन।

६—एक किसान का हल चलाया तो ताम्रपात्र के साथ जमीन का धन मिला, जो किसान को दिया।

१०—एक सूखी वाटिका ध्यानकुमार के पहुँचने मे हरी होगयी।

११—वाग के स्वामी ने अपनी कन्या का विवाह ध्यानकुमार से कर दिया।

पद्मनाभि चरित्र

यारांगकुमार चरित्र मे

१—एक अविवेकी राज के भेजे कुटिल अश्व पर चढने से एक वन मे पहुँचा।

शान्तनु-मत्स्यगधा की कहानी।	२—वन मे पल्लीपति की कन्या पर मोहित हो इस शर्त पर कि इसी का पुत्र राजा बनेगा, कन्या से विवाह।
परीक्षित और ऋषि की कहानी	३—एक जैनी मुनि के गले में सर्प डाल देना।

मृगावती

ले० [समय सुन्दर]	१—सगर्भा मृगावती का रक्त मे स्नान करने का दोहद।
	२—राजा ने तालाब लाक्षारस से भरवाया, रानी ने रक्त जान स्नान किया।
	३—गरुड उसे मांसपिंड समझ उडा ले गया।
	४—एक घोर वन मे छोड़ गया। एक ऋषि की शरण में पुत्र उदयन का जन्म।
	५—मृगावती ने राजा के नाम से अकित आभूषण उदयन को पहनाया। यह आभूषण उदयन ने एक भील को एक पशु को बचाने के मूल्य रूप दिया।
	६—भील राजधानी मे उस आभूषण के कारण पकडा गया और राजा के समक्ष ले जाया गया।
	७—राजा उसके साथ आश्रम मे पहुँचा और उदयन तथा मृगावती को ले आया।
	८—एक चतुर चितेरा आया, उसने मृगावती का चित्र बनाया और अपनी विद्या से मृगावती की जाँघ पर तिल बनाया।
	९—राजा ने सदेह मे चितेरे को अपमानित किया।
	१०—चितेरे ने मृगावती का चित्र बनाकर उज्जैन के चडप्रद्योत को दिखाकर उसे मृगावती पर मोहित किया।
	११—चडप्रद्योत ने मृगावती माँगी, न देने पर कौशाम्बी को घेर लिया। युद्ध हुआ।
	१२—मृगावती चडप्रद्योत के हाथ नही चढी। उसने जैन मुनि से दीक्षा लेली।

—, ० ,—

— ४ —

प्रेमगाथा का विश्लेषण

प्रेमगाथाएँ

हिन्दी साहित्य मे प्रेमगाथाओ की एक दृढ परम्परा है। अभी कुछ समय पूर्व तक कितनी ही प्रेमगाथाओ के नाम ही ज्ञात थे, कुछ के नाम तक अज्ञात थे। अब ऐसी कितनी ही प्रेमगाथाओ का उद्घाटन हुआ है, अत आज पहले से अधिक प्रेमगाथाओ के अध्ययन का सुयोग प्राप्त है।

प्रेमगाथाओ का मुख्य आधार कोई न कोई प्रेम-कथा होती है। इस प्रेम-कथा को कवि दोहा-चौपाई जैसे छदो मे प्रबन्ध-काव्य की किसी परम्परा के अनुसार प्रस्तुत करता है, इस कथा मे लोक-तत्व की प्रधानता होती है। इतिहास को भी लोक-वार्ता के माध्यम से लिया जाता है। यद्यपि अधिकाश प्रेम-गाथाओ मे धार्मिक अभिप्राय रहता है, किन्तु यह इस परम्परा का कोई अनिवार्य लक्षण नही।

प्रेमगाथाओं की मूल कथा-वस्तु

प्रेमगाथाओ की मूल कथा-वस्तु बहुत सक्षेप मे यह है :-

१—नायक किसी दूत या अन्य माध्यम से नायिका की प्रशसा सुनता है या दर्शन करता है और दोनो एक दूसरे पर मुग्ध हो जाते हैं।

२—नायक घर त्याग कर नायिका को प्राप्त करने के लिए चल पड़ता है।

३—मार्ग में कितने ही विघ्न पड़ते हैं उन्हें पार करता है।

४—उनकी परीक्षा भी होती है।

५—कोई न कोई दैवी या अमानवीय शक्ति उसकी सहायता करती है, अन्त मे वह नायिका को प्राप्त कर लेता है और घर लौटता है।

६—लौटते समय भी विघ्न पडते हैं, जिनसे उबरता है।

७—अन्त मे मिलन होता है।

८—दुखान्त।

इस प्रकार मूल तन्तु मुख्यत ७ हैं। ये तन्तु किसी न-किसी रूप मे प्राय. सभी प्रेमगाथाओं मे मिलते हैं। एक आठवाँ तन्तु दुखान्त का भी हो सकता है जिसमें पुन. किसी कारण से नायक-नायिका मे व्यवधान हो जाता है। और एक की या दोनो की मृत्यु हो जाती है।

प्रथम तन्तु मे तीन अभिप्राय हैं

१—नायक और नायिका

२—माध्यम

३—श्रवण अथवा दर्शन से प्रेम

पहले अभिप्राय की निम्न स्थितियाँ हो सकती हैं

१—नायक को पहले प्रेम हुआ—नायिका दूर है:
(पद्मावत मे रत्नसेन मे, नल-दमयन्ती के नल मे)

२—नायिका को पहले प्रेम हुआ—नायक दूर है—
(जुलेखा ने यूसुफ को स्वप्न मे देखा और प्रेम करने लगी। उषा ने अनिरुद्ध को स्वप्न मे देख प्रेम किया)

३—नायिका को पहले प्रेम हुआ—नायक पास है
(चतुर्भुज की मधुमालती को।)

४—नायक को पहले प्रेम हुआ—नायिका पास है
(राजा चन्द की बात तथा शशिमाला कथा मे)

५—नायक-नायिका दोनो मे एक साथ प्रेम।—
(प्रेमविलास प्रेमलता मे)

दूसरे अभिप्राय के ये रूप हो सकते हैं·

१—'श्रवण' का माध्यम-पक्षी (पद्मावत मे हीरामन तोता, नल-दमयन्ती मे हंस)

मनुष्य (ढोला-मारवाणी मे ढाढियो द्वारा)
स्त्री · —दूती
आकाश भाषित—
यक्ष
प्रेत या
पदार्थ

२—दर्शन का माध्यम — चित्र
स्वप्न—(उषा, गोगाजी तथा सीरियल)
प्रत्यक्ष–(राजा चन्द की वात दुष्यन्त–शकुन्तला)

तीसरे अभिप्राय मे स्वयं प्रेम आता है। प्रेम के रूप और प्रकार अनन्त है। फिर भी वह अद्वैत है।

पहिले अभिप्राय की प्रथम स्थिति में नायक को पहले प्रेम होता है। नायक नायिका दूर है।

इसमे सबसे प्रमुख जायसी का पद्मावत है। रत्नसेन तोते से रूप-गुण-चरित्र श्रवण करके पद्मावती के प्रेम से दग्ध हो उठता है। यह अभिप्राय नया नही है। तोते का जो कार्य है वही हस का नल-दमयन्ती मे है। नूर मुहम्मद की इन्द्रावती (स० १८०१) में कुँवर कालिजर राय को स्वप्न मे एक दर्पण मे इन्द्रावती के दर्शन होते है। जिससे वह उसके प्रेम मे डूब जाता है। इन्द्रावती समुद्र पार आजमपुर की रहने वाली है। उस्मान की चित्रावली मे सुजान को देव चित्रावली के शयन कक्ष मे पहुँचा देते है, जहाँ वह चित्रावली का चित्र देखकर उसके प्रेम का शिकार हो जाता है। इन्द्रावती मे ही मधुकर-मालती की कथा मे गुण-श्रवण से मधुकर को प्रेम होता है। मालती बहुत दूर है।

नायिका को पहले जहाँ पुरुष से प्रेम हुआ है—शेख निसार (जन्म स० १७९०) की यूसुफ जुलेखा मे जुलेखा को यूसुफ से प्रेम होता है। वह स्वप्न मे यूसुफ को देखकर उसे प्रेम करने लगी है। यूसुफ बहुत दूर देश का निवासी है। रुक्मिणी को, पृथ्वीराज रासो की पद्मावती को, पृथ्वीराज रासो की सयोगिता को गुण श्रवण से प्रेम होता है। उषा-अनिरुद्ध मे उषा को स्वप्न द्वारा प्रेम होता है।

नायिकाओ को पहले, नायक पाते हैं। सीता को, आल्हा मे कितनी ही

नायिकाओ को, ढोला मे मोतिनी को। चतुर्भुजदास की मधुमालती मे मालती को। शशिमाला कथा मे मालती को।

नायक को पहले—नायिका के पास—दुष्यत को, यारु होइ तौ ऐसौ होइ में राजकुंवर को, 'शशिमाला कथा' मे दिनमणि को

नायक-नायिका को साथ-साथ—माधवानल कामकदला

माध्यम मे श्रवण का माध्यम भी महत्वपूर्ण है।

पक्षी के माध्यम से श्रवण द्वारा प्रेम होने का उदाहरण

इन्द्रावती में मधुकर है। दो तोतो की बातचीत में मालती का वर्णन सुनकर यह प्रेमपाश में बँध जाता है।

रत्नसेन भी शुक से सुनकर पद्मावती से प्रेम करने लगता है

नल हँस से सुनकर दमयती के लिए लालायित होता हैं।

चित्र मुकुट कथा में भी हस है।

मनुष्य के माध्यम का भी अभाव नही

राघवचेतन के वर्णन से अलाउद्दीन में पद्मावती के प्रति प्रेम

स्त्री ने दूती के रूप में तो लोकवार्ता में तथा अन्यथा भी बहुत भाग लिया है, आकाशभाषित का भी उपयोग किया गया है

इस आकाशभाषित का मूल दैवी भी हो सकता है, यक्ष और प्रेत से सम्बन्धित भी हो सकता है।

पदार्थ का माध्यम सबसे रोचक है

लोकवार्ता में किसी के सुनहले बाल दोनो में बहते देखकर कितने ही नायक प्रेम के वशीभूत हुए हैं। इसी प्रकार नायिका की एक जूती को पाकर जूती वाली से प्रेम का भी उल्लेख मिलेगा। हार के माध्यम से भी प्रेम हुआ है।

दर्शन के तीन रूप सभव हैं

१–चित्र अथवा मूर्ति द्वारा[1] "यारु होइ तौ ऐसौ होइ" में चित्र से प्रेमोदय होता है। इन्द्रावती में चित्र और स्वप्न का मिश्रित आधार बनाया गया है। स्वप्न में दर्पण में नायिका का दर्शन। दर्पण में छवि चित्र के ही समकक्ष होगी। केशवदास ने राम-सीता विवाह में भी चित्र का उपयोग किया है।

२–स्वप्न का माध्यम भी बहुत प्रयोग में आया है

इन्द्रावती में स्वप्न है, यूसुफ जुलेखा में जुलेखा ने

१—चित्र अथवा मूर्ति को एक ही श्रेणी का माध्यम मानना होगा।

स्वप्न मे यूसुफ को देखा, ऊषा-अनिरुद्ध मे भी स्वप्न का माध्यम है। प्रेमलता प्रेमविलास मे भी।

३–प्रत्यक्ष दर्शन तो बहुत सामान्य माध्यम है—

राम सीता, शकुन्तला-दुष्यन्त, पुरुरवा-उर्वशी, शशिमाला-दिनमणि, मालती-दिनमणि, मधु-मालती, मधुमालती-मनोहर आदि इसके उदाहरण है।

किन्तु प्रत्यक्ष दर्शन के प्रकार कितने ही हैं, एक तो अत्यन्त सामान्य सयोग राम भी वाटिका मे पहुँचे सीता भी, दोनो से एक दूसरे का साक्षात्कार हुआ।

दूसरा—नायिका किसी सङ्कट मे हैं नायक उसे उबारता है—तभी एक दूसरे का प्रत्यक्षीकरण होता है—पुरुरवा ने उर्वशी का ऐसे ही प्रत्यक्षीकरण किया, हाथी ने नायिका को उठा लिया, नायक ने बचाया, अथवा किसी राक्षस के हाथो से बचाया।

हर दशा नें सयोग या दैवयोग ही प्रत्यक्षीकरण का कारण होता है, और यह दैवयोग कितने ही प्रकार का हो सकता है।

अ—'सामान्य व्यवसाय–व्यापार'–सीता वाटिका मे गयी 'गौरी पूजन' के लिए, राम आये वाटिका मे पुष्प चयन के लिए, दैवयोग से मिल गये।

आ—सकट के माध्यम से—१, शेर या हाथी बिगड गया। भयभीत नायिका दौडी, नायक वहाँ था, उसने रक्षा की और दोनो मिले।

२—किसी 'दानव ने किसी सुन्दरी को पकड लिया।' उसकी चीख पुकार से नायक वहाँ पहुँचा और रक्षा की, दोनो का साक्षात्कार हुआ।

३—विशेष व्यवसाय-व्यापार से–नायक को कोई साहस का कार्य सौपा गया, उसे सपन्न करने मे वह ऐसे स्थान पर पहुँचा जहाँ नायिका से भेट हो गयी।

ई—दैवी सहयोग से—

नायक या नायिका को कोई देव, दानव, यक्ष, प्रेत, वृक्ष, मन्त्र या अन्य शक्ति उडाकर ऐसी जगह पहुँचाती है जिससे कि यह साक्षात्कार सिद्ध होता है।

इसके उपरात के जितने तत्व हैं उनमें प्रेमगाथाकार तरह-तरह के दैवी, अमानवी, विघ्नो के रूप खडा करता है, और तरह-तरह के विलक्षण सहयोगी, दैवयोग तथा युक्तियो के प्रकारो का समावेश करके बाधाओं का निवारण कराता है। ये बाधाएँ नायिका को प्राप्त करने के लिए जाने के समय भी पड सकती है, और नायिका को लेकर लौटते समय भी पड सकती है। इनका एक विश्लेषण कुछ आगे चलकर दिया जा रहा है।

प्रेमगाथाओं मे लोक कथा : उदाहरणार्थ पद्मावती

जायसी ने पद्मावती की कथा का सक्षिप्त परिचय यो दिया है—

कथा अरभ बैन कवि कहा।
सिंहल दीप पदमिनी रानी।
रतनसेन चितउर गढ आनी।
अलउदीन देहली सुलतानू।
राघौ चेतन कीन्ह वखानू।
सुना साहि गढ छेंका आई।
हिन्दू तुरुकन्ह भई लराई।
आदि अत जस गाथा अहै।
लिखि भाखा चौपाई कहै।[1]

इन पक्तियो मे जायसी ने यह स्पष्ट वताया है कि आदि से अन्त तक जैसी गाथा है उसे ही 'भाखा' मे वे लिख रहे हैं। यह गाथा सिंहल की पद्मिनी रानी से लेकर 'हिन्दू तुरकन भई लडाई' तक पूरी होती है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि जायसी ने जो वृत्त ग्रहण किया है वह आदि से अन्त तक एक ही गाथा है। वह गाथा लोक-गाथा है, इसमे सदेह नहीं। यह एक ऐसी लोक-कथा है जिसमे ऐतिहासिक स्थानो और पुरुषो के नाम प्रविष्ट कर दिये गये हैं। सामान्यत यह कहानी किसी देश के एक राजा की कहानी है। अत रत्नसेन, पद्मावती, चपावती, गधर्वसेन, राघव चेतन आदि को ही अनैतिहासिक अथवा लोक-कथा से लिये गये मानना उचित नही।

शुक्लजी ने लिखा है "पद्मावत की सपूर्ण आख्यायिका को हम दो भागो मे विभक्त कर सकते हैं। रत्नसेन की सिंहल द्वीप-यात्रा से लेकर पद्मिनी को लेकर चित्तौर लौटने तक हम कथा का पूर्वार्द्ध मान सकते हैं और राघव के निकाले जाने से लेकर पद्मिनी के सती होने तक उत्तरार्द्ध। पूर्वार्द्ध तो विलकुल कल्पित कहानी है और उत्तरार्द्ध ऐतिहासिक आधार पर है।" (जायसी ग्रन्थावली—पृ० २४–२५)

पूर्वार्द्ध के सम्वन्ध मे उन्होने आगे लिखा है, "उत्तर भारत मे, विशेषत अवध मे, पद्मिनी रानी और हीरामन सूए की कहानी अव तक प्राय उसी रूप मे कही जाती है जिस रूप मे जायसी ने उसका वर्णन किया है।" [जायसी ग्रन्थावली, पृ० ३०] शुक्ल जी पद्मावत के उत्तरार्द्ध का ऐतिहासिक आधार

१. आचार्य शुक्लजी जायसी ग्रथावली, दोहा २४, पृ० १०।

मानते है और जायसी के ऐतिहासिक ज्ञान की भी प्रशसा करते हैं किन्तु अन्त मे वे यही अनुमान करते हैं कि —

"जायसी ने प्रचलित कहानी को ही लेकर सूक्ष्म ब्यौरों की मनोहर कल्पना करके, उसे काव्य का सुन्दर रूप दिया है ।" [वही, पृ० ३०] वस्तुत यह अनुमान ही यथार्थ है, क्योकि यह समस्त कहानी आरभ से अन्त तक लोक-कहानी की भाँति प्रचलित हो गयी थी । शुक्ल जी ने ऐतिहासिक आधार के लिए टाड से उद्धरण दिया है । उससे तो पूर्वार्द्ध भी ऐतिहासिक प्रतीत होगा । "भीमसी का विवाह सिंहल के चौहान राजा हम्मीर शक की कन्या पद्मिनी से हुआ था जो रूप गुण मे जगत मे अद्वितीय थी ।" [वही, पृ० २५]

पूर्वार्द्ध का समस्त वृत्त तो इतना ही है कि रतनसेन का सिंहल की पद्मिनी अथवा पद्मावती से विवाह हुआ । यह टाड मे लिखा ही है । टाड ने चारणो से लिया था । इससे भी यह सिद्ध है कि यह समस्त वृत्त टाड के समय तक तो लोक-कथा हो ही चुका था, अकबर के समय मे भी यह लोक-कथा के रूप मे था । 'आईने अकबरी' मे भी इसी प्रकार का वृत्त दिया गया है । पृथ्वीराज रासो मे इसी कथा-रूप का एक वृत्त है ।

इससे यह स्पष्ट हो गया कि—

१—पद्मावत की सपूर्ण कथा लोक-कहानी हैं ।

२—उसका ऐतिहासिक वृत्त से सबध लोक-क्षेत्र मे ही हो गया था, जिससे कहानी मे ऐतिहासिक नाम आ गये और लोक-कहानी के अभिप्रायो की ऐतिहासिक व्याख्या लोक-मानस मे प्रस्तुत करदी गयी, जिसका काव्य-रूप जायसी ने खडा किया ।

जो स्थिति 'पद्मावत' की है, वही प्राय सभी ऐसी प्रेमगाथाओ की है जो ऐतिहासिक कही जा सकती हैं । दे० पीछे पृ० २१४ तथा २४२ ।

किन्तु किसी भी वृत्त के लोक-रूप की परीक्षा इतनी ही कथा से नही हो सकती । किसी भी लोक-कथा का स्वरूप अभिप्रायो अथवा कथानक-रूढियो के द्वारा ही सिद्ध होता है । पद्मावत की कथानक रूढियाँ ये है—

१—सिंहल द्वीप की पद्मिनी

२—सदेशवाहक शुक

३—यह शुक बहेलिये द्वारा पकडा जाकर चित्तौड के ब्राह्मण के हाथ बेचा जाता है ।

४—राजा तोते को खरीदता है

५—राजा की रानी इस भय से कि तोता राजा से पद्मिनी का रूप कहेगा तो वह उसके मोह मे पड जायगा, तोते को मार

डालना चाहती है, पर तोता बच जाता है ।

६—एक राजा जो शुक से पद्मिनी का रूप सुनकर उसके प्रेम में मग्न हो जाता है ।

७—राजा अपनी पहली रानी और राज-पाट को त्याग कर शुक के पीछे पीछे चलता है ।

८—राजा नाव मे बैठकर सात समुद्र पार करता है ।

९—सिंहल मे अगम्य गढ मे पद्मिनी का निवास ।

१०—एक शिव जी के मन्दिर मे राजा का तपस्या करना, जहाँ वसंत के दिन पद्मिनी का आना ।

११—पद्मिनी को देखकर राजा बेसुध, पद्मावती उस बेहोश राजा की छाती पर कुछ लिख कर चली गयी ।

१२—होश आने पर राजा का दुःख

१३—पार्वती द्वारा राजा के प्रेम की परीक्षा ।

१४—महादेव जी द्वारा कृपा करके सिद्धि देना और गढ का मार्ग बताना ।

१५—राजा ने गढ पर चढाई की । एक अगाध कुंड मे रात में प्रवेश किया, वहाँ वज्र किवाड लगे मिले जिन्हें राजा ने खोला ।

१६—राजा महलो मे गया और पकडा गया, उसे सूली देने का आदेश ।

१७—शिव-पार्वती ने भाट बन कर पद्मिनी के पिता को समझाया कि यह तो राजा है, पर उसने न माना ।

१८—युद्ध की घोषणा, जोगियो की ओर से हनूमान, विष्णु, तथा शिव को देखा तो राजा ने आधीनता मानी ।

१९—पद्मावती रत्नसेन को मिली ।

२०—नागमती ने पक्षी के हाथ रत्नसेन के पास सिंहल सदेश भेजा ।

२१—राजा पद्मावती और बहुत सा धन ले सिंहल से विदा हुआ ।

२२—समुद्र ने याचक बन कर धन माँगा पर राजा ने न दिया ।

२३—समुद्र मे तूफान से जहाज भटक कर लङ्का मे पहुँचे जहाँ विभीषण का राक्षस उन्हे एक वात्याचक्रालोडित समुद्र मे ले गया ।

२४—तभी एक राजपक्षी उस राक्षस को लेकर उड गया ।

२५—रत्नसेन-पद्म का जहाज टूक टूक हो गया, दोनो लकडी के टुकडो को पकड कर अलग अलग बह गये ।

२६—पद्मावती बह कर वहाँ पहुँची जहाँ लक्ष्मी थी । लक्ष्मी ने उसे बचाया ।

२७—लक्ष्मी ने समुद्र से कहा कि रत्न को लाये ।

२८—समुद्र एकान्त द्वीप मे विलपते रत्नसेन के पास पहुँचा ब्राह्मण वनकर—और उन्हे डडे के सहारे माया से पद्मावती के द्वीप पर ले आया ।

२९—लक्ष्मी ने पद्मावती का रूप धर रत्नसेन की परीक्षा ली, तव पद्मावती मे मिलाया ।

३०—समुद्र ने पांच चीजें भेंट देकर दोनो को विदा किया । पांच चीजे .

१—अमृत, २—हस, ३—सोनहापक्षी, ४—शार्दूल, ५—पारस पत्थर ।

३१—लक्ष्मी के दिये वाडे मे मे रत्न लेकर लाव-लश्कर जगन्नाथ मे खरीदा, चित्तौड को चले ।

३२—नागमती को अदृश्य शक्ति ने पति के आने की सूचना दी ।

३३—एक महापडित राघवचेतन ने आकर काव्य सुनाकर राजा का वश मे कर लिया ।

३४—उसने यक्षिणी-सिद्धि से प्रतिपदा को दूज का चन्द्रमा दिखा दिया राज पडितो का इस प्रकार अपमान ।

३५—अपमानित पडितो ने ऐसे जादूगर को राज-सभा मे रखने के खतरे राजा को सुझाये, राजा ने राघवचेतन को देश-निकाला दिया ।

३६—राघवचेतन ने जाते-जाते पद्मिनी का रूप देखा और पद्मिनी का दिया कगन लिया ।

३७—पद्मिनी के रूप से वह मूर्छित होगया ।

३८—राघव ने दिल्ली के अलाउद्दीन को पद्मिनी का सौदर्य बताया तथा रत्नसेन के पास पांच अमोल रत्नो के होने की वात भी कही ।

३९—अलाउद्दीन ने राघव के हाथ पत्र भेजा कि पद्मिनी को दिल्ली भेजो, राजा ने मना किया । अलाउद्दीन ने गढ घेर लिया ।

४०—दोनो मे घमासान युद्ध होने लगा । किन्तु राजा ने फिर भी 'राज-पँवर' पर नृत्य-अखाडा जोडा ।

४१—कन्नौज के मलिक जहांगीर ने अलाउद्दीन के कहने से नीचे मे एक वाण छोड एक नर्तकी को मार डाला ।

४२—अलाउद्दीन ने सदेश भेजा कि राणा पांचो नग दे दे, पद्मिनी नही लेंगे । राजा ने नग भेजे, सधि हुई ।

४३—अलाउद्दीन चित्तौड देखने गया । राजा मे शतरज खेलने हुए

झरोखे मे आयी हुई पद्मिनी को शीशे मे देखा, और मूर्छित हो गया ।

४४—गढ से लौटते हुए शाह ने विदा के लिए साथ आये हुए राजा को प्रेम दिखाते हुए वदी वना लिया ।

४५—इस वियोग मे कुभलनेर के राजा देवपाल ने दूती को पद्मावती को फुसला लाने के लिए भेजा ।

४६—दूती ने पद्मावती को फुसलाना चाहा, पर वह असफल रही और उसे बुरी तरह पीट कर निकाल दिया गया ।

४७—शाह ने भी पातुर दूती को जोगिन वना कर भेजा कि वह उसे ले आये ।

४८—जोगिन के कहने से पद्मावती जोगिन वनने को तैयार हुई, पर सखियो ने रोक लिया ।

४९—तव पद्मावती के साथ गोरा-वादल ने रत्नसेन को छुडाने का वचन दिया ।

५०—वादल की नव परिणीता वधू ने रोका, पर रुका नही ।

५१—सौलहसै चडोल सजाये गये, पद्मिनी की पालकी मे लुहार वैठा और डोलो मे राजपूत । ये दिल्ली चले ।

५२—शाह से कहा कि पद्मिनी आपके यहाँ आयी है, पर वह रत्नसेन से मिलकर तव आयेगी । रत्नसेन से मिलने की आज्ञा दीजिये ।

५३—इस विधि से रत्नसेन को छुडा लिया गया, और चित्तौड को भगा दिया गया ।

५४—वादल सेना के साथ चित्तौड लौटा । गोरा ने शाह की सेना को रोका, युद्ध किया और मारा गया ।

५५—राजा चित्तौड पहुँचा । प्रसन्नता छा गयी । पद्मावती ने देवपाल की दूती की वात वतायी ।

५६—राजा देवपाल पर चढाई करके गया, उसे मार डाला ।

५७—देवपाल की सेल का घाव राजा के लग गया था, जिससे वह भी मर गया ।

५८—नागमती और पद्मावती सती होगयी ।

अभिप्रायो की इस सूची के देखने मात्र से यह प्रतीत हो जाता है कि प्रत्येक अभिप्राय काफी विस्तृत क्षेत्र मे लोक-कथाओ मे उपयोग मे आता रहा है । कोई भी मात्र ऐतिहासिक नही ।

कुछ विशेष अभिप्रायों पर विचार—

द्वीप इस अभिप्राय का रूप यह है कि एक द्वीप है। एक द्वीप से का तात्पर्य है वह स्थान जो चारो ओर से घिरा हुआ है। द्वीप जल से घिरा हुआ होता है, किन्तु यदि कोई अन्य स्थान हो जो चारो ओर से कठिनाइयो से घिरा हुआ हो तो वह इस द्वीप के समकक्ष ही होगा।

द्वीप का उल्लेख 'The Four Skillful Brothers' नामक कहानी (Type 653) मे है जिसमे तारिका द्रष्टा (Star Gazer) देख लेता है कि वह सुन्दरी दूर समुद्र मे एक पहाड पर एक अहिदैत्य (dragon) के आधीन है। [देखिये स्टिथ थामसन द फोकटेल—पृ० ८१] राजा नल के प्रसिद्ध भारतीय लोकोपाख्यान मे मोतिनी भी द्वीप मे रहती है। सीता को रावण हर के द्वीप मे ले गया है।

द्वीप की स्थिति सात समुद्र पार— सात समुद्र पार का अभिप्राय लोक वार्ताओ मे बहुत प्रचलित है।

सात की सख्या लोकवार्ता को अत्यन्त प्रिय है। यथा—

१—प्लिनी ने बताया है कि कुछ जातियो के मनुष्य मकडी के जाले के तार मे सात या नौ गाठे बाँधकर जांघ और पेट के जोड के स्थान के रोग को दूर कर देते थे। प्रत्येक जोड बाँधते समय किसी विधवा का नाम लेना आवश्यक था।

२—ओडोनोवन ने तुर्कमानो मे एक प्रथा का उल्लेख किया है। एक ऊँट के बाल मे सात गाठें बाँधकर बुखार से पीडित व्यक्ति को पहनायी जाती थी। प्रतिदिन एक गाँठ खोली जाती थी। अन्तिम गांठ खुलने पर बुखार दूर हो जाता था। (Golden Bough. p. 242)

३—क्रीट द्वीप के माइनोज को प्रति आठवे वर्ष एथेन्स निवासी ७ युवक और ७ युवतियाँ भेंट मे भेजा करते थे। [गो० बा० पृ० २८०]

४—मलाया अन्तरीप मे चावल की फसल काटने से पूर्व चावल की आत्मा को घर लाने का सस्कार होता है। इसमे खेत मे खडी चावलो की फसल मे से एक गुच्छे को चावल की आत्मा की माँ मान लिया जाता है। एक बूढी स्त्री उस गुच्छे मे से सात बाले चावल की चुन लेती है। ये सातो बालें नवोत्पन्न बच्चे की भाँति चावल की आत्मा की तरह घर ले जायी जाती है और अन्य विशेष सस्कार सम्पन्न होते है। (गो० बा० पृ० ४१७)

५—बेलजियम आर्डेनेंस (Belgian Ardennence) मे ग्राण्ड हलव्यू

(Grand Halleaux) के दिन घर घर से ईंधन बटोर कर ऊँचे स्थानों पर होली जलायीं जाती हैं। यह माना जाता है कि गाँव की सुरक्षा की दृष्टि से सात होलियाँ जलती दीखनी चाहिये (वही, पृ० ६१०)

६—यूनानी गाथाओ मे सात भाइयों का उल्लेख है जिन्होंने थीवीज (Thebes) पर आक्रमण किया था। थीवीज के सात दरवाजे थे जिनकी रक्षा सात थीवन वीर कर रहे थे। सातो भाइयो ने एक दरवाजे को आक्रमण के लिए चुना था, पर विफल हुए थे। [स्टैंडर्ड डिक्शनरी ओफ फोकलोर, आदि पृ० ९९९।]

७—जापानी धर्मगाथा मे भाग्य के सात देवताओ का उल्लेख है। (शिचि फुकुजिन) [स्टैण्डर्ड डिक्शनरी आव फोकलोर पृ० ९९९।]

८—अनेको जातियो मे सातवां लडका या सातवीं लड़की अथवा सातवें लडके का सातवां लडका अत्यन्त भाग्यशाली माना जाता है। (स्टैण्डर्ड डिक्शनरी ओफ फोकलोर पृ० ९९९।]

९—भारत मे सप्तर्षि प्रसिद्ध हैं।

१०—सप्त सैंधव—सात नदियो का उल्लेख वेदो मे है। अवस्ता मे हैं, वर्जिल के काव्य मे हैं, महाभारत मे है। पुराणो मे है।

११—सात समुद्रो का उल्लेख भी इसी प्रकार मिलता है।

१२—सप्त द्वीप नव खण्ड भी प्रसिद्ध है।

१२—सप्त वध्रि नाम के एक वैदिक ऋषि का उल्लेख है। जिसके सम्बन्ध मे यह कहानी है कि उनके सात भाई थे जो उसे रात को एक टोकरी मे बन्द कर देते थे। प्रात उसे खोल देते थे, जिससे वह रात मे अपनी पत्नी से न मिल सके।

सिंहल द्वीप का नाम : सिंहल द्वीप के अभिप्राय का उपयोग सन् १०६५ ई० अथवा स० १००८ वि० मे रचित मुनि कनकामर की अपभ्रंश कृति 'करकडु चरित्र'[1] मे भी हुआ है :

करकडु दक्षिण के राज्य पर चढाई करने के लिए गये थे तो वे 'सिंहल द्वीप' भी गये, वहाँ की राजकुमारी रतिवेगा से विवाह किया। १२७५ के जिनदत्त चरित्र मे सिंहल द्वीप का उल्लेख है। अत. प्रेमकथाओ मे 'सिंहल द्वीप' जायसी से बहुत पहले से ही सुन्दरी स्त्रियो के देश के रूप मे उपयोग मे आने लगा था।

---

१. दे० प्रो० हीरालाल जैन द्वारा सपादित, करंजा जैन ग्रन्थमाला, १९३४ ई०

इस सम्बन्ध मे आचार्य शुक्ल के मत का सारांश यह है —

१—यदि सिंहल नाम ठीक मानें तो वह राजपूताने या गुजरात का कोई स्थान् होगा ।

२—वहाँ न चौहान हैं ।

३—वहाँ के लोग काले हैं, पद्मिनियाँ वहाँ कहाँ ।

४—वहाँ पद्मिनी की कल्पना गोरखपथी साधुओ की कल्पना है । उनकी दृष्टि मे सिंहल द्वीप एक सिद्धपीठ है । यहाँ साक्षात शिव परीक्षा लेकर सिद्धि देते हैं । वहाँ सुवर्ण और रत्नो की अतुल राशि सामने आती है तथा पद्मिनियाँ अनेक प्रकार से लुभाती हैं । गुरु मत्स्येन्द्र नाथ सिंहल मे पद्मिनियो के जाल मे फँस गये, जहाँ से उनके शिष्य गोरख ने उनका उद्धार किया ।[1]

५—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने सिंहल को योगियो का त्रियादेश माना है क्योकि मत्स्येन्द्र त्रियादेश मे ही स्त्रियो के चक्र मे फँस गये थे । उन्होंने लिखा है :—

"मत्स्येन्द्रनाथ जिस कदली देश या स्त्री देश मे नये आचार मे जा फँसे थे, वह कहाँ है ? मीन चेतन और गोरक्ष विजय मे उसका नाम कदली देश बताया गया है, और योगि सम्प्रदायाविष्कृति मे त्रिया देश अर्थात् सिंहल द्वीप कहा गया है ।" सिंहल देश ग्रन्थकार की व्याख्या है । तब विविध मतो का उल्लेख करके वे लिखते है कि इन सब बातो से प्रमाणित होता है कि यह हिमालय के पाददेश मे अवस्थित है । कमायूँ गढवाल के अन्दर पडने वाला प्रदेश हैं । अन्त मे वे इसे कामरूप मानते हैं । [नाथ सम्प्रदाय पृ० ५५-५६]

सिंहल और लङ्का के सम्बन्ध मे कुछ ऐसा विदित है कि ये उडियान के दो भागो मे से एक है—उड्डियान मे सम्भलपुर और लंकापुर दो स्थान हैं—सम्भलपुर सिंहल हो सकता है । यह जालन्धर पीठ के पास है [नाथ सम्प्रदाय पृ० ७८ ।]

गंधर्वसेन सिंहल मे गंधर्वसेन नाम के राजा की कल्पना भी लोक-वार्ता के कारण मानी जायगी गंधर्वसेन तो गंधर्वो मे ही हो सकता है, सिंहल मे गन्धर्व कहाँ ?

सप्तद्वीप :—सप्त द्वीपो में जायसी ने ये नाम गिनाये हैं ।

१—सिंहल, २—दियादीप, ३—सरनदीप, ४—जम्बूदीप

---

१. जायसी ग्रन्थमाला पृ० २६

५—लका दीप, ६—गभस्थल दीप, ७—महु स्थल ।[1]

१—जायसी ने सप्तद्वीपों का उल्लेख इस प्रकार किया है—

"सात दीप वरनै सव लोगू, एको दीप न ओोहि सरि जोगू ।
दियादीप नहि तस उँजियारा, सरन दीप सरि होइ न पारा ।
जवूदीप कहौं तस नाहीं । लकदीप सरि पूज न छाहीं ।
दीप गभस्थल आरन परा, दीप महुस्थल मानुस-हरा ।
सब संसार परथमे आए सातौं दीप,
एक दीप नहि उत्तिम सिघल दीप समीप ॥१॥
[जायसी ग्रथावली, सिघल द्वीप वर्णन खंड पृ० ११]

किंचित आश्चर्य यह है कि इस सप्तद्वीप वर्णन पर आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल जी की पैनी दृष्टि पडने से कैसे रह गयी कि उन्हे भूमिका मे यह लिखना पड गया—

"सप्त द्वीपों के तो उन्होंने कहीं नाम नहीं लिए हैं" [वही, भूमिका पृ० २१४] जबकि उपरोक्त अश पर पृ० ११ की पाद-टिप्पणी मे उन्होंने वह उल्लेख किया जिसका कि आगे सकेत किया जा रहा है ।

अब इन द्वीपों के सबंध में डा० वासुदेव शरण ने जो टिप्पणी "पदमावत (मूल और सजीवनी व्याख्या)" मे पृ० २५-२६ पर दी है, उन्हें भी उद्धृत करना समीचीन होगा—

"(५-७)यहाँ जायसी ने मध्यकालीन भूगोल की कहानियों में कल्पित सात द्वीपो का वर्णन किया है । अरब और चीनी भूगोल और कहानी साहित्य मे इन नामो की जोड-तोड और कल्पना के कई रूप हो गए ।

दिया दीप=दीउ नामक द्वीप, जो काठियावाड़ी समुद्रतट के पास है ।

सरा दीप=सरन दीप, स्वर्णद्वीप जो सुमात्रा का मध्यकालीन नाम था ।

लक दीप=संभवत वही था, जिसे याकूबी (लगभग ८७५ ई०) ने लग बालूस कहा है और जो द्वीपान्तर मे कहीं था । स्पष्ट ही जायसी का लकद्वीप सिहल से भिन्न था । कुश द्वीप का उल्लेख पुराणो मे और दारा प्रथम के लेखो मे है इसकी पहचान अबिसोनिया से की जाती है । श्री शिरेफ ने इन सातों नामों को पद्मावती के शरीर पर भी घटाया है ।

जैसे दिया दीप=स्त्री के चमकीले नेत्र, सरन दीप=श्रवण या कान, जम्बु द्वीप=भौंराली जामुन जैसे काले केश, लक द्वीप=कटि प्रदेश, कुश स्थल, पाठान्तर कुम्भस्थल=स्तन, महुस्थल=मधुस्थल, गुह्यभाग । इन नामों का निश्चित भौगोलिक अर्थ जायसी के मन मे था, ऐसी सभावना नहीं । उन्हें ये नाम लोक-कथाओं से प्राप्त हुए होगे ।" डाक्टर साहब का अन्तिम वाक्य ही यथार्थ है । क्योंकि दिया-दीप, सरा दीप, लक दीप आदि का भोगोलिक अनुसंधान तो विद्वानों का अपना है । जिस रूप मे सप्त द्वीपों का उल्लेख लोक-वार्त्ता या साहित्य में हुआ है उससे यह संभावना नहीं कि काठियावाड, सुमात्रा, लग बालूस, अबीसिनिया जैसे स्थानों को उसमे सम्मिलित किया गया होगा । लोक-प्रचलित किसी वार्ता से ही जायसी ने ये नाम लिये होंगे । वस्तुत अभी उस वार्त्ता का अनुसधान अपेक्षित है ।

आचार्य शुक्ल जी ने द्वीपो के विषय मे यह टिप्पणी दी है।

'अरब वाले लङ्का को सरनदीप कहते थे। भूगोल का ठीक ज्ञान न होने के कारण कवि ने सरनदीप, लङ्का और सिंहल को भिन्न-भिन्न द्वीप माना है।[1] इस दृष्टि से सरन, लङ्का और सिंहल एक द्वीप ही के विविध नाम हुए'। दिया-दीप, जम्बूदीप, गभस्थल तथा महुस्थल ये नाम भी लोक से लिये गये प्रतीत होते हैं क्योकि मान्य द्वीप तो हैं १—जम्बू, २—प्लक्ष या गोमेदक, ३—शाल्मलि, ४—कुश, ५—क्रौच, ६—शाक, ७—पुष्कर। इनमे से जम्बू के अतिरिक्त कोई नाम जायसी से नही मिलता। महाभारत मे तो चार ही द्वीपों का उल्लेख है। १—भद्रश्व, २—केतुमाल, ३—जम्बू द्वीप, ४—उत्तर कुरु। विष्णु पुराण ने भारत मे ९ द्वीप वतलाये है

१—इन्द्रद्वीप, २—कसेरुमत, ३—ताम्रवर्ण, ४—गभस्तिमत। ५—नाग द्वीप ६—सौम्य, ७—गांधर्व, ८—वारुण, ९—कुमारक।

इनके चौथे द्वीप गभस्तिमत मे जायसी के गभस्थल का वीज दिखायी पडता है। दियादीप और महुस्थल का मूल क्या है? कहाँ है?

पद्मिनी—'पद्मिनी' शब्द यो तो कामशास्त्र के नायिका प्रकरण से सम्बन्ध रखता है और वही मे लिया भी गया होगा, किन्तु आज यह शब्द लोकवार्ता से घनिष्ठ रूप मे सम्बन्धित है। पद्मिनी ही नही सिंहल की पद्मिनी। समस्त नायिकाओ मे पद्मिनी श्रेष्ठतम है। वह पद्मगधा, पद्मयोनि तथा पद्म काया होती है। इस प्रकार से 'पद्मिनी' शब्द एक स्त्री मे पूर्ण सर्वोत्तम गुणो का द्योतक है। पद्मिनी शब्द इस क्षेत्र से चलकर लोकक्षेत्र मे पहुँच कर अत्यन्त सुन्दरी का पर्यायवाची वन गया। इस रूप मे यह पद्मिनी अनेको कहानियो की नायिका बनी। पद्मिनी और पद्मावती प्राय पर्यायवाची हो गयी हैं।

एक पद्मिनी का उल्लेख कल्किपुराण मे मिलता है। यह पद्मावती सिंहल-देश के राजा वृहद्रथ की पुत्री है। भगवान शिव ने उसे वरदान दिया है कि नारायण उसका पाणिग्रहण करेंगे। अन्य पुरुष यदि उसे काम-भाव से देखेंगे तो नारी हो जायेंगे। कल्कि को अपने सर्वज्ञ शुक मे यह कथा ज्ञात हुई। उन्होंने उसे पद्मावती के पास भेजा। सन्देश मिलने पर कल्कि ने सिंहल के लिए प्रस्थान किया। वहाँ पहुँच कर वे कदम्ब के नीचे मणि वेदिका पर सो गये। तभी पद्मावती उनसे मिलने आयी, अन्त में दोनो का विवाह हो गया।

पद्मावती नाम की कई नायिकाएँ कथासरित्सागर में आती है। उदयन की पत्नी पद्मावती तो ऐतिहासिक भी मानी जा सकती है।

पद्मावती पृथ्वीराज रासो मे भी है। और वह समुद्रशिखर के राजा

१—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ११ की पाद टिप्पणी

विनयपाल की पौत्री है जो पृथ्वीराज चौहान से प्रेम करने लगी है। और तोते को भेजकर पृथ्वीराज को बुलवाकर विवाह करती है।

श्री नाहटा जी ने नागरी प्रचारणी पत्रिका वर्ष ५६, अक १,२०११ मे राजस्थान में प्रचलित कई पद्मिनियों और पद्मावतियो की कहानियों का उल्लेख किया है।

मुँहणौत नैणसी में ४ पद्मावतियो का उल्लेख है।

पद्मावति की ज्योति

प्रथम सो जोति गगन निरमई। पुनि सो पिता माथे मनि भई।

पुनि वह जोति मातु घट आई। तेहि ओदर आदर कहू भाई।

पद्मावती के रूप की ज्योति पदार्थ विषयक स्थापना आदिम मूल भाव से सम्बन्धित है। आदिम मानस निराकार को मूर्त बनाकर ही ग्रहण करता है। इस एक कथन में लोक-मानस के कई तत्व एक साथ समाविष्ट हैं :—

१—मूर्त ग्रहण—पद्मावती के मूल अस्तित्व की ज्योति रूप मे स्थापना "Whatever is capable of effecting mind, feeling or will has thereby established its undoubted reality" (पृष्ठ 20 B. Ph.)

२—पदार्थ की भाँति आदान प्रदान ज्योति गगन में बनायी गयी

फिर पिता के माथे, तब उदर मे.

'Just as the imaginery is acknowledged as existing in reality so concepts are likely to be substantialized' (पृ० 22. B. Ph.)

३—अश या सार समस्त के समान —

"Hence there is coalesence of the symbols and what it signifies as there is coalescence of two objects compared so that one may stand for the other—पृ० 21, Before Philosophy)

गगन निरमई—तथा 'दिया जो मनि सिव लोक महँ'—मणि ज्योतिवत्। मणि यहाँ उपमान नही, पद्मावती के सार-रूप को कवि ने मणि ही माना है।

इस प्रकार इन कुछ बातो के इस तात्विक विवेचन से यह सकेत मिलता है कि प्रेमगाथा मे समस्त काव्य की मूर्तानुभूति का आधार मूल लोक-मानस ही है। पद्मावत का तथा अन्य प्रेमगाथाओं का तात्विक विवेचन पूर्ण विस्तार के साथ करने का इस प्रबन्ध मे अवकाश नहीं। केवल उदाहरण रूप लोकतत्व का निर्देश यहाँ कर दिया गया है।

—.०.—

रूप-सम्मोहन— प्रेमकथाएँ रूप-सम्मोहन के मोहन से विशेषत: आक्रान्त मिलते हैं। यह एक विशेष अभिप्राय के रूप मे आता है। कही-कही तो इसे निष्कासन का एक आधार भी बनाया जाता है। रूप-सम्मोहन से नारी समाज मे अत्यधिक विकलता का चित्रण प्रेमकथाकारो ने किया है। कुछ उदाहरण इस परिपाटी को दिखाने के लिए अपभ्रंश मे देना समीचीन होगा—

णाय कुमार चरिउ मे नागकुमार को साक्षात् कामदेव बताया गया है और कहा है — 'पेक्खउ जहि जहि जे जगु तहि तहि जि सुलक्खण भरियउ
वण्णइ काइ कइ जो वम्महु सई अवयरियउ'

जंबुसाम चरिउ मे जंबू स्वामी को इतना सुन्दर बताया गया है कि नगर वधुएँ उन्हे देखकर उन पर आसक्त हो जाती थी।

सुदर्शनचरित्र मे सुदर्शन को ऐसा आकर्षक बताया गया है कि उसे देखकर सुन्दरियाँ अपनी सुधि खो बैठती थी, उलटे आभूषण पहनने लगती थी, दर्पण मे अपने प्रतिबिंब को तिलक लगाने लगती थी।

करकंडु को देखकर नगर वधुओ की जो दशा हुई उसे करकंडु चरित्र मे विस्तार मे कवि ने बताया है—कि

'कोई स्त्री स्नेहलुब्ध हो चल पडती है, अपने शरीर से गिरते हुए वस्त्र को संभालने की भी किसी को सुधि नही, कोई ओठो पर ही काजल लगाने लगी, और आँखो मे लाक्षारस सारने लगी। कोई निर्ग्रन्थो की तरह आचरण करने लगी, किसी ने बच्चे को उलटा ही उठा लिया, किसी ने नूपुरो को हाथ मे पहन लिया···कोई बिल्ली के बच्चे को अपना पुत्र समझ लिये हुए है, कोई मानिनी कामातुर हो करकंडु की ओर चल पडी है। —आदि।

अपभ्रंश मे ही नही संस्कृत पुराणो मे भी ऐसे सौन्दर्य का वर्णन है, जो स्त्रियो को विकल कर देता है। प्रद्युम्न को कामावतार माना गया है। अनिरुद्ध को भी। उन्हे देखकर स्त्रियो के स्खलन के वर्णन संस्कृत मे मिलते हैं।

इसी परंपरा मे माधवानल कामकंदला मे, मधुमालती मे, तथा अन्य हिंदी कथा-काव्यो मे नायको के सौन्दर्य का आक्रान्तक वर्णन है। नागरिकाएँ सौन्दर्य-मुग्ध पागल सी हो नायक के पीछे चल पडती हैं। अत्यधिक कामातुरता से गर्भस्खलन तक का उल्लेख किसी-किसी काव्य मे मिलता है।

इस समस्त काव्य-परपरा के मूल मे यह भाव विद्यमान है कि नायक कामावतार है, या कामदेव की शक्तियों की उसे सिद्धि है। यह मूलभाव 'लोरमानस' के टोने (मैजिक) के भाव से घनिष्ठ रूपेण संबद्ध है।

इस प्रकार इन कुछ बातो के इस तात्विक विवेचन से यह सकेत मिलता है कि प्रेमगाथा में समस्त काव्य की मूर्तानुभूति का आधार मूल लोक-मानस ही है। जितना गभीर तात्विक विवेचन किया जायगा, उतना ही यह लोक-मानम उद्घाटित होगा।

— ० —

—५—

प्रेमगाथा का स्वरूप

यहाँ पर हिन्दी की लगभव २३ प्रेमगाथाओ के स्वरूप का विश्लेषण दिया जा रहा है। आरम्भिक तालिका १ में प्रेमगाथाओ के नाम और उनकी सख्या दी गयी है। आगे के विश्लेषण की तालिका में ग्रन्थ का नाम न देकर यह सख्या ही दी गयी है। दूसरी तालिका मे प्रेमगाथा के स्वरूप के तत्त्व प्रस्तुत किये गये हैं, उनके साथ भी सख्या दी गयी है, यही सख्या तीसरी तालिका मे तद्विषयक तत्वका निर्देश करती है —

तालिका—१

सख्या	गाथा नाम	लेखक	रचना
१	मृगावती	शेख कुतवन	१५६० वि०
२	पद्मावती	जायसी	१५७८ वि०
३	मधु मालती	मलिक मझन	१६०२ वि०
४	चित्रावली	उसमान	१५७० वि०
५	कनकावती	जान कवि	१६७५ वि०
६	कामलता	,,	१६७८ वि०
७	मधुकर मालती	,,	१६६१ वि०
८	रतनावली	,,	१६९१ वि०
९	छीता	,,	१६६३ वि०

१०	हुस्न जवाहर	कासिम शाह	१७९३ वि०
११	इन्द्रावति	नूर मुहम्मद	१८०१ वि०
१२	अनुराग बाँसुरी	"	१८२१ वि०
१३	यूसुफ जुलेखा	शेख निसार	१८४७ वि०
१४	नूरजहाँ	ख्वाजा अहमद	१६६२ वि०
१५	भाषा प्रेमरस	शेख रहीम	१९७२ वि०
१६	ढोला मारू दूहा		
१७	रस रतन	नारायण	१६७५ वि०
१८	छिताई वार्ता	नारायण	१६४७ वि०
१९	विरह वारीश	बोधा	१८०६ वि०
२०	माधवानल कामकदला	गणपति	१५८४ वि०
२१	माधवानल कथा	दामोदर	१६३७ वि०
२२	प्रेम विलास प्रेमलता कथा	जटमल	१६९३ वि०
२३	राजा चित्रमुकुट रानी चन्द्र किरन की कथा		

प्रेमगाथा का स्वरूप : तालिका—३

१	२	३	४	५
आश्रय	अवलम्ब	आश्रय	अवलम्ब	सामान्य संयोग
१ चन्द्रगिरि के राजा गणपति देव का पुत्र राजकुमार	कंचननगर के राजा रूप मुरारी की पुत्री मृगावती	रुक्मिनी	राजकुमार	
२ रत्नसेन	पद्मावती	नागमती	रत्नसेन	शिव-मंदिर में पद्मावती दर्शन
३ कनेसरनगर के राजा सूरजभान का पुत्र मनोहर	महारस नगर की राजकुमारी मधुमालती	. .. . .	. ... .	. .. .
(आ) ताराचन्द	प्रेमा	...	.	
४ सुजान	चित्रावली	चित्रावली कौलावती	सुजान	शिव-मंदिर में साक्षात्कार

१	२	३	४	५
५ परमरूप	कनकावती			
६ रसाल	कामलता	कामलता	रसाल	
७ मधुकर	मालती			
८ मोहन	रतनावती			
९ राजाराम	छीता			
१० हस	जवाहर			
११ राजकुवर	इन्द्रावती			
१२ अत.करण	सर्वमगला	सर्वमगला	अत करण	
१३ जुलेखा	यूसुफ			
१४ खुरशेदशाह	नूरजहाँ			
१५ प्रेमा	चन्द्रकला			पाठशाला मे प्रेमा-चन्द्रकला का मिलना प्रेम
१६ ढोला	मारवणी	मालवणी	ढोला	
१७ सोम	रभा			
१८ सरसी	छिताई			
१९ माधव	१ लीलावती	लीलावती	माधव	१ दुर्गा मदिर मे वीणा से आकर्षित हो लीलावती तथा माधव मुग्ध
	२ कामकदला	कामकदला	माधव	२ कामसेन की राजसभा मे कामकदला के नृत्य-समय ।
२० माधव	कामकदला			
२१ माधव	कामकदला	पुष्पावती की रानी रुद्र महा-देवी मोहित । अमरावती के मत्री मनवासी	माधव	

१	२	३	४	५
		की स्त्री का माधव को देख गर्भपात, अन्य स्त्रियो का भी यही हाल ।		
२२ प्रेमविलास	प्रेमलता	प्रेमलता	प्रेमविलास	गुरु-शाला में
२३ चित्रमुकुट	चन्द्रकिरन			पढते समय

	६	७	८	९	१०
	सकट से सयोग	विशेष व्यापार से	दैवी सयोग	अन्य	स्वप्न
१–	राक्षस से रुक्मिनी की रक्षा				
२–					
३–			अप्सराओ ने मनोहर को मधुमालती की चित्रसारी मे पहुँचाया		
४–					
५–					परमरूप ने स्वप्न मे कनका-वती देखी
६–					रसाल ने स्वप्न देखकर
७					

	६	७	८	९	१०
८					
९					
१०-					हस ने स्वप्न म सुन्दरी देखी
११-					राजकुवर ने स्वप्न मे सुन्दरी देखी
१२-					सर्वमङ्गला ने स्वप्न देखा
१३-					जुलेखा ने यूसुफ को स्वप्न मे देखा
१४-					खुरशेदशाह ने स्वप्न मे सुन्दरी देखी
१५-					
१६-					
१७-					रभा ने सोम का स्वप्न कामदेव माध्यम से, सोम ने रभा को स्वप्न मे देखा
१८-				विवाह द्वारा	
१९-					माधव को लीलावती स्वप्न मे दिखायी पडी कदला मिल जाने के उपरान
२०-					
२१-				कामसेन के यहाँ कामकदला को भ्रमर	

	६	७	८	९	१०
				उडाने की कला पर माधव रीझा, वहाँ से देश निकाला ।	
२२-				पुरोहित के यहाँ पठन पाठन से प्रत्यक्ष दर्शन	

	११	१२	१३	१४	१५
	सयोगात् चित्र	प्रयत्नात	पशु-पक्षी द्वारा	मनुष्य द्वारा	आकाशभाषित
१–					
२–			शुक हीरामन		
३–					
४–	एक देव द्वारा सुजान चित्रावली की चित्रसारी मे। सुजान ने अपना चित्र भी वना दिया				
५–		चित्र वनवाया गया			
६–		रसाल के चित्र पर कामलता मोहित			
७–					
८–	पिता ने जामा दिया उम पर				

	११	१२	१३	१४	१५
	रतना का चित्र				
९–				राजाराम ने छीता की सुन्दरता सुनी	
१०–					
११–					
१२–		सर्वमगला ने चित्रवधनी सखी से अत करण का चित्र मँगाया अपना भेजा	उपदेशी सुवा न सर्वमगला को अत करण के गुण सुनाये		
१३–					
१४–		नूरजहाँ की परी सखी ने स्वप्न देखते खुर० को नूरजहाँ की मूर्ति दी			परी सखी सुमति ने नूरजहाँ के रूप की प्रशसा की
१५–					
१६–					
१७–		रमा-चित्र कुमार को, कुमार चित्र रमा को			
१८–		चित्रकार छिताई का चित्र लाया अलाउद्दीन को दिखाया । प्रतिनायक			
१९–					
२०–					
२१–					
२२–					
२३–					

१६	१७	१८	१९	२०
	पदार्थ मे	प्रेम का स्वरूप	नायक प्रयत्न	नायिका प्रयत्न
१–	×	×	+	×
२–			योगी बनकर रतनसेन निकला शिव की सिद्धि पाकर गढ छेकना	पद्मावती ने अला-उद्दीन से पति को छुडाने की बुद्धि उपाई
३ -			समुद्र मार्ग से खोज	
४–			सुजान ने देव की मढी मे असमय खोला (अ) सुजान द्वारा सागरगढ की शत्रु से रक्षा आ-कौना के साथ गिरनार की यात्रा	चित्रावली ने नपुंसक भृत्यो को जोगी वेश मे भेजा अ–कौना ने बदी बनाया। आ चित्रावली द्वारा पत्र इ–कौना का दूत मिश्रदूत
५–			चित्रकार ने स्वप्न	

	१६	१७	१८	१९	२०
				मे देखी सुन्दरी का चित्र वनाया विप्र ने पहचाना कि यह कनकावती है। परमरूप जोगी। विप्र ने कनकावती को परमरूप पर आकृष्ट किया। भरथ-राय ने राजसिंघ से कनकावती के लिए युद्ध किया, जिसमे हारा।	
६-				स्वप्न की सुन्दरी का चित्र वनवाया।	
७-				मोहन ढूढने घर से निकल पडा चीन, चित्रापुरी, रूप-नगर आदि गया।	
८-				विप्र भेप मे राजाराम देवगिरि राजा देव के पुरोहित के यहाँ। राजा राम जोगी वन दिल्ली पहुँचे।	
९-				हस जोगी वना, पुन जोगी वन भोलाशाह के यहाँ	हस के पास सखी परी को भेजा।
१०-				गुरुनाथ तपी को गुरू मान राजकुमार जोगी वना-सात वन नांघे कायापति वनजारे के सात जहाज से समुद्र पार कर जिउपुर। आगे शिवमदिर में आकाश वाणी।	

	१६	१७	१८	१९	२०
११–		सर्वमयला की मणि माला ब्राह्मण के के गले में देखकर		राजकुमार मोती निकालने चला।	सर्वमगला ने १–चित्र बनवाया २–गले की माला भेजी।
१२–				यूसुफ की सवारी, औरतों में जुलेखा को पहचाना	जुलेखा को स्वप्न में यूसुफ का परिचय कि मिस्र के वजीर के मिलेंगे। मिस्र के वजीर से शादी। निराशा-यूसुफ को बाजार में जुलेखा ने खरीदा। जुलेखा ने भागते यूसुफ को लाछन लगा बंदी बनाया।
१३–				खुरशेद जोग साधने को जोगी बना यत्न से नृफलपुर पहुँचा।	नूरजहा ने अपनी परी सखी सुमति को वर ढूढने भेजा
१४–				प्रेमा ने मित्र बनसेन के द्वारा मोहिनी मालिन और उसकी माता के माध्यम से पचमहल में चन्द्रकला से भेंट की। जोगी बना सहपाल शिष्य। गुरु के परामर्श से चन्द्रकला की खोज, दैत्य को मारा	

	१६	१७	१८	१९	२०
१५				१ ढोला मालवणी को सोता छोड मारवाड (पूगल) को। २ मारवणी के तोते को प्रत्युत्तर दे आगे बढा। ३ पहाड अडावडा पार किया। ४ पूगल पहुँच मारवणी को साथ ले चला।	मारवणी ने डूमणी से भेद जान ऊँट को छडी मारकर भगाया। ढोला उसे सँभालने दौडा तो समझा कर ढोला को ले भाग खडी हुई।
१६				१ राजकुमार सोम रभा के स्वयवर के लिए चला २ सिद्धवेष मे कुमार कल्पलता के यहाँ से चपावती पहुँचा। ३ शिव मन्दिर मे मोम की वीणा मे आकर्षित रभा के दर्शन।	चित्र बनवाने का आदेश। रभा का चित्रकार कुमार से मिला और चित्र लाकर रभा को दिया।
					५ कल्पलता ने विद्यापति ताता भेजा।
				६ रभा-मोम कल्पलता के यहाँ पहुँचे।	
१७—				१ देवगिरि घिरने पर नायक सरसी सेना लेने ढोल समुद्र गया।	१ छिताई ने गत नही छोडा।

	१६	१७	१८	१९	२०
				२ छिताई-हरण सुन योगी हो गया, वीणा ने कर चला। ३ सरमी ने जन-गोपाल के यहाँ वीणा बजायी।	२ अपनी वीणा जनगोपाल के यहाँ रख दी।
१८—				१ कामकदला ने विक्रमादित्य से कहा कि माधव को लीला दिलायें २ माधव ने मृदगी मे दोष बताया राज ने उसे सभा मे बुलाया वहाँ कदला दर्शन। ३ सगीत प्रति-द्वन्द्विता मे कदला को हराया।	१ सुमुखी ने लीला-माधव की भेंट करायी। २ कामकदला ने नृत्य मे कुचो से भौंरा उड़ाया। ३ माधव को छिपा कर अपने यहाँ रखा।
१९—				४ विक्रम के राज्य मे जाकर विक्रम से सहायता ली।	
२०—				विक्रमादित्य के शिवमदिर मे गाया। योगविनाशिनी वेश्या ने पता लगाया माधव का।	
२१—				१ विन्तान ने गुरु मे लता के प्रेम की भीख माँगी।	लता ने योगिनी न उसने की विद्या सीखी और महागान

	१६	१७	१८	१९	२०
				२ महाकाली के मन्दिर मे दोनो मिले और उड गये ।	के मन्दिर से विलाम के साथ उड गयी ।
२२—				१ राजा हम के साथ जोगी वन चल पडा । २ हस की सहायता से प्रति रात्रि चद्र किरण से मिलना	१ चन्द्रकिरण प्रति रात्रि राजा से मिलती अपने कक्ष मे । २ राजा के दड को मुन जीवित जल मरने का निश्चय । १३ वर्ष तक रानी वेश्या के यहाँ वियोग मे ।
२३—					सेठानी की सखी चतुष्पथ पर लेटे चदकुवर को नमझा वुझा के मेठानी के पास ने गयी ।

२१	२२	२३	२४
प्रतिनायक	बाधा मानवी	बाधा प्राकृतिक	बाधा दैव से
१—	मृगावती उड़ गई		
२—१ अलाउद्दीन २ राजा देवपाल कुंभलनेर का		पद्मावती दर्शन के समय मूर्छा	
३—	माता रूपमंजरी ने मधुमालती को पक्षी बना दिया		
४—	कुटीचर ने चित्रावली की माँ द्वारा सुजान का चित्र धुलवाया । अ-शिव-मंदिर में कुटीचर ने सुजान को अंधा किया और गुफा में डाला आ-कौलावती ने हार की चोरी लगा सुजान	अ-गुफा में अंधे को अजगर निगल गया विरह ताप में उसे उगला आ-सुजान को हाथी ने पकड़ा, हाथी को पक्षिराज ने पकड़ा और	

	२१	२२	२३	२४
		को वदी वनाया। ६-चित्रावली के पिता ने १-वंदी किया २-मारने को हाथी भेजा जिसे सुजान ने मारा ३-स्वय चढाई की सुजान को मारने के लिए।	समुद्र तट पर गिरा दिया। ६ समुद्री तूफा-नादि	
५—		१-राजसिंघ कनकावती के पिता ने भरथराय को हराया। २-राजसिंघ की शिकायत पर जगतपतिराय ने भरथनेर पर आक्रमण किया और आवा नगर उजा दिया।		
६—				
७—		१-मधुकर का पिता उसे नगर के बाहर ले गया। २-मालती को विलायत के बादशाह ने खरीदा फिर वजीर के यहाँ, छत्रपति(तुर्कि-स्तान)को बेची गयी, छत्रपति के दमाद ने मालती को सदूक बद कर नदी में डुबाया-अरमनी ने निकाला, मनान के प्रधान तब बादशाह के यहाँ।	नाव जिस पर मधु-कर मालती बैठे वह फटी, मधुकर कहीं, मालती कहीं	
८—		जहाज यात्रा मे		

२१	१२	२३	२८
	मायियो से विद्रोह, जागी के हाथ पडा		
९—अलाउद्दीन	चित्र देखकर अलाउ- द्दीन ने देवगिरि घेरी राघवचेतन के परा- मर्श से अलाउद्दीन छीता को उठा ले गया ।		
१०—दिनौर	शब्द हस के पास मे लौटी तो वदिनी । परियो ने हस को जवाहर के पास से उडाकर पुन पहाड पर पहुँचाया । दिनौर ने (वीरनाथ के पास) हस जवाहर को अलग कर दिया ।		
११—	राजकुवर दुर्जनराय की जेल मे वन्दी राजा कृपा ने दुर्जन को मारा राजकुँवर को मुक्त किया ।		
१२—	अत करण के पिता मित्रो ने नवं- मगला मे विरत करना चाहा । मायावी अघेट ने अत करण को फँसाना चाहा ।		
१३—	जुलेखा की निंदा । वजीर ने उसका परित्याग किया । जुलेखा वियोग मे मरी ।		
१४—			

२१	२२	२३	२४
१५—सुल्तान अविद जिसने मालिन से रूप प्रशसा सुन कर रूपनगर पर आक्रमण कर दिया	चन्द्रकला के माता पिता ने उसे पच महल मे डाल दिया, चन्दकला [के गायब [दैत्य द्वारा]हो जाने पर राजा ने प्रेमा के पिता को लूटा और वधन मे डाला, मालिन को देश निकाला दिया ।		
१६—	१—माता पिता[नल] ने ढोला से मारवणी के विवाह की वात छिपाकर मालवणी से विवाह कर दिया । २—मालवणी के प्रवध से मारवणी के दूत ढोला तक न पहुँच सके । ३—मालवणी के तोते ने ढोला को माल वणी के मृत्यु का सदेश दे उसे लौटाना चाहा ४—ऊमर सूमरा के दूत ने कहा कि मार-वणी बूढी हो गयी है ५—मार्ग मे मारवणी को पीना साप डस भी गया	साप द्वारा	

२१	२२	२३	२४
	६–ऊमर सूमरा ने ढोला को आ घेरा।		
१७—	मानसरोवर पर अप्स गए, राजकुमार को उडाकर कल्पलता के पास ले गयी। उससे विवाह।		
१८–अलाउद्दीन की देवगिरि पर चढ़ाई।	१–भर्तृहरि का मरनी को शाप २–अलाउद्दीन द्वारा छिताई का हरण		
१९—	१–वीणावादन माधव का जिससे पुष्पावती के राजा गोविंदचंद ने माधव को देश-निकाला दिया। २–माधव की कला से कदला मग्न, कामावती के राजा ने माधव को देश निकाला दिया। विक्रम वैद्य बना कदला को माधव के मरने का समाचार, कदला मृत, माधव को कदला का समाचार, माधव मृत, विक्रम ने कदला से प्रेम दिखाया।		
२०—	पुष्पावती की महा-		

	२१	२२	२३	२४
		रानी रुद्रदेवी माधव पर मोहित, माधव के न मानने पर लाछन लगाया जिसमे देश निकाला। आम्रावती से वह सौंदर्य के कारण निकाला गया।		
२१—				
२२—		पुरोहित गुरु ने आरम्भ मे दोनो का साक्षात्कार न हो इसलिए पर्दा लगाया और कुमारी को अधा और विलास को कोढी वताया।		
२३—	खत्री वणिक ने टापू से चद्र किरन को लिया, वश मे न आने पर वेश्या के वेचा।	गडुआशाह ने राजकुमार को अबीर गुलाल के चक्र से पकडवा दिया, वोवी से रँगे कपडेवाले का पता लगवाया	हम के पख जल गये पत्नी मे न मिल सका	
२४—				

२५	२६	२७	२८
माया दानवी	सहाय दैवी	सहाय मानवी	सहाय दानवी
१—			
२ —	शिव की सहायता। गढ़ मे सूलीके अवसर पर	गोरा बादल	
३—		प्रेमा (जिसे मनोहर ने राक्षस से छुड़ाया) ताराचन्द	
४—		चित्रकार मोहिन को मारनेवाले सुजान का चित्र लेकर भागया	
५—		चित्र-समाचार-वाहक बना उनने विवाह कराया। सन्यासी ने कन्दप-निधि विद्या परम-रूप को दी, जिससे	

	२५	२६	२७	२८
			अदृश्य होकर कनकावती मे मिला । नगर के उटा दिये जाने पर परमरूप पानी मे बहता जगराय के हाथ लगा—कनकावती जगपतिराय के । जगपति ने परमरूप कनकावती का विवाह किया ।	
६–				
७–			मधुकर को मालती का अध्यापक रखा गया । एक बादशाह के दस सेवकों ने मालती को अवध के मार्ग पर छोडा जहाँ से वह बगदाद पहुँची ।	
८–	एक दानव मोहन को ले उडा ।	एक देव मोहन को उडाकर रूपरभा के लेगया, रूपरभा ने रतनावती के पिता को समझाया । रतना के पिता ने दानव से मोहन को मुक्त किया	पद्मिनी को अप्सरा, हाथी और सिंह से मोहन ने मुक्त किया । पद्मिनी ने रतनावती मे मिलाने मे सहायता की ।	
६–			राम से छीता की सगाई	
१०–		अप्सराओं ने हंस को चीन पहुँचाया । दिनार		

	२५	२६	२७	२८
		के स्थान पर हंस दूल्हा बना शब्द पुन. उडकर हस के पास। जोगी रूप मे हस को शब्द ले आयी, हस जवाहर फिर मिले।		
११–			तपी ने स्वप्न की सुन्दरी का पता दिया। फुलवारी की मालिन	
१२–				
१३–			नबी याकूब ने आशीर्वाद दे जुलेखा को युवती बना दिया। नबी ने दोनो का विवाह करा दिया। तपसी की सहायता से जलाशय के तट पर। परतीत राय घटवार की नाव से पीरानपीर के वरदान से गुफनपुर पहुना।	
१५–	दैत्य चन्द्रकला को ले उड़ा ४० कोठरी के किले मे बन्द किया कोठरियो की चाबी चन्द्रकला को।	चन्द्रकला ने दैत्य की वर्जित ४०वी कोठरी खोली तो नरमुण्डो ने दैत्य को मारने और उनकी मुक्ति के उपाय बताये। गुरु ने आमर अविद से मारी गयी प्रजा को जीवित कर दिया।	गुरु ने प्रेमा को वन मे परामर्श दे चन्द्रकला की खोज मे भेजा।	

	२५	२६	२७	२८
१६—		१—मारवणी के ढाढियों ने मालवणी के पहरेदारों को प्रसन्न किया और ढोला को मारवणी का संदेश दिया। २—बीसू नाम के चारण ने मारवणी का सच्चा समाचार दिया जिससे ४ थी बाधा का शमन हुआ। ३—योगी और योगिन आये। योगिन के अनुरोध से योगी ने अभिमन्त्रित जल से मारवणी को जीवित किया पांचवीं बाधा दूर हुई। ४—डूमणी गायिका ने मारवणी को ऊमर सूमरा के कपट की सूचना दी।		
१७—				
१८—			१—अलाउद्दीन ने छिताई को पुत्री मान लिया। २—राघवचेतन ने सरनी को राज-महल में निमन्त्रित किया।	

	२५	२६	२७	२८
			३–अलाउद्दीन ने छिताई सरगी को सौंपदी ।	
१९–		वैताल ने अमृत लाकर विक्रम को दिया जिससे दोनों जियें ।	१–सुमुरगी २–विक्रमादित्य । ३–उज्जैन की भोग विलासिनी वेश्या	
२०–				
२१–				
२२–		१–महाकाली ने प्रकट हो आशीर्वाद दिया । २–योगिनी ने विद्या सिखायी और विवाह किया ।		
२३–		दैवयोग से नगर के राजा के मर जाने पर यह प्रात सबसे पहले मिला और राजा बना दिया गया ।		
२४–		१–मृगया में रास्ता भूला, ऋषि ने तवापुर जाने को कहा । २–तवापुर की सुन्दरियाँ उसे नगर में ले गयीं, वह चतुष्पग पर सो गया ।		

२९	३०	३१	३२	३३
सहायता पशु-पक्षी द्वारा	प्राप्ति	प्रेमी को	प्रेमिका को	अन्य वृत्त
१–	१ मृगावती प्राप्ति परन्तु उड गयी २ रुक्मिनी प्राप्ति ३ पुन मृगावती प्राप्ति ४ दोनो के साथ राजकुमार अपने राज्य मे	राजकुमार की आखेट मे हाथी से गिर कर मृत्यु	मृगावती तथा रुक्मिनी सती	
२-हीरामन तोता	पद्मावती नागमती प्राप्त, अपने राज्य मे।	रतनसेन देवपाल से युद्ध मे घायल उसी से अन्तत मर गया।	पद्मावती सती नागमती ,,	अ–ब्राह्मण वनजारे का वृत्त जिसके द्वारा तोता सिंहल से चित्तौर पहुँचा।

२९	३०	३१	३२	३३
				शा—राघवचेतन का वृत्त जिससे अलाउद्दीन चढ़ कर आया।
३—	मनोहर मधुमालती का विवाह। ताराचंद प्रेमा का विवाह।	दोनो जोड़ो का अपने अपने यहाँ सुख भोग।		
४-वनमानुष ने सुजान को अंजन दिया	कवला से विवाह चित्रावली से विवाह	सुजान चित्रावली-कवला को अपने राज्य मे लाया,		शिव पार्वती के प्रसाद से पुत्र सुजान प्राप्त।
५—	परमरूप कनकावती विवाह	दोनो सुखी		
६—पक्षी ने नपना देखकर कामलता को परिचय दिया	रस्मान कामलता का विवाह			
७—मछली के पेट से पाँच रत्न जिन्हे मधुकर ने दे कर मालती बादशाह से पायी।	मधुकर मालती चक्करों मे पड़कर बगदाद पहुँचे। हारूँरशीद ने विवाह करा दिया।			
८—	मोहन रत्नावली विवाह	मोहन को रत्नावली मिली। जोगिन को ले आया। अन्तिम को पद्मिनी मिली।		बादशाह को वृद्धावस्था में दूसरे विवाह से पुत्र मोहन।
९—	अलाउद्दीन ने सीता का नाम	दोनो सुखी		

	२९	३०	३१	३२	३३
		मे विवाह कर दिया ।			
१०-			हस को मीर दौला के पुत्र ने मार डाला ।	दोनों पत्नियाँ भी मर गयी ।	ख्वाजा खिज्र की कृपा से पुत्र हस । अप्सरा शब्द जवाहर की मखी वन गयी ।
११-	मुवा जेल से राजकुमारी इन्द्रावती के पत्र लेजाता				
१२					
१३-		जुलेखा ने यूफ की कई परीक्षाएँ ले अपना आत्म-समर्पण किया, विवाह	यूसुफ की मृत्यु	जुलेखा उसके गवपर मर गयी [दोनो की समाधि साथ-साथ]	यूसूफ के भाइयो ने यूसूफ को कुँए मे डाला । सौदागर उसे मिस्त्र ले गये यूसूफ ने स्वप्न वताया । मिस्र के वादशाह ने उसे मुक्त किया । मन्त्री वनाया फिर वादशाह वनाया । जुलेखा ने छुरी तरवूज से सफाई देनी चाही ।
१४-		सुफलपुर के शाह			मलिक शाह

	२९	३०	३१	३२	३३
		ने स्वागत किया नूरजहाँ का विवाह कर दिया।			की तपस्या दस्तगीर पीर के वरदान से पुत्र खुरशेद शाह की प्राप्ति।
१५	पक्षी ने सह पाल गुरु को प्रेमा की माँ के वन में रुदन का समाचार दिया।	प्रेमा चन्द्रकला का विवाह।	दोनो सुखपूर्वक		स्वप्न में लक्ष्मी ने रानी के गर्भ में जन्म लेने की बात कही।
१६ -			ढोला-मारवणी सकुशल घर गये		अकाल के कारण पूगल के राजा पिंगल मे शरण आये, वहीं ढोला (तीन वर्ष का) मारवणी (डेढ वर्ष की) का विवाह होगया।
१७-			१ स्वयंवर में रम्भा ने सोम को वरा। २ [illegible]-रम्भा ने साथ [illegible] में गन्धर्व [illegible] ३ [illegible] नाटक देख [illegible] में सोम ने [illegible]		१ सिद्ध द्वारा बताई गई उपासना, उस से [illegible] लाभ २ [illegible] की बातें और उसका रम्भा तथा सोम से प्रेम कराना।

२९	३०	३१	३२	३३
१८-	सरसी को छिनाई मिली			१-देवगिरि के राजा रामदेव का अलाउद्दीन के दरबार मे रहना। २–अलाउद्दीन का भेप बदल महलो मे जाना और गुलेल के समय एक दूती द्वारा पहिचाने जाना, फटकारे जाना। ३–सरसी के वीणावादन ने मिलाने मे सहायता की।
१९-सुवा ने सहायता दी				गोपियो का कामदेव तथा रति को शाप। कामदेव माधव के रूप मे पुष्पावती के राज-पुरोहित के यहाँ। रति

	२९	३०	३१	३२	३३
					अपने मन्त्री को पालनार्थ दिया।
२१-		विक्रम ने दोनो को मिलाया कामसेन से युद्ध करके			विक्रम ने कदला माधव की, परीक्षा ली दोनो मृत, वैताल अमृत नाया।
२२-	देवदत्त ने रतनपुर मे मंगल कलश विलास पर छिड़का वह वहाँ का राजा				
२३-	१ हंस ने मार्ग वताया, ऊपर उडाकर लेगया २ किरण के कुंवर ने अपने पोपक पिता को मारा। राजा पर फरियाद,वह पुत्र को पहचान गया	१ विवाह द्वारा प्राप्ति २-पुन विछुडने के वाद प्राप्ति			
२४-		एक वर्ष दोनो साथ।	दोनो घर लौटे		विजय विलास द्वारा

	का अन्य से सवध । यह स्त्री नायिका के सदेश नायक तक नही पहुँचने देती ।	
	३-युक्ति से नायिका का सदेश नायक को मिला । नायक का पूर्व प्रेम उभरा, वह अन्य स्त्री की वाधाओ को तथा अन्य वाधाओ को दूर कर नायिका से मिला ।	
	४-नायिका को लेकर मार्ग की वाधाएँ दूर करते हुए नायक घर आया ·	
दूसरा-चदन-मलयागिरि चक्र	१-विवाहित दपत्त और उनके दो वालक	१-चदन मलयागिरि २-नल-दमयन्ती
	२-दुर्भाग्य से चारो का विछोह ।	
	३-पुरुष आकस्मिक रूप से राजा वना ।	
	४-स्त्री एक सेठ के चगुल मे फँसी । सेठ के वश मे न आने पर वह वेश्या के यहाँ या अपने पति राजा के यहाँ-पर दोनो अभी एक दूसरे को पहचानते नही	
	५-दोनो लडको का भी भटकते भटकते राजा के यहाँ नौकर होना ।	
	६-दोनो का निजी कहानी कहना--जिससे माँ द्वारा पहचाने जाना-तव राजा	

	ने भी पहचाना और सभी मिले।	
तीसरा-उषा-कथा चक्र	१—नायिका अपने अभिभावक से छिप कर नायक से मिलती है। दोनों का प्रेम। २-इस गुप्त प्रेम का अभिभावक को पता चला। नायक और उसके पक्ष वालों से अभिभावक का युद्ध। ३—अभिभावक की पराजय या मृत्यु और नायिका नायक के साथ आयी।	१—उषा-चरित्र
चौथा-प्रद्युम्न-चक्र	१—सौतिया डाह, इनमें से एक का पुत्र लुप्त। (दैत्य, दानव या देव द्वारा) २—लुप्त पुत्र का अन्य या अन्यों द्वारा पालन। ३—उसके द्वारा अनेकों अद्भुत के कार्य सम्पन्न—तथा अनेकों मृत्यु-प्रसंगों से बचा। ४—उसने आकर अपनी विमाता को हराया, और दासी मां को मुक्त किया।	१ -प्रद्युम्न चरित्र २—सीता-चरित्र
पांचवां-माधवानल चक्र	१ अत्यन्त सुन्दर नायक। सुन्दरता के कारण (अनेकों नगरों से) निष्कासित। २. विरह दोनों में व्याकुलता	१. माधवानल कामकन्दला

	मे साक्षात्कार और दोनो का प्रेम ।	
	३ दोनो के मिलन मे नायिका के पक्ष के राजा द्वारा बाधा ।	
	४. नायक का अन्य राजा की सहायता से नायिका को प्राप्त करना ।	
छठा—रुक्मिणी-चक्र—	१. नायिका स्वप्न-चित्र-श्रवण से नायक मे अनुरक्त । २. अभिभावक द्वारा उसका अन्य से सवध का प्रयत्न । नायिका ने नायक को सदेश भेजा । ३. नायक का उक्त सवध मे बँधने से किंचित पूर्व ही नायिका का अपहरण ।	१. रुक्मिणी हरण २. पृथ्वीराज-संयोगिता
सातवाँ—मृगावती-चक्र	१. नायिका दिन मे पशु-रूप, रात मे स्त्री । २. विशेष टोटके से नायक ने नायिका को वश मे किया । दोनो साथ । ३. टोटके के भग होने से नायिका नायक को त्याग गयी । ४. नायक के भीषण प्रयत्न से नायिका की पुन प्राप्ति	१. मृगावती (कुतुबन) २. दगवै-चरित्र
आठवाँ—विक्रम-(पर-दुख भजनहार) चक्र (यात्रा-तत्व-प्रधान)	१. नायक घर से निष्कासित २, चलते चलते अनेको अपने तथा दूसरो के सकटो को काटते चलना,	१. श्रीपाल-चरित्र २. विक्रम-चरित्र

	विशेषत परोपकारार्थ (कई कहानियों का इस विधि से समावेश)।	
	३. अन्त मे विशिष्ट घटना से प्रत्यावर्तन और पुन अपने राज्य मे या घर मे।	
नवाँ—पचाख्यान चक्र	१ एक कथा-सूत्र प्रमुख	१. पचाख्यान
	२ उसमे जितने ही सूत्र उदाहरणार्थ प्रस्फुटित, ये तत्व मूल कथा सूत्र के पात्रो मे से किसी के वर्जन या प्रेरणा के लिए प्रस्तुत किये गये।	२. मधु मालती (चतुर्भुज)
दसवाँ-सत-परीक्षा चक्र	१ सत-व्रती पात्र	१. [illegible]
	२ सत से डिगाने के यत्न विफल	२. सत्य हरिश्चन्द्र
		३. कनक मजरी
	३. सत से सुख और आनंद	
ग्यारहवाँ सत चमत्कार	१. सत-व्रती पात्र	१. सत्यवती कथा
	२. व्रत के अभीष्ट के नाश या हरण से सत की उत्तेजना	२. सावित्री-सत्यवान
	३. सत के चमत्कार का प्रभाव से अभीष्ट प्राप्ति की बाधा मे बाधा-या सत-शक्ति और बाधक असत् शक्ति की टक्कर	
	४ सत की विजय-अभीष्ट प्राप्ति की बाधा का शमन या अभीष्ट का प्रत्यागमन	
बारहवाँ-[illegible] चक्र	१. [illegible]	१. [illegible]
	[illegible]	२. [illegible]
	[illegible]	

	के कृत्यो (Tasks) का सफल सपादन २ नायिका की प्राप्ति	
तेरहवां—दो मित्र चक्र	१. नायक का स्वप्न, चित्र, मूर्ति दर्शन या श्रवण से नायिका से प्रेम । २ उसे प्राप्त करने के प्रयत्न एक माध्यम (शुक, हस दूत या मित्र) द्वारा सहायता । ३. मार्ग के सकट पार कर नायिका से मिलन । ४ नायिका को प्राप्त करने मे आयी अन्य बाधाएँ पार कर नायिका की प्राप्ति ५. नायिका के साथ प्रत्यावर्तन के समय मार्ग मे पुन सकट नायिका और नायक विछोह ६. दैव कृपा या अन्य कृपा या आकस्मिक रूप से नायक और नायिका का पुर्नमिलन	१. पद्मावत २. प्रेमपयोनिधि ३. चित्रमुकुट कथा ४. नल दमयन्ती
तेरहवां (अ)	इस चक्र मे १ नायिका नायक से वियुक्त २ नायिका किसी माध्यम (हस, गरुड) से पति को मँगवाती है । ३ पति की प्राप्ति	
चौदहवां—राजा चद चक्र या मधुमालती चक्र	१. दैवी, जादुई या आकस्मिक तत्व द्वारा नायक का नायिका से (केवल	१. राजा चद की वात २. चित्रावली ३. मधुमालती (मंझन)

	एक रात्रि मात्र का) मिलन	
	२. नायक अचल पर लिख-कर, या अपना चित्र बनाकर या अन्य चिह्न छोड़कर या क्षणिक साक्षात्कार के बाद नायिका से उसके अजाने ही वियुक्त	
	३. नायिका का नायक से प्रेम, उसे प्राप्त करने के लिए प्रयत्न या साधना	
	४. दोनों का वियोग करने वाली बाधाओं का टूट जाने पर पुनर्मिलन	
१५-पन्द्रहवाँ—भक्त-कथा चक्र	१. भगवान का भक्त	१. प्रह्लाद-चरित
	२. उसे मारने के और सताने के अनेकों प्रयत्न।	२. कबीर परचई ३. प्रद्युम्न-चरित
	३ सभी प्रयत्न विफल, भगवान के द्वारा या भक्ति के प्रताप के द्वारा।	
	४ भक्त की सफलता या उसे हरि-दर्शन	
सोलहवाँ—[illegible] सौंदर्य चक्र	१ एक सुन्दरी किसी प्रभावशाली व्यक्ति के आधीन, उसे दिन में बाहर और समय [illegible] [illegible] का [illegible] रहना, और रात में घर पर उसे [illegible] का [illegible] कर देना	

	२. नायक ने सुपुप्त या मृतवत् सुन्दरी को देखा और प्रेमाभिभूत । उसने विधि जानकर उसे अकेले मे जीवित किया ।	
	३. अमानवीय व्यक्ति के मारने का रहस्य सुन्दरी के द्वारा जानकर उसे मार डाला और ।	
	४. सुन्दरी को प्राप्त किया ।	
सत्रहवाँ–गणेश-कथा	१ माँ के मैल से पुतला बनाया उसमे प्राण-प्रतिष्ठा	
	२ माँ की आज्ञा से वह द्वार-रक्षक । पिता को माँ के पास जाने से रोकता है ।	
	३. पिता से युद्ध, पिता उसका सिर काट लेते हैं ।	
	४ माँ के कहने पर हाथी का सिर स्थापित कर जीवित करना ।	
अठारहवाँ–पवन-अजना चक्र	१. किसी बात से रुष्ट हो पति द्वारा पत्नी का त्याग	१ हनूमान चरित्र २ शकुन्तला दुष्यन्त
	२. किसी अन्य वियोगी को देखकर पति का पत्नी से मिलने आना, अकेले गुप्त रूप से पत्नी से मिलना और चिह्न देकर चले जाना ।	
	३ पत्नी को पतित जान सास-ससुर द्वारा त्याग ।	
	४. पुत्र होने पर किसी	

	(रिश्तेदार के) आश्रय लिया।	
	५ पुत्र असामान्य गुणों से युक्त	
	६ अन्त में पति द्वारा शोध और मिलन	
उन्नीसवाँ—श्रुत पंचमी चक्र.	१ दो सौतेले भाई। जहाज से व्यापारार्थ जाना	१ श्रुत पंचमी कथा २ श्रीपाल चरित्र ३ प्रिय मेलक तीर्थकथा
	२ मार्ग में सौतेले भाई ने जंगल में छोड़ जहाज चला दिया।	
	३ नायक भटकता हुआ किसी नगर पहुँचा, जहाँ पर सुन्दरी से उसका विवाह।	
	४ नायक और सुन्दरी घर की ओर चले (सौतेले भाई का) जहाज लौटा। दोनों को जहाज पर ले लिया। सौतेला भाई सुन्दरी पर मोहित	
	५ मार्ग में फिर नायक को छोड़ दिया या समुद्र में गिरा दिया।	
	६ कठिनाइयाँ झेलता हुआ तथा कुछ सिद्धियाँ पाकर नायक जहाँ पत्नी है, वहाँ पहुँचकर युक्ति-प्रयत्न से अपनी पत्नी को प्राप्त करता है।	
बीसवाँ—श्रीपाल-मैना सुन्दरी चक्र	१ पिता ने छोटी पुत्री के व्यवहार से असंतुष्ट होकर उसका विवाह	

	एक दरिद्र कुष्टी से कर दिया । २ पुत्री ने जिन पूजा से या सत मे या अन्य कृपा से पति को स्वस्थ कर लिया । ३. स्वस्थ होकर पति का समृद्धिवान होना, शक्तिवान होना । ४. पुत्री ने दुर्दशाग्रस्त पिता को अपने यहाँ बुलाया, और अपने उस कथन की सत्यता दिखायी जिसके कारण रुष्ट हो पिता ने उसे लुंज-पुंज को दे दिया था ।	
इक्कीसवाँ—सदयवत्स सावलिंगा चक्र	१. नायक तथा नायिका एक शाला मे परदे से पृथक पृथक हो पढते । २ पर्दे के वर्जन को तोड दोनो ने एक दूसरे को देखा और परस्पर प्रेम । ३ पहले कुछ बाधाएँ। दैवी कृपा वा दैवी शक्तियो से बाधाएँ दूर । ४. दोनो का विवाह ।	१ प्रेमलता प्रेमविलास २. मधुमालती (चतुर्भुज)
बाईसवाँ—छिताई-चक्र	१. चित्र, स्वप्न या वर्णन से किसी पूर्व विवाहिता नायिका के रूप पर प्रतिनायक मुग्ध । २. नायिका को प्राप्त करने के लिए नायक के पिता या पति पर आक्रमण । नायिका को प्राप्ति या	१. छिताई चरित्र २. मृगावती (समय सुन्दर) ३. छीता

	नायक बन्द ।
	३. कौशल से नायिका की मुक्ति या नायक की मुक्ति या नायक को नायिका पुन. प्राप्त ।
तेईसवाँ—सीता-हरण	४. प्रतिनायक या दानव नायक की स्त्री का हरण करता है ।
	२. प्रतिनायक का नाश ।
	३. नायक-नायिका मिलन ।
चौबीसवाँ—तप-चक्र	१. तपस्या या बलिदान से देव या सिद्ध को प्रसन्न करके पुत्र प्राप्त ।
	२. पुत्र के विलक्षण कार्य ।
पच्चीसवाँ—दानव-आश्रय चक्र	१. एक दानव के वश मे कुमारी ।
	२. दानव ने वर ढूँढा और विवाह कर दिया ।
छब्बीसवाँ—पति-तप	१. वियुक्त पति के लिए तपस्या ।
	२. कुछ विलक्षण घटनाओ का सघटन और
	३. पति-प्राप्ति ।
सत्ताईसवाँ—दिव्यादिव्य	१ मानव का अभिशप्त यक्षिणी से प्रेम ।
	२. मन्त्रवश वचनबद्ध हो यक्षिणी मानव के प्रेमाधीन—विवाहित ।
	३ यक्ष माता-पिता द्वारा विरोध और बाधा—
	अ—मानवपति को सर्प बन डसा । (अवधूत ने पुन' जीवित किया ।)

आ-यक्ष अपनी पुत्री को हर
ले गया (दूसरे यक्ष
यक्षिणी की सहायता से
वियोगियो का मिलाप)
३-अन्त मे यक्षिणी के पिता
का आक्रमण, युद्ध-मृत्यु ।
४ दोनो की विरह बाधाएँ
हटीं, दोनो का मिलन ।
५ विरह काल मे नायक मे
एक मानवी का प्रेम ।
उसका भी अन्त मे
मिलन ।

ये सामान्य कथा-चक्र हैं । इन कथा-चक्रो मे कहानियो के कथा-मानक रूपों के आधार पर ही उनका उल्लेख किया गया है । इन कथा-चक्रो मे एक बात तो यह ध्यान आकर्षित करती है कि आठवाँ तथा नवाँ चक्र शैली गत हैं, शेष चक्र वस्तुगत हैं ।

कुछ कहानियाँ जटिल हैं उन्हे कई सामान्य कहानियो मे विभाजित किया जा सकता है । सामान्य कथा-रूपो मे विभक्त हो जाने पर ही उन्हें इन चक्रो मे सम्मिलित किया जा सकता है । ऐसी एक कहानी 'श्रीपाल चरित्र' की है ।

इसकी २० वें चक की प्रधान कथा तो श्रीमती वर्न के 'लीअर चक्र' की है, जिसमे राजा अपनी सबसे छोटी पुत्री से असन्तुष्ट होकर किसी दरिद्र को दे देता हैं । किन्तु वह अपने कर्म से सुखी और समृद्ध हो जाती है । किन्तु इस कहानी मे श्री पाल कोढी है, लुंज-पुंज । पुत्री श्रीपाल से विवाह करके 'सतव्रती' हो जाती है, अत कथा का एक अश ग्यारहवें चक्र के अनुकूल हो जाता हैं, जिसमे सत के प्रताप से जिन भगवान की कृपा से और सुश्रूषा से श्रीपाल रोग से मुक्त हो जाता है ।

श्रीपाल जब स्वस्थ हो जाता है तो वह पराक्रमार्थ निकल पडता है, अब यह कथा आठवें विक्रम-कथा-चक्र का रूप ग्रहण कर लेती हैं . उसे परोपकारार्थ कई पराक्रम करने पडते हैं । जैसे—

(१) विद्याधर को मत्र-सिद्धि मे सहायता देता है ।
(२) अपने स्पर्श से अटके जहाज को चला देता है ।
(३) सेठ की चोरो से रक्षा करता है ।
(४) चोरों की मृत्यु से रक्षा करता है ।

(५) एक चैत्यालय का द्वार अपने हाथों से खोल देता है।

यहाँ से यह कहानी उन्नीसवें कथा-चक्र की हो जाती है। चैत्यालय के हाथ से खोल देने से वहाँ के राजा ने अपनी पुत्री का विवाह श्रीपाल से कर दिया। अब जहाज पर पत्नी सहित चला तो सेठ ने उसे समुद्र में गिरा दिया। जब यह कथा-चक्र समाप्त होता है, तभी यह कथा बारहवें चक्र का आश्रय ग्रहण करती है। यह चक्र बर्न के ३२ वें टाइप से सबधित है, जिसे उसने 'ब्राइड वेजर टाइप' नाम दिया है। इसमें पहेलियों का उत्तर देकर, या अन्य जीवट के कार्य करके, या दानव को मार कर, या स्त्री को हँसाकर, या किसी रहस्य का पता लगा कर नायक को पत्नी या नायिका को पति प्राप्त होता है। श्रीपाल आठ पहेलियों का उत्तर देकर १६०० राजकुमारियों से विवाह करता है। तब इसके बाद श्रीपाल घर लौटता है और कहानी मूल कथा-चक्र से जुड़ जाती है।

अत इसमें चार कथा-चक्र है, जिनमें आठवां प्रधान है, शेष उसके अन्तर्भुक्त हैं।

सीता-चरित्र में ये कथा-चक्र हैं—

१—आरंभिक कथा चक्र तो अठारहवें के समान है, हाँ, उसके दूसरे तत्व को इसमें स्थान नहीं।

२—तब अन्तर्कथा के रूप में 'राम कथा' आती है। इस रामकथा में भामण्डल वृत्त चौथे 'प्रद्युम्न-चक्र' का रूप ग्रहण करता है।

३—राम-विवाह बारहवें चक्र के अन्तर्गत है।

४—राम के वनवास का वृत्त इस कथा को आठवें चक्र की विस्मय-कथाओं में सम्मिलित कर देता है, जिसमें कई छोटे-छोटे कथांश सम्मिलित होते जाते हैं।

५—फिर सीता-हरण और रावणवध की कथा श्रीमती बर्न के 'गुदरुन रूप' (Gudrun Type) की हो जाती है, जिसे हमने तेईसवां चक्र माना है

६—इसके बाद अन्तर्कथा समाप्त हो जाती है, और कथा-सूत्र पुन प्रद्युम्न-चक्र से जा जुड़ता है जिसमें 'पुत्र और पिता' में युद्ध होता है।

७—सबसे अन्त का चक्र 'सत-परीक्षा' और उसके चमत्कार से सबधित है। इस प्रकार सात विभिन्न-चक्रों को 'अभिप्राय' के रूप में जोडकर यह कथा प्रस्तुत की गयी है।

दुखहरन की 'पुहपावती' का आरम्भिक अंश भूमिका-कथा के रूप में है। इसमें ये तत्व हैं—

१—धार्मिक राजा के सन्तानाभाव या सिद्धि की कामना
२—भवानी की बारह वर्ष उपासना, फिर भवानी को सिर भेंट
३—भवानी के कहने से शिव ने अमृत दे राजा को जीवित किया और
४—पुत्र या सिद्धि का वरदान दिया। यह हमारा चौवीसवां चक्र है।

यह कथा-चक्र भूमिका का ही चक्र है और एकानेक लोक-कथाओ तथा अन्य कथाओ मे मिलता है।

तब यह कथा 'आठवें' विक्रम-चक्र मे सम्मिलित हो जाती है। कुमार घर छोडकर चल पडता है—किन्तु यह पराक्रम की कथा बारहवें चक्र का भी रूप साथ ही ग्रहण करलेती है। 'राम-चरित्र' के 'धनुष-यज्ञ' की तरह (१)वाटिका मे सीता ने राम को, राम ने सीता को देखा, वैसे ही कुमार ने पुहुपावती को और पुहुपावती ने कुमार को देखा। (२) तब जैसे राम ने 'धनुष-तोडा', निर्दिष्ट जीवट का कार्य करके सीता प्राप्त की, उसी प्रकार कुमार ने राजा के आधे राज्य देने की घोषणा पर भयानक सिंह को मारा और आधा राज्य प्राप्त किया। परोपकार और स्वार्थ पराक्रम इसमे मिल गये हैं। किन्तु अभी पुहपावती की प्राप्ति नही हो पायी कि सिंहनी का पीछा करते कुमार भटक गया—यहाँ यह कहानी चौदहवें चक्र मे किंचित सशोधन-से प्रवेश कर गयी है। कुमार और पुहुपावती का साक्षात्कार अच्छी तरह हुआ है, फिर भी उसे बहुत अल्प माना जा सकता है। अब इस कथा ने कुछ-कुछ पहले कथा-चक्र का रूप ग्रहण किया। पुहुपावती की दूती ने चारणो की तरह गान या वीणा से मुग्ध करके कुमार को आकर्षित किया। और पुहपावती का स्मरण कराया। पर यहाँ मालवणी जैसी कोई विरोधिनी नही।

तब यह कथा पच्चीसवें चक्र में प्रवेश करती है। लोक-कथा के 'बेजान-नगर' जैसे 'बेगम नगर' मे दानव ने समस्त नगर तो उजाड दिया, पर रँगीली नाम की राजकुमारी के सौन्दर्य के कारण उसका अभिभावक बन गया। उसने कुमार से उसका विवाह कर दिया। अब कथा-चक्र विवाहित पद्मावती के साथ लौटते रत्नसेन के समकक्ष होगया है जिससे यह तेरहवें कथा-चक्र के चौथे और पाँचवें तत्वो से युक्त हो उठा है। नौका इसमे डूबी है और नायक पटरे के सहारे बचा है।

इसकी पत्नी 'रगीली' के सूत्र ने यहाँ से सत्ताइसवें कथा-चक्र को पकडा है, प्रियमेलक तीर्थ की भाँति यहाँ जगल का चतुर्भुज भगवान का मन्दिर है।

रंगीली के सूत्र मे गरुड़ के माध्यम से पति का रंगीली के पास पहुँचना, तेरहवें (अ) पक्ष मे सबंधित है।

प्रथम पत्नी मालती के मैना सन्देश से पुन: पुरुष होना-भाव के कथानक का रूप ग्रहण किया है। मैना इस कथा मे कुमार को मालती का स्मरण दिला देती है।

अन्त का त्याग योगी को पुहुपावती का त्याग भ्रम-दशा के गढ मे संलग्न हो जाता है और कथा-समाप्त हो जाती है।

कुतुबन का योगदान इन कथा-नियोजनों मे निश्चय ही दृष्टव्य है। इन्होंने इनके कथा-तत्त्वों को ग्रहण किया, किन्तु सभी को यथोचित रूप से ग्रहण किया। पूर्ण और शुद्ध रूप किसी भी तत्त्व का नहीं लिया।

शशिमाला कथा[1] के भूमिका भाग मे शशिमाला यक्षिणी से मानव के प्रेम का उल्लेख है, जो पुरूरवा-उर्वशी की कथा की कोटि का है। पर 'मधुभुंज' की 'मधुमालती' की भूमि पर विशेष है। मधुमालती मे 'मधु' भिन्न जाति का और प्रेमिका मालती भिन्न जाति की है। प्रेम-भावना मे विघर्षण है। मधुमालती मे मधु से मालती भावना रखती है, और जाति भिन्नता के और पद-भिन्नता के आधार पर मधु विवाह के लिए तैयार नहीं। जैनसाद के मन-प्रयोग मे मधु वश मे होता है। शशिमाला कथा मे कुमार दिननाथ रूप लुब्ध हो यक्षिणी शशिमाला से प्रेम याचना करता है, और यक्षिणी तथा मालती समझाती है कि यह असम्भव है, कहाँ यक्षिणी कहाँ मनुष्य! दिननाथ ही मन-प्रयोग से शशिमाला को स्नेह-बन्धन मे बद्ध कर लेता है। यह मनोवैज्ञानिक तथ्य बनता है, जो वर्ग का यह दूसरा पक्ष जैसा है, जिसका नाम "मैनूसिता टाल" रखा है। इन तत्त्व का पहला पक्ष तो ज्यों का त्यों है। दूसरे अंश का पूर्व भाग है, पर शर्त नहीं। वैसे कथा मे शर्त-रूप मे शशिमाला की आसक्ति इसमे है। जितने वर्ष अभिशापवश यक्षिणी मर्त्यलोक मे है उतने वर्ष तो वह साथ रहती ही है। मैलूसिना मे 'शर्त' पुरुष द्वारा टूटती है, और वह सुन्दरी लुप्त हो जाती है। यहाँ अवधि पूर्ण होने पर उसके पिता यक्षिणी को पुरुष से विलग कर देते हैं। शर्त तो नहीं है, पर परिणाम वियोग ही होता है।

चौथा अंश भी पहले आधे तक ठीक है। पुरुष उसकी खोज मे निकलता है। पर अन्तिम दुखान्त बनाने वाला अंश नहीं है। शशिमाला के वियोग मे विकल नायक शशिमाला को खोजता हुआ, किसी संकेत से हिमालय मे जाकर तपस्या करने लगता है और अन्त मे शशिमाला उसे मिल जाती है।

१—शशिमाला कथा दयाल या प्रभुदयाल कवि की कृति है और सवत् १६५८ मे लिखी गयी। अन्तिम पुष्पिका मे उल्लेख है कि "सोरह से सम्वत् विषै अठावन उपर ताहि। विप आवित के अत महुँ कीन्ही कथा नियाहि।"

चतुर्भुजदास की मधुमालती से आरभिक अश के उक्त भेद के वाद फिर दोनो कहानियो मे साम्य उपस्थित हो जाता है।

१—दोनो मे दोनो का गन्धर्व विवाह हो जाता है।

२—दोनो मे इस सम्वन्ध से नायिका के पिता रुष्ट होते हैं और वाधा डालते हैं।

४—युद्ध होता है जिसमे नायिका के पिता हार जाते हैं।

इसके उपरान्त किंचित वैपम्य से एक साम्य और मिलता है . वैपम्य है कि शशिमाला मे पिता युद्ध मे मारा जाता है। मधुमालती मे हार जाता है, और अन्त मे दोनो का सम्वन्ध स्वीकार कर लेता है—यही साम्य है कि पिता की वाधा हट जाने पर—

५—दोनो मिल जाते हैं।

वैपम्य कुछ और भी हैं— शशिमाला कथा मे

१–वाधाओ मे नायिका की माँ सर्पिणी वन कर कुमार को डस लेती है। यह एक अभिप्राय इसमे और वढा है

२–दीर्घ विरह भी शशिमाला मे है। नायक और नायिका दोनो को भयानक विरह होता है। मधुमालती मे विवाहोपरांत विरह को स्थान नही मिला।

३–शशिमाला मे 'मालती' का प्रसग और है। विरही नायक जव नायिका की तलाश मे योगी वना घूमता है तव मालती नाम की स्त्री उस पर मोहित हो उसे अपना पति वना लेती है, पर वह मालती से हाथ तक नही लगाता, नायिका के विरह मे भूला रहता है। मालती को विरहिणी वना नायक उसे छोड चल पडता है।

४–नायक योगी वना, वस्तुत नायिका के लिए प्रेम-समाधि लगा लेता है।

वाधाएँ दोनो मे ही पिता (माता) द्वारा डाली गयी हैं। इनका निवारण

समान शील विलक्षण शक्तियों द्वारा ही हुआ है। दोनों की तुलना से इन शक्तियों का रूप यह है —

मधुमालती	शशिमाला
नायक के पास ही निजी शक्तियाँ और सिद्धियाँ हैं —	अन्य देवी और सिद्ध शक्तियाँ इनकी सहायता करती हैं —
१—उसकी गुटिका अद्भुत काम करने वाली है।	१—चतुर सिद्ध मंत्र से शाप-का उतार देता है।
२—वह अपनी शक्ति से वन का विस्तार करता है और भ्रमर-सेना को नायिका के पिता की सेना के विरुद्ध भेजता है।	२—शील राय की ऋक्ष-सेना नायिका के पिता की सेना से युद्ध करती है, और उसे मार डालती है।

मालती के प्रसंग में ही चित्रमाला आता है, और यह चित्रमाला सन्देश भेजने के रूप में ही आता है, इससे यह सन्देशवाहक की परम्परा को प्रस्तुत करता है।

हिन्दी की समस्त प्रमुख कथा-सामग्री उपरोक्त प्रमुख भागों में विभाजित की जा सकती है। कुछ और भी वर्ग हो सकते हैं, पर वे गौण हैं। उनका उल्लेख यहाँ नहीं किया गया। किन्तु एक मृगावती का विशेष उल्लेख अपेक्षित है। यह समयसुन्दर की कृति मृगावती है।

समयसुन्दर की मृगावती कुतबन की मृगावती से बिल्कुल भिन्न है। इसके दो भाग अलग-अलग स्पष्ट हैं। प्रथम भाग उदयन के जन्म से सम्बन्धित है, और दोहद के अभिप्राय का इसमें विचित्र उपयोग किया गया है। यह अंश 'कथा सरित्सागर' में है। एक अन्तर तो नाम का हो गया है। समयसुन्दर ने शता-नीक की पत्नी का नाम मृगावती बताया है, कथा सरित्सागर में वह शतानीक का पुत्र सहस्रानीक है। पहली कथा वस्तुतः प्रेम-कथा नहीं। मृगावती गर्भवती है, दोहद में उसका मन रक्त से स्नान करना चाहता है। शतानीक ने एक तालाब बनवा कर लाक्षारस से उसे परिपूर्ण करा दिया। मृगावती उसमें स्नान कर निकली तो गरुड़ उसे मांस-पिंड समझ कर उठा ले गया। और एक जंगल में छोड़ गया। एक ऋषि के आश्रम में उदयन का जन्म हुआ। उदयन ने एक भील व्याध से एक पशु की रक्षा की। बदले में उसे एक आभूषण दे दिया। वह आभूषण शतानीक के पास पहुँचा। भील से वृत्तान्त विदित हुआ—और राजा जाकर मृगावती और ऋषि को ले आये। यों चक्र की दृष्टि से देखा जाय तो इसका चक्र 'दुष्यन्त-शकुन्तला-भरत' का ही चक्र है।

१—शकुन्तला या मृगावती दोनों को उड़ा

ले जाकर ही पति के देश से अन्यत्र दूर पहुँचाया गया है ।

२—उस दूर देश मे ही भरत या उदयन का जन्म हुआ ।

३—बहुत समय पश्चात् दुष्यन्त या सतानीक वहाँ जाकर पत्नी और पुत्र को लेकर आते हैं ।

४—दोनो कथाओ मे पुत्र का आभूपण किसी न किसी रूप मे एक माध्यम का काम देता है

यह श्रीमती वर्न के गुड्रून टाइप से मिलती है । इस कथा के इस अश मे प्रेम-कथा का कोई विशेष तत्व नही । इससे पूर्व प्रेमकथा हो सकती है । यह शकुन्तला-कथा मे हैं । इसके वाद भी हो सकती है । वह इस मृगावती मे है ।

मृगावती का दूसरा कथा-रूप उत्तरार्द्ध 'पद्मावत-कथा-चक्र' के अन्तर्गत रखा जा सकता है । इसके रूप को यो प्रस्तुत किया जा सकता है .

अट्ठाइसवाँ कथा-चक्र—		पद्मावत	मृगावती
	१—एक राजा के यहाँ एक गुणी पुरुष आया ।	राघव चेतन	चित्रकार
[पद्मावत, मृगावती (समयसुन्दर), छिताई वार्ता]	२—उसके गुण के कारण ही उसे अपमानित होना पडा, जिससे वह राजा से रुष्ट होगया ।	यक्षिणीसिद्धि से मिथ्या दूज दिखादी	मृगावती के चित्र मे जाँघ पर तिल दिखाया ।
	३—वह एक अन्य राजा के यहाँ गया और पहले राजा की पत्नी के सौन्दर्य पर (चित्र या वर्णन द्वारा) उसे मोहित किया ।	अलाउद्दीन के यहाँ	चडप्रद्योतन के यहाँ
	४—वह राजा उसे प्राप्त करने के लिए उस पर चढ पहुँचा है।	अलाउद्दीन ने दूत भेजकर पद्मावती माँगी, न	चडप्रद्योतन ने भी पहले दूत भेजा फिर चढाई की ।

मिलने पर
चित्तौड़ पर
चढ़ाई।

५. पर वह सुन्दरी उसे प्राप्त नहीं
हुई।

अलाउद्दीन को अरोगर
की सुन्दरी को भी
प्राप्त नहीं हो सुन्दरी प्राप्त
सकी नहीं हो सकी

'मृगावती' को धार्मिक रूप देने के लिए समयसुन्दर ने इस कथा को एक ओर मोड़ दिया है। इस मोड़ में ये अभिप्राय हैं—

१—चण्डप्रद्योत के घेरे से परेशान शतानीक अतिसार-ग्रस्त होकर और मर गए।

२—मृगावती ने चण्डप्रद्योत को संदेश भेजा कि वह मैं आपकी होना चाहती हूँ किन्तु पुत्र उदयन की सुरक्षा के लिए उसका किला पक्का बनवा देना चाहती हूँ कि मेरे पीछे उसे शत्रु-भय न रहे। इसके लिए आप उज्जैनी से पक्की ईंटें मँगवा दीजिये।

३—चण्डप्रद्योत इस प्रस्ताव से फूल गये और उज्जैन से ईंटें मँगवा दीं, जिससे किला अभेद्य बन गया।

४—चण्डप्रद्योत ने दूती भेजी कि अब मृगावती को उसके पास आजाना चाहिये, मृगावती ने उत्तर दिया कि पर-स्त्री को चाहना यह राजा को अशोभनीय है।

५—वह जैन धर्म में दीक्षित हो साध्वी बन गयी।

कथा-चक्र की दृष्टि से जायसी की 'पद्मावत' भी जटिल है। उसका पूर्वार्द्ध तो तेरहवें चक्र से सम्बन्धित है। जबकि उत्तरार्द्ध अट्ठाइसवें चक्र से है। किन्तु इसी उत्तरार्द्ध का एक सूत्र है जो पद्मावती से सम्बन्धित है, इसका चक्र-रूप यह बनता है—

१—सुन्दरी पति से वियुक्त।

२—उसकी इस असहायावस्था में उस पर एक

अन्य राजा (या कई व्यक्ति) उस पर डोरे डालने लगे। इसके लिए दूती भेजी (या स्वय पहुँचा।पहुँचे)

३—सुन्दरी ने सत की रक्षा की, दूती की वातो मे नही आयी (या पुरुपो से छल पूर्वक अपने सत की रक्षा की)

४—इस प्रकार का प्रयत्न करने वाली दूती (या पुरुषो) की दुर्दशा और घोर अपमान।

५—पति मिले।

स्पष्ट है कि यह दसवें चक्र का ही एक रूप है, और यह साधन के मैना-सन के ही समकक्ष नही, कथा-सरित्सागर की उपकोशा भी इसी चक्र मे बैठेगी। बर्न का चौथा रूप जिसे उन्होंने पेनीलोप टाइप नाम दिया, इसी चक्र के समतुल्य है। इसके चरण ये हैं —

१—आदमी यात्रा पर जाता है, पत्नी घर पर रहती है।

२—वह पातिव्रत्य के साथ उसकी वाट जोहती है।

३—वह लौट कर उसे मिल जाता है।

पद्मावती के कुछ अभिप्रायो को देखा जाय तो वे अन्य कथा-चक्रो से लिये गये विदित होते हैं। इनमे एक अभिप्राय असभवातिशयोक्ति के कारण विशेप ध्यान आकर्षित करता है। वह है एक राजपक्षी राक्षस को उड़ा ले गया। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने इस पर यह टिप्पणी दी है

"राज पखि = गरुड या सीमुर्ग जैसा कोई विशालकाय पक्षी जिसके विषय मे नाविको की यह धारणा थी कि यह वडे-वडे जहाजो को पजो मे दवोचकर ले जाता है। महाभारत आदिपर्व मे ही हमे यह अभिप्राय मिलता है जिसमें गरुड जी आपस में लडते हुए हाथी और कछुए को पजो मे उठा ले जाते हैं और उनका जलपान कर डालते हैं। मध्यकालीन नाविको मे इस की अनेक कहानियाँ प्रचलित थी। जायसी ने यहाँ दैत्य, भँवर और राजपखि इन तीन अभिप्रायो का उल्लेख किया है। चित्रावली मे भी राजपक्षी का उल्लेख है (ततखन राजपछि एक आवा। परवत डोला डैन डोलावा। ३११।२) (पद्मावत मूल और सजीवनी व्याख्या पृ० ४०२)"

चित्रावली में सुजान को हाथी ने पकडा और उस हाथी को पक्षिराज ले उड़ा। यह पक्षिराज मृगावती (समयसुन्दर) मे मृगावती को ले उडा है (कथा-सरित्सागर मे भी इसका उल्लेख है)।

पहुँचता है। लखमसेन पद्मावती मे कुँए मे होकर पाताल मे पहुँचता

२—वह कई सकटो से वाल-वाल वचता है—लखमसेन पद्मावती मे सिंह और युद्ध के सकटो मे से वचा है।

३—वह पाताल से एक राजकुमारी को छुडा कर लाता है। पद्मावती को विवाह करके लाता है।

लखमसेन पद्मावती की कथा विवाहोपरात फिर आगे वढती है। इस कथा के दूसरे अग के ये चरण वनते है :—

१—योगी सिद्ध ने सपने मे राजा से कहा कि मुझे पानी पिलाओ।

२—राजा पानी पिलाने गया तो योगी ने उससे पद्मावती के गर्भ का वालक माँगा।

३—राजा वालक ले गया और योगी की आज्ञा से उसके चार खड किये।

४—पहले खड से धनुपवाण निकले, जो राजा ने ले लिये, दूसरे खड से खड्ग निकली जो योगी ने ले ली, तीसरे खड से धोवती निकली, वह राजा ने ले ली। चौथे खड से सुन्दरी निकली, जिसे सिद्ध ले गया।

५—राजा को वैराग्य हो गया। वह धोती पहन उड कर एक समुद्र किनारे पहुँचा।

६—वहाँ एक सेठ पुत्र डूव रहा था, उसे उवारा और सेठ के पहुँचाया।

७—वहाँ के राजा की पुत्री चन्द्रावती लखमसेन पर मुग्ध। दोनो का विवाह हुआ।

८—पद्मावती ने योगी से कहा कि मुझे लखमसेन के दर्शन कराओ। अन्यथा मैं जल मरूँगी।

९—योगी उसे लेकर चन्द्रावती के नगर मे पहुँचा। उसने पद्मावती के परामर्श से खड्ग और फरसा सेमर के वृक्ष मे रख दिये।

१०—पद्मावती लखमसेन के पास पहुँची और सेमर के वृक्ष से खडग ले लेने का सकेत किया।

११—धोवती पहिन लखमसेन सेंवल के वृक्ष पर पहुँचा। पीछे योगी भागा। पर लखमसेन ने खडग आदि हथिया लिये।

१२—दोनो मे युद्ध, पर सिद्धनाथ मारे नहीं मरता। पद्मावती ने

बताया कि इसके सिर के ऊपर जब तक भौंरे मँडराते रहेंगे वे नहीं मरेगा।

१३—लखमसेन धोती पहन कर उठा और भौंरे को मार डाला, और योगी को मार डाला।

१४—अब चन्द्रावती और पद्मावती को लेकर गढ़ सामोर (पद्मावती की नगरी) में आया, वहाँ से विदा लेकर अपने नगर में आया।

इस ग्रन्थ में भी कई कथा-रूपों का मेल सम्मिलित है।

पहला तत्व 'विश्वामित्र-हरिश्चन्द्र' कथा के भूमिका भाग के रूप में है।

१—स्वप्न में राजा ने वचन दिया।

२—इस वचन के पालन में पुत्र मारा गया, पत्नी भी त्यागनी पड़ी।

३—इस प्रकार राजपाट छोड़ कर चल देना पड़ा।

४थे तथा ६ठे सूत्र मिलकर किंचित विक्रम-चक्र का रूप ग्रहण करते हैं। परदुःखभंजनहार की तरह लखमसेन सेठपुत्र को डूबने से बचाता है।

तब आठवें से अन्तिम सूत्र तक इस कथा का तत्व बर्न के 'पर्चफिन टाइप' नाम के छठे कथा-रूप के समान हो जाता है। इसका दूसरा नाम बर्न ने 'प्राण-प्रतीकी कथा-रूप' भी दिया है, लखमसेन में बर्न का दानव (Giant) सिद्ध या योगी होगया है, उसने पद्मावती का हरण किया है। लखमसेन का प्रेमी-प्रेमिका की तलाश में नहीं गया, प्रेमिका ही प्रेमी को तलाश करके पहुँचती है। इस अन्तर के अतिरिक्त शेष बर्न के अनुकूल है। प्रेमिका ही दानव या योगी के प्राण-प्रतीक का भेद बताती है। जिसे प्रेमी या पति मार कर योगी को मार डालता है और पद्मावती को प्राप्त कर लेता है।

लखमसेन पद्मावती की इस कथा को यों तो पूरी कथा कहा जा सकता है, पर कुछ ऐसे प्रश्न उठते हैं जिनका समाधान इस कथा से नहीं होता। सबसे पहला प्रश्न यह उठता है कि पद्मावती ने १०१ राजाओं को मारनेवाले से विवाह करने की प्रतिज्ञा क्यों की है? यह प्रतिज्ञा उसने योगी को ही बतायी। लक्ष्मणसेन को स्वयंवर में वरण करने और विवाह करने में इस प्रतिज्ञा का किंचित भी ध्यान नहीं रखा गया। दूसरा प्रश्न यह है कि योगी के रहस्य को पद्मावती कैसे जानती है? पद्मावती यह कैसे जानती है कि उसके अर्भक को योगी चार टुकड़े करायेगा, चार टुकड़े करने पर धनुषबाण, खड्ग, धोती तथा सुन्दरी निकलेगी? पुत्र के चार टुकड़े होजाने पर लक्ष्मणसेन क्यों लौट कर

पद्मावती के पास नही गया ? यदि पेट फाडकर लाने मे पद्मावती की मृत्यु हो चुकी थी तो वह वाद मे योगी के साथ कैसे दिखायी पडी ? क्या वह सुन्दरी ही पद्मावती थी जो चौथे खड मे निकली थी, जिसे लेकर योगी उड गया था ? भौंरो मे योगी के प्राण हैं, इसे भी पद्मावती ने कैसे जाना ?

जायसी की चित्ररेखा मे भी दो सूत्र तो स्पष्ट दिखायी पडते है। एक सूत्र नायक का है। इस सूत्र के चरण ये हैं—

१—ज्योतिपियो ने वताया कि नायक की उम्र कम है।

२—मृत्यु से कुछ पहले नायक काशी पहुँचा, वह तीर्थ मे ही मरना चाहता है।

३—मृत्यु के समय से पहले उसने खूब दान-दक्षिणा वांटी। ऋपियो-ब्राह्मणो मे व्यासजी भी। उन्होंने वडी उमर का आशीर्वाद दिया।

४—आशीर्वाद से मृत्यु टल गयी।

इस वृत्त मे प्रथम चरण वस्तुत 'सत्यवान' के चक्र मे रखा जा सकता है। सत्यवान की उम्र भी कम वतायी है। परिणाम अर्थात् कथा का अन्तिम चरण भी समान ही है। सत्यवान की मृत्यु भी टल गयी, चित्ररेखा के नायक की मृत्यु भी टल गयी। किन्तु सत्यवान की वस्तुत मृत्यु हो गयी थी, उसे पुनरुज्जीवन प्राप्त हुआ है। यहाँ व्यास जी के आशीर्वाद से मृत्यु आने से पूर्व ही टल गयी है। मृत्यु टालने का जानबूझ कर प्रयत्न सत्यवान कथा मे है, यहाँ मृत्यु की तय्यारी मे दान-पुण्य से व्यास का आशीर्वाद मिला और मृत्यु टल गयी।

दूसरा सूत्र नायिका चित्ररेखा का है—

१—चित्ररेखा का सवध एक कुवडे से नेगी कर आये थे।

२—कुवडे की वरात चली, रास्ते मे सोता हुआ नायक मिला। वरातियो ने उसे कुवडे के स्थान पर दूल्हा वना दिया कि विवाह मे वाधा न पडे।

३—नायक का विवाह कुवडे के स्थान पर चित्र-रेखा से होगया। रात को दोनो को साथ सुलाया गया। नायक ने नायिका के आँचल पर दूसरे दिन अपनी मृत्यु होने की वात लिखी और अपना पता भी लिखा और चला गया।

४—नायिका ने प्रेम पत्र और [illegible] होने की
[illegible] करने लगी किन्तु [illegible] होने ही [illegible]
[illegible] नायक लौट आया, दोनों मिले।

इस कथानक की तुलना [illegible] 'नागानंद की बात' [illegible] चौबीसवें [illegible] में संकलित है। यहाँ नायक दैवयोग से [illegible] गया है, किन्तु [illegible] का जादू का उल्लेख नहीं, अन्तिम [illegible] भी बदला हुआ है। चौबीसवें [illegible] में नायिका को प्रसन्न करना पड़ता है तब प्रिय को अन्तिम रूप से प्राप्त किया जा सका है। यहाँ ऐसा प्रसंग नहीं है।

गर्भ-कथाएँ—इन मूल कथा-रूपों में यदि और भी अधिक विस्तार लाने या किसी स्वरूप के समाधान या किसी [illegible] के विश्लेषण हेतु और कथाएँ भी होती हैं। ये गर्भ-कथाएँ निम्न विविध रूपों में रखी जा सकती हैं—

१—भूमिका कथाएँ या
हेतु कथाएँ
२—सहयोगी कथाएँ
३—साक्षी कथाएँ।

१—भूमिका कथाएँ वे कथाएँ हैं जो मूल-कथा की भूमिका का काम देती हैं। गणपति के माधवानल कामकन्दला प्रबन्ध में 'काम' और 'रति' के शुकदेव के शाप के कारण 'माधव' और 'कामकंदला' के रूप में जन्म लेने की कथा, भूमिका-कथा ही है।

कुशललाभ ने यह भूमिका बदल दी है। इस भूमिका में भी शाप तो है किन्तु यह शाप इन्द्र का है, और जयन्ती नाम की अप्सरा को दिया गया है। एक छोड़ दो शाप हैं। एक शाप तो जयन्ती को नृत्य-गर्व के कारण मिला है। पहले शाप में वह पाषाण-शिला बनी है। माधव से जब इस शिला का विवाह बालकों ने खेल-खेल में कर दिया, तब वह पुनः शाप-मुक्त हो अप्सरा होकर उड़गयी। किन्तु इस बार वह इस विचार से कि उसका विवाह माधव से होगया है वह उसके पास आने लगी है। जब प्रतिबन्ध लगाया गया तो उसने माधव को ही इन्द्रलोक में बुला लिया, यहाँ तक कि नृत्य के समय भी उसे भ्रमर बना कर उरोजों के बीच कंचुकी में रखकर वह नृत्य करने लगी। तब इन्द्र ने वेश्या के घर जन्म लेने का शाप दिया। इस प्रकार कामकन्दला का जन्म हुआ। माधव का जन्म शिव के एक बार स्खलित होजाने से हुआ। शिवजी ने अपना यह रेत गंगा किनारे सम्पुट में रख दिया। राज पुरोहित सतान का भूखा था। शिवजी ने आशीर्वाद दिया। वे गङ्गा किनारे आये तो सम्पुट में

बालक मिला। इसी का नाम माधव रखा गया। यह समस्त कथा भूमिका कथा है।

विरहवारीश मे गोपियो के शाप से काम-रति का माधव तथा कामकन्दला के रूप मे उत्पन्न होना, तथा लीलावती को ब्राह्मण के शाप और शिव के वरदान से पुष्पावती मे पैदा होना भूमिका-कथाएँ हैं। बोधा की कामकन्दला ने राजा के घर मे जन्म लिया, पर उसमे पण्डितो ने वेश्या के लक्षण बताये तो एक कटहरे मे बन्द कर नदी मे बहा दिया। उसे नटो ने नदी मे निकाला, पाला-पोसा तथा कामावती के राजा को दे दिया। वह राजनर्तकी बन गयी।

रसरतन मे काम-रति द्वारा सोम-रभा मे स्वप्न दिखाकर पारस्परिक प्रेम का भाव पैदा कराने का प्रसङ्ग तथा रभा की उत्पत्ति विषयक प्रसङ्ग भूमिका कथा है।

इसी प्रकार लखमसेन पद्मावती मे योगी द्वारा १०१ राजाओ को पद्मावती वरण के लिए मार डालने के लिए एक कुँए मे पटकते जाना भी भूमिका-कथा ही है।

भूमिका-कथा आरभ मे ही आती है, ऐसी ही कथा जब किसी बात का हेतु बताने के लिए कथा के अन्दर आती है तो उसे हेतु-कथा कह सकते हैं। बीसलदेव रास मे उडीसा के राजा के सबध मे रानी राजमती को ऐसा विशेष ज्ञान क्यो है इसे बताने के लिए राजमती ने अपने पूर्व जन्म की कथा सुनायी है। यह पूर्व जन्म मे हरिणी होने की कथा हेतु-कथा है।

इसी प्रकार प्राय सभी जैन-कथाओ मे पूर्वभव का वृत्तान्त कही न कही आता ही है। वह 'हेतु कथा' के रूप मे ही अवतीर्ण होता है। चतुर्भुज की मधुमालती मे जैतमाला द्वारा मधुमालती और अपनी पूर्वभव की कथा बतायी गयी है।

संयोजक-कथा इन कथाओ मे सयोजक कथाओ को विविध कथाओ को जोडने के काम मे लाया जाता है। सयोजक कथा सूत्र की भाँति है जिसमें अनेक कथाएँ मनिको की भाँति पिरोयी रहती हैं। इसके अनेको उदाहरण भारतीय कथा-साहित्य मे प्रसिद्ध है—बैताल-पच्चीसी मे विक्रमादित्य और बैताल की कहानी सयोजक कथा है। सिहासन बत्तीसी मे भोज और सिहासन की बत्तीस पुतलियो की कथा सयोजक कथा है। प्रियमेलक कथा मे मुख्य नायक ही सयोजक कथा का रूप धारण किये हुए है। विक्रम चक्र की सभी कथाओ मे एक सयोजक-कथा होती है, वह कथा कभी कभी इतनी सी ही होती है कि "बडी पूजा-उपासना से भगवान या ऋषिमुनि, या देव-दानव के आशीर्वाद से पुत्र जन्म हुआ। यह पुत्र अत्यन्त प्रबल या अत्यन्त सम्मोहक

था, अब उसे निष्कासन दिया गया। वह घर से निकला और कितनी ही यातनाओं का स्वयं नायक बनता चला गया।"

२—साक्षीकथाएँ—ये कथाएँ बीच बीच में आती हैं और किसी तथ्य, नीति या स्थिति को समझाने के लिए दृष्टान्त या उदाहरण की भाँति दी जाती हैं। चतुर्भुजदास की मधुमालती में साक्षी कथाओं का सबसे अधिक उपयोग किया गया है। उसमें ये कथाएँ साक्षी कथा के रूप में हैं :

१—मृग-सिंहनी की प्रेम-कथा
२—घूघर (उल्लू) और काग की कथा (काकोलूकीय)
३—टिटहरी के अण्डों की कथा
४—कुञ्जर कर्ण की कथा
५—मनदसुत चन्दा और भनवरी की कथा।

इन अन्तर्भुक्त सहायक या उपकथाओं को अलग कर देने पर मूल कथा प्राप्त होती है। इन्हीं को कथा-सारों में ऊपर दिखाया गया है।

हिन्दी पूर्व की जैन कथाओ मे मिलने वाले अभिप्राय

हिन्दी की कथाओ का जैन कथाओ की परपरा से घनिष्ठ सबध है। ऐसा अब तक प्रतिभासित होता रहा है। यहाँ हम हिन्दी पूर्व की कुछ जैन कथाओ के अभिप्राय दे रहे हैं, जिनसे हिन्दी कथाओ से सबध का प्रमाण उपलब्ध होता है।

भविसत्तकहा [१०वी शताब्दी से पूर्व (स्वयभू तथा हेमचन्द्र के बीच के काल में धन-पाल कृत)]	१—सौतेले भाई की ईर्ष्या। उसने धोखे से नायक को जगल मे छोड दिया।
	२—नायक एक उजडे नगर मे पहुँचा जहाँ दानव या राक्षस के अभिभावकत्व मे एक सुन्दरी उसे मिली।
	३—नायक और सुन्दरी का विवाह।
	४—जहाज पर घर लौटते समय सुन्दरी पर आसक्त हो जहाज के स्वामी (सौतेले भाई) ने नायक को धोखे से कही छोड कर सुन्दरी को लेकर जहाज चला दिया।
	५—नायक ने राजा से कह न्याय द्वारा अपनी सुन्दरी को प्राप्त किया।
णायकुमार चरिउ [पुष्पदन्त कृत]	६—व्यापारी द्वारा लाये गये एक राज-कुमारी के चित्र को देख राजा उस पर मोहित।

७—मुनि की भविष्यवाणी से पुत्र-जन्म की सूचना।

८—बन्द स्थान (जिन मन्दिर जो किसी से नहीं खुला) पुत्र के चरण-स्पर्श से खुल गया।

९—कुएं में गिरे बालक की नाग द्वारा रक्षा।

१०—सौतेले भाई द्वारा नायक को मारने के प्रयत्न उद्दत अश्व तथा उद्दत हाथी द्वारा। नायक ने दोनों को वश में किया।

सनत्कुमार-चरित [सं० १२१६ से ले० हरिभद्र]

११—उद्यान में एक उत्सव में नायक तथा युवती मिले तथा प्रेमाबद्ध हुए।

१२—एक व्यक्ति ने एक तेज घोड़ा दिया जो नायक को भगाकर दूर देश में ले गया।

१३—युवती को एक यक्ष चुरा ले गया।

१४—मानसरोवर प्रदेश में युवती और नायक मिले, विवाह हुआ।

१५—मित्र ने नायक का पता लगाया, मानसरोवर में एक किन्नरी के गीत द्वारा।

जिणदत्त चरित [सं० १२७५ रचयिता-लाखू या लक्खण]

१६—नायक के सौन्दर्य से नगर-युवतियां आक्रान्त।

१७—सिंहल द्वीप में जाकर राजकुमारी से विवाह।

१८—राजकुमारी पर मोहित एक रिश्तेदार नायक को समुद्र में फेंक देता है।
[४ थे अभिप्राय को किंचित परिवर्तित किया गया है, ६वां चित्र देखने का अभिप्राय भी इसमें है]

१९—(सिंहल की) राजकुमारी के पेट में से सर्प निकलता और प्रेमी को डस लेता।

२०—नायक ने पेट से निकलने वाले सर्प

को मार कर राजकुमारी से विवाह किया।

करकण्डु चरित्र [सं० ११२२ रचयिता मुनि कनकामर]	२१—अशुभ लगन मे उत्पन्न राजकुमारी (नाम पद्मावती) परित्यक्त, एक उद्यान मे।
	२२—नायक ने विवाह किया।
	२३—दोहद मे—पुरप्रवेश मे रानी ने राजा के साथ हाथी पर नगर-भ्रमण किया हाथी भाग खड़ा हुआ।
	२४—राजा-रानी वियुक्त [राजा हाथी से कूद कर अलग, रानी हाथी पर चढी एक वन मे पहुँची।]
	२५—सूखा वन हरा होगया (रानी के पहुँचते ही)
	२६—रानी के (श्मशान मे) पुत्र-जन्म जिसे एक चाडाल (रूप मे विद्याधर) ले गया।
	२७—एक अन्य राज्य के राजा की मृत्यु पर नायक को राजा बनाया गया।
	२८—पिता और पुत्र (नायक) मे युद्ध, नायक की माँ ने दोनो को मिलाया
	२९—एक विद्यावर हाथी रूप मे नायक की पत्नी को हर ले गया
	३०—सिंहल मे जाकर राजकुमारी से विवाह
	३१—सिंहल की राजकुमारी के पेट मे सर्प निकलता था
	३२—उस सर्प को मार कर विवाह किया
	३३—सिंहल राजकुमारी के साथ लौटते समय मच्छ का नौका पर आक्रमण
	३४—राजा (मच्छ मारने कूदे, मच्छ को मारा, पर नौका पर नही लौट सके) को एक विद्याधरी उडा ले गयी।
	३५—रानी बहकर एक अन्य द्वीप पर पहुँची,

वहाँ पति आश्चर्य पूजा । पद्मावती ने प्रकट हो पति मिलन का आश्वासन दिया

३६—विद्याधरी ने राजा से विवाह किया और वियुक्त रानी (रतिरंगा) से मिलाया

पउमसिरी चरिउ [११९१ वि० ले० धाहिल]
३७—एक विद्याधर ने नायक नायिका के प्रेम मे सदेह उत्पन्न कर भेद पैदा किया
३८—चित्र अङ्कित मयूर हार निगल गया, फिर माला ने उसे उगल दिया ।

सुदंसण चरिउ [११०० वि० ले० जयनदी]
३९—एक रानी ने नायक के सौन्दर्य पर मुग्ध हो उसे बुलाया और रति का प्रस्ताव किया ।
४०—नायक के अस्वीकार करने पर लांछन लगा, बंदी बनाया ।
४१—व्यंतर (देव) ने नायक की रक्षा की ।

जंबु सामि चरिउ [१०७६ वि० वीरकवि]
४२—स्वप्न का फल पुत्र होना
४३—नायक ने मत्त गज को वश मे किया

ऊपर दिये गये अभिप्रायों के साथ उन अभिप्रायो को भी जोड़ना आवश्यक है जो ऊपर हिंदी जैन कथाओं मे दिये गये है, क्योंकि प्राय सभी हिंदी जैन कथाएँ अपने से पूर्व की अपभ्रंश या सस्कृत जैन कथाओ का अनुवाद या रूपान्तर ही है ।

उन अभिप्रायों को देखकर हिन्दी कथा-काव्य परपरा पर दृष्टि डालने से यह उन जैन अपभ्रंश कथाओं का ही विकास विदित होती है किन्तु सत्य यह है कि इन कथाओं का और हिन्दी कथाओ का मूल स्रोत एक ही है, वह है लोकमानस की लोक-कथाएँ । वहीं से इन जैन कथाओ को सामग्री मिली और वही से हिन्दी कथा-काव्यों को ।

—. ० .—

उपसंहार

विकास की दृष्टि से जो बात सबसे अधिक ध्यान आकर्षित करती है वह योगी या जोगी है। यह नाथ जोगी है। 'लखमसेन पद्मावती कथा' के ये शब्द ध्यान देने योग्य हैं "पद्मावती कहइ सुण नाथ, एक बोल मांगू तो हाथि।" योगी को पद्मावती ने यहाँ 'नाथ' कहा है। यह सम्प्रदाय की दृष्टि से ही प्रतीत होता है। यह जोगी को नाथ-सप्रदाय का सिद्ध करता है। नाथ-सप्रदाय की परम्परा से यह जोगी इस कथा-काव्य की परपरा में आ पहुँचा है। यों तो जैसा ऊपर बताया गया है हिन्दी के इस युग के कथा-साहित्य की परम्परा का तारतम्य जैन-कथा-परम्परा से बैठता है। प्राय अधिकांश अभिप्राय, जो हिन्दी-कथा-परम्परा मे काम मे आये, वे जैन कथा-परम्परा में मिलते हैं, और उन्हीं की सतति हिन्दी कथा-काव्य प्रतीत होते है। किन्तु वास्तविक बात यह है कि इस युग की पृष्ठभूमि जटिल सूत्रो से निर्मित थी। नाथ-सप्रदाय के सूत्र भी लोक मे घुलमिल गये थे। जैसे जैन-परम्परा के तन्तु किसी कवि विशेप द्वारा प्रकल्पित नही थे, वे लोक-सपत्ति थे, लोक-कथाओ मे व्याप्त थे और लोक-कथाओ से ही लिये गये थे, वैसे ही नाथ-सप्रदाय के सूत्र भी लोक-व्याप्त हो लोक-कथाओ से लिपट गये थे। भर्तृहरि का वृत्त भर्तृहरि के लिए योग का वृत्त हो सकता है, पर भर्तृहरि की पत्नी के लिए तो वह प्रिय-वियोग का दारुण प्रसग है। पूरनमल के वृत्त की धुरी भी विमाता-प्रेम ही तो है। मत्स्येन्द्रनाथ का त्रिया देश मे रम जाना, और उनके

उद्धार हेतु गोरखनाथ का त्रिया देश जाना तथा योगी द्वारा इष्ट प्राप्ति के निमित्त यात्रा करने के समान ही नहीं है। नाथ-सिद्धों के चरित्रों के साथ जो अद्भुत सिद्धि-चमत्कारों के अभिप्राय जुड़ गये थे उन्होंने इस युग की प्रेम गाथाओं और कथाओं के लिए उन्हें विशेष आकर्षण युक्त बना दिया था। अतः योगी प्रायः प्रत्येक कथा-काव्य की धुरी बन गया है।

एक और दृष्टि से देखने पर प्रतीत होता है कि प्रेमगाथा और कथा के माध्यम से जैसे योगी का अनन्त और निर्गुण, प्रेम के रूपक से, सगुण होने का प्रयत्न कर रहा है। वह लोक-मानस की भाषा में अपना रूपान्तर ढूँढ रहा है।

योगी को प्रेमयोगी बनाकर गाथा और कथा के रचयिताओं ने अपनी-अपनी दार्शनिकता उसके साथ गूँथ दी। वस्तुतः दार्शनिकता ने लोक-मानस के विकास-क्रम में यौन-सम्पर्क को आरम्भ में उर्वरत्व का अनुष्ठान समझा, फिर उसे प्रतीकात्मकता प्रदान की, उसे टोने से युक्त तो माना ही गया था, उसके पुरुष-स्त्री पक्ष की शक्तियों को काम-रति का नाम ही नहीं दिया गया, उसे देवत्व प्रदान भी किया गया। देवत्व सदा कल्याणकारक शक्ति ही तो है। एक तात्विकता ने काम को काम के रूप में ही चार पुरुषार्थों में गिन लिया और कामकथाएँ लिखी जिनकी फल-श्रुतियाँ लिखना वे नहीं भूले—यथा

सुगड कथा जे आपइ दान, गाइ दक्षणा अरु कापड़ पान।
वीर कथा सभलइ जे रली, तिहि वीयोग नहीं एक घरी ॥ १३०
हरि जन हरि यश हरी पयालि, हरि कनासुर वधियो बालि।
देइय स्यघारण त्रिभुवनराय, सुरता जे बैकुंठा ठाय ॥ १३१

—लखमसेन पद्मावती (रासो)

अेह कथा जे सभलइ, वचइ वली विशेष।
पातक परीयावट तणा, तिहा रहइ नहीं रेष ॥२१३॥
अहनिसि आनंदइ मनइ, अंगि न आवइ रोग।
सजण-तणी सम्या नही, भवि भवि पामइ भोग ॥२१४॥

माधवानल कामकंदला प्रबन्ध (गणपति)

इन काम-कथाओं[1] में भी प्रेम की अनन्यता है, किन्तु सशरीर काम-

---

१. कथा के संबंध मे शास्त्रकारो ने विचार किया है। भामह ने 'कथा' और आख्यायिका का उल्लेख किया है। दण्डी मे और भामह मे साम्य है। उसने दोनो मे कोई विशेष भेद नही माना। आनन्दवर्द्धनाचार्य ने कथा के तीन भेद माने १ परिकथा, जिसमे इतिवृत्त मात्र हो, रस-परिपाक के लिए जिसमे विशेष स्थान न हो। लखमसेन पद्मावती को संभवत परिकथा कहा जा सकता है। २ सकल कथा और ३—खण्ड कथा। अभिनव गुप्त ने परिकथा मे वर्णन-वैचित्र्य युक्त अनेक वृत्तान्तो का समावेश आवश्यक माना है। सकल कथा मे

कल्याण के लिए। इसे काम से विलग नही किया जा सका, यद्यपि 'प्रेम' को दार्शनिक स्तर पर रखने के लिए कुछ साम्प्रदायिक चेष्टा भी की गयी मिलती है। किन्तु वह समस्त दार्शनिक ऊहापोह लोक-तत्वों से तिल-तदुल न्याय से मिली हुई है। काम-कथाओ की मूल प्रवृत्ति से ये प्रेम-कथाएँ भिन्न नही। नायक-नायिका के सयोग के स्थलो के वर्णनो से यह तथ्य स्पष्ट उद्घाटित होता है। यही नही काम-शास्त्रानुसार नायिकाओ का वर्णन और उनका नखशिख वर्णन भी दोनो को एक ही परम्परा का बताता है। चतुर्भुजदास ने मधुमालती को कामकथा ही नही, नीतिकथा और राजनीति कथा भी बताया है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि इन प्रेमगाथाओ में तथा अन्य कथा-साहित्य मे भी 'कथा-तत्व' का मूल लोक-क्षेत्र है। इनमे दिव्य तथा अलौकिक और जत्र-मत्र, जादू-टोना लोक-मानस की परम्परा से आया है। इनमे योग तथा प्रेम का जो गठबधन हुआ है वह भी इनका सम्बन्ध अन्तर्धारा द्वारा सिद्ध-नाथों की साधना के सूत्र के लोकावतरण से सिद्ध करता है।

वस्तुत 'कामकथा' का इस काल में एक महत्वपूर्ण स्थान था, और भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार यह काम-कथा भी दैवी तत्व से युक्त ही मानी जाती थी। यह चतुर्भुजदास की मधुमालती से तो अत्यन्त स्पष्ट ही है। उन्होने मधु को कामावतार बताया है—

"काम अस पूरन अवतारी
याकी अकथ कथा है न्यारी
तीन लोक सारे इन जीते।
ऐसे करत बहुत दिन बीते"

बीज से फलपर्यन्त तक की पूरी कथा रहती है। श्रीपाल चरित या प्रद्युम्न चरित इस कोटि मे आ सकते हैं। खण्डकथा एकदेश प्रधान होती है। हेमचन्द्र ने सकल कथा को चरित नाम दिया है। उदाहरण मे 'समरादित्य-कथा' का नाम दिया है। उपकथा मे चरित के अन्तर्गत किसी प्रसिद्ध कथान्तर का वर्णन रहता है। 'चित्रलेखा' को हेमचन्द्र ने उपकथा माना है। हरिभद्राचार्य ने एक नया वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। उन्होंने सामान्य कथाओ को चार भागो मे बाँटा है १—अर्थ-कथा, २—काम-कथा, ३—धर्म-कथा और ४—सकीर्णकथा। अर्थकथा का विषय अर्थ-प्राप्ति होता है। कामकथा प्रेम-कथा है। धर्मकथा की परिभाषा मे सिद्धर्षि ने लिखा है —

"मोक्षकाक्षैकतानेन चेतसासि लबन्तिये
शुद्धा धर्म कथामेय सात्त्विकास्ते नरोत्तमा

और 'सकीर्णकथा' का यह लक्षण दिया है—

'ये लोकद्वय सापेक्षा किञ्चित्सत्त्वयुताना
कथातिच्छन्ति संकीर्णां ज्ञेयास्ते वर मध्यमा

इस कामदेव को उन्होंने एक अत्यन्त सामान्य स्तर पर भी पहुँचा दिया है—

"जोबन रूप जहाँ लौं होई
सो प्रतिबिम्ब काम का होई"

किन्तु अपने यहाँ तो 'कामावतार' का पौराणिक उल्लेख भी है, यह कृष्ण पुत्र प्रद्युम्न कामावतार ही है इसीलिए इन्होंने लिखा है—

"प्रदमन देह बिनस जिन्ह पाई
सम्भर करन कोन तिहि साधे"

जैनियों मे भी २४ कामावतारों में प्रद्युम्न का उल्लेख है। प्रद्युम्नचरित इस प्रकार कामदेव का ही चरित है। ऊपर 'माधवानल कामकंदला' की कुछ भूमिका-कथाओं का उल्लेख हुआ है, उसमें 'माधवानल कामकंदला' की कथा एक भिन्न रूप में कामावतार की कथा ठहरती है। इसलिए 'काम-कथाएँ' काम-रति के अवतारों की भी कथाएँ थीं, और मूल में काम-शिक्षा की भी कथाएँ थीं। किन्तु इनका स्तर लोक-मूल से सबद्ध रहता था।

इन कथाओं में दैवी तत्व, पशु-पक्षी तत्व, जादू-टोना या सिद्धि-चमत्कार, शाप-वरदान के अद्भुत अंश तो प्राय होते ही है, जिनमें विश्वास और जिनके उल्लेख और श्रवण से आनन्द बिना लोक-मानस के असम्भव है, पर प्रायः सभी कथाओं में किसी-न-किसी रूप में योगी, समुद्र यात्रा, ऋतु वर्णन और बारहमासा, संयोग-सम्भोग, वियोग, गुरु या मार्गदर्शक, रूप-सम्मोहन और नखशिख, युद्ध-वर्णन, मिल ही जाते हैं।

इन पर एक दृष्टि डालने से स्पष्ट विदित होता है कि ये गाथाएँ और कथाएँ चार सूत्रों में गूँथी गयी है —

१—योगी कथा—इसका रूप प्रायः यह रहता है : गुरु मिला, उसने माया [या विद्यमान पत्नी] से मन उचटा दिया। शिष्य विरक्त होकर गुरु के पीछे चल पड़ा। गुरु के उपदेशानुसार उसने योगी होकर योग साधा। उससे सिद्धि प्राप्त की। माया, गुरु, योग, यात्रा इस कथा का परिकर बनाते है।

२—सिद्ध-कथा—गुरु ने शिष्य को सहज का ज्ञान दिया—शिव को शक्ति या डोमिनी चाहिये। बिना उसके रमे योगी सिद्ध नहीं हो सकता, न सिद्ध पूर्णता ही पा सकता है। इसमें शाक्त और तंत्र दोनों समन्वित है।

गुरु, प्रेम, पद्मिनी, रूप-सम्मोहन, नख-शिख, संयोग-सम्भोग इस कथा का परिकर बनाते हैं।

३—वीर कथा—वीर वीरकार्यार्थ घर से चल पड़ता है, आक्रमण या

युद्ध मे प्रवृत्त होता है। विजय प्राप्त कर विजयोन्नान और विजयोपहार मे सुन्दरी और रत्न लेकर लौटता है। गृह-पत्नी का वियोग।

गृह-त्याग, बडे समूह के साथ यात्रा, भेदिया मार्गदर्शक, युद्ध, सुन्दरी-रत्नोपहार इस परिकर के हैं।

गृह पत्नी का वियोग, वियोग सदेश म वारहमासा भी इसी परिकर के हैं।[1]

---

१ 'वीर' शब्द एक विशेष साम्प्रदायिक अर्थ भी रखता है। तन्त्रो के अनुसार सत-रज-तम इन तीन गुणो के कारण मनुष्य भी तीन प्रकार के हैं १—पशु=तम-प्रकृति, २—वीर=रज - प्रकृति ३—दिव्य=सत-प्रकृति। सामान्यत मनुष्य पशु है, पशु से 'वीर' स्थिति को प्राप्त करने के लिए उसे चार साधनाओं मे होकर क्रमश ऊपर उठाना चाहिये। वे चार साधनाऐ हैं १—वैदिक क्रिया मार्ग। एक विशेष पद्धति से वेद के वताये मार्ग का अनुसरण, जो आगमिक के अनुकूल हो। २—वैष्णव भक्ति मार्ग। विष्णु की भक्ति प्रवान, विष्णु को सर्वव्यापक रूप मे देखते हुए। तथा ३—शैव-क्षत्रिय मार्ग। शिव-ध्यान, कठिन परिश्रम और शक्ति उपार्जन, इससे ज्ञानमार्ग प्राप्त होता है। ४—दक्षिण—इसके द्वारा 'पशुत्व' छूटता है, साधक 'वीरत्व' प्राप्त करता है। इसमे 'देवी' का ध्यान किया जाता है। रात्रि मे विशेष अनुष्ठान किये जाते हैं। मनुष्य की अस्थियो की माला के उपयोग द्वारा विलक्षण सिद्धियां प्राप्त हो जाती हैं। इन सिद्धियों से युक्त हो वह वीर वन जाता है। 'वीर' मे ऊपर उठकर दिव्य वनने के लिए 'वाम', 'सिद्धान्त', 'अघोर', 'योग' साधनाओं से कौल' साधना पर पहुँचना होता था। 'लखमसेन पद्मावती इसी अर्थ मे 'वीर काव्य' है। कर्पूरमजरी मे इस सम्प्रदाय के भैरवानद का उल्लेख है। इसमे भी भैरवानद का सुमिरन किया गया है। "समरु वीर भइरवाणद।" आदि। इस कवि ने पहले अध्याय के आरम्भ मे लिखा .—

> 'सुणउ कथा रस लील विलाश। योगी मरण राय वनवास।
> पद्मावती वहुत दुख सहइ। मेलउ करि कवि दामउ कहइ।
> कासमीर हूती नीसरइ। पचन हू सत अमृत रस भरइ।
> सुकवि दामउ लागइ पाय। हम वर दीया सारद माय।
> नमु गणेश कुजर केस। मूसा वाहण हाथ फरेस।
> लाड्डू लावण जस भरि थाल। विघन हरण समरूं दूदाल।
> सवतु पनरइ सोलोत्तरा मझारि। ज्येष्ठ वदि नवमी वुधवार
> सप्त तारिका नखत द्रढ जाणि। वीर कथा रस करु वषाण
> सरस विलास कामरस भाव। जाहु इुरीय मनि हूऊ उछाह।

आदि।

दूसरे खण्ड का आरम्भ केवल भैरवानद के स्मरण करने के वाद ही कर दिया है। इसमे योगी को 'वीर' भी कहा गया है। सिद्ध अथवा वीर के मन मे 'पद्मावती' को पाने और उसे पाने के लिए १०१ मनुष्य कपालो का आयोजन, यह समस्त वृत्त उसे साम्प्रदायिक दृष्टि से 'वीर' सिद्ध करता है।

वीर शब्द का सवन्ध 'वीर्यवान' से भी है। वीर्यवान का सम्बन्ध 'सरस-

(४) वणिक-कथा — वाणिज्य के लिए वणिक देश-विदेश जाता है, विशेषत समुद्र यात्रा करके दूर देश जाता है। उसकी पत्नी घर में उसकी बाट जोहती है। वियोग में दुख के दिन बिताती है। यह वणिक समुद्र-यात्रा करके दूर देश से धन-सम्पत्ति लेकर लौटता है। उसके कभी-कभी ब्याही हुई सुन्दरियाँ भी होती हैं। समुद्र यात्रा, गृहपत्नी का वियोग, इसी के परिकर के हैं।

इन चारो क्षेत्रो में से आरम्भ के तीनो पर यथाक्रम से हम पहले ही विचार कर चुके हैं। चौथी कथा का सम्बन्ध तो स्पष्टत लोक-क्षेत्र ही है। इस प्रकार इन कथाओ में ये स्तर मिलते हैं —

ज्ञान

आध्यात्म ✽ दार्शनिक | आचरण

✽ गूढ़-संक्रान्तिक |

धार्मिक ✽ |

पाँच—[लौकिक आचार, लौकिक क्रिया, ज्ञान

लोक क्षेत्र ✽ चार—[लौकिक विश्वास, रीति-रिवाज, लोक-ज्ञान

तीन—[कल्पना-विधान अलंकार-प्रवर्ण योजना, उद्दीपन

लोकमानस ✽

दो—[वर्ण्य-वस्तु इतिहास, लोक कथा, पुराण-कथा, कल्पना-कथा

एक—[कथा-अभिप्राय, कथा-तन्तु, कथा-रूप, फल-श्रुति, साधना-रूप

इस कथा-साहित्य की आधार-भूमि लोक-मानस है। समस्त ढांचा और निर्माण की समस्त नींव गहराई में लोक-मानस से आबद्ध है। इस आधार-

---

विलास काम रस भाव' से भी किया गया है। यह तन्त्र के अनुष्ठानो से भी सिद्ध है, और सामान्य किन्तु आदर्श 'काम-कथाओं' से भी। यह 'वीर्यवानता और शौर्य' साथ साथ दिखाने के लिए एक अद्भुत कथांश की अवतारणा भी की गयी। यह अवतारणा हमे 'हम्मीर रासो' मे ही नहीं मिलती, 'चतुर्भुज' की 'मधुमालती' मे अन्तिम साक्षी-कथा के रूप मे भी मिलती है। यह यो अश्लील भी प्रतीत होती है। वन मे ही नायक-नायिका रति-रत हैं। वहाँ सिंह आ पहुँचता है। नायक रति से विना विरत हुए ही, धनुष-बाण से उस सिंह को मार डालता है। इस वृत्त मे 'काम=वीर्यवान और शौर्य=शूरवीरता दोनो की सिद्धि दिखायी गयी है। इसी कारण काम-कथाओ मे भी युद्धादि विषयक वीरकथाओ को नियोजित किया गया है।

इस प्रकार वीर-कथा मे साम्प्रदायिक ही नही सामान्य वीर-व्यक्तित्व का भी समावेश है।

भूमि मे इतिहास-पुराण तथा कल्पना-कथा तक मूलत लोक-मानस के ढाँचे मे ढलकर ही आये है। इसके ऊपर भी लोक-तात्विक स्तर है। यह सामान्य लोक क्षेत्रीय है। बडी-बडी शास्त्र और ज्ञान की देनें, साम्प्रदायिक तथ्य और विश्वास लोक-क्षेत्र मे प्रचलित होकर अत्यन्त सामान्य लोक-भूमि के बन जाते हैं। वही से कवि और साहित्यकार ने इन्हे लिया है। इसके ऊपर कवि का उपार्जित ज्ञान गुथता दिखायी पडता है। यह केवल अत्यन्त प्रतिभाशाली और ऊँचे कवियो मे ही मिलता है। इसके ऊपर एक झीना आवरण आध्यात्मिक रग का रहता है। इसी में सिद्धान्त और दर्शन के कुछ दर्शन होते हैं।

चतुर्थ अध्याय

१

सगुण भक्ति काव्य

आरंभिक—भक्ति तत्व लौकिक तत्व है। इसका विकास लोक तत्वों से समन्वित होकर सम्पन्न हुआ है। भक्ति के मनोवैज्ञानिक स्वरूप पर ध्यान दिया जाय तो विदित होगा कि उसमें एक ओर तो 'राग तत्व' की तन्मय-कारिणी या तादात्म्य कारक वृत्ति होती है, दूसरी ओर इसके साथ मूल आनुष्ठानिक भावना होती है। मूल आनुष्ठानिक भावना में टोने का भी तत्व विद्यमान रहता है। इसका आधार तत्व प्राय वही है जो देवी-देवता या दई-देवता को आधीन करने के उपयोग में आता है। उसमें दई-देवता की सत्ता और शक्ति में विश्वास निहित होता है, यह सत्ता या शक्ति नाम-रूप-धारिणी होती है। रूप-धारणा में मूलत वैलक्षण्य होता है। मानवेतर तत्व में भी मूल-स्थिति में इसका गाढ संबंध होता है। ये तत्व आरंभ में अनेकधा होते हैं, धीरे-धीरे आदिम 'मन' जैसे तत्व के विश्वास में वे सभी मानवेतर तत्व मानव-तत्व के साथ संजोये जाकर एक परमदेव का व्यक्तित्व धारण करते हैं। इसे तुष्ट करने का भाव भी निरंतर विद्यमान रहता है। इस परम-देव का साक्षात्कार आदिम मन कर सकता है, सृष्टि के बिखरे तत्वों में भी और उन्हीं के समन्वित रूपों में भी। इसके लिए उसमें नाम-रूप के 'अंगांगी' अनुष्ठान का आयोजन रहता है। नाम के लिए उसका 'नाम' है यह मंत्र का

काम करता है। इसे लेने पर नामधारी को वश मे होना ही पडता है, क्योकि 'नाम' नामधारी का अग ही होता है। रूप की भी मूर्त कल्पना करनी ही पडती है। नाम-रूप की 'ध्यान-धारणा' मे उस 'परमदेव' का आवाहन होता है। यह अनुष्ठान अभीष्ट साधन के लिए किये जाते हैं। अभीष्ट मे वह देव कैसे बाधक बने या कैसे साधक बने या कैसे बाधक न रहे, यह बात सिद्ध करने के लिए उसको तुष्ट किया जाता है—इस तुष्टि के लिए उसे पहले तो अपना निजी देवता बनाया जाता है, और उसे अपने हृदय के राग-तत्व समर्पित किये जाते हैं, उसे बलि भी दी जाती है। बलि मे भी आत्म-समर्पण का भाव होता है। मन सिद्धान्त+महानुभूतिक टोना (अह+वन्)=मनुष्य बलि=पूर्ण आत्म-समर्पण। इन तत्वो मे ही भक्ति का निर्माण होता है। ये जहाँ विद्यमान हैं वहाँ भक्ति विद्यमान होती है।

सिन्धु सभ्यता मे ये तत्व विद्यमान देखे जा सकते हैं :—

'परमदेव'—परमदेव की सत्ता का इस सभ्यतानुयायियो ने जो साक्षात्कार किया उसका एक विवरण श्री केदारनाथ शास्त्री जी ने 'हडप्पा' नामक पुस्तक मे, दिया है। उनका कथन है कि—

"इसका शरीर जो प्रकटत मानुषी दिखाई देता है वस्तुत कई पशुओ अथवा उनके अवयवो के विलक्षण सयोग मे सगठित है। यह मूर्ति भ्रान्ति और प्रतारणा का भव्य उदाहरण है। पशुमुख के समान लम्बा चेहरा, उभरी हुई तिरछी आँखें, लम्बे कान, आखो से लेकर थोथनी तक दोनो ओर गहरी झुर्रियाँ, रोमरहित अस्थिमय छोटा-सा सिर—ये सब लक्षण निस्सन्देह इस सत्य के प्रत्यायक हैं कि सिर पशु का है। और फिर सिर पर कुटिल विशाल सीग जो स्पष्ट रूप मे भैसे के है इस बात का और भी समर्थन करते हैं कि देवता महिष-मुड है।++++देवता के महिष मुड होने का समर्थन उस दृश्य से भी होता है जो मोहेंजो-दडो की एक मुद्रा[1] पर उत्कीर्ण है फलक २७,२। इसमे प्राकार-वेष्टित देवद्रुम के सामने एक यूप है जिसके शिखर पर सींगवाला महिषमुण्ड प्रतिष्ठित है। सीगो के मध्य मे शिखण्ड के समान उतरती हुई पीपल की शाखा देवत्व का चिह्न है।[2] यूप के शिखर पर महिष-

---

१ मेके—फर्दर एक्सकेवेशन्स एट मोहेंजो-दडो, ग्र २, फलक १०३, मुद्रा ८।

२. प्राक्-वशावली-काल के सुमेरियन देवताओ के मुकटो मे वन-वृषभ के सींगों के बीच भी देवद्रुम की मगलमय शाखा है। प्रतीत होता है कि शाखा शिखण्ड की वह विलक्षणता सुमेरियन लोगो ने सिधु-लोगो से ली थी। मेसोपोटेमिया मे यह शाखा-शिखण्ड कुछ समय के लिए अकस्मात प्रकट होता है

मुण्ड के होने का तात्पर्य यह है कि महिषमुण्ड देवता देवद्रुम का अधिष्ठातृ-देवता होने के कारण उसका संरक्षक था। यह देवद्रुम जीवन-तरु माना जाता था। वे भाग्यवान् जो इसकी शाखा को अपने सिर पर धारण करते थे अमर और अजेय हो जाते थे। पूर्वोक्त चारदीवारी के बाहर और महिषमुण्ड देवता की संरक्षकता में एक पुरोहित यज्ञवृषभ पर से कूद रहा है। ध्यान-पूर्वक देखने से प्रतीत होगा कि इस देवता का सींगोंवाला मुकुट मुद्रा नं० ३८७ पर अंकित पीपलवृक्ष की प्रतिकृति है। महिष-मुण्ड देवता के मुकुट में पत्ते के आकार का शिखण्ड इसी मुद्रा पर अंकित पीपल वृक्ष के छत्राकार आच्छद का अनुकरण है। +-+-+-+-+-मार्शल का विचार है कि देवता की भुजायें कंधों से कलाई तक कंगनों से लदी हैं। इसमें संशय नहीं कि यद्यपि स्थूल दृष्टि से वे मानुषी भुजायें दिखाई देती हैं, वस्तुतः वे ऐसी नहीं। ये साक्षात कनखजूरे हैं जो शरीर के दोनों ओर कंधों से लटक रहे हैं। +-+-

"अब महिषमुण्ड-देवता के शरीर के अधोभाग को ध्यानपूर्वक देखिए। टंककार की कला का यह अद्भुत उदाहरण है। इसे देखने से मालूम होता है कि देवता टांगों को योगासन-मुद्रा में बांधकर ध्यान-मग्न बैठा है। परन्तु वस्तुत. टांगों के स्थान दो लिपटे हुए नाग योगासन का भ्रम पैदा कर रहे हैं। इन नागों के सिर तो देवता के कटि-प्रदेश में एक दूसरे से सटे हुए हैं और पूंछें देवता के पांवों के अग्रभागों में समाप्त होती हैं। शरीर के इस भाग का सर्पमय होने का पता लगाना अत्यन्त कठिन है जब तक कि मूर्ति को उलटा करके न देखा जाय (फलक ३३, च.) ऐसा देखने से नागों के सटे हुए सिर देवता की कटि हैं और उनके द्विगुणित शरीर उसकी टांगें हैं। कटिसूत्र से लटकता हुआ डोरा उलटा देखने में नागों के सिरों के बीच की विभाजक रेखा बन जाती है और डोरे के मुड़े हुए गोल सिरे नागों की आंखों का बोध कराते हैं। इस देवता के विचित्र संगठन की दूसरी बात इसकी असम्भव आसन-मुद्रा है। पीठ को केवल अपने पांवों की अंगुलियों से छू रहा है, शेष शरीर आकाश में निराधार स्थित है। इसके अतिरिक्त पांवों की मुद्रा भी असम्भव है। पांव सीधे नीचे की ओर तने हैं और अंगुलियां ९०° के कोण पर ऊपर को उठी हैं। यह आसन-मुद्रा स्वभावतः असाध्य है। परन्तु कलाकार ने सम्भवतः यह मुद्रा इसलिए बना दी कि दर्शक को देवता में अलौकिक चमत्कार के सामर्थ्य का बोध कराना था। +-+-+

परन्तु उत्तर-काल में लुप्त हो जाता है। विपरीत इसके सिन्धु-सभ्यता में यह विशेषता इसके दीर्घ-जीवन-काल में निरवच्छिन्न बनी रहती है और 'देवद्रुम-कथानक' से इसका प्रादुर्भाव इस तथ्य का साक्षी है कि यह कल्पना प्रथम भारत में उत्पन्न हुई।

"मार्शल का विचार है कि देवता छाती पर एक त्रिभुज के आकार का उरस्त्राण अथवा कवच पहने हुए हैं। उनके मतानुसार शाक्तों के तान्त्रिक कवच का जन्म भी इसी से हुआ। परन्तु इसे कवच मानने में आपत्ति यह है कि इसका देवता के सकीर्ण शरीर से समन्वय करना कठिन है। सादृश्य के आधार पर यह मानना उचित होगा कि देवता का वक्षस्थल यदि अशत बाघ का शरीर नही तो कम से कम व्याघ्राम्बर से आवृत अवश्य है। यह उस बाघ के धारीदार शरीर से बहुत सादृश्य रखता है जो देवता की बाँई ओर उछल रहा है। मोहेंजो-दडो की मुद्रा न० ३४७[1] (फलक १६, च) पर एक सकीर्ण देवता जिसका शरीर अशत मानुषी और अशत बाघ है, अङ्कित है। इससे पता लगता है कि सिंधुकालीन देवताओ के शरीर मे मनुष्य और बाघ का योग अज्ञात नही था। पुन जब हम देखते हैं कि महिष मुण्ड देवता का बाकी शरीर कई जीवो का सघात है तो यह अनुमान लगाना असगत नही कि इसका मध्य भाग भी किसी ऐसे ही पशु-अश का बना होगा। +++

यदि हम इस देव-शरीर के ऊपर के भाग को जिसमे सिर, सीग और एक भुजा शामिल है, ध्यान से देखें तो बिच्छू के आकार का आभास ही होने लगता है। +++

महिषमुण्ड देवता की एक और विलक्षणता यह है कि इसके पीठ की टाँगें साक्षात् केंकडे हैं।"

अब यह परमदेव, सृष्टि के विविध तत्त्वो का पशु आदि रूप मे पृथक-पृथक दर्शन करके, सब से समन्वित एक महिषमुण्ड देवता के रूप में भी साक्षात्कार का विषय बना है। यह मोहेंजोदडो की मुद्रा स० ४२० के देखने से स्पष्ट हो जाता है। इसमे पृष्ठभूमि रूप मे चराचर के साथ नाम भी अङ्कित है। स्वय महिषमुण्ड-देव विविध प्राणियो के अभिप्रायों से विलक्षण रूप मे प्रस्तुत किये गये हैं। साथ ही एक दूसरा चित्र पूजा और बलि के उपकरणो से युक्त है।

इस विलक्षण देवता के सम्बन्ध मे उक्त लेखक ने कुछ अपना अभिमत भी दिया है। वह इस प्रकार है —

"मेरे विचार मे सिन्धुकालीन महिषमुण्ड देवता अपनी विलक्षणताओ के कारण वैदिक देवता 'रुद्र' के बहुत निकट है। ऋग्वेद मे रुद्र को घोर, प्रचण्ड और असुर के नाम से निर्दिष्ट किया गया है। ऐतरेय ब्राह्मण मे वर्णन आता है कि रुद्र सृष्टि के समस्त भयङ्कर तथा आसुरी तत्वो का सघात है।[2] वेदो में

---

१. मेके —फर्दर एक्सकेवेशन्स, ग्रन्थ २, फलक ८७, २२२।
२. ऐतरेय ब्राह्मण, ३, ३३।

रुद्र को जो 'पशुपति' विशेषण दिया गया है उसका तात्पर्य यह है कि वह पशुओं पर घातक आक्रमण करता है इसलिए सब पशु उसी की संरक्षकता में छोड़ दिए गए हैं।[१] वेदों में यह उल्लेख भी मिलता है कि स्वर्ग में नरूप देवता दिव्य पशुजगत् से परिवृत होते हैं।[२] महिषमुण्ड देवता भी कई पशुओं से परिवृत है। उसके दाईं ओर हाथी और बाघ तथा बाईं ओर गैंडा और भैंसा है एवं उसके सिंहासन के नीचे दो हिरण अथवा पहाड़ी बकरे खड़े हैं।

"--मार्शल ने महिषमुण्ड देवता को ऐतिहासिक काल के पशुपति शिव से एकात्म सिद्ध किया है। परन्तु यह निर्विवाद है कि ऐतिहासिक शिव वैदिक काल के रुद्र का ही रूपान्तर है क्योंकि उसके बहुत से लक्षणों और विशेषणों को यह धारण करता है। स्मरण रहे कि सिंधुवासियों और आर्यों में जो परस्पर सम्पर्क हुए वे वैदिक काल में ही हुए होंगे। ... अतः यही निष्कर्ष युक्तिसंगत प्रतीत होता है कि सिंधुकालीन महिषमुण्ड देवता बजाय उत्तरकालीन शिव के पूर्वकालीन वैदिक रुद्र का ही पूर्व रूप था।

"परन्तु यह भी सत्य है कि महिषमुण्ड देवता कई बातों में वैदिक रुद्र से और कई में ऐतिहासिक शिव से सादृश्य रखता है। सादृश्य के बिन्दु ये हैं-- (१) देवता का संकीर्ण शरीर जो पशुओं का संघात होने पर भी नररूप है, (२) जंगली पशुओं से साहचर्य, और (३) योगासन मुद्रा। इनमें पहले दो लक्षण रुद्र में पाए जाते हैं और अन्त के दो शिव में। जैसा कि ऊपर लिखा गया है, रुद्र का शरीर भी भयङ्कर तत्वों का संघात था और पशुपति रूप में वह पशुओं का स्वामी था। ऐतिहासिक शिव यद्यपि भयङ्कर तत्वों का संघात नहीं था तथापि उसका पशुओं से घनिष्ठ सम्बन्ध है। अपने घोर रूप में वह महाकाल है, अर्थात् काल का भी काल। समस्त भूत, प्रेत, पिशाच आदि गण उसके आदेश में हैं। विषधर मृणाल के समान उसके शरीर से लिपटे रहते हैं। वह व्याघ्राम्बर और कृत्तिवासस है जिसका तात्पर्य यह है कि वह भयङ्कर से भयङ्कर जीव की खाल अनायास ही उधेड़ कर उसे वसन के रूप में ओढ़ने में समर्थ है। भारत के कुछ प्रान्तों में यह कहावत चली आती है कि दिवाली के दिन अर्थात् शीतकाल के आरम्भ में शिव बिच्छू, सांप, कनखजूरा आदि समस्त विषैले जन्तुओं को समेट कर अपने थैले में भर लेता है। जहां वे छः मास तक कैद रहते हैं, और ग्रीष्मकाल के आरम्भ में शिवरात्रि के दिन पुनः उन्हें थैले से बाहर फेंक देता है। ऐसी दन्तकथाओं का जन्म अवश्य भारत के अति प्राचीन सिंधुयुग में ही हुआ होगा।"

---

२ मेकडानेल--वैदिक माईथालोजी, पृ० ७५।
३, मेकडानल--वैदिक माईथालोजी, पृ० १४८।

इस प्रकार इस युग मे तीन आदिम वृत्तियो का समन्वय फलीभूत हुआ : १—मन सिद्धान्त मे सृष्टि मे देवत्व विधान, २—उसका एक परम रूप—"व्यष्टि समष्टि", ३—उसकी तुष्टि-पुष्टि और उसे वशीभूत करने के लिए मंत्र[1], स्तुति, पूजा तथा बलि। इसी के साथ 'योगासन' की मुद्रा और 'चराचर' का 'नर रूप' मे व्याप्त होना। ये भी मूल लोक-मानस के आनुष्ठानिक प्रक्रिया के रागतत्व परक उद्भाव हैं। अत इसी लोकभूमि पर भक्ति का सम्पूर्ण परिपाक हुआ, पीछे तो उसकी अमनोवैज्ञानिक दार्शनिकता मात्र का सवर्द्धन हुआ।

यहाँ से भक्ति का विकास सगुण कृष्ण-राम तक कैसे पहुँचा, इसका किंचित दिग्दर्शन 'सूर की झाँकी' के आरभिक निबधो मे कराया गया है। इनमे से एक तारतम्य दिखाने के लिए कुछ अंश यहाँ उद्धृत किये जाते हैं —

"+ + + मोहनजोदडो और हडप्पा के द्रविड अथवा व्रात्य एकेश्वरवादी थे। उनके इस ईश्वर का नाम शिव था। उनके लेखो मे स्पष्ट उल्लेख है कि शिव परमात्मा है वही विश्व का शास्ता है। वह अद्वैत है, स्वय-भू है, वह महत् है और देवो मे देवोत्तम है। वह सर्वद्रष्टा और उदारचेता है, वह विश्व का कर्त्ता भर्ता-हर्ता है।[3] एकेश्वरवाद भक्ति का प्रधान आश्रय है, विशेषत तब जब कि उसे आकार मिल जाये। इस एकेश्वर शिव को इस युग मे साकारता भी मिल गयी थी, जिसके कितने ही प्रमाण यहाँ मिले हैं। एक तो ऐसा अनोखा ठप्पा मिला है जिसमे शिव के दोनो ओर दो व्यक्ति बैठे हुए अङ्कित है। यह ठप्पा सिद्ध करता है कि इस युग के लोग भक्त थे—भक्ति का ऐसा

---

१ मन्त्र के सबध मे एक फलक की मीमासा करते हुए उक्त शास्त्री जी ने लिखा है —

"पूर्वोक्त मुद्राछाप न० १ पर जिस चित्राक्षर की ओर ऐंद्रजालिक निर्देश कर रहा है वह फलक १३, ठ मे निर्दिष्ट दो चित्राक्षरों का योग है। इनमे पहला अक्षर अश्वत्थ-देवता का प्रतीक और दूसरा समृद्धि का उपहारक बहगी वाला है फलक १३, ठ। सयुक्ताक्षर का तात्पर्य है—'समृद्धि का देने वाला परमदेवता"। एक हाथ से चित्राक्षर को छू कर और दूसरे हाथ को तान्त्रिक मुद्रा मे बैल की ओर तान कर ऐंद्रजालिक मानो इस मन्त्र का उच्चारण कर रहा है—"परमदेवता की कृपा से तुम सौम्य बन जाओ और साथ ही मेरे लिए सौभाग्य और समृद्धि का कारण बनो।" इस चित्र मे स्पष्ट प्रतीत होता है कि उद्दण्ड जगली पशु को सौम्य तथा उपकारक बनाने के लिए पुरोहित परम देवता की सहायता का आवाहन कर रहा है।"

२. देखिये सूर की झांकी—निबन्ध २, ३, ४, तथा ५, पृ० ११ से ४० तक।

३ हेरस 'रिलीजन आव दी मोहनजोदड़ो पीपिल ऐटसेट्रा।'

मूर्त प्रमाण अन्यत्र प्राप्त नहीं। फलत आर्यों से पूर्व द्रविड़ों मे यही भक्ति जन्म ग्रहण कर चुकी थी और प्रचलित हो चुकी थी।

"-|- -|- ऋग्वेद के वरुण मे भी वे समस्त तत्त्व दिखायी पड़ते है जो भक्ति के बीज कहे जा सकते है। -|- -|- -|- वरुण विषयक जिन भक्ति के तत्त्वो का आभास हमे ऋग्वेद मे मिलता है, वह किसी बाहरी प्रभाव का ही परिणाम होगा। वरुण विषयक ऋचाओं का निर्माण सभवत. उस समय हुआ होगा जब आर्य लोग मोहनजोदाड़ियो के सम्पर्क मे आ चुके होगे। इसके उपरात वैदिक साहित्य मे हमे दो विशेष उल्लेखनीय घटनाएँ मिलती है—एक तो केनोपनिषद के द्वारा प्रस्तुत की गयी है, जिसका पहले उल्लेख किया जा चुका है। "ब्रह्म" को देख कर वैदिक देवताओ का आश्चर्य और उसके समक्ष उनकी असमर्थता, तथा उमा हैमवती द्वारा उसका परिचय—ये तत्त्व यह स्पष्ट सिद्ध करते हैं कि वैदिक देवताओं के परिकर मे उनके लिए अपरिचित और दूसरे शब्दों मे बाहरी तत्त्व का प्रवेश हुआ – उसका व्याख्यान "उमा हैमवती" अर्थात् शिव परिकर की स्त्री ने किया। दूसरी महान घटना है "श्वेताश्वतर उपनिषद की रचना"—श्वेताश्वतर मे स्पष्टत भक्ति का प्रतिपादन है, और असदिग्ध रूप मे उस भक्ति का इष्ट 'रुद्रशिव' को बनाया गया है। श्वेताश्वतर उपनिषद के ऋषि श्वेताश्वतर को महाभारत मे 'महापाशुपत' कहा गया है। इसी उपनिषद मे सबसे पहले 'भगवन' शब्द का प्रयोग शिव के लिए हुआ है। इन दोनो वैदिक घटनाओं को साथ-साथ देखने से विदित होता है कि वैदिकेतर क्षेत्र से आर्यों को पहले तो समस्त देवताओं के मूल स्रोत 'ब्रह्म' का ज्ञान कराया गया, और तदनन्तर उसका अपनी परम्परा के अनुकूल नामकरण किया गया। फलत इस उपनिषद के द्वारा 'रुद्र' और 'ब्रह्म' परम्पराओं का सम्बन्ध हुआ और आर्यों ने वैदिक काल मे ही 'भक्ति' को महत्व प्रदान किया।

और, तब भारत मे कुछ बड़े परिवर्तन हुए और भक्ति का केन्द्र 'शिव' के स्थान पर 'विष्णु' को बनना पड़ा। 'शिव' का स्थान विष्णु को सरलता से नही मिल गया, इसके लिए अत्यन्त दीर्घकालीन और भयानक सघर्ष रहा, जिसका इतिहास भारत के पुराण और पुराण-पूर्व के साहित्य मे बिखरा पड़ा है। असुरो का सम्बन्ध साधारणत शिव-पूजा से दिखायी पड़ता है। असुरो अथवा राक्षसो और देवताओं के सघर्ष मे यही शिव और विष्णु की ही प्रतिद्वन्द्विता दिखायी पड़ती है। सुरो-असुरो और देवो-राक्षसो के सघर्षो की समस्त कथाओ को एकत्र करके देखा जाय तो यह सिद्ध होगा कि पहले शिव का

दौर-दौरा था।[1] फिर शिव और शैवो को परास्त[2] करके विष्णु की प्रधानता हुई, दोनो मे प्रतिद्वन्द्विता और युद्ध [3] बहुत समय तक चला, तब दोनो के समन्वय की चेष्टा हुई।[4] और अन्त मे शिव पिछड गये तथा विष्णु का प्राधान्य स्थापित हो गया। + + + शिव का रुद्र के साथ सयोग, और त्रिवेद 'ब्रह्मा-विष्णु-महेश' की कल्पना सामजस्य और समन्वय का परिणाम है।

+ + +

"विष्णु शब्द इन्द्र तथा वरुण की भाँति वेदो के अन्य प्रकृतिवादी देवताओ के नामो से भिन्न है। इसकी व्युत्पत्ति पर कई प्रकार मे विचार हुआ है। सायण ने इसका शब्दार्थ 'व्यापनशील' दिया है। ब्लूमफील्ड ने 'वि+स्नु' मे सधि विग्रहपूर्वक इसका अर्थ 'पृष्ठ पर होकर' (Through the back) किया है। आप्टे ने इसकी साधारण व्युत्पत्ति के लिए यह उदाहरण दिया है।

यस्माद्विश्वमिद सर्वं तस्य शक्त्या महात्मन ।
तस्मादेवोच्यते विष्णुर्विशधातो प्रवेशनात् ॥

इस व्युत्पत्ति मे 'विश' धातु का उल्लेख है, और यह 'विश' धातु ऐतिहासिक दृष्टि से हमे वेदो के उस 'विश' शब्द तक पहुँचाती है जो ब्राह्मणो और क्षत्रियो के विशेष वर्गों को छोड कर शेष समस्त आर्य वर्गों के लिए प्रयोग मे आता था और जिसका रूप वैश्य शब्द मे अभी तक सजीव है। आप्टे द्वारा दी गयी उपरोक्त व्युत्पत्ति मे यदि हम विश्व के स्थान पर विश रख दें तो

---

१. रावण का समस्त देवताओं पर आतङ्क इसी शैव विजय का द्योतक है। श्वेताश्वतर ऋषि का 'महा पाशुपात' होना और उपनिषद् मे रुद्र-शिव को ब्रह्म का स्थान देना भी इसी सत्य को प्रकट करता है।

२ राम के द्वारा रावण की पराजय इसे सूचित करती है। सती के दाह के उपरान्त शिव की विरक्ति में भी यही संकेत है।

३ शिव का पार्वती से विवाह, स्कन्द का जन्म, देवताओं की सहायता, शैव की पुन प्रतिष्ठा का यत्न है। अर्जुन और शकर युद्ध का इसी का प्रतीक है।

४ शिव-विष्णु के भयानक युद्ध को ब्रह्मा ने शान्त किया और दोनों को एक बताया इसमे दीर्घ सघर्ष और अन्त मे समन्वय का भाव बताया है। इस समन्वय को मूर्तियों मे भी उत्कीर्ण किया गया। शिव-विष्णु की सयुक्त मूर्तियां उपलब्ध होती है।

५ परशुराम और राम का सघर्ष भी इसी का प्रतीक है। परशुराम शिव भक्त थे, तभी उन्होंने पिनाक के टूटने पर राम को ललकारा। राम ने पिनाक तोडा यह घटना, और परशुराम की पराजय और शस्त्र-समर्पण शिव की पराजय के ही द्योतक हैं।

स्पष्ट हो जायगा कि विष्णु वह देवता है जो समस्त विश जाति का इष्ट था—फलत. 'विष्णु'नाम उस काल के किसी देवता को विश जाति के द्वारा दिया गया होगा और वह उसी वर्ग मे विशेष प्रतिष्ठित होगा, यह संभावना विदित होती है - यही वैश्य जाति आज 'वणिक' भी कहलाती है और इतिहास के अन्वेषकों की स्थापना है कि यह 'वणिक' शब्द वैदिक 'पणिन' का ही रूपान्तर है और आगे भी वे कहते हैं कि यह 'पणिन' वैदिक काल की अनार्य जाति थी यह जाति वैदिक और वैदिक-पूर्व काल मे अत्यन्त ही प्रसिद्ध व्यापारी जाति थी। जो दूर-दूर देशो मे जाकर वाणिज्य करती थी। वेदो की साक्षी से विदित होता है कि यह जाति नगर-कला मे सिद्धहस्त थी, क्योंकि उन्हे वेदो मे 'ग्रथिन' कहा गया है। इनके पास विशाल लोहे के कोट थे, ये सोम-विक्रेता थे और ये आर्यों की गायें चुरा ले जाते थे। इन्द्र ने उन्हे युद्ध मे जीत कर जल-सिंधुओं का उन्मोचन किया। अब यह उल्लेखनीय है और विचारणीय है कि आर्यों की वैश्य जाति का विश शब्द अनार्यो की जाति के द्योतक उन 'पणिन' या 'वणिक' का कैसे पर्यायवाची हो गया। निश्चय ही ये दोनो वर्ग परस्पर मिल-जुल गये होंगे। इस मेल-जोल मे ही सम्भवत यह रहस्य छिपा होगा कि शिव का स्थान विष्णु ने ग्रहण कर लिया।

आर्यों और अनार्यो के इस मेल-जोल ने देवताओं के सम्बन्ध मे ही यह तरल अवस्था प्रस्तुत कर दी कि इन्द्र, विष्णु, शिव मे कोई भेद नही रहा, ठीक वैसे ही जैसे कबीर ने सिद्ध करने की चेष्टा की कि राम और रहीम मे कोई भेद नही। यह तरलता आर्यों के विविध वर्गों के देवताओं के नामो के सम्बन्ध मे भी थी। विष्णु के पर्यायवाची 'जिष्णु' शब्द को लिया जाय तो विदित होगा कि यह सूर्य, इन्द्र, विष्णु तीनो के लिए आता है। शिव को महेन्द्र बनाया गया, 'मह' विशेषण से अत्यन्त आदर प्रदान किया गया और अन्त मे वही 'महेन्द्र' तीसरे स्थान पर पहुँच गये।

"जिष्णु और विष्णु की तुलना मे यह भी विदित होता है कि 'जिष्णु' का मूल 'जि' है जिससे इसका शब्दार्थ होता है विजय की योग्यता वाला-विजेता। उसी अर्थ के कारण इन्द्र, सूर्य, विष्णु ही नही अर्जुन भी जिष्णु कहे जाते हैं। उसी प्रकार 'वि' मोक्ष है। जिससे विष्णु हुआ—मोक्ष की योग्यता रखने वाला-मोक्षदाता। इस मोक्ष का भाव इन्द्र के साथ वृत्र और पणिस से जल-मोक्ष का है और वरुण के साथ पाश-मोक्ष अथवा शुन' शेफ के मोक्ष का है तभी विष्णु उपेन्द्र हैं।

+ + +

"ऋग्वेद मे जो विष्णु बहुत पिछडे हुए थे, वे यजुर्वेद मे चमक उठे। वहाँ

विष्णु उपेन्द्र थे, 'इन्द्र के साथी' थे, उनका पृथक् कुछ महत्व न था। उन्हीं विष्णु को यहाँ पृथक् श्रेष्ठ स्थान प्राप्त हो गया। स्थिति में परिवर्तन हो गया। जो यज्ञ पहले कामना सफल करने और देवताओं को प्रसन्न करने का साधन था वह अब स्वतः साध्य हो गया। वह स्वयं देवता हो गया। यज्ञ ही विष्णु हैं, ऐसा कई स्थानों पर कहा गया। विष्णु अब व्यावहारिक कर्मकाण्ड से ऊपर उठने लगे, अब उनके सम्बन्ध में परिभाषा ही नहीं होती, उनका रूप भावात्मक हो चला। वह कर्म-क्षेत्र से उठकर ज्ञान-क्षेत्र में पहुँचने लगे। इस काल के बाद का साहित्य वैदिक कर्म तथा यज्ञ-याग प्रधान धर्म के प्रति एक क्रान्ति का अध्याय आरम्भ करता है। ऋषियों को प्रतीत होने लगा था कि यज्ञ-याग करने मात्र से काम नहीं चल सकता। उस यज्ञ के स्वरूप को जानना आवश्यक है। वह यज्ञ मानसिक भी हो सकता है। बृहदारण्यक के आरम्भ में अश्वमेध यज्ञ की मानसिक उपासना के रूप में व्याख्या की गयी है। आरण्यक नगर से दूर एकान्त अरण्यों के रहने वाले ऋषियों के निमित्त प्रतीत होते हैं। वहाँ वे आर्य-धर्म के कर्मों को यज्ञयाग आदि को करने में किस प्रकार समर्थ हो सकते थे? वहाँ सुविधा और सामग्री कहाँ थी! अतः वे मानसिक उपासना करने लगे।

"वे यज्ञ के, आवश्यक प्रतीत होने वाले उपचारों से भी घबड़ा गये होंगे। यज्ञ की बलि ने भी उन्हें विचलित कर दिया होगा। ऋग्वेद में शुनःशेफ का उल्लेख है, उसकी कथा वैदिक ही है।

"+ + + वे वैदिक कर्मों को त्याग नहीं सकते थे। उन्होंने उसका रूप बदल दिया। उसे मानसिक-उपासना का रूप दे दिया। इस काल में वैदिक कर्म को मानसिक और भावात्मक रूप मिलने के साथ उनके तथ्य पर विचार करने की ओर झुकाव देखा जाता है।

"इसी ब्राह्मण और आरण्यक के समय में 'ब्रह्म' का अधिकार जानने और बताने की चेष्टा की गयी। ऋग्वेद में ब्रह्म इन्द्र के लिए आया। अब ब्राह्मणों के प्राधान्य से ब्रह्म यज्ञ तथा देवताओं से भी बढ़कर हो गया। विण्टरनिट्ज़ ने इसी को लक्ष्य करके लिखा है—

"इस प्रकार निष्कर्ष यही निकलता है कि ब्रह्म अब स्वर्गीय देवताओं का पार्श्ववर्ती 'मानवी देवता' नहीं रहा। वह देवताओं से ऊँचा उठ गया है। शतपथ ब्राह्मण में ही यह तो कह दिया गया मिलता है कि 'ऋषि से अवरोहित ब्रह्म ही वस्तुतः देवता है' अर्थात् उसी में सर्वत्र देवता समाहित हैं।"[1]

1. Thus at last the conclusion is arrived at, that the Brahman is no longer a human god by the side

"ब्रह्म ने इस प्रकार प्रधानता पा ली। यह ब्रह्म इसी यज्ञ से सम्बन्ध रखने के कारण सृष्टि का कर्त्ता हुआ। इसका रूप रहस्यमय होता गया। इस-मार्ग के 'इन्द्र' अग्नि और वरुण की उपासना को छोड़ कर ऋषि लोग जङ्गल में बैठकर 'ब्रह्म' के सम्बन्ध में विचार करने लगे। कर्म-मार्ग की क्रान्ति ज्ञान-मार्ग में हो गयी। इस प्रत्यावर्तन ने ब्राह्मणों के युग का विकास उपनिषदों के रूप में कर दिया।

+ + +

+ +-सामवेद की केनोपनिषद् में ब्रह्म की यह विचित्रता और सर्व-शक्ति सत्ता एक मनोहर कहानी के रूप में समझायी गयी है।

"एक देवासुर-संग्राम में 'ब्रह्म' की कृपा से देवों को विजय मिली। सभी लोग इस विजय के अभिमान में फूल गये और अपनी प्रशंसा करने लगे। वे यह न जान सके कि वास्तव में इस विजय का कारण क्या है? उस ब्रह्म ने इस अभिमान को दूर करने का निश्चय किया, वह उनके मध्य में एक विचित्र परन्तु पूजनीय के रूप में उत्पन्न हुआ।

"ते अग्निमब्रुवन जातवेद एतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमिति तथेति ॥१६॥ केन"

"अग्नि को उस पूजनीय का परिचय प्राप्त करने का भी भार दिया गया। 'अग्नि' उस ब्रह्म के समक्ष गया। ब्रह्म ने अग्नि की शक्ति के सम्बन्ध में जानने की उत्सुकता प्रकट की। अग्नि ने बड़े गर्व-पूर्वक अपनी शक्ति का वर्णन किया। एक हल्का-सा तृण ब्रह्म ने अग्नि की परीक्षा के निमित्त उसके सामने रखा। अग्नि अनेक प्रयत्न करने पर भी उसे न जला सका। वह उस पूजनीय व्यक्ति का पता न पा सका। इसी प्रकार वायु, इन्द्र आदि सभी देवता हार गये।

"इस कथा से यह ऐतिहासिक तथ्य निकल सकता है कि उस समय तक अग्नि, वायु, इन्द्र आदि देवताओं की प्रतिष्ठा थी, कोई एक स्वय-भू सर्वोत्तम सत्ता भी है, इसका विशेष ज्ञान नहीं था। उस ब्रह्म ने अपनी शक्ति का परिचय दिया। अग्नि उस ब्रह्मत्व से शून्य रहकर तुच्छ है, वायु भी निस्सार है और इन्द्र भी प्रतिष्ठाहीन है। उपनिषदों के ऋषि-कवियों ने उसी विष्णु-सर्व-शक्तिमान को खोजा और उसका महत्व समझाया।

---

of the heavenly gods but that he raises himself above the gods Already in the Satapatha Brahman it is said 'The Brahman descended from a Risi indeed is all deities" i e. in him all deities are incorporated.

यज्ञ मे ब्रह्म की प्रधानता हुई। उस ब्रह्म की प्रधानता से सृष्टि मे परम-तत्व समझा जाने लगा। उन्हे निश्चय हो गया कि 'ब्रह्म देवाना प्रथम सम्व-रव"—ब्रह्म देवताओ मे सर्व प्रथम हुआ [अथर्ववेदीय मुण्डक १ (वही)

× × × ×

अभी तक ब्रह्म देव था, वह एक रहस्य था, उसका कोई आकार विशेष न था। आकार की प्राचीरो से मुक्त, रहस्य की स्वच्छन्द वायु को भोगता हुआ यह ब्रह्म विश्व-देव के रुप मे ग्रहण किया गया। यह ब्रह्म विश्व-आत्मा के रूप में दूसरीकोटि के उपनिपदो का विषय वना। साम्प्रदायिक उपनिपद तीसरी श्रेणी मे रखे गये हैं। उनमे आत्मा के स्थान पर विष्णु अथवा शिव के किसी रूप को रख दिया गया।++++

+ + + +

"++निस्सदेह वौद्धो से पूर्व विष्णु-पूजा का आरम्भ हुआ परन्तु उसकी अवतार रूप में प्रतिष्ठा वहुत वाद की वात है।

"उस 'विष्णु' ने ऋग्वेदकालीन 'सूर्य' के पर्यायत्व से मुक्ति पायी, यज्ञ का अधिष्ठाता वना, उसे ब्रह्म की कोटि तक पहुँचा दिया गया। उसी को अव धीरे-धीरे विभिन्न क्षेत्रो मे साम्प्रदायिक छाप से मुद्रित करने के लिए नारायण, नृसिंह, राम और फिर कृष्ण के नाम दिये जाने लगे। कितने रगो की रजित भूमिका के साथ 'विष्णु' ने लौकिक साहित्य को इन्द्र-धनुपी वनाया।

+ + +

"इस विष्णु के विकास का दर्शन करके अव विष्णु-शिव सघर्ष मे यह वात जानने योग्य रह जाती है कि वैदिक आर्यों ने पहले तो शिव को रुद्र के साथ मिलाया, जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है, रुद्र को शतरुद्रीय मे सहस्र नेत्रो वाला वतलाया गया है जो सूर्य का सकेत है और मोहेनजोदढो वासी शिव को सूर्य मानते थे—तव आगे पुराणो मे भी शिव को सूर्य कहा गया।

पद्म पुराण ने स्पष्ट वताया है कि शिव और सूर्य मे कोई अन्तर नही। इसी पुराण मे सूर्य को रुद्रवपु कहा गया है। सौरपुराण मे रुद्र को आकाश मे स्थित माना है और गरुड़पुराण मे 'शिव-सूर्यायनम' कहा गया है। वारह आदित्यों मे विष्णु के अर्थ शिव अथवा रुद्र भी है। अन्य महाभारत, वामन, कूर्मादि पुराणों मे भी शिव को सूर्यवाचक नामों से अभिहित किया गया है। भर्ग भी शिव का एक नाम है। रुद्र अग्नि भी है। इस सूर्य और अग्नि के माध्यम से शिव-विष्णु एक भूमि पर आ गये, तो आगे विष्णु ने यज्ञ के सहारे ही जैसे इन्द्र को पदच्युत कर दिया, इस शिव को भी हटा दिया। इसका ऐति-हासिक उल्लेख शतपथ ब्राह्मण तथा पुराणो में विद्यमान है जिसमे स्पष्टत

यह प्रश्न प्रस्तुत हुआ है कि देवताओं में श्रेष्ठ कौन है और परीक्षा के उपरान्त विष्णु ही श्रेष्ठ माने गये, भृगु की लात से विष्णु की जय ही घोषित होती है। इस प्रकार शिव हट गये, विष्णु प्रधान हो गये, शिव से जो भक्ति संलग्न था वह अवश्य विष्णु के साथ रह गयी।+++

"विष्णु कैसे कृष्ण में अवतरित हुए अथवा रूपान्तरित हुए इसे समझने के लिए भी हमें संभवत वेदों से ही आरम्भ करना पड़ेगा, क्योंकि यों तो अवतारवाद का अध्ययन भी महत्वपूर्ण है पर उसको यदि विचार का विषय न भी बनाया जाय तो भी यह प्रश्न ही आवश्यक है कि अवतार के लिए विष्णु ने कृष्ण को क्यों चुना और क्यों आगे के कवियों ने कृष्ण के लिए भी यह कहा कि उसके सम्बन्ध में वेदों ने नेति-नेति कहा है।××

× × ×

"महाभारत की साक्षी से विदित होता है कि पहले नारायणी सम्प्रदाय था। शान्तिपर्व में इसके विषय में भगवान ने कहा है कि यह सम्प्रदाय परम्परा से चलता हुआ बृहस्पति तक पहुँचेगा। जिनसे राजा वसु उपरिचर को प्राप्त होगा। यहीं यह समाप्त हो जायगा। इस सम्प्रदाय में दीक्षित होने पर वसु उपरिचर ने पशु-बलि-रहित अश्वमेध यज्ञ किया, तब उसे साक्षात् हरि ने प्रकट होकर दर्शन दिये थे। यह यज्ञ आरण्य विधि से था अर्थात् मानसिक था, एकांतिक था, तभी, वसु उपरिचर को एकांतिक उपासक कहा गया है।

"उधर नारद ने श्वेतद्वीप में नारायण के दर्शन किये। वहाँ उन्होंने अपने वसुदेव धर्म की व्याख्या नारद को सुनायी। इसमें उन्होंने वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध को अपनी ही मूर्तियाँ बताया है और कहा है कि आगे इन चारों रूपों में अवतार लेकर कंसादि असुरों का संहार करूँगा। इसी को एकान्तिक धर्म बतलाते हुए भगवान ने कहा है कि इस धर्म को सात्वत ही पालन करते हैं।

"इस विवरण से स्पष्ट विदित होता है कि महाभारत यह मानता है कि नारायण प्राचीन धर्म है, जिसकी परम्परा विदित नहीं। वह वसु उपरिचर तक रहा। 'हरि' उसके इष्ट का नाम था, वह पशु-बलि-विरोधी और एकान्तिक उपासक था। उपरिचर से यह नारायण-सम्प्रदाय सात्वतों में विलीन हो गया। सात्वत सम्प्रदाय ही नहीं एक कुल था। वह पद्धति में नारायणीय था किन्तु 'हरि' के स्थान पर 'वसुदेव-व्यूह' को मानने लगा। ऊपर के आख्यान यह स्पष्ट कर देते है कि सात्वतों ने नारायण-सम्प्रदाय निगल लिया। अब कृष्ण 'हरिनारायण' 'वासुदेव संकर्षण' हो गये थे।

+ + +

"इसी काल मे 'लगभग ई० पू० २०० वर्ष मे' बेसनगर का गरुडस्तम्भ हेलियोदोर ने सर्वेश्वर वासुदेव के लिए स्थापित किया था। इसमे वह अपने को भागवत धर्म का अनुयायी बताता है। उससे यह प्रकट होता है कि पाणिनी पूर्व से प्रचलित सात्वत् धर्म ई० पू० की पहली-दूसरी शताब्दी तक भली प्रकार प्रचलित हो गया था और उसको अब सात्वत् न रहकर सभवत भागवत कहा जाने लगा था। सभवत भागवत शब्द का प्रयोग, साहित्य मे सबसे पहले शैवो के लिए हुआ है। पातजलि ने महाभाष्य मे शिव-भागवतो का वर्णन किया है। शिव-भागवत से यह भागवत शब्द विष्णु को मिला होगा ऐसी सभावना विदित होती है। अथर्वशिरस् उपनिषद मे और श्वेताश्वतर उपनिषद मे शिव अथवा रुद्र-शिव को 'भगवत' कहा गया है। और आज तो यह कल्पना भी नही की जा सकती कि शिव भी भागवत हो सकते है, यद्यपि कोश मे यह उल्लेख अवश्य मिलेगा कि 'भगवत' सबोधन सभी देवताओ के लिए आ सकता है। नारायण, सात्वत और शैवो के सगम मे नारायण, हरि, वासुदेव, भगवत पर्यायवाची हो गये और इनसे अभिप्रेत था 'विष्णु'। किन्तु वासुदेव-सकर्षण का व्यूह तो मानव-समूह का व्यूह था, जो नारायण, हरि, विष्णु की भाँति देवता मात्र नही थे, मनुष्यो की भाँति शरीर धारी थे और मनुष्यो की भाँति जन्म-मरण से युक्त थे। यह भी विदित होता है कि ये सात्वत नाम की जाति के इष्ट थे, ये उनके कुल के वीर थे।

इधर भारत मे आभीरो अथवा अहीरो का प्राधान्य हो उठा। य आभीर उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक फैले हुए है। इनके सम्बन्ध मे कुछ विद्वानो का यह कथन है कि ये भारतेतर प्रदेशो से भारत मे आये। किन्तु नई शोधो से यह परिणाम समीचीन प्रतीत होता है कि ये शुद्ध भारतीय है, और सम्भवत आदि अनार्य है। इनका नाम तामील भाषा का आभीर है जिसमे आ का अर्थ गाय है। आभीर अथवा अहीर, तामिल शब्द आभीर मे गोप-ग्वालो का पर्याय है। अहीर को व्रज मे ग्वाला भी कहा जाता है। ये गोप गोपाल और कृष्ण के पूजक थे। कृष्ण इनका नेता था। वेदो मे भी एक ऐसे कृष्ण का उल्लेख है जिसने अँशुमती नदी के किनारे इन्द्र से युद्ध किया था। डा० डी० आर० भडाकर का मत है कि यह कृष्ण आभीरो का कृष्ण है। [डी० आर० भडारकर सम अस्पेक्ट्स आव एँशयट इडियन कलचर] इसी कारण कृष्ण के साथ गाय और गोपी का घनिष्ठ सम्बन्ध है। आभीरो के प्राबल्यके समय और वैदिक कर्मकाण्ड अथवा यज्ञ-विधान के शैथिल्य के समय, उस व्यवस्था के विरोधी मत उन्नत हुए, और क्योकि उनकी भूमि

प्राय समान थी अत वे परस्पर मिल गये। इस प्रकार वासुदेव ही कृष्ण हो गये।

"वासुदेव गोपाल-कृष्ण से मिल गये। अब कृष्ण का रूप पूर्ण हो गया। इस विकास में गोपियों का वह आग्रह भी ऐतिहासिक माना जा सकता है जिसमें वे यशोदानन्दन गोपाल कृष्ण को ही अपना इष्ट मानने का हठ करती है और वे मथुरा नहीं जाती है, न वासुदेव, देवकी-पुत्र[1] वासुदेव में ही श्रद्धा दिखाती है। उद्धव से यही प्रार्थना करती है—'बारक वह मुख फेरि दिखावहु दुहि पय पिअत पतूखी', हरिवंश में कृष्ण ने घोषित किया है कि ब्राह्मण मन्त्रों का यज्ञ करते हैं कृषक हल का यज्ञ करते हैं, हम गिरि-पर्वत का यज्ञ करेंगे। हमें वन और गिरि की पूजा करनी चाहिये। हमें गायों की पूजा करनी चाहिये। देवता भले ही इन्द्र की पूजा करें हम तो पर्वत की पूजा करेंगे। मैं तो बलात् भी गायों की पूजा निश्चय ही कराऊँगा। गाय, पर्वत, वन आदि की पूजा और इन्द्र का विरोध ये सभी बाते कृष्ण में अत्यन्त आकर्षक थी। इनका सम्बन्ध वैदिक कृष्ण से तो स्पष्ट दिखायी पड़ता है, उन कृष्ण से जो अंशुमती के किनारे इन्द्र के विरुद्ध सेनाएँ लेकर खड़ा हुआ था, वही वासुदेव भी हुआ पर उसे उन समस्त चमत्कारों से युक्त होना चाहिये जो अन्य देवताओं में हैं, विशेषत विशेषी इन्द्र में। इसी लोकमनोविज्ञान ने कृष्ण का जो चरित्र विस्तृत किया उसने वस्तुत उसमें इन्द्र के सभी चमत्कार सम्मिलित कर लिये। ऋग्वेद में इन्द्र के समस्त कौतुकों का उल्लेख एक ही मंत्र 'स जनास इन्द्र' में अत्यन्त विशदता पूर्वक हुआ है। उसमें कृष्ण की प्राय समस्त लीलाओं का बीज विद्यमान है।

इन्द्र या कृष्ण

वेदों में इन्द्र का कुछ ऐसा वर्णन है कि उसमें वर्तमान कृष्ण-चरित्र के प्राय. सभी अभिप्राय मिल जाते हैं। एक अत्यन्त ही प्रसिद्ध मंत्र है जिसमें इन्द्र का परिचय दिया गया है। उस मंत्र के कवि ने बड़ी ओजपूर्ण वाणी में दृढ़ता-पूर्वक बताया है कि 'स जनास इन्द्र' हे मनुष्य! वही इन्द्र है! उस मंत्र में इन्द्र के महत्कार्यों का कवि ने उल्लेख किया है।

१. य जात. एव प्रथम मनस्वान् देव देवान क्रतुना पर्यभूषत।
कृष्ण को जन्म से ही परम ब्रह्म स्वीकार करने की ओर संकेत।
समस्त देवताओं से अधिक शक्तिशाली और कौन हो सकता है?

---

[1] देवकी-पुत्र कृष्ण का एक और उल्लेख वेदों में है। इन्हें कई विद्वान भागवत के कृष्ण ही मानते हैं, पर बहुत से अन्य विद्वान इससे सहमत नहीं।

यस्य शुष्मात् रोदसीइति ।
अभ्यसेताम् नृम्णस्य महना ।
स जनास इन्द्र ।

किंचित दूरान्वय से रोदसी और कस शब्द समानार्थी प्रतीत होते हैं यथा—
क=जल – (सत्येनमाभिरक्ष त्व वरुणेत्यभिशाप्य क – याज्ञ –
वल्क्य) तथा कस=जल पात्र (A drinking vessel—आप्टे)
जलपात्र=पृथ्वी=रोदसी ।

फिर

'स' का पृथक अर्थ भी होता है=साँप
क+स=जल का सर्प=अहिवृत्र । वायु भी अर्थ होता है ।
क+स=जल+वायु=द्यावा पृथ्वी

अत रोदसी अथवा कस जिससे भयभीत हुआ जन्म के समय ही । रोदसी शब्द मे दो अर्थ हैं । पृथ्वी और आकाश । क और स (कस) मे भी दो भाव हैं ।

२. य पृथिवीम् व्यथमानाम् अदृ हत्
जिसने व्यथमान, दु खी, पृथ्वी को दृढ किया, कैसे ?
य पर्वतान् प्रऽकुपितान अरम्णात् ।
जिसने (अरम्णात्) क्रीडा की (पर्वतान्) पर्वतो से
जो (प्रकुपितान) हिले हुए थे, चचल, थे ।

और

य अन्तरिक्षम् विऽममे वरीय

जिसने पर्वत को (अन्तरिक्ष) आकाश मे पृथ्वी से ऊपर (विममे वरीय) उठा लिया और य द्याम् अस्तभ्नात्–जिसने इस प्रकार उस पर्वत पर (द्याम्) आकाश के जल को रोका (अस्तभ्नात्)

इस प्रकार अर्थ करने से इसमे गोवर्द्धन-धारण की घटना लक्षित होती है ।

३ य हत्वा अहिम् अरिणात् सप्त सिन्धून् – जिसने सर्प को मारकर (सप्त) सर्पणशील नदी को प्रेरित किया, मुक्त किया । कालियनाग से यमुना के मुक्त करने की ओर सकेत मिल सकता है ।

य गा उत्ऽआजत् अपऽधावलस्य – जिसने वल की गुहा मे से गायो को निकाला । अघासुर नाम का एक असुर अजगर बनकर गायो को निगल गया था । कृष्ण भी साथ गये और उनका उद्धार किया ।

य. अश्मनो. अन्त अग्निम् जजान—दो पत्थरों से जिसने अग्नि पैदा की।

सम्वृक् समत्सु स जनास इन्द्र—जो संग्राम में नाश करने वाला है। खाण्डव दाह के लिए हो सकता है यह संकेत।

८. येन इमा विश्वा च्यवना कृतानि—जड़-चेतन का कर्त्ता भी है कृष्ण।

य दासम वर्णम अधरम् गुहा अकरित्यक—शत्रुओं अथवा असुरों का आधीन करने वाला। 'दास'—The words दास and दस्यु are used in the Rigveda of all the enemies of the Aryans, whether demonds or men.

[देखिए पीटर पीटरसन' हिम्स फ्राम दी ऋग्वेद पृ ११७] श्वघ्नीऽइवय जिगीवान् लक्षम्—सायण ने बताया है कि 'श्वभिर्मृगान् हन्तीति श्वघ्नी व्याध यथा व्याधो जिघृक्षन्त मृग परिग्रहणानि तद्वत्—व्याध जिस प्रकार अपने लक्ष्य का वध करता है उसी प्रकार असुरों का वध किया। कृष्ण ने तृणावर्त, धेनुक, केशिन आदि का वध किया था। और उसी प्रकार—

आदत् अर्य पुष्टानि—शत्रुओं की सम्पत्ति को (कृष्ण ने कंस का राज्य) प्राप्त किया।

५. यम स्म पृच्छन्ति कुह स इति घोरम् उत ईम् आहु न एष अस्ति इति एनम्—कि वह कौन है, गोपियों ने पूछा, जिसके सम्बन्ध में पूछा जाता है।

'निर्गुन कौन देश को वासी' और जिसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि 'वही नहीं है'। उद्धव ने कहा कि वह निराकार है।

स अर्य पुष्टी विज इव आमिनाति श्रत् अस्मै धत्त—शत्रुओं की सम्पत्ति का जो नाश करता है उसमें श्रद्धा करो।

य रध्रस्य चोदिता—'रधस्य चोदिता' इन्द्र का बहुत प्रिय नाम है इसलिए इन्द्र राधानापति भी कहा गया है। रध्र ही राधा है समृद्धि की प्रेरक, और उसको प्रेरित करता है। यह रध्र कृष्ण की राधा हो गयी है। सायण में तो एक स्थान पर रध्र का यह अर्थ दिया है "रध्रमाराधक यजमानम्"।

य. कृशस्य य. ब्रह्मण नाधमानस्य कीरे.—दुर्बलों और ब्राह्मणों का रक्षक।

७वे में इन्द्र को गायों का, ग्रामों का अनुशासक बताया है। उसे 'अपाम् नेता' कहा गया है। इसमें जल में से कमल लाने वाले का उल्लेख हो सकता है। गायों और गामों से उसका 'गोप' होना सिद्ध है।

८वे में यह बताया गया है कि युद्ध में प्रवृत्त दोनो पक्ष जिससे सहायता की याचना करते हैं। क्या इसमें अर्जुन और दुर्योधन दोनों का साथ-साथ युद्ध के लिए सहायतार्थ प्रार्थना करने जाने का बीज नहीं है?

९वे में 'यत्र कृष्णस्ततो जय' का भाव है । यस्तमात् न ऋते विऽज-यन्ते जनास । यही नही इसमे 'य विश्वस्य प्रतिऽमानम्' कहकर कृष्ण के विश्वरूप (विराटरूप) का सकेत निहित कर दिया है ।

इस एक ऋचा से ही कुछ ऐसा आभास मिलता है कि यह इन्द्र का वर्णन नही कृष्ण का वर्णन है । इन्द्र विषयक अन्य ऋचाओ मे भी ऐसी ध्वनि मिलती है ।

उदाहरणार्थ ऋग्वेद के चौथे मण्डल का १८ वां मन्त्र लीजिये। इसके सम्बन्ध मे W Norman Brown (Philadelphia) का कथन है ।

"The fullest account of Indra's early days, as recorded in any single hymn of the Rigveda appears in VI. J A O S 62, 63, 93, 95, this material with certain other material found elswhere in the Rigvda is utilised in an effort to reconstruct the general outline of the story of Indra's birth and infancy" (सिद्ध भारती pp. 131)

ऋग्वेद के उक्त मन्त्र के प्रथम श्लोक से ही विदित होता है कि इन्द्र की मा इन्द्र के उत्पन्न होते समय उसकी स्तुति कर रही है । वह जानती है कि इन्द्र देव हैं । साथ ही वह उससे यह भी प्रार्थना करती है कि अपनी मा को ऐसे नारकीय स्थान मे न पडे रहने दे—

अय पन्था अनुवित्त पुराणो यतो देवा उदजायन्त विश्वे

अतश्चिद् आ जनिपीष्ट प्रवृद्धो मा मातरममुया पत्तवे क

इस श्लोक से विदित होता है कि कृष्ण की मा देवकी कृष्ण के जन्म पर उनके भगवान विष्णु रूप मे दर्शन देने के समय उनसे प्रार्थना कर रही है— आप महान् है, प्राचीन परम्परा के अनुसार(यदायदाहि धर्मस्य...)आप अवतार ले रहे हैं, आप अवतार लें । मैं यहाँ नारकीय स्थान मे पडी हूँ । आप यहाँ न रहे । किन्तु समय पर नारकीय स्थान से मेरा उद्धार करें—

(Indra's mother speaks) This is this is the ancient accustomed path, by which the gods were all born upward. Thence let this Mighty one be born (upward) Let him not make his mother fall down there (in Hell)

उक्त अनुवादक ने 'अमुया' शब्द पर यह टिप्पणी दी है ।

"Amuya" in the RV regularly means 'there' in an evil scene it is used of the place where the dead

Vrtra lie (I. 32, 8) where demons lie (X. 89, 14), where those who practise sorcery by sexual intercourse are to go (I. 29, 5, X. 85, 30, probably also X. 135, 2 where Indra is to strike down the wicked (V. 34, 5) here too it means (awful) Place of VII. 104, 17, implied in III 53, 21."

इसके स्पष्ट अर्थ है कि इन्द्र की मा वृत्र अथवा दानवों की बन्दिनी है। वह वहाँ से छिपकर किसी चमत्कार से इन्द्र को जन्म देने बाहर आयी है। अब इन्द्र को वहीं त्याग कर फिर वह विवशता के कारण 'अगुवा' उसी नारकीय स्थान को लौट रही है, इन्द्र को वह देव समझती है और आशा करती है कि वह उसका उद्धार करेगा—

इस श्लोक में इन्द्र और कृष्ण का तादात्म्य और भी अधिक पुष्ट हो जाता है। दूसरे श्लोक में है—

नाहमतो निरया दुर्गहैतत् तिरश्चता पार्श्वान्निर्गमाणि

बहूनि मे अकृता कर्त्वानि युध्यै त्वेन सं त्वेन पृच्छै।

इस श्लोक में जैसे इन्द्र अथवा कृष्ण अपने मन में विचार कर रहे हैं कि न, अभी संकटों का सामना नहीं करना चाहिए। अर्थात् वृत्र को मारने का अभी उद्योग नहीं होना चाहिए, अभी तो मुझे बहुत से ऐसे काम करने हैं जो पहले नहीं हुए हैं, तब युद्ध भी करना है और पूछताछ भी—

स्पष्ट है कि कृष्ण उन लीलाओं की कल्पना कर रहे हैं जो कंस को मारने से पूर्व उन्हें करनी है।

परायती मातरमन्वचष्टन नानु गान्यनु नू गमिमानि

त्वष्टुर्गृहे अपिबत् सोममिन्द्र शतधन्य चम्वो सुतस्य

He saw his mother leaving him. No, no I shall follow her. I must surely go with her! In Tvastr's house Indra drank Soma a [illegible] worth of the pressed juice from the bowls.

इसमें गायों को चराने और त्वष्ट्र के घर सोम पीने का उल्लेख है। त्वष्ट्र नन्द, सोम मक्खन है। यहाँ पर सोम के सम्बन्ध में जो टिप्पणी दी है, वह ध्यान देने योग्य है—

"In other passages Indra steals the soma after overcoming Tvastr (III. 48. 4, cf. I. 61. 7) who

seems to be the Mighty Father (but not Indra's father) of III 48 2 or he has to slay Visvarupa to get it either alone or with the aid of Trita Aptya (X. 8, 8-9, II, 11, 15)—

इसमे सोम की चोरी का उल्लेख भी है, जो कृष्ण की माखन-चोरी लीला का बीज है। कृष्ण के गाय चराने का भी।

किस ऋधक् कृणवद् सहाय य मामो जभार शरदश्क पूर्वी
नही न्वस्य प्रतिमान मस्त्यन्तर्जातिपृत ये जनित्वा

Could he now put away conquer (his enemies), he whom she bore (as embryo) a thousand months and many autumns? No match has he among those already or yet to born

इसमे कृष्ण के बल का उल्लेख है।

अवद्यमिव मन्यमाना गुहाकारिन्द्र माता वीर्यणा न्यृष्टम्

अथोदस्थात् स्वयमत्क वसान आ रोदसी अपृणाज्जायमान

कृष्ण के वरुण की ओर सकेत है, द्यावा पृथ्वी को जन्म के समय कपित करने की ओर सकेत है। कृष्ण के नदगृह मे छिपाये जाने की ओर सकेत है किन्तु वीर्यवान होने के कारण न छिप सकने की ओर भी सकेत है। कस ने पता लगा ही लिया था कि बालक रूप मे कृष्ण कहाँ है?

आगे के मन्त्रो मे किसी 'कुशाव' द्वारा निगल लिये जाने का भी उल्लेख है? कृष्ण को एक असुर ने निगल ही लिया था। ऋग्वेद के इस मन्त्र की साक्षी हमारे प्रस्तुत विषय के लिए महत्वपूर्ण है।

पहले तो यज्ञ के आधार पर विष्णु से इन्द्र पिछडे। भले ही वे विष्णु उपेन्द्र बने रहे पर यज्ञ-शैथिल्य के उपरान्त विष्णु जब कृष्ण बने तब कृष्ण में इन्द्र के विरोध के बीज के साथ इन्द्र के समस्त गुण भी प्रस्तुत हुए। इस प्रकार इन्द्र कृष्ण मे परिवर्तित होकर इन्द्र का विरोध करने लगे। इस प्रकार अवैदिक प्रवृत्ति ने वैदिक प्रवृत्ति को अपने मे समा लिया और तब उसे परास्त कर दिया। इन्द्र-विरोधी व्यक्तित्व का नाम 'कृष्ण' हमे वेद मे मिलता ही है।

एक देवता के प्रमुख गुणो का आरोप दूसरे देवता पर करने की प्रवृत्ति स्वय वेद में विद्यमान मिलती है। A. A Macdonell ने इसका निरूपण करते हुए लिखा है—

'Indefiniteness of outline and lack of individuality characterises the Vedic conception of the gods. This is mainly due to the fact that they are near to the physical phenomena which they represent than the gods of any other Indo European people ...

The absence of distinctiveness must be still greater when several deities . spring from different aspects of one and the same phenomena. Hence the character of each Vedic god is made up of only a few essential traits combined with a number of other features common to all the gods, such as brilliance, power, beneficence, and wisdom such common features tend to obscure what is essntial because in hymns of prayer and praise they naturally assume special prominece. Again, gods belonging to different departments, but having prominent functions in common, are apt to be approximated Thus Agni, primarily the god of terrestrial fire, dispels the demons of darkness with his light, while Indra the aerial god of the thunder-storm slays them with lightening Into the conception of fire-god further enters his aspect as lightening in the atmosphere The assimilation is increased by such gods often being invoked in pairs These combinations result in attributes pecliar to the one attaching themselves to the other, even when the latter appears alone. Thus Agni comes to be called soma-drinker, Vrtra-slayer, winner of cows and waters, sun and dawn attributes all primarily belonging to Indra" (Vedic Mythology, pp 15-16)

अत. इसी क्रम से इन्द्र के गुण विष्णु मे पहले उपेन्द्र भाव से फिर पूर्णत आरोपित हुए। जब यज्ञ-भाव से विष्णु का पलड़ा भारी हुआ तो फिर विष्णु मे स्वत ही समस्त इन्द्र समा गया। वही विष्णु कृष्ण मे अवतरित होगा तो इन्द्र के पराक्रम की घटनाएँ उसी के अनुकूल उतरेंगी। बृहद्देवता मे इन्द्र की एक परिभाषा यह दी गयी है।

रसादान तु कर्मस्य वृत्रस्य च निवर्हणम।
स्तुते प्रभुत्व नर्वस्य बलस्ये निखिला कृति. (।।-६)

"Now the taking up of moisture is his function, and the destruction of Vrtra (and)—the prevailing

feature (prabhutvam) of (his) praise—the complete accomplishment of every (kind of) mighty deed"

इससे कृष्ण के प्रमुख गुण लक्षित होते हैं। इसी गुण-आरोप के आधार को बृहद्देवता ने अत्यन्त स्पष्ट कर दिया है—

भवद्भूतस्य भव्यस्य जङ्गमस्थावरस्य च।
अस्यैके सूर्यमेवैकं प्रभवं प्रलयं विदुः (१-६१)
अग्निरस्मिन्नथेन्द्रस्तु मध्यतोवायु रेव च।
सूर्यो दिवीति विज्ञेयास्तिस्त्र एवेह देवता। (१-६६)

जो पृथ्वी पर अग्नि है, अन्तरिक्ष में इन्द्र-वायु वह दिव-लोक में सूर्य है। इस प्रकार एक का दूसरे में समन्वय हुआ।

लोकवार्त्ता के माध्यम से ऐसा हो जाना असम्भव नहीं। परशुराम और राम विष्णु के अवतार हैं। परस्पर एक दूसरे का विरोध करते हैं। कृष्ण स्वयं विष्णु के अवतार हैं। वे उपेन्द्र होकर कृष्णावतार में इन्द्र का विरोध करते हैं। अर्जुन इन्द्र-पुत्र है। कृष्ण के साथ वह भी खाण्डव दाह के मिस इन्द्र का विरोध करते मिलते हैं। इसी प्रकार इन्द्र का ही एक विकास कृष्ण में प्रस्तुत हुआ। ऐसे कृष्ण में नारायण, हरि, वासुदेव, भगवान मिलकर वैष्णव सम्प्रदाय की परम्परा को नूतन भूमि पर ले आये। इसे भागवत ने परिपूर्णता प्रदान की, और वल्लभाचार्यजी ने उसे १५ वीं तथा १६ वीं शताब्दी में लोक-भक्ति का इष्ट बना दिया और अवतारों की परम्परा की व्यवस्था करते हुए स्वयं कृष्ण हो गये।[1]

---

१. वल्लभाचार्यजी महाप्रभु ही नहीं वे आचार्य अथवा गुरु पहले थे। तदुपरांत वे स्वयं कृष्ण माने गये या हुए। गुरु का और इष्टदेव का यह अभेद भी आदिम शैव भावना का ही उत्क्रमण है। शैव सम्प्रदाय में तो गुरु के नाम से भी शिव अभिहित होते हैं; यथा, लकुल सम्प्रदाय के शिव लकुलीश हैं। लकुल गुरु हैं। वे स्वयं शिव का अवतार माने जाते हैं। वे स्वयं शिव हो गये हैं। इस दृष्टि से यह स्पष्ट हो जाता है कि महाप्रभु वल्लभाचार्य कैसे स्वयं कृष्ण हो सके।

वालकृष्ण : वाल-देवता

कृष्ण जव भक्ति के आलवन वने तो उन्हे तीन कथा-रूपो मे ढाला गया—

१—वाल-कथा	वालकृष्ण
२—काम-कथा	गोपीकृष्ण
३—वीर-कथा	भगवान कृष्ण

यहाँ तक हम यह तो देख चुके कि कृष्ण कैसे परमतत्व वने। किन्तु प्रश्न यह भी तो है कि वे 'वाल रूप' मे क्यो पूजे गये ? वालकृष्ण मे यह आकर्षण क्यो मिला ? वालकृष्ण की कल्पना का मूल स्रोत क्या है ? और उस मूल से उद्भावित होकर भी वह १६ वी १७ वी शताव्दी मे और आज भी क्यो मान्य रहा ? ईश्वर को वालरूप मे क्यो ग्रहण किया गया ?

पर यह वात केवल भारत के लिए और कृष्ण के लिए ही नही, अन्यत्र भी मिलती है। ईश्वर या देवता की वालरूप मे अवतारणा यूनानी साहित्य मे भी विद्यमान है, अपोलो और हर्मीज को भी वालरूप दिया गया है।

वाल-ईश्वर या वाल-देव के ऐसे समस्त विवरणों में जो वात ध्यान आकर्षित करती है, वह है इनके साथ लोक-कथा का परिवेश। वाल-देव के सभी विवरणो मे कुछ सामान्य विशेषताएँ सर्वत्र मिलती हैं— वे है (यह वालक देव) असहाय या परित्यक्त अवस्था में मिलता है। मिस्र की पुराण कथा मे 'होरस' की ऐसी ही अवस्था है।

"होरस का पिता ग्रासिरिस ग्रपने भाई सेत द्वारा एक कफन में जिन्दा बंद कर समुद्र मे वहा दिया जाता है। सेत राजा हो जाता है। ओसिरिस की स्त्री आइसिस मारी-मारी फिरती है। तभी होरस का जन्म होता है। सेत को पता लग जाता है। वह माँ-बेटे को एक मकान मे बन्दी बना देता है। सेत होरस को मार डालना चाहता है कि कही वह ग्रपने पिता के राज्य का दावेदार न बने। किन्तु थोथ आइसिस को इस संकट की सूचना दे देता है। आइसिस होरस को लेकर भाग कर बूटो (Buto) पहुँचती है। वहाँ होरस को नगर की कुमारी देवी उग्राजीत (Uazit) को सौंप वह ओसिरिस की खोज में निकल जाती है।[१] यह देवी सर्पिणी थी। इस कथा मे 'होरस' के पिता नही, माँ मारी-मारी फिरती है, बंदी हो जाती है, फिर वह होरस से बिछुड भी जाती है, उसका पालन-पोषण सर्पिणी (देवी) करती है।

यूनान में जिग्रस का पिता क्रोनस तो स्वयं ही ग्रपने पुत्र का शत्रु है, क्योंकि भविष्यवक्ता ने बताया है कि उसका पुत्र ही उसे मारेगा। ग्रत जियस के जन्म लेते ही उसे या तो क्रीट की एक गुफा मे जाकर छिपाया गया, या वह गुफा में ही पैदा हुग्रा ग्रौर वहाँ गुप्त रूप से उसका पालन पोषण डिक्टीग्रन देवियों ने ग्रौर क्यूरेटी (Curetes) ने किया।

डायोनीसियस जब गर्भ मे छह महिने का था उसकी माँ सेमेले (Semele) की मृत्यु हो गयी। सेमेले की भस्म से डायोनीसिग्रस को उसका पिता जियस उठा लाया। तीन महिने ग्रपनी जाँघ को काटकर उसमे रखा। पूरे नौ महिने हो जाने पर जिग्रस ने उसे हर्मीज को सौंप दिया, उसने इनो ग्रौर ग्रथमस को सौंप दिया। उसकी विमाता हेरा उसके प्राणों की गाहक थी। उसे ग्रौर भी कई दिव्य व्यक्तियो के पास पालन-पोषण के लिए रहना पडा।

ग्रपोलो की माँ लीटो को पुत्र के साथ मारे मारे फिरना पडा है। बालक ग्रपोलो ने माँ को पाशविक टिट्योस के ग्रत्याचारो मे रक्षा करनी पडी है— लीटो को भी हेरा के भय से मारे-मारे फिरना पडा है ग्रौर एक गुप्त स्थान पर ग्रपोलो को जन्म देना पडा है।

भारत मे तो बाल-देव के वर्णन वैदिक काल से ही मिल जाते हैं। इन्द्र के बालपन का जो वृत्त ऊपर दिया गया है, वह भी ऐसे ही बाल-देवो के समकक्ष है। पैदा होते ही उसे माँ से पृथक होना पडा है, तथा दूसरो के हाथो ही उसका पालन-पोषण हुग्रा है। यह हम ऊपर देख ही चुके हैं।

---

१ ईजिप्शियन मिथ एण्ड लीजेण्ड डोनाल्ड-ए-मेकेंजी पृ० १८-१९।

कुमार जो मूलत बाल-देव ही है, उनकी स्थिति भी कुछ विचित्र है। उनमें मूल रूप से पिता-माता हीनता का तत्व विद्यमान है। क्योंकि विविध वृत्तो पर ध्यान दिया जाय तो विदित होगा कि पार्वतीजी ने उन्हे गर्भ मे धारण नही किया। उन्हे अग्नि ने धारण किया, उस भय से अग्नि कुछ काल तक भागती-छिपती फिरी थी तो अंगिरा ने धारण किया। तब अग्नि ने।[1] वह भी उस तेज को धारण किये न रह सकी, गगाजी को दिया, गगाजी ने कृत्तिकाओ (षड्मातृकाओ) को दिया। उन्होने उसका पालन-पोषण किया। सर-भू भी कुमार का नाम है, उन्हे सरपत मे उत्पन्न माना है। इस प्रकार जब माँ ही नही तो, पिता कहाँ ? पिता तो सदैव ही विकल्पित होता है। फिर भी यदि पितृत्व स्वीकार भी किया जाय तो मातृहीन तो मानना ही पडेगा। ऐसे बालको की कथा मे यही होता है कि वह कई स्थानो पर भी पलता है। यहाँ पहले तो गर्भ ही कई स्थानो पर गया है, फिर 'षड्मातृकाओ' का विश्लेषण कर दे तो छ माताओ ने पालन किया।

उधर गणेश भी बालदेव के रूप मे आते है, उनकी स्थिति कुमार से उलटी है। कुमार की माता नही थी। गणेश के पिता नही। बिना पिता के जन्म हुआ है—अर्थात् पिता नही। एक जङ्गल मे एकान्त गुफा मे वह त्याज्य माता के साथ रहता है। यह सब लोककथा के अनुरूप है।

जैन वृत्तान्तो मे हनूमान जन्म भी माँ की असहायावस्था मे हुआ है, उनकी

१—प्राचीन आरमीनियनो के आनुष्ठानिक गीतों मे दैवी बालको के जन्म का यह वर्णन है —

Heaven was in labour earth was in labour.	आकाश प्रसव पीडा से पीडित था, पृथ्वी भी पीडित थी।
And the purple sea was in labour.	और बैंजनी समुद्र प्रसव पीडा से पीडित था
The blood red sea weed had birth pangs.	रक्ताक्त समुद्र-सरपत जन्ति-वेदना ग्रस्त था
The hollow stem of the seaweed emitted smoke	पोली समुद्र सरपत के नरकुल ने धूँआ निकाला
The hollow stem of the seaweed emitted flame	पोली समुद्र सरपत के नरकुल ने अग्नि की लपटें निकालीं
And out of the flame sprang a little boy.	और उन अग्नि-शिखाओ से एक छोटा बालक पैदा हुआ

कुमार के अग्नि गर्भ से और सरपत से जन्म लेने के वृत्त से यह वर्णन कितना साम्य रखता है। माधवानल कामकदला के एक संस्करण मे राजपुरोहित को शिवरेत के सरपत-आधान से उत्पन्न माधव नदी के किनारे प्राप्त हुआ है।

माँ अजनी को सास-ससुर ने चरित्र दोष के सदेह मे निकाल दिया था। ऐसी असहायावस्था मे ही हनूमान जी का जन्म हुआ था। जैन-क्षेत्र के प्रद्युम्न चरित्र मे प्रद्युम्न जन्म के समय ही माँ-बाप से पृथक् कर दिया गया। उसे एक दैत्य पूर्वजन्म की शत्रुता के कारण उड़ा ले गया और एक पत्थर के नीचे दबा दिया। वहाँ से उसे विद्याधर कालसवर और उसकी पत्नी ले गये, और पालन-पोषण किया। उसने बाल्यावस्था मे ही अनेको अद्भुत पराक्रम दिखाये।

धर्मगाथा के क्षेत्र मे ऐसे कितने ही बालको का उल्लेख है जिन्हे असहायवस्था मे दिखाया गया है। प्रह्लाद को भी धर्मगाथा मे ऐसी असहायावस्था मे दिखाया गया है जैसे उसके माता-पिता या अभिभावक हैं ही नही। स्वय उसका पिता ही उसका शत्रु बन गया है। बालक प्रह्लाद को अनेको घातक कष्टो मे से होकर निकलना पडा है। प्रह्लाद को पहाड से नदी मे गिराया गया, जेल मे भूखो मारा गया, आग मे जलाया गया, उतप्त स्तम्भ से बाधा गया सब सकटो मे वह बच गया।[१]

इसी प्रकार भारत मे अनेको लोक-कथाएँ हैं जिनमे बालवीर का जन्म असहायावस्था मे होता है, या जन्म के उपरान्त ही वह असहायावस्था या अनाथावस्था मे पड जाता है। यह असहायावस्था या अनाथावस्था वाला

---

१. प्रह्लाद की इस बाल-कथा को 'कुल्लेर्वो' की कथा से मिलाइये। फिनिश (फिनलैंड की) पुराकालीन 'कुल्लेर्वो' नामक वीर की गाथा 'कलेवल' मे दी गयी है। अण्टेमो नामक एक वीर ने अपने भाई कलेर्वो के समस्त वर्ग को नेस्तनाबूद कर दिया, केवल उसकी जवान पत्नी ही बच रही, वह गर्भवती थी। उसके पुत्र हुआ, जिसका नाम कुल्लेर्वो रखा गया। यह बालक तीसरे दिन ही पालने से उतर पडा और जब केवल तीन महिने ही का था और केवल घुटने तक ही ऊँचा था, तभी अपने पिता के शत्रु से बदला लेने का विचार करने लगा। अण्टेमो को पता चला तो उसने उसे मरवा डालने के कई यत्न किये—

पहले एक बोतल मे बन्द कर लहरों मे फेंक दिया गया। दो रातें बीत जाने पर देखा तो वह बोतल से बाहर निकल आया था और लहरों पर बैठा ताँबे के दंड को लिये, उसके रेशमी डोरे को पानी मे डाल कर मछली की शिकार कर रहा था।

तब बहुत सी सूखी लकडी की भारी आग मे डाल दिया गया, तीन दिन तक यह आग धधकती रही, तीसरे दिन भी वह उसमे जीवित था, बाल तक बाँका नहीं हुआ था।

अब उसको पेड से बांध दिया गया। यहाँ भी वह जीवित रहा। पेड पर बैठा चित्र बना रहा था।

बालक या तो बाल्यकाल में ही चमत्कार दिखाता है, या बाद में जाकर अत्यन्त प्रबल दिखायी पड़ता है।

अ उदयन कथा में मृगावती को गरुड़ उड़ा ले गया। पिता रहित स्थिति में उसका जन्म हुआ। साधुओं के आश्रम में पालन-पोषण हुआ।

आ शकुन्तला को अप्सरा उड़ा ले गयी। पति से वियुक्तावस्था में भरत का जन्म हुआ। यह भरत सिंहों से खेलता था।

'इ' राजा नल के जन्म के समय उसकी माँ सभा को राजा प्रथम ने महल से निष्कासित कर दिया था। उसे चाण्डालों को सौंप दिया कि इसे मार डालो। पर चाण्डालों ने दया कर उसे छोड़ दिया। वह जंगलों में भटकती फिरी, ऐसे ही बियावान में हीस बिरे (हीस के लता गुल्म) से नल उत्पन्न हुआ। नाल काटने के लिए, जन्नि के गीत गाने के लिए देवी आयी थी। तब सभा और नल को एक सेठ साथ ले गया। उसके यहाँ दोनों का पालन-पोषण हुआ। बाल्यावस्था में ही नल ने दानव को मार कर मोतिनी से विवाह किया था।

धर्मगाथा के बाल-देव तथा लोक-कथा के बालवीर के सम्बन्ध में गम्भीर विचार करते हुए सी० केरेन्यी (C. Kerenyi)ने जो लिखा है उसको संक्षेप में यहाँ देना आवश्यक है।

"धर्मगाथा में बालक ने भी स्थान पाया है—धर्मगाथा में यह दैवी अवतार है। बहुत से देवता केवल प्रौढ़ या युवा रूप में ही नहीं मिलते, वे बाल-देवताओं के रूप में भी आते हैं—जीवन की सम्पन्नता और अर्थ इस चमत्कारी बालक में प्रौढ़ दाढ़ी वाले देवताओं से किंचित भी कम नहीं। उलटे यह अपेक्षाकृत अधिक सम्पन्न और अपेक्षाकृत अधिक मर्मस्पर्शी है। बाल देव के आने पर, वह चाहे होमर के हर्मविषयक गीत हों, जियस या डायोनीसिस की धर्मगाथा हो, या वर्जिल का फोर्थ एक्लॉग हो, हमें लगता है कि हम उस धर्मगाथात्मक वातावरण से घिरे हुए हैं, जिसे आधुनिक मनुष्य 'परी-कहानी जैसा' कहते हैं।

वस्तुतः प्रश्न यह है कि पृथक्-पृथक् देशों और संस्कृतियों में बालदेव का धर्मगाथा रूप मूल में एक-सा ही क्यों है ?

'बाल देवों के प्राचीन धर्मगाथिक (Mythologems) परी-कहानी के वैलक्षण्य से परिवेष्टित हैं और वैलक्षण्य को प्रेरित करते हैं।—बाल-देव सामान्यतः परित्यक्त हुआ पाया जाता है, असाधारण संकटों का उस पर आक्रमण होता है—कभी तो पिता ही स्वयं पुत्र का शत्रु होता है—

'माँ को तो एक विशेष प्रकार का भाग लेना पड़ता है। वह होती भी है,

साथ ही नही भी होती है। प्राचीन इटालिक उदाहरण लिया जाय—टागेस (Tages) नाम का बालक, जिससे एट्रस्कनो को पावन विज्ञान प्राप्त हुए थे, एक हलवाहे की आँखो के सामने जमीन से निकला था—माता भूमि का बालक और मातृहीन तथा पितृहीन अनाथ का ठेठ रूप।

इस वृत्त के एक रूपान्तर मे बालक के परित्याग और निर्जन परिवेश मे माँ भी साझी मिलती है। वह गृहहीन होकर जहाँ तहाँ भटकती है और पीडित की जाती है।

दोनो रूपान्तरो मे यह तथ्य सामान्य रूप से मिलता है कि नवोत्पन्न देव परित्यक्त होता है। एक मे माँ तथा बालक दोनो परित्यक्त रहते हैं, दूसरे मे बालक अकेला ही निर्जन तथा आदिम जगत मे मिलता है। यहाँ परी-कथा का वातावरण घनीभूत होता मिलता है। यूरोपियन तथा ऐशियाई लोकवार्त्ता के अनाथ बालक (orphan child) का हमे स्मरण हो आता है, कि वह किस प्रकार परित्यक्त किया गया। दोनो प्रकार के उदाहरण मिल जाते हैं जिनमे या तो बालक माता-पिता रहित अकेला सकटापन्न है, या जिसमे वह माँ या धाय के साथ है।

क्या यह अनाथ बालक जो हमे परी-कथा (लोक कथा) मे मिलता है, बाल-देव का पूर्वज नही और क्या उसी क्षेत्र से धर्मगाथा मे नही लिया गया है ?"

लेखक देवकथाओ और लोक-कथाओ मे सर्वत्र असहाय-अनाथ बालक को देखकर और शीघ्र ही उसी बालक मे देवत्व या दानवत्व के दर्शन करके इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि असहायावस्था के लोक-चित्रो मे देवत्व आरोप नही, यह देवत्व का ही कोई तत्व होना चाहिये। असहायावस्था=सबसे विलगता= निर्जनता=एकातता मानकर वह एक ऐसे बालक को ढूँढता है, जो बालक है, निर्जन मे एकान्त मे है, और जिसमे देवत्व की विलक्षणता है। तब उसके सामने प्रलयकालीन पत्र शायित बालक-रूप नारायण का चित्र उभर आता है। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि धर्मगाथाओ और लोकगाथाओ में ये बाल-वर्णन जिनमे बालक+निर्जन या असहायावस्था+देवतत्व (विविध सकटो से बच आना और जीवट के भीम कर्म, बालक होते हुए भी कर आना)तथा द्वियौनत्व मिलते है। यह वर्णन सृष्टि के आदि सर्जन के समय के दृश्य का अवचेतन के द्वारा पुनस्मरण है, या पुनरावलोकन है। विविध जातियो द्वारा समान रूप से एक ही अभिप्राय का इस प्रकार दर्शन यह सिद्ध करता है कि मनुष्य की आदिम भावनाए सर्वत्र समान रूप मे लोक-मानस मे स्फुरित होती रही हैं। ये आदिम मानव भावनाएँ व्यष्टिगत निजी उद्भव की स्थितियो की भी स्मृति के

समतुल्य होकर समष्टि की उस स्थिति को ही प्रकट करती है। यही धर्मगाथा के रूप मे मनुष्यो को अनुभूत होती है।

इसी की व्याख्या मे सी० जी० जुग ने लिखा है —

"Statements like 'the child-motif is a vestigial memory of one's own childhood' and similar explanations merely beg the question But if, giving this proposition a slight twist, we were to say: "The child-motif is a picture of certain forgotten things in our childhood" we are getting closer to the truth. Since, however, the archetype has always to do with a picture belonging to the whole human race and not merely to the individual, we might put it better this way: "the child motif represents the preconscious childhood aspects of the collective psyche"

इस प्रकार महान् मनोविश्लेषण शास्त्री जुङ्ग की दृष्टि मे यह बाल अभिप्राय सामूहिक मनोमूल के चेतना-पूर्वी बाल पक्ष को प्रस्तुत करता है।

यह 'बाल-अभिप्राय' (Child motif) किसी वास्तविक मानवीय बालक के परिज्ञान पर निर्भर नही करता। जो ऐसा समझते है, वे भूल करते हैं। बाल-अभिप्राय का अस्तित्व किसी पूर्वगामी यथार्थ बालक के कारण नही, न ऐसे यथार्थ बालक का होना 'बाल अभिप्राय' के अस्तित्व के लिए पूर्वस्थ शर्त ही है। मनोवैज्ञानिक यथार्थता की दृष्टि से 'बालक' विषयक पदार्थिव भाव (emperical idea) केवल एकमात्र साधन (और यह कोई अकेला ही ऐसा नही) है जिससे एक उस मनोमूलक तथ्य को अभिव्यक्त किया जाता है, जिसे इससे अधिक ठीक रूप मे नही व्यक्त किया जा सकता। अत इसी तरह बालक का धर्मगाथात्मक भाव, यह जोर देकर कहा जा सकता है कि, पदार्थिव बालक की प्रतिकृति नही, किन्तु एक प्रतीक है जो इसी रूप मे स्पष्टत समझा जाने योग्य है। यह एक विलक्षण-बालक है, एक दैवी बालक, जो नितान्त असाधारण परिस्थितियो मे उद्‌भवित हुआ है और पाला-पोसा गया है, और—मुख्य ध्यान देने योग्य बात यह है कि, यह मानवी बालक नही है। इसके कार्य ऐसे ही चमत्कारक या दानवी होते है जैसी इसकी प्रकृति और शारीरिक गठन। इन अत्यधिक अपार्थिव गुणो के कारण ही सिर्फ 'बालक अभिप्राय' के उल्लेख की आवश्यकता है। किं बहुना, धर्मगाथा के 'बालक' के कितने ही रूप होते है। अभी एक देवता, या दानव, अभी टाम अंगुष्ठ (Tom Thumb) पशु, आदि आदि, और इससे यह पता चलता है कि इसका कारण

विघान (Causality) कम से कम विवेक-सगत (rational) या यथार्थत मानवीय नही।"

इस प्रकार मनोविश्लेपरग शास्त्र के इस प्रचेता ने यह वताने की चेष्टा की है कि यह 'वाल-अभिप्राय' चेतना-पूर्वी मनोमूल मे उद्भूत है,और मानव व्यष्टि के अपने निजी सृजन कालीन अनुभव की अवचेतन मे से स्फुरित वह झलक है, जो वस्तुत व्यष्टि-सीमित नहीं रहती, वह व्यष्टि अपने रूप मे समष्टि के प्रथम वालक के उद्भव के मूल अनुभव को ही स्मरण करता होता है।

ये अनुभव अवचेतन (Unconscious) मानस मे ममाये रहते हैं। वही से ये मूर्त रूप ग्रहण करते हैं, और ये अपने द्वारा मानव के, इस युग मे आदिम मूल-मानस से, उच्छिन्न चैतन्य मानस को उसके उसी मूल अतीत के मानस से सम्वन्धित कर दिया करना है। यही नही, इसी के द्वारा मानव अपनी सपूर्णता (Wholeness) की उपलब्धि करता है। क्योंकि मानव केवल चेतन-मानस ही नही, वह अवचेतन भी है, अत दोनो के योग से ही सम्पूर्णता प्राप्त करता है।

यह देखकर कि मनुष्य ने 'वाल-देव' के विपय पर चर्चा करना कभी कम नहीं किया, हम सभवत साम्य को व्यष्टि से आगे ले जा कर मानव जाति या जीवन की प्रक्रिया के सम्वन्ध यह निष्कर्ष दे सकते हैं कि मानवता भी सभवत सदा अपनी वाल्यावस्था की स्थिति मे झगडती रहती हैं, अर्थात् अपनी मूल, अवचेतन और ऐन्द्रिक भावोन्मेपमयी स्थिति (Instinctive state से सघर्ष करता रहता है, और इस सघर्ष का सकट वस्तुत सदा विद्यमान है वही इस 'वालक' की कल्पना को प्रेरित करता है। धार्मिक आचार, यानी धर्मगाथात्मक घटना का वार-वार पाठ और वार-वार अनुष्ठान करना, अन्तत. वालक और तत्सवंधी प्रत्येक वात की मूर्तकल्पना (image) को चेतन मानस के अन्तश्चक्षुओ के समक्ष वार-वार जागृत करने का काम करता हैं, जिससे कि आदि मूल स्थिति से शृङ्खला विच्छिन्न न हो जाय।

चेतन और अवचेतन के सम्वन्ध के द्वारा जहाँ मानव अपनी सम्पूर्णता की उपलब्धि इस मूलस्थपित (Arch Type) के द्वारा करता है, वहाँ वह अपने वर्तमान चेतन-मानस को अपनी आदि मूल से भी सम्वन्वित रखता है। यह आदिमूलक चेतन-पूर्वी मूलमानस इन मनोविश्लेपरगो द्वारा अवचेतन मे ही अवस्थित माना गया है। निश्चय है कि यह फ्रायडियन अवचेतन से भिन्न अवचेतन ही होगा, जिसकी जडें आदि स्थिति मे हैं, और यह हमें उत्तराधिकार मे प्राप्त मानस को मानने के लिए विवश करता है। आज जब यह उत्तराधिकारावतरित मानस चेतन-मानस की भूमिका वनता है तो यही लोक-मानस का

रूप ग्रहण कर लेता है। यह हम पहले अध्याय मे देख ही चुके है। अत. बाल-देव' का समस्त विधान इसी लोक-मानस की अनुभूति है। इसी के कारण इसमे सबसे अधिक लोकतत्व है, और आज भी कृष्णभक्ति इस बालकृष्णोपासना के द्वारा अपने उसी मूल रूप की उपलब्धि के मानसिक माध्यम से आध्यात्मिक मोक्ष की सभावना सिद्ध करती है।

'बाल देव' के इस समस्त निर्माण के चार तत्व मिलते है —१—परि-त्यक्त-सी मूल से विच्छिन्न निर्जन स्थिति मे, २—दैवी पराक्रम, ३—द्वियौनत्व, ४—आदिअन्ताद्वैत। १ परित्यक्त-सी निर्जन स्थिति मे रहस्यमय तथा चमत्का-रक उत्पत्ति। कृष्ण जेल मे पैदा होते है, चारो ओर आतक-पूर्ण स्थिति है, पर वे जहाँ पैदा होते है, वहाँ जन्म समय सब सुधु-बुध भूल जाते है, माता-पिता बेडी मे मुक्त हो जाते है, ताले खुल जाते है। साथ ही अत्यन्त क्षुद्र आरम्भ—कृष्ण अपने माता-पिता से विच्छिन्न, ग्वाल-बालो मे दूसरो के द्वारा पाले जाते है।

२. बालक की अजेयता या दैवी पराक्रम के सम्बन्ध मे जुग ने लिखा है—'यह एक उल्लेखनीय असगति (Paradox) सभी बाल-धर्मगाथाओ मे मिलती है कि 'बालक' एक ओर तो असहायावस्था मे भयानक शत्रुओ के पजो मे डाल दिया जाता है और निरतर नेस्तनाबूद हो जाने के खतरे से घिरा रहता है' उधर दूसरी ओर उसके पास ऐसी शक्तिया होती है जो सामान्य मानवता की शक्ति से कही बढकर होती है। भगवान कृष्ण की बाल-लीलाओ मे ऐसी शक्तियो का अद्भुत वर्णन मिलता है। पालने मे ही दैत्यो को पछाडा, पूतना का वध दूध पीते ही किया, केशी आदि दानवो को पछाडा और सबसे बढकर दैवी चमत्कार और अद्भुत शक्ति का प्रदर्शन किया गोवर्द्धन पर्वत को उठाकर। यह पराक्रम 'वामनावतार' की कोटि का ही माना जा सकता है। 'वामन' मे भी बाल-अभिप्राय के दोनो तत्व उपस्थित है। कालिय नाग को नाथना कुछ कम पराक्रम का काम नही।

३. द्वियौनत्व इस बाल-अभिप्राय मे प्राय मिलता है, तथापि यह इतना प्रबल नही। हाँ यह जिस रूप मे लोक-मानस द्वारा विकसित किया जाता है उस रूप मे अवश्य और निश्चय ही मिलता है। जुग और केरेन्यो ने इसे 'हेर्माफ्रोडिटिज्म नाम दिया है। इस सम्बन्ध मे जुग का कथन है कि—

"यह एक आकर्षक तथ्य है कि सम्भवत आदि सृष्टि मूलक [Cosmo gonic] देवताओ मे से अधिकाश द्वियौन [Bisexual] प्रकृति के हैं।" उनकी राय मे दो विरोधी योनियो का यह अद्वय [Union] मानस की आदि स्थिति का सूचक है। किन्तु इसका महत्व इस कारण विशेष है कि यह अद्वय

मानव जाति के भाव-जगत मे निरन्तर बना रहा है, और सस्कृति के उच्च से उच्च स्तर पर भी यह एक उच्च दार्शनिकता के साथ बार-बार प्रकट होता रहा है। यह आदिम भाव विरुद्ध [योनियो] के उत्पादक अद्वय का प्रतीक बन गया है—यह 'अद्वय प्रतीक' अब केवल मानव की अतीत आदिम स्थिति की ओर ही इगित नही करता, यह मानव के अभी तक के अनुपलब्ध साध्य का भी द्योतक गया है। जुग महोदय ने आगे बताया है कि "अब यह सहज ही समझा जा सकता है कि सृष्टि-आदि मूलक [Primordial] हर्माफ्रोडाइट का मूर्तकल्पानाँश [Image] आधुनिक मनोविज्ञान मे नर-नारी के विषम योग [antithesis] के वेष मे पुन प्रकट हुआ है—दूसरे शब्दो मे नर रूपी चेतना और स्त्री रूपी अवचेतना।

"मूलत यह आदिसृष्टिक मूल स्थपित [Archtype] उर्वरकटोने [Fertilty magic] के क्षेत्र मे ही पूरी तरह काम मे आता था और उर्वरत्व के अतिरिक्त इसका कोई और उद्देश्य उस समय न होने से बहुत समय तक यह शुद्ध वनस्पति-प्राणि जगत का व्यापार बना रहा। वहाँ से विकसित होकर यह मनोविज्ञान के क्षेत्र मे आ पहुँचा।"

जो भी हो इस मनोवैज्ञानिक व्याख्या से यह बात तो अत्यन्त स्पष्ट हो जाती है कि नर-नारीत्व के अद्वय की भावना लोक-मानस से घनिष्ठ रूपेण सम्बन्वित है। आज भी इसमे विद्यमान आकर्षण लोक-मानस की अवचेतन प्रक्रिया के ही कारण है। अर्द्धनारीश्वर की कल्पना के मूल मे यही लोक-मानस है, और सिद्धो और तत्रो की 'अद्वय' या कौल साधना की मूल भूमि भी यही मानस है। किन्तु बालरूप मे कृष्ण मे इसका सम्बन्ध कैसे ?

इस सम्बन्ध को हम 'केरेन्यी' के एक कथन से समझ सकते है— उन्हो। बताया है कि—

"सृष्टि आदि मूलक बालक का मूर्तांश [Image] प्रस्फुटित हो पडता है, यह यौवन के आदर्श रूप मे रूपान्तरित हो उठता है।" दूसरे शब्दो मे हम कह सकते हैं कि कुछ देवताओ मे जो अनन्त यौवन बालरूप मे ही फूट हैं, वह इसी स्थिति का परिणाम है। उन्होंने इसी को आगे यो लिखा है—

"आदिमूलक सत्ता [Primal being] की द्वियौनवर्ती हर्मोफ्रोडिटिक विशेषता ने भी मान्यता प्राप्त करली जबकि यूनानी सस्कृति मे अप्सरा-जैसा बालक आदर्श रूप मे उद्भवित हुआ। मानो सृष्टि आदि मूलक द्वियौनीय बालक ही लोक-क्षेत्रीय रूप मे इस प्रकार पुन अवतरित हुआ हो।"

स्पष्ट है कि कृष्ण मे कामदेव के रूप-सौंदर्य की स्थापना नर मे नारीत्व के प्रतिभास को सिद्ध करता है। यह सदा से ही एक आश्चर्य की बात रही है

कि ऐसा छोटा बालक काममकला मे ऐसा दक्ष। इसका समाधान चेतन मानस के व्यवस्थित विवेक मे हो ही नही सकता। यहाँ मनोविश्लेषण ने उसकी एक सम्भव व्याख्या दी है। अवचेतन की नीव मे जो उत्तराधिकारावतरित लोक-मानस है, वही से इसकी सिद्धि है।

इसी भाव के कारण कही कही बालक शिश्न मे घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है। यह शिश्न प्रजाधारण का ही प्रतीक है। अत 'बालक' बालक के आदि मूलक मूर्तांश मे समुद्र मे तैरते वक्त नारायण-रूप मे सृष्टि का आदि भी है और प्रजाधारक रूप मे सृष्टि का अन्तिम रूप भी है।

तात्पर्य यह है कि बालकृष्ण का धर्म-ग्रहीत समस्त रूप और लीला-व्यापार इसी लोक-मानसिक भूमि का व्यापार है, और उसके द्वारा हम अपने उसी आदिमूल को प्राप्त करना चाहते है जो पिड मे वैसे ही व्याप्त है जैसे ब्रह्माण्ड मे।[1] इसी बाल रूप के विकास मे बालकृष्ण ही नही गोपी-कृष्ण के कृष्ण पक्ष का भी एक समाधान है। कृष्ण की काम-कथा का ही एक पहलू है।

साथ ही बाल-देव के पराक्रमो के वर्णनो मे वीर-कथा का रूप प्रस्तुत हो जाता है। वीर-नायक की भाँति बाल-देवता को अनेको अमानुषिक पराक्रम करने पडते है। भगवान कृष्ण ने दानवो को मारा, नाग को नाथा, गोवर्द्धन धारण किया। ये सभी वीर-कथा के ही अभिप्राय है। मथुरा जाकर कस को

---

१ श्री सी० केरेन्सी तथा सी० जी० जु ग मनोविश्लेषण-विज्ञान के विश्वासी हैं। उन्होंने समस्त व्यापार को अपनी दृष्टि से देखते हुए यही स्थापना की है कि बालेश्वर या बाल-देव का मूर्तांश [Image] धर्मगाथिक [Mythologem] है। यह लोक-मानसिक नहीं। इनकी दृष्टि मे 'लोक-मानसिक' मनुष्य के अपने व्यापारो के अनुरूप होता है, अर्थात् मानवीय। दैवी तत्व अनाथ बालक मे हमे मिलता है, वह अनाथ बालक का तत्व नहीं, वह इस मानवीय बालक मे जोडा नहीं गया, वरन् दैवीतत्व का ही एक दूसरा रूप है। इसको हिन्दुओ की सृष्टि आदि मूलक बाल-कल्पना से उन्होने और भी पुष्ट किया है। मार्कंडेय ने समुद्र पर तैरते बाल-रूप नारायण को देखा उनके उदर मे प्रवेश किया तो समस्त त्रैलोक्य मिला। जु ग ने इसी की पुष्टि मे भारतीय दर्शन की उस अनुभूति का उल्लेख किया है जिसे 'अणयो रयीणान् महतो महीयान' जैसे शब्दो मे प्रकट किया गया। बालक, उच्छिन्न, परित्यक्त, असहाय, दीन बालक 'अणयो रयीणान्' अणु से भी अणु, छोटे से भी छोटा, क्षुद्र से भी क्षुद्र, फिर भी त्रैलोक्य धारी, विराट—अर्थात् महतो महीयान, महान से भी महान। पर समस्त भाव-रूप के मूर्तांश को ग्रहण किया जाय तो यह विशुद्ध आदि मानवीय प्रथम भावोलब्धि के अतिरिक्त और कुछ नहीं। समस्त दैवी तत्व ही लोक-मानस की अनुभूति है, और लोक-मानस के के प्रथम दृश्य ग्रहण और भावोद्रेक का ही परिणाम है। इसे लोक-मानस के मनोविज्ञान से ही समझा जा सकता है, केवल मनोविश्लेषण से नही।

पछाडना इस वीर-कथा का चरम है। और ये तो वे सूत्र हैं जो बाल-कृष्ण से ही लिपटे हुए हैं, या उनके निर्माण के तत्व हैं। अतः स्पष्ट है कि ये तीनों कथा-सूत्र एक ही लोक-मानसिक अनुभूति का परिणाम हैं—और सर्वत्र ही ये तीनों एक ही बालक में गूँथे हुए मिलते हैं।

इन सबके साथ एक आवश्यक तत्व जो कृष्ण के साथ उनकी बाल-लीलाओं में मिलता है, वह है वंशी। वंशी को संगीत का प्रतीक मान सकते हैं। यूनानी धर्मगाथा में हर्मीज ने कछुए में 'लायर' (एक वाद्य यन्त्र) बना डाला है। इसके संबंध में सी० केरेन्यी ने प्रश्न किया है—

'किन्तु क्या हम यह नहीं कह सकते हैं कि प्रथम वाद्य का यह आविष्कार, जिसे बालक हर्मीज ने अपोलो को भेंट में दिया था, किसी अर्थ में "सृष्टि-आत्मक' [Cosmic] है? हम यहाँ सृष्ट्यात्मक सामग्री की चर्चा कर रहे हैं जो धर्मगाथात्मक, दार्शनिक, गणितात्मक, संगीतात्मक, या किसी अन्य मार्ग से अपने आपको अभिव्यक्त कर सकती है।' यह वैविध्य संभव ही नहीं है जब कि वह सृष्ट्यात्मक सामग्री ही हो।—अब यही लेखक आगे कहता है कि 'सृष्टि आदि मूलक बालक [Primordial child] के हाथ में वाद्य संसार के संगीतात्मक गुण को अभिव्यक्त करता है, भले ही कवि का इरादा ऐसा न हो। यह स्वयं हर्मीज की प्रथम और प्रधान विशेषता है।' इस लेखक को जब यह वाद्य डालफिनारूढ़ बालक के हाथ में दिखायी देता है तो उसे उन प्रारम्भिक सम्बन्ध का ध्यान आता है जो विशेषनामों के अभिधान के अस्तित्व में आने से पूर्व ही विद्यमान थे जल, बालक, और संगीत का मौलिक सम्बन्ध।[1] कृष्ण की कल्पना में वह दृश्य कितना सारगर्भित है जिसमें यमुना नदी में नाग पर कृष्ण आरूढ़ हैं, और वंशी बजा रहे हैं।

इस प्रकार बाल-कृष्ण का लोक-मानस प्रतिष्ठित स्वरूप पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है। इस रूप में बाल-देवता में आज भी इस भक्ति और आस्था का कारण भी स्पष्ट हो जाता है। सभी की भूमि लोक-मानस से सम्बन्धित है।

---

१. "इंट्रोडक्शन टू ए साइंस ऑव माइथालजी" में बाल देवता पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। इसके लेखक हैं श्री० सी० जी० युंग तथा सी० केरेन्यी। हमने ऊपर इन लेखकों के जो उद्धरण दिये हैं वे इसी पुस्तक से लिये गये हैं। पूर्ण विवेचन के लिए यह पुस्तक ही देखनी चाहिये।

कृष्ण-शाखा का भक्ति-काव्य

भक्ति-तत्व लौकिक तत्व है। इसका विकास लोक-तत्वों में समन्वित होकर संपन्न हुआ है। 'भक्ति' आन्दोलन वस्तुतः लोक-वेद-तत्व के समझौते के लिए नहीं गठा हुआ था, वरन् लोक-तत्व को बौद्धिक मान्यता प्रदान कराने के लिए हुआ। यही कारण है कि भक्ति को पहले स्वीकार किया गया, बाद में उसके लिए प्रमाण ढूँढे गये या गढ़े गये। यह भक्ति तत्व जब सगुणत्व के साथ-साथ उत्कर्षवान हुआ तब इसने लौकिक नायकों को वरण किया।

कृष्ण मूलतः लोक-नायक हैं। साथ ही उनका भक्ति का स्वरूप लोक-कथाओं के माध्यम से पूर्णता को प्राप्त हुआ है।

उनके जन्म की कथा अपने में स्वयं एक पूर्ण लोक-कथा है। उसी प्रकार 'यशोदानन्दन' की कथा अलग है और जिस रूप में वह कृष्ण को प्रस्तुत करती है उससे विदित होता है कि उसमें कई लोक-कथाएँ सम्मिलित हुई हैं—वे कथाएँ ये हैं (असुरवध) प्रत्येक असुर वध की कथा एक स्वतन्त्र कथा है।

वत्सहरण की कथा,
गोवर्द्धन धारण की कथा,
चीरहरण की कथा,
कमल लाने की कथा,
कालिय नाग नाथने की कथा,

इन समस्त यशोदानन्दनीय कथाओं में समन्वित होकर कृष्ण-वृत्त का स्वरूप एक महान लोक-कथा का रूप ग्रहण कर लेता है जिसे साहसिक कृत्यों की शृङ्खला के नायक की कहानी की परम्परा में रखा जा सकता है, हरक्यु-लीज, नल, जगदेव अथवा पांडव और राम इसी परम्परा में हैं।

कृष्ण जन्म की कथा का क्रोनस की कथा में साम्य है।

कृष्ण-जन्म की कथा	क्रोनस की कथा
१—कंस की बहिन देवकी का वसुदेव से विवाह हुआ तो आकाशवाणी ने कंस को बताया कि तेरी बहिन के गर्भ से तेरा काल जन्म लेगा।	१–२ - इस कथा में स्वयं क्रोनस ने अपनी बहिन से शादी कर ली है। उसे ज्ञात हुआ है कि उसके जो पुत्र होगा वह उसे मार डालेगा। फलतः कृष्ण की कथा की भाँति ही क्रोनस कथा में (१) बहिन के गर्भ से उत्पन्न पुत्र ही काल होता है, (२) क्रोनस को पहले ही विदित हो जाता है कंस की भाँति कि उसका पुत्र ही उसको मारेगा।
२—कंस बहिन और बहनोई को बन्दी बना लेता है। फलतः कृष्ण का जन्म कंस के ही यहाँ होता है। क्रोनस कथा में बहिन को पत्नी बना दिया गया है। कंस कथा में वह बन्दिनी होकर कंस के पास है।	
३—कंस अपने बहिन के पुत्रों को उत्पन्न होते ही मार डालता है	३—क्रोनस अपने पुत्रों को पैदा होते ही खा जाता था, निगल जाता था।
४—कंस कथा में कृष्ण को पैदा होते ही वसुदेव-यशोदा के यहाँ	४—क्रोनस की बहिन और स्त्री रही आ (Rhea) अपने छठे पुत्र

गोकुल पहुँचा आते है, यशोदा की पुत्री को बदले मे ले आते हैं। पटकने पर हव आकाश मे उड जाती कस के है।	जिअस को छिपाकर क्रीट मे पहुँचा देती है और क्रोनस को कपड़े मे पत्थर लपेट कर देती है जो उसे पुत्र समझ कर निगल जाता है।

और अन्त में भविष्यवाणी पूरी हुई। कृष्ण ने कस को मारा और जिअस ने क्रोनस को।

इस कथा के सबध मे सर जेम्स जार्ज फ्रेजर ने टिप्पणी देते हुए बताया है कि क्रोनस जिअस मे पुराना था, और यह पुरानी मूल-निवासी किसान जाति का देवता[1] था। इस प्रमाण मे इस कथा का लोक-मूल निश्चित हो जाता है।

असुर वधो को ले तो सूरदास के कृष्ण ने निम्न असुरो का वध किया है –

१—पूतना
२—श्रीधर का अगभग
३—कागासुर
४—सकटासुर
५—तृणावर्त
६—बकासुर
७—अघासुर
८—धेनुक
९—प्रलब
१०—शखचूड
११—वृषभासुर
१२—केशी
१३—रजक
१४—व्योमासुर
१५—कुवलया (हाथी)

१—बट ट्रेडिशन सरटेनली प्वाइंटस द द कन्क्लूजन दैट इन लैटियम एण्ड परहैप्स इन इटैली जैनरली द सीड-गौड सैटर्न वाज ऐन ओल्डर डीटी दैन द ओकगौड जुपीटर, जस्ट ऐज क्रोनस ऐपीअर्स टू हैव प्रिसीडैड जिअस। परहैप्स सैटर्न एण्ड क्रोनस वर द गौडस आव ऐन ओल्ड इन्डीजिनस एण्ड ऐग्रीकलचरल पीपिल—[द गोल्डेन बाउ, पार्ट १, द मैजिक आर्ट ऐण्ड द एवल्यूशन आव किंग्स—वोल्यूम II तृतीय सस्करण पृ० ३२३]

इन असुरो पर ध्यान देने से एक बात तो यह उभरती है कि ये सभी खेतिहर क्षेत्र के ही असुर हैं। काग, वक, धेनुक, वृषभ, केशी आदि सभी पशु, पक्षी गाँवो के लिए सामान्य हैं। शकट, तृणावर्त—आँधी आदि भी ग्रामीण क्षेत्र से सम्बन्धित हैं। इन सबको असुर बनाने मे किसका हाथ है? निश्चय ही लोक-वार्ता का ही हाथ है। लोक-मानस ने सामान्य तत्वो को यह भयानक-रूप दिया है, इन असुरो मे एक ऐसा भी व्यक्ति है जो असुर नहीं, वामन है—श्रीधर। यह श्रीधर सूरदास के लिए प्रक्षेप है। किसी ने सूर के नाम से या किसी दूसरे सूरदास ने यह पद रचा है और सूरसागर मे सम्मिलित कर दिया है। यह श्रीधर वामन भी कंस के परिवार का बताया गया है। उसका परिचय यो दिया गया है—

श्रीधर वामन करम कसाई,
कह्यौ कंस सौं वचन सुनाई,
प्रभु मैं तुम्हारौ आज्ञाकारी
नन्द सुवन कौं आवौ मारी।

यह वामन गया और उसने अपने किये का फल भी पाया। किन्तु यह प्रक्षिप्त इसलिए लगता है कि कंस की चिंतना मे इसको कही स्थान नहीं मिला। श्रीधर प्रसग मे आगे के ही पद मे है—

सुन्यो कंस, पूतना संहारी
सोच भयौ ताके जिय भारी।
कागासुर कौ निकट बुलायौ

यहाँ पूतना संहार का तो उल्लेख है, श्रीधर अग-भग का नही। तुरन्त वकासुर को स्मरण किया है।

कागासुर का भी वध हो गया तब कंस ने यो कहा है—

दनुज-सुता पूतना पठाई, छिनकहि माझ संहारी
चोंच मरोरि दियो कागासुर, मेरे ढिग फटकारी—

पूतना के उपरान्त कागासुर तो है, पर श्रीधर-वामन नहीं, कागासुर को तो कंस ने स्वयं भेजा है, श्रीधर वामन स्वयं सेवा के लिए आगे आया है। यह शैली भेद भी श्रीधर-प्रसग को प्रक्षिप्त कर देता है। इसके अतिरिक्त —

१—पांडे लीला
२—यमलार्जुन उद्धार
३—वत्स हरण
४—दावानल पान
५—कालिया नाग नाथन

६—चीर हरण

७—गोवर्द्धन धारण

८—वरुण से नन्द को छुडाना

लीलाएँ या तो प्रक्षिप्त हैं या सूर ने उसे किसी महात्म्य परम्परा मे लिया है। यह भी कृष्ण-कथा का मौलिक अंश नही, पर शेष 'कथांश' कृष्ण-कथा के ही अङ्ग है और इसमे सन्देह नही कि ये सभी लोक-वार्त्ता मे लिये गये है।

'यमलार्जुन उद्धार' प्राचीन वृक्षात्माओ से सम्बन्धित है। बछडो की चोरी वैदिक साहित्य मे भी है और लोक-साहित्य का यह विश्व मे एक प्रिय अभिप्राय है। नाग को नाथना, नाग को वश मे करने के रूप मे, एकानेक लोक-कहानियो मे आज तक आता है। यही बात दावानल पान, चीर हरण, गोवर्द्धन धारण वरुण से नन्द को छुडाने वाली लीलाओ की है। इन सभी मे लोक-मानस पूर्णत व्याप्त है। इन अभिप्रायो की लोक-परम्परा के कारण ही यह कथावृत्त लोक-तत्वो से युक्त नही, एक और लोक-रसायन इस वृत्त मे मिलती है। लोकवार्ता मे लोक मानस एक विशेष रसायन का उपयोग करता है। विविध कारणो से युग-परिवर्तन के साथ कुछ व्यक्तित्वो के महत्व मे हेर-फेर हो जाता है। कभी जो व्यक्तित्व बहुत महत्वपूर्ण था वह अत्यन्त गौण हो जाता है। इन्द्र का ही उदाहरण लें। वैदिक काल मे इसे ही सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। पुराणो मे इसका महत्व बहुत कम हो गया। बौद्ध धर्म मे इसका स्थान और भी गौण हुआ। कृष्ण के प्रसङ्ग मे इन्द्र कृष्ण का प्रतिद्वन्द्वी बन गया। कृष्ण ने इन्द्र-पूजा समाप्त करादी और गोवर्द्धन-पूजा आरम्भ करायी। यह किस कारण हुआ। इसका कारण लोक-रसायन है। इसी लोक-रसायन का एक परिणाम यह भी होता है कि विविध प्रकार के व्यक्तित्वो का एक दूसरे पर आरोप हो जाता हैं। यहाँ तक कि पूर्व युगीन महत् व्यक्तित्व के गुणो और चरित्रो का समस्त आरोप उत्तरयुगीन प्रतिद्वन्द्वी पर हो जाता है। इन्द्र और कृष्ण के सम्बन्ध मे भी लोकरसायन ने यही किया है। कृष्ण मे प्राय उन समस्त पुरुषार्थों का आरोप हुआ है जो हमे इन्द्र मे मिलते हैं।[1] यह समस्त स्वरूप मे भी कृष्ण-कथा को लोक-तत्व से समन्वित कर देता है।

इस कृष्ण-कथा का मूल लोक-कथा है, इसकी पुष्टि इससे भी होती है कि इसी कृष्ण-कथा का एक स्वरूप बौद्ध जातको मे है, और दूसरा जैन पुराणो मे भी। बौद्ध जातक की कृष्ण-कथा की तुलना भागवत से करते हुए श्री मोहन-लाल महतो वियोगी ने 'जातक मे श्रीकृष्ण लीला वर्णन' विषयक एक निबन्ध

---

१. देखिये इसी पुस्तक के पृ० ३७७ से ३८४ तक

लिखा था।[1] उसका आवश्यक अंश यहाँ उद्धृत किया जाता है'—

'जातक को उलटने-पलटने' 'मट्ठ कुण्डलि जातक' पर मेरी दृष्टि पड़ी। पढ़ गया और एक दिन 'घट जातक', एकाएक मैं पढ़ने लगा। पढ़ते-पढ़ते मैं चौंक उठा। यह तो श्रीकृष्ण लीला का वर्णन है।

भगवान बुद्ध ने जेतवन में यह कथा सुनायी थी जो अत्यन्त विचित्र है। श्रीकृष्ण-लीला में जितने नाम आए हैं उन नामों का उन्होंने स्मरण किया है। कंस, नंदगोप, वासुदेव, बलदेव, अर्जुन, प्रद्युम्न आदि और स्थानों में मथुरा द्वारावती आदि हैं। ऋषियों में कृष्ण द्वैपायन का नाम भी आया है तथा राक्षसों में चाणूर, मुष्टिक आदि भी हैं। घटना क्रम कुछ इधर-उधर है, किन्तु कथानक में विशेष विकार नहीं आने पाया है।

जातक की इस कथा के अनुसार उत्तरापथ[2] में असिताञ्जन नगर का राजा कोई मका-कंस था। कंस और उपकंस उसके दो पुत्र थे—इस तरह कथा का श्रीगणेश होता है। हमारे पूर्व-परिचित कंस से इसका इतिहास कुछ दूसरे प्रकार का है। श्रीमद्भागवत के अनुसार कंस उग्रसेन का लड़का था।

'उग्रसेनसुत कंस'—ऐसा वाक्य भागवत में आया है। जातक का कंस मकाकंस नामक राजा का पुत्र था और उत्तरापथ के असिताञ्जन नगर का निवासी था। कंस की एक बहन भी देवगर्भा कंस और उपकंस की सगी और अकेली बहन थी जबकि देवकी हमारे पूर्व-परिचित कंस की चचेरी बहन थी, जिसके गर्भ से भगवान प्रकट हुए। हाँ, एक बात जातक में भी है। जब देवगर्भा का जन्म हुआ तब ज्योतिषी ब्राह्मणों ने भविष्यवाणी की कि इसके गर्भ से जो पुत्र होगा वह कंस-गोत्र और कंसवंश का नाश कर देगा।

भागवत के अनुसार जब देवकी विवाह के बाद पतिगृह जा रही थी तब स्नेह के कारण कंस अपनी चचेरी बहन का रथ स्वयं हाँक रहा। मार्ग में उस समय आकाशवाणी हुई—

पथि प्रग्रहिणं कंसमाभाष्याहाशरीरिणीवाक्।
अस्यास्त्वामष्टमो गर्भो हन्ता यां वहसेऽबुध।

देवकी के आठवें गर्भ से उत्पन्न होने वाली संतान के कंस के मारे जाने की कथा में ही फर्क नहीं पड़ा है समय और स्थान में भी अन्तर है। जातक में

---

१. देखिये साप्ताहिक हिन्दुस्तान (८ फरवरी १९५३ ई० का अङ्क पृ० १२—१३)

२. जातककालीन भारत का 'उत्तरापथ' गंधार, केकय, तक्षशिला, काश्मीर के अंचल का नाम था।

कहा गया है कि अपनी देवगर्भा बहन को कस ने एक खम्भे का महल बनवाकर रख दिया। उसका विवाह उसने नही होने दिया। भागवत मे कहा गया है कि भविष्यवाणी सुनकर कंस अपनी बहन को, जो दुलहन बनी हुई पतिगृह जारही थी, तलवार लेकर मारने दौडा। महात्मा वसुदेव ने समझा-बुझाकर कस को रोका। वह मान गया। जातक मे वर्णित कृष्ण-लीला के अनुसार उत्तर मथुरा का राजा था महासागर—उसके दो पुत्र थे—सागर और उपसागर। उपसागर उपकस का मित्र था। दोनो की शिक्षा साथ-साथ एक ही ऋषि-आश्रम मे हुई थी। उपसागर लफगे स्वभाव का था। उसने अपने भाई सागर के महल मे ऐसा उत्पात किया कि तुरन्त मथुरा से भाग जाने मे ही अपनी खैरियत समझी। वह भागता हुआ अपने मित्र उपकस की शरण मे गया।

ऐसी कथा की कोई झलक श्रीमद्भागवत या किसी दूसरे आर्ष-ग्रन्थ मे नही आयी है। भगवान बुद्ध के श्रीमुख मे ही इस कथा का श्रीगणेश हुआ। उपसागर आवारा तो था, ही अपने रक्षक की बहन देवगर्भा पर ही उसने डोरे डाले। देवगर्भा बेचारी भरी जवानी लिए खम्भे वाले महल मे पख फड-फडाया करती थी। बाहर निकलने का आदेश तो था नही, क्या करती। नदगोपा नाम की एक दासी को प्रसन्न करके उपसागर ने देवगर्भा की निकटता प्राप्त की। देवगर्भा के एकान्त महल मे उपसागर लुकछिपकर जाने लगा। दासी नदगोपा इस काम के लिए पुरस्कार भी पाती थी। बात बहुत दिनो तक छिपी न रह सकी। गुप्त बात का बहुत बडा फल देवगर्भा के शरीर मे प्रकट हुआ—क्वारी राजकन्या गर्भवती हो गयी। बहन् पर अत्यधिक स्नेह के कारण कसबन्धु ने देवगर्भा की सारी कथा जानकर, उसे ऊपसागर के ही हाथो मे सौंप दिया। कसो ने सोचा कि यदि बहन के गर्भ मे कन्या पैदा होगी तो उसका पालन करेंगे, पुत्र होगा तो गला घोट कर मार डालेंगे। ज्योतिषियो की भविष्यवाणी के अनुसार देवगर्भा के पुत्र से कस-वश के नाश होने का भय है, न कि कन्या से।

दश पुत्रों की माता देवगर्भा

देवगर्भा ने प्रथम गर्भ से कन्या-रत्न को जन्म दिया। भाइयो ने आनन्द प्रकट किया। 'गोवडमान्' गाँव बहन को देकर उसे अलग बसा दिया।

लगातार देवगर्भा बच्चे जनने लगी। दुर्भाग्यवश उसने क्रमश दस पुत्रो को जन्म दिया और उसकी प्रिय सहचरी नन्दगोपा ने दस कन्या। देवगर्भा का प्रत्येक पुत्र नन्दगोपा ले जाती थी और अपनी कन्या उसे देदेती थी। भागवत के नन्दगोप जातक मे नन्दगोपा दासी के रूप मे है। सयोग ऐसा था कि देवगर्भा और नन्दगोपा साथ-साथ प्रसव करती थी—'एक ही समय बच्चो की अदला-

बदली में दैव सहायक था, यही कहना उपयुक्त होगा। देवगर्भा के दसो लडके, जो आगे चलकर डाकू हो गये नन्दगोपा के पुत्र कहे जाने लगे, क्योंकि ऐसी ही व्यवस्था कंस के भय से की गयी थी। देवगर्भा के गर्भ से डाकू प्रकट हुए। वासुदेव से आरम्भ करके अंतिम पुत्र अंकुर तक सभी डाके डालने लगे। जातक में इन्हें 'अन्धक वेणु दास-पुत्र दस दुष्ट भाई' कहा गया है। यह सन्देह हो जाता है कि कहीं इस कथा का सम्बन्ध श्रीकृष्ण से तो नहीं है, क्योंकि सारी घटना का रुख उसी ओर है जिधर श्रीकृष्ण-लीला का है।

जब नन्दगोपा को बुलाकर कंस ने डराया कि तेरे लडके पापी हैं, वे डाके डालते हैं तब वह डर गयी और उसने सारा भेद खोल दिया। कंस भयभीत हो उठा। वे दसो भाई उसके भानजे हैं, देवगर्भा के लडके, जिनसे उसे भय था—यह जानकर उसके होश हिरन हो गये। वह उन प्रबल शत्रुओं के शीघ्र नाश का उपाय सोचने लगा और उधर दसों भाई राज्य में आतंक फैलाते रहे। प्रजा रोज आकर रोती-बिलखती थी। राजा घबडा उठा।

उप-अमात्यो ने राय दी कि वे पहलवान है। नगर में कुश्ती कराने का प्रबन्ध कीजिये। दसो भाई निश्चय ही आजायेंगे, तब हम उनका खात्मा कर देंगे।

श्रीमद्भागवत के कंस ने भी ऐसी व्यवस्था की थी। यहाँ पर जातक और भागवत में मेल बैठता है। जातक में भी दस्यु-भाइयो बलराम और वासुदेव से कुश्ती लडने वाले इन्हीं पहलवानो के नाम लिये गये हैं जिन नामो को भागवत में हम पढते हैं—चाणूर और मुष्टिक।

'कृष्णरामौ समाभाष्य चाणूरो वाक्यमब्रवीत।
मयि विक्रम वार्ष्णेय बलेन सह मुष्टिक'॥

अब जातक की ओर ध्यान दें। दसो भाई बडी शान से अपने मामा के दंगल में पहुँचे। पहले उन्होंने धोबियो का मुहल्ला लूट लिया और इसके बाद सुन्दर कपडे पहनकर आगे बढे। वे वनवासी डकैत थे—डील के कपडे न रहे होंगे, इसीलिए पराक्रम का प्रदर्शन करना पडा। यह है जातक का वर्णन, किन्तु भागवत के श्रीकृष्ण जब मथुरा पहुचे तब—

मतानि तासामरविन्दलोचन.
प्रगल्भलीलाहसितावलोकनै।
जहार मत्तद्विरदेन्द्रविक्रमो
दृशाददच्छ्रीरमणात्मनोत्सवम्॥

मतवाले मस्त हाथियो की तरह चलते हुए जब वे मथुरा नगरी में पहुँचे तो लक्ष्मी को भी विमोहित करनेवाले अपने श्यामरूप से नर-नारियो के नेत्रो

को लुभा लिया। अपनी प्यारी मुसकान से, प्रेमभरी चितवन से सबका मन चुरा लिया। चोरी की बात दोनो जगह है, जातक मे भी और भागवत मे भी। जातक के वासुदेव वलराम आदि धोवियो के कपडे लूटकर नगर मे घुसे तो भागवत के वासुदेव और वलराम लोगो के चित्त चुरा कर आगे वढे[1]। थोडा सा अन्तर है, वहुत थोडा सा। जातक का ही वर्णन यहाँ पर उपस्थित करना मै चाहता हूँ। इसके वाद वलददेव और वासुदेव ने चाणूर तथा मुष्टिक को धराशायी कर दिया। दोनो पहलवानो का वध करके वासुदेव ने अपना चक्र सम्हाला। उनके दोनो मामा कस और उपकस सामने ही वैठे थे। वासुदेव एक ही झपट्टे मे दोनो मातुलो के सिर काटकर अट्टहास करने लगे। वलराम ने मुष्टिक को मारा था—वह प्रेत हो गया। जातक मे कुछ परिचित शब्द इसी प्रसङ्ग मे हम पढते हैं जैसे—रोहिणेय्य, केसव, कण्ह आदि। मातुलो का वध करके उनके राज्य पर उन्होने अधिकार कर लिया तथा फिर विश्वविजय करने चले। अन्त मे उन्होने द्वारावती नगरी को जा घेरा। इस नगर के एक ओर समुद्र तथा तीन ओर पहाडो का प्राकृतिक घेरा था। वे द्वारावती को जीतकर वहाँ वस गए। ऐसे थे जातक के वासुदेव आदि डकैत-वधु। भागवत के अनुसार श्रीकृष्ण ने द्वारका को वसाया था जो अडतालीस कोस लम्वी तथा समुद्र के वीच मे थी—

दुर्गंद्वादशयोजनम्
अन्त समुद्रे नगरम्

ऐसा वर्णन भागवत के वारहवें स्कध मे है।

दुर्वासा के स्थान पर कृष्ण द्वीपायन

इसके वाद दुर्वासा के शाप और मूसल की, एक दूसरे ढङ्ग की कथा भगवान वुद्ध कहते हैं। वह इस प्रकार है—केशव को जव राज्य करते काफी समय व्यतीत हो गया तव उन दसो भाइयो के लडको ने एक दिन 'कृष्ण द्वीपायन' की दिव्य दृष्टि की परीक्षा लेने का साहस किया। कृष्ण द्वीपायन एक पहुँचे हुए सिद्ध थे। लडको ने एक पुरुष को स्त्री की तरह अलकृत करके तथा पेट पर तकिया वाधकर द्वीपायन के सामने उपस्थित किया। कृष्ण द्वीपायन ने कहा—यह व्यक्ति आज के सातवे दिन एक लकडी का टुकडा जनेगा और उसीसे वसुदेव-कुल की इतिश्री हो जायेगी। तुम लकडी टुकडा जलाकर राख समुद्र मे फेंक देना। "राजपुत्र वडे नाराज हुए और वोले—अरे तपस्वी, यह पुरुष है। इसे प्रसव कैसे होगा ?"

१—सूरदास ने रजक लीला दी है। इसमे कृष्ण ने कस के धोवी को लूटा है। देखिये सूरसागर (ना० प्र० स०) दूसरा खड पृ० १२६२

इसना कहकर उन्होंने कृष्ण द्वीपायन को तात की रस्सी से गला घोंटकर मार डाला। वेचारे ऋषि का अन्त हो गया। उस पुरुष पर जो नारी का स्वाग भरकर कृष्णद्वीपायन के निकट गया था, पहरा वैठा दिया गया। ऋषि की वात खाली नही गयी। सातवे दिन सचमुच लकडी का एक टुकडा उस पुरुष के पेट मे निकला। कस-वश का यही नाशक यमदड था। वह लकडी जलाकर उसकी राख सागर मे डाल दी गयी। उसी राख के प्रभाव से नगर के प्रधान द्वार पर एरड के पेड उग आये। यह जातक का वर्णन है।

तदनन्तर एक दिन राजा जलक्रीडा करने सागर की ओर चले। रेत पर छावनियाँ डाल दी गयीं। आनद मनाया जाने लगा, पुत्र, पौत्र, नाते-रिश्तेदार सभी हँस-खेल रहे थे कि किसी वात पर झगडा उठ खडा हुआ। अस्त्र तो थे नही, काल-प्रेरित उन्ही एरडो के डठल तोड-तोड वे लडने लगे। हाथ मे आते ही डठल भयानक मूसल वन जाता था। देखते-देखते सभी जूझ गये, सारा वश ही समाप्त हो गया। जातक की इस कहानी से भागवत मे भगवान कृष्ण की उस कथा का कुछ मेल वैठता है जिसमे यदुवश के नाश का, जो सागर तटपर दुर्वासा के शाप से हुआ था, वर्णन है। वहाँ दुर्वासा थे और जातक मे वेचारे कृष्ण द्वीपायन। दुर्वासा को किसी ने कुछ नही कहा और द्वीपायन को वेमौत मरना पडा। भागवत मे लिखा है—

जनयिष्यति वो मन्दा मुसल कुलनाशनम्।

"मूर्खो, इससे एक ऐसा मूसल पैदा होगा जिसमे तुम्हारे कुल का नाश हो जाएगा।" यही दुर्वासा का शाप है। जातक के अनुसार जव वासुदेव के सभी सगे-सम्वन्धी मूसलो की मार से मर रहे थे तव वासुदेव, वलदेव, वहन अजना देवी और पुरोहित चारो रथ पर वैठकर भाग खडे हुए और एक दूर के गाँव मे जाकर रुके। वासुदेव ने उसी जगह विश्राम करना चाहा।

वासुदेव की मृत्यु

एक वात छूट गयी। जव वासुदेव वलदेव आदि चारो व्यक्ति गृहयुद्ध से भयभीत होकर भागे तो रास्ते में एक भयानक यक्ष मिला। मुष्टिक पहलवान जिसे वलदेव ने कस के अखाडे मे मारा था, मरकर प्रेत हो गया था। उसने वलदेव को देखते ही वदला लेने के लिए उसे धर दवोचा और चवा डाला। इस तरह वलदेव भी प्रेत के पेट मे चले गये। अव वचे तीन व्यक्ति, गाँव के वाहर ही ठहरे। विश्राम करके वासुदेव ने अपने पुरोहित के साथ वहन को गाँव के वाजार मे भेजा—खाने का सामान लाने के लिए। इधर वासुदेव जो थक गये थे एक वृक्ष की शीतल छाया मे छिपकर लेट गये। जरा नाम का एक वहेलिया था। वृक्ष को हिलता देखकर उसे सुअर का भ्रम हुआ। भाग-

वत के अनुसार श्रीकृष्ण के तलवे की ललाई देखकर वहेलिये को मृग के सिर का भ्रम हुआ था। जातक के वहेलिये को सुअर का और भागवत के वहेलिये को मृग के सिर के अग्रभाग का—नाक से ललाट तक का। जातक का वहेलिया भी 'जरा' है और भागवत का वहेलिया भी जरा है—

मूसलावशेषाय खडकृतेषुर्लुब्धको 'जरा'।
मृगास्याकारतच्चरण दिव्याध मृगशकया ॥
भागवत, एकादश स्कध।

मूसल के वचे हुए टुकडो को वाण का फलक वनाकर 'जरा' वनो मे घूमता था। उसने श्रीकृष्ण के लाल-लाल चरणातल को देखकर मृग समझा। निशाना मारा और चरण विंध गया। होनी होकर रही, वह टल न सकी, टाली न जासकी। जातक के वासुदेव को भी वडा-सा सूअर समझकर जरा ने वाण से वीध दिया तो वासुदेव को मृत्यु के निकट देखकर एक पुरानी वात याद आयी। कभी पडितो ने भविष्यवाणी की थी, जरा नाम के किसी व्यक्ति के वाण से तुम मरोगे।

जरा को वासुदेव ने क्षमा-दान दिया और श्रीकृष्ण ने भी जरा को अपनाया। जातक का 'जरा' क्षमा पाकर प्राण लेकर भागा और किसी जगल मे छिप गया तथा भागवत का जरा क्षमा पाकर सीधे स्वर्ग चला गया—

त्रि परिक्रम्य तं नत्वा विमानेन दिव ययौ।

तीन वार परिक्रमा करके उसने भगवान को प्रणाम किया और वह तत्काल विमान पर चढकर स्वर्ग चला गया।" जातक मे कृष्णलीला इसी रूप मे है।

कृष्ण-कथा का यह रूप सिद्ध करता है कि यह कथा लोक-कथा के रूप मे प्रचलित थी, और इसके कई रूपान्तर समय-समय पर हुए, जिनमे से जो रूपान्तर जिसे मिला, उसका उपयोग उसने अपनी दृष्टि से किया।

कृष्ण की जो कथा आज हमे मिलती है उसमे पूर्व के विविध कृष्णो के वृत्तो का भी आधार दिखायी पडता है। ऋग्वेद मे कृष्ण का उल्लेख है, जो किसी नदी के किनारे था। यह आर्य विरोधी था। छान्दोग्य उपनिषद मे देवकीपुत्र कृष्ण का उल्लेख है। यह कृष्ण विद्वान था विश्वक का पुत्र कृष्ण था, कृष्ण ऋषि था। कृष्ण नाम का एक असुर था जिसके दस हजार अनुयायी थे। ये लूटमार करते थे। इन्होने इन्द्र को पराजित किया था। एक वैदिक मत्र मे ५०,००० कृष्णो का उल्लेख है, ये सभी मार डाले गये, इनकी गर्भवती स्त्रियो तक को नही छोडा गया, क्योकि यह अभीष्ट था कि कृष्णो का वश समूल नष्ट होजाय।[1]

१—देखिये—डाउसनः ए क्लासिकल डिक्शनरी आव हिन्दू माइथालोजी

वर्तमान कृष्ण-कथा मे कृष्ण इन्द्रविरोधी है, कृष्ण आश्रम के अन्तेवासी हैं, सान्दीपन के यहाँ, वे देवकी के पुत्र है। कृष्ण दस्यु है, दस हजार उनके अनुयायी हैं, इसका रूपान्तर बौद्ध जातक मे है, कृष्ण वहाँ दस्यु है और दस हजार सख्या उसके दस महलो के रूप मे रह गई है। कृष्णो का समूल नाश यादववश के समूल नाश का ही पूर्व रूप है।

इस प्रकार कथा-भूमि सर्वथैव लोक-मानस की सृष्टि है। इसके अतिरिक्त वल्लभसम्प्रदाय की भूमि ही लौकिक है, जो स्पष्टत और मूलत वेद-विरोधी भी है जिसमे सूरदास और अन्य कृष्ण-काव्य के कवियो का दृष्टिकोण यह है कि वे जो सिद्धान्त प्रस्तुत कर रहे हैं वह सिद्धान्त सर्वमान्य है। वेद-उपनिषद भी उसकी साक्षी देते हैं किन्तु जिसे स्पष्टत वेदमार्ग कहा जाता है, वह उनका मार्ग नही। उनका मार्ग तो लोक-मार्ग* है। यह लोक-मार्ग इसलिए भी है कि वेदेतर है, वेदमार्ग-विरोधी भी है, भक्ति परक है और भक्ति लोक-तत्वमय है। पर यह लोकमार्ग इसलिए भी है कि इसमे जो साहित्य रचा गया उसमे विविध सम्प्रदायो अथवा मतो की परम्पराओ के अवशिष्ट लोक-तत्व भी हैं जिसका उपयोग एक विशेष व्यवस्था के अनुरूप किया गया है। योगियो के चित्र उनके सिद्धान्तो की आलोचना, योगमाया का उल्लेख, आत्मतत्व का अन्तर्निष्ठ रूप, जाति-पाँतिवाद का विरोध, नारी-पुरुष का साम्य आदि ऐसी ही बातें हैं।

इसी के साथ लोक-भाषा और लोक गीत-प्रणाली का उपयोग भी यह सिद्ध करता है कि सूर और अन्य कृष्णभक्त कवियो की काव्य भूमि लोक भूमि ही थी। उसमे लोक-तत्व बहुत प्रबल था। यही कारण है कि उसने इतनी लोक-प्रियता प्राप्त की।

सूरदास आदि अष्टछाप के कवियो मे जो तत्व विद्यमान मिलते है वे सभी बाद के भी कृष्ण-भक्ति कवियो मे प्राप्त होते हैं। किन्तु बाद के कृष्ण-भक्ति-कवियो मे शास्त्रीय मर्यादा की ओर आग्रह बढता गया है। बाद के कवियो ने पद-रचना छोडकर कवित्त-सवैये की शैली को अपनाया। कवित्त मे निश्चय ही लोक-मानस का रूप है,क्योंकि कवित्त मे शास्त्रीय बन्धन है तो, पर वे किसी भी मात्रिक छन्द अथवा वर्णवृत्त से बहुत कम है। उसका समस्त निर्माण एक निश्चित साचे मे होता है जो सहज परम्परा से प्राप्त होता है क्योंकि केवल

---

* यह प्रतीत होता है कि सूर ने 'लोक-वेद' दोनो का विरोध किया है। जहाँ लोक-वेद आदि का ऐसा उल्लेख हुआ है, वहा 'कानि' या 'मर्यादा' से ही अभिप्राय है। अत लोक मर्यादा का विरोध है। लोक-तत्व का मूल रूप किसी भी मर्यादा ऊपर से रहता है, वैसे ही भक्ति संप्रदाय की कृष्ण शाखा का रूप है।

वर्णों को गिनकर रख देने मे भी कवित्त नही बनता पर उसमे पदो जैसी उन्मुक्तता भी नही, अत लोक-मानस की वह स्वच्छन्दता नही मिलती। इसी के साथ बाद के काव्य मे चमत्कार और आलङ्कारिक प्रयोगो का आग्रह बढता गया है, उसी परिमाण मे लोक तत्व भी कम होता गया है। हाँ, कथा-तत्व सम्बन्धी लोकतत्व को कम करने की सामर्थ्य उनमे नही थी। पर इस ओर भी उनकी चेष्टा थी यह स्पष्ट है जब कि हम यह देखते हैं कि बाद मे लीला को गौण स्थान दिया गया, शृङ्गार-चित्रों और केलि-क्रीडा को सर्वोपरि महत्व दिया जाने लगा, और कृष्ण से अधिक राधा का महत्व होने लगा।

पाँचवा अध्याय

राम शाखा

कृष्ण-काव्य का स्वरूप जिस प्रकार के लोक-तत्वो से बना है, उसमे भिन्न लोक-तत्वो का समावेश राम-कथा मे हुआ है। कृष्ण-कथा का मूल साहसी कार्यों मे प्रवृत्त होने वाले वीर नायक की गाथा मे निहित है, राम-कथा मूलत प्रेम-कथा है। यह एक महान प्रेम-कथा है जो जन्म से आजतक विविध रूप ग्रहण कर चुकी है। आज जो राम-कथा हमे मिलती है उसमे तीन लोक कहानियाँ मिली हुई हैं।

एक कहानी है—धनुष-भग के द्वारा सीता की प्राप्ति,

दूसरी है—रावण-वध के द्वारा सीता की प्राप्ति,

तीसरी है—प्राप्ति के ठीक अवसर पर सीता का लुप्त हो जाना अर्थात् पृथ्वी मे समा जाना।

पहली कहानी मे धनुष तोडना सबसे प्रमुख अभिप्राय है। उसका यथार्थ रूप है पुरस्कार-प्रतियोगिता। इसमे 'सीता' प्रतियोगिता मे सफल होने के कारण विजय के पुरस्कार रूप मे प्राप्त हुई है। द्रौपदी के लिए मत्स्यभेद, तथा ऐसी अन्य कहानियाँ जिसमे राजा द्वारा घोषणा होती है कि यदि काम कर दिया जायगा तो पुरस्कार मे आधा राज और राजकुमारी मिलेगी, इसी परम्परा से सम्बन्धित है।

दूसरी कहानी वास्तव मे प्रेमकथा है, इसमे प्रेयसी को प्राप्त करने के लिए

मार्ग की बाधाओं को दूर करना पडता है। प्रेयसी कहाँ है? यह पता लगाने के लिए भी भटकना पडता है। इस प्रेम-कथा मे नायक का एक अभिन्न मित्र या भाई नायक के साथ अवश्य रहता है।

तीसरी कहानी मे प्रेयसी जैसे-तैसे हाथ मे आती है या आनेवाली होती है कि ठीक मिलने के क्षण पर वह लुप्त हो जाती है। शान्तनु-गगा, पुरूरवा-उर्वशी नल-मोतिनी की कहानियो मे भी यह अभिप्राय मिलता है।

बहुधा लोक-कहानियो मे दूसरी और तीसरी कहानी मिली रहती है। क्योंकि ये दोनो कहानियाँ ही प्रेम-कहानियाँ हैं।

राम-कथा मे ये तीनो मिली मिली हुई है।

इन तीनो कथाओ पर दृष्टि डालने से विदित होता है कि पहली का सबध विशेषत राजकीय क्षेत्रो मे होगा। और पुरस्कार-योजना का मूल किसी सामयिक सकट को हल करने की दृष्टि से हुआ होगा। किन्तु बाद मे इस युक्ति का उपयोग निम्न रूपो मे भी होने लगा।

१—राजकुमारी के बहुत से प्रतिद्वन्द्वियो मे से एक को छाँटने के लिए।

२—राजकुमारी को पाने के लिए उत्कण्ठित, देखने मे अत्यन्त अयोग्य लगने वाले व्यक्ति का वर्जन करने की विधि के रूप मे। जैसे शीरीं-फरहाद मे यह समझा गया था कि फरहाद दूध की नहर न तो खोद सकेगा, न कुमारी का वरण कर सकेगा।

इस कहानी का प्रधान अभिप्राय वह है जिसे स्मिथ थामसन ने मोटिफ इडैक्स मे 'एच ३३१' वर्ग दिया है। इस वर्ग मे भी ३३१, ४, २ से यह मिलता-जुलता है।

दूसरी कथा ही मूल कथा है, अथवा समस्त रामचरित की केन्द्रीय कथा है। यह मूलत प्रेमकथा है और लोक-मानस से उद्भूत सामान्य कथा मानी जा सकती है। लोक-मानस से कथा-तत्व के विकास पर विचार करते हुए राम-कथा की इस मूल कहानी के जन्म की सम्भावना हमने प्रकृति के तत्वो मे मानी थी। राम-कथा के जन्म का यह इतिहास यहाँ उद्धृत करना ठीक रहेगा।

धर्मगाथाओ के निर्माण अथवा विकास की तीन अवस्थाएं मानी जा सकती हैं। आरभिक अवस्था मे प्राकृतिक व्यापारो और व्यापार-कर्ताओ को यह जीवन द्योतक शब्दो के द्वारा अभिव्यक्त करेगा।

किन्तु जीवन व्यापार से विभूषित प्रकृति के ये तत्व और व्यापार मानवीकरण के आरोप, अथवा रूपक के द्वारा सिद्ध हुए नही माने जा सकते। उन व्यापारो का आदि-द्रष्टा प्रकृति के इन व्यापारो को अपनी भाँति ही प्राणियो के व्यापार मानता है। सूर्य, ऊषा आदि उसके लिए प्राणी ही है, अत उनको

वह रूपक अथवा मानवीय आरोप के द्वारा प्रकट नहा कर रहा। अपने मनोभावो मे उस प्रकृति-मडल को उसने यथार्थत इसी रूप मे देखा है।

इस क्रम से आरभिक गाथाओ का निर्माण हुआ, जो वेद मे बिखरी मिलती है। माध्यमिक गाथाए वे होती हैं जिनमे शब्दो के यथार्थ और विषय या तो बिलकुल ही विस्मृत हो जाते हैं या अधिकांश विस्मृत हो जाते हैं और उन विस्मृत कडियो को जोडने के लिए कल्पित कडियाँ बन जाती है अथवा बना ली जाती है। तीसरी प्रकार की गाथाएँ भी होती है ये शब्द के बहु-अर्थो के कारण अथवा एक ही अर्थवाले विविध शब्दो के श्लेष से उत्पन्न हो जाती हैं।

धर्म गाथाओ और लोक-कथाओ के अध्ययन से यह विदित होता है कि इनका मूल बहुत प्राचीन है। और ये सभवत उस समय अपनी धुधली रूप-रेखा तय्यार कर चुकी थी जब कि विविध राष्ट्रो और देशो मे विभाजित आर्य जन विभाजन से पूर्व शान्तिपूर्वक किसी एक स्थान पर रहते थे।

इस विचार-विमर्श से यह निष्कर्ष निकलता है कि लोक-वार्ता साहित्य की धर्म-गाथाओ का उदय जिन उपादानो और व्यापारो से हुआ उन्ही से साधारण लोकवार्ता साहित्य की लोक-गाथाओ और लोक-कथाओ का भी हुआ। धर्म-गाथा और लोक-कथा के उदय की श्रेणियाँ सक्षेप मे यो दिखायी जा सकती है :—

पहली अवस्था —आदि मानव के मानस द्वारा प्रकृति व्यापारो क दर्शन, उनका नामकरण, और उनमे अपने जैसे व्यापारो का ज्ञान—

दूसरी अवस्था —इस ज्ञान के दो रूप हुए एक ज्ञान ने विकसित होकर उन प्रकृति के व्यापारो के वाचक शब्दो के यथार्थ अभिप्राय तो अशत अथवा पूर्णत विस्मृत कर दिया, और उन प्रकृतिवाची शब्दो के विषयो को देवत्व और अलौकिकत्व से विभूषित कर दिया, उनमे धर्म-भावना वा, श्रद्धा अथवा भय का सचार कर दिया। ऐसा प्रकृति के उन तत्त्वो और व्यापारो के सम्बन्ध मे हुआ जो मनुष्य को अपने प्रत्यक्ष अनुभव से उसके दैनिक कार्यक्रम मे हानिलाभ पहुँचाते थे।

दूसरे ज्ञान ने विकसित होकर प्रकृति के विविध व्यापारो मे मिलने वाली शिक्षाओ को हृदयगम किया— उन प्रकृति के व्यापारो को कथा-रूप दिया— और उनसे उपदेश निकाला।

तीसरी अवस्था —पहला ज्ञान धर्म गाथाओ के रूप मे धार्मिक आख्यानो का आधार बना। उन्हे मनीषियो ने अपना कर और भी अधिक श्रद्धा का भाजन बना दिया। इसमे से महाकाव्यो तथा धर्मगाथाओ के परिपक्व रूप खड़े

हुए। यह शिष्ट और विशेष वर्ग की सपत्ति होता चला गया। इनका रूप भी स्थिर होता गया।

दूसरे ज्ञान को साधारण लोक ने अपनाया इसमे प्रकृति के व्यापारो की शिक्षाएँ साधारण कल्पना ने विविध रूप ग्रहण करती रही, वही साधारण लोक-वार्ता हुई। इसमे या तो मनोरजन की प्रधानता रही, या नैतिक शिक्षा की। इस साहित्य मे कथा-कहानी के रूप मे घटनाएँ तो सुरक्षित रही, पर नामो की रक्षा न हो सकी। इसकी आधार रूप-रेखा तो दृढ रही पर ऊपरी रूप मे अनेको परिवर्तन होते गये और रग भरते गये। यह सर्व साधारण की सपत्ति बनी।

चौथी अवस्था —मूल लोकवार्ताए अपने आदि स्रोत से पृथक् होती चली गयीं। वे विविध मानव-समूहों द्वारा विविध भौगोलिक प्रदेशो में ले जायी गयी। उन प्रदेशो की भूगोल के अनुसार उस कथा के स्थानो का नामकरण हुआ। ये अधिकाधिक फलने-फूलने लगी उनकी शाखा-प्रशाखाएँ ऐसा रूप धारण करने लगी कि मूल से वे बिलकुल असबद्ध प्रतीत होने लगी। अब ये बिलकुल ही साधारण लौकिक कहानियाँ हो गयी।

पाँचवी अवस्था —ये साधारण लोक-कहानियाँ साधारण जन समुदाय मे प्रवाहित हो चली और साधारण लोक-मानस ने इनके समान ढाँचे पर बिलकुल लौकिक और स्थानीय कहानियाँ रच डाली। ऐसी कहानियो को भी प्रेरणा मिली जिनका उनकी कहानी से कोई सम्बन्ध ही नहीं रहा।

वैदिक प्रकृति—उदाहरण के लिए पहली अवस्था मे मानव ने उषा को देखा और मुग्ध होकर गा उठा—

"We see that thou art good · far shines thy lustre,
Thy beams, thy splendour have flown upto heaven,
Decking thyself, thou makest bare thy bosom,
Shining in majesty, thou goddess Morning.

हम देखते हैं कि तू भव्य है · तेरी रश्मियाँ, तेरा तेज अत्यन्त देदीप्यमान है।

× × × ×

Thy ways are easy on the hills thou passest
Invincible!
Self-illuminous through waters
So lofty goddess with thine ample pathway, Daughter of Heaven bring wealth to give us comfort

सूर्य के सम्बन्ध मे उनके मन मे यह धारणा बनी—

सूर्यो देवीमुषस रोचमाना

मर्यो न योषामभ्येति पश्चात् । ऋ० १, ११५ ।

"सूर्य दिव्य (देवी) तथा जोतिष्मती उषा पीछे पीछे ऐसे ही जाता है जैसे कोई प्रेमी अपनी प्रेयसी के ।"

मेघ और वर्षा के व्यापार को देखकर उसने इन्द्र की जो कल्पना की वह तो अद्भुत ही है । उसने कहा—

यो हत्वाहि मरिणात्सप्त सिन्धुन्योगा उदाजदपधा वलस्य ।ऋ० २-१२

तथा—

य शम्वर पर्वतेषु क्षियन्त
चत्वारिंश्या शरद्यन्वविदन्त् ।
ओजायमान यो अहि जघान
दानु शयान स जनास इन्द्र. ॥[ऋ० २, १२]

"Who found out in the fortieth autumn, Sambara abiding in the hills. who slew that dragon boasting of his might, the sprawling demon. He, O men, is Indra." [Tr, Peter Peterson]

उसने अग्नि की प्रशसा मे ये अनुभूतियाँ समर्पित की—

अग्ने त्री ते वाजिना त्री षधस्था तिस्रस्ते जिह्वा ऋतजात पूर्वी ।
तिस्र उ ते तन्वो देववातास्ताभिर्न पाहि गिरो अप्रयुच्छन्
(ऋ० III. २०.२)

अग्ने भूरीणि तव जातवेदो देव स्वधावोऽमृतस्य नाम ।
याश्च माया मायिना विश्वमिन्व त्वे पूर्वीः संदधु पृष्ट बन्धो ॥ ३ ॥
अग्निर्नेता भगइव क्षितीना दैवीना देव ऋतुपा ऋतावा ।
स वृत्रहा सनयो विश्व वेदा पर्षद्विश्वाति दुरिता गृणन्तम् ॥ ४ ॥

"Agni born of sacrifice, three are thy viands, three thine abiding places, three the tongues satisfying (the gods) three verily are thy forms, acceptable to the dieties and with them never heedless (of our wishes), be propitious to our praises."

"Divine Agni knowing all that exists · have deposited in whatever are the delusions of the deluding (Rakshasas)."

"The divine Agni is the guide of devout men, as the Sun is the regulator of seasons: may he, the observer of truth, the slayer of Vritra, the ancient, the om-

niscient convey his adorer (safe) over all difficulties" [Rv. III. 2. 8 Tr by H H Wilson]

बादलों ने मेघ के जल को बन्द कर रखनेवाला अहि वृत्र है, इन्द्र इसी वृत्र को मारकर वर्षा कराता है। यह इन्द्र सूर्य का ही रूपान्तर है, अग्नि इसका प्रमुख साथी। सभी वेदों ने अग्नि और इन्द्र की साथ-साथ स्तुति की है—
Ouer powering is the might of these two, the bright (lightening) is shining in the hands of Maghvan as they go together in one chariot for the (recovery) of the cows, and the destruction of Vritra [Rv. V. 6, 11. Tr, H H Wilson]

"The heroic Agni is able to encounter hosts and by him the gods obercome their foes"

तनूनपादुच्यते गर्भ आसुरो नराशंसो भवति यद्विजायते।
मातरिश्वा यदमिमीत मातरि वातस्य सर्गो अभवत्सरीमणि॥

ऋ० III. 39, 11

When (existing) as an embryo (in the wood) Agni is called Tanunapat When he is generated (he is called) the Asura-destroying Narashamsa when he has displayed (his energy) in the material firmament, Matarishwan and the creation of the wind is in his rapid motion

× × × ×
न नि मिषति सुरणो दिवेदिवे यदसुरस्य जठरादजायत।

III. 29, 14

Day by day he never slumbers after he is born from the interior of the (spark) emitting wood (Rv III 2 17.).

उसने देखा अन्धकार, और कल्पना की कि यह अन्धकार वर्षों को और प्रभातों को भक्षण किये जाता था, इद्र तथा सूर्य ने उन्हे मुक्त किया : Having slain Vritra he has liberated many mornings and years (that had been) swallowed up by darkness [RV. IV. 2 9

उसने कल्पना की कि यह अन्धकारिणी रात्रि कोई दुष्प्रवृत्ति छिपाये हुए है, अत इद्र उसे मार डालता है, "Is as much, Indra, as thou has displayed such manly prowess, thou has slain the woman, the daughter of the sky, when meditating mischief RV. 3 9.

और उसने उस इद्र को उषा के प्रेमी के रूप मे चित्रित किया, "Thou India, who art mighty, hast enriched the glorious dawn the daughter of heaven. इन्द्र तुम बलवान हो, तुमने वर्चस्विनी उषा को समृद्ध किया है—उस उषा को जो द्यावा की पुत्री है।

वेदो मे यही उषा 'सरमा' भी कही जा सकती है। अन्धकार की अधिष्ठात्री ने पणिस का रूप धारण किया है, जो सरमा को फुसला लेना चाहती है। रात्रि उषा के प्रथम प्रकाश को अपने चगुल मे कर लेना चाहती है।

इस आरम्भ के पहले आदि कवियो ने प्रकृति के इन व्यापारो में शक्ति के दर्शन किये, उनके हृदय आतक और श्रद्धा से परिपूर्ण हो उठे, उन्होने उन्हे देव मान लिया, उनके व्यापार, जो यथार्थ मे प्रकृति-व्यापार थे, देवताओ के अलौकिक कृत्यो की कथा बन गये। अब सूर्य सूर्य नही रहा, वह इद्र के रूप मे एक शक्तिशाली देव होगया, जिसने वृत्र नाम के अहि का, सर्पों के मे आकारवाले बादलो का, सहार कर डाला, और सृष्टि को जला दिया। यह वृत्र दानव हो गया। इसका आकार-प्रकार सर्पों जैसा कल्पित किया गया। इसे मारकर नष्ट भ्रष्ट कर दिया तो सरमा प्रत्यक्ष हुई (When thou hadst divided the cloud for (the escape of) water, sarama appeared before thee RV IV 2, 6) "जब तुमने जल के (उन्मोचन के) लिए बादलो को विभक्त कर दिया, तेरे समक्ष मरमा प्रकट हुई।"

इन्द्र उषा को प्रेम करता है, उसे उपहारो से समृद्ध करता है, उषा वृत्र की बन्दिनी थी, इन्द्र ने उसके बन्धनो को नष्ट कर दिया उषा मुक्त हुई। ['The terrified Ushas descended from the broken waggon when the (showerer of benefits) had smashed it]'भयभीत उषा टूटे रथ से उतरी जब कि (वरदानो के बरसाने वाले ने) उसे ध्वस्त कर दिया।"

वृत्र-विनाश मे इन्द्र का साथ अग्नि ने दिया। अग्नि भी अब देव हो गया है, मात्र प्रकृति का एक भूत नही रहा। पणि ने सरमा को फुसलाया, उसे इन्द्र से छीन लेना चाहा, पर वह मारी गयी इद्र के बाण से : जब पणि सरमा को बहका रही थी, इन्द्र के विरुद्ध, तब सरमा ने पणि से कहा था . I donot know that Indra is to be subdued," "for it is he him self that subdues, you panis will be prostrate killed by Indra. "मैं नही जानती कि इन्द्र का दमन किया जाना है, क्योकि

यह तो वही है जो दमन करता है, तुम परिण भूखायी होगी इन्द्र मारा पार डाली जाओगी

और यही होता है। इन्द्र का मित्र अग्नि साधारण देवता नहीं है, उसने वृत्र के सहार मे इन्द्र का साथ दिया है, वह कभी सोता नही, वह सवको कठिनाइयो से वचाकर ले जाता है। वह सवका ज्ञाता है। इस प्रकृति-व्यापार का यह धर्मगाथा विषयक पूर्व रूप वढने लगा। समय वीतने पर इन्द्र अग्नि जैसे सीधे दिव्य पात्रो का स्थान राम-लक्ष्मण अथवा कृष्ण-वलदेव ने ग्रहण किया। वृत्र रावण वना। परिण सूर्पणखा हुई और परिपक्व धर्मगाथा का पौराणिक रूपान्तर प्रस्तुत होगया। यह विशिष्ट सम्प्रदाय मे हुआ। लोक-कल्पना मे उपरोक्त आदिकालीन विविध प्रकृति-तत्वो की प्राणी-रूप-कल्पना ने एक अद्भुत कहानी का ढाँचा खड़ा किया, जिसमे न तो इन्द्र-वृत्र का नाम रहा, न राम-रावण का।

इस कहानी का मूल ढाँचा कुछ ऐसा वना। राजकुमार और उसके मित्र घर से चले। उन्होंने एक सुन्दरी की छवि देखी। वह सुन्दरी पानी मे रहती थी। एक मणि धर सर्प के वश मे थी। दोनो ने सर्प को मार डाला और सुन्दरी को प्राप्त किया। एक अन्य राजकुमार की दृष्टि सुन्दरी पर पडी। उसने चतुर दूती भेजी जो धोखा देकर ले गयी। पर राजकुमार के मित्र ने पता लगा लिया और उस दूती को वता वता कर सुन्दरी को छुडा लिया। जव राजकुमार और सुन्दरी के साथ वह मित्र भी घर लौटने लगा तो उसने रात मे जगकर पक्षियो की वातो से राजकुमार पर पडनेवाले सकटो को जान लिया। उसने तीनो सकटो से राजकुमार की रक्षा की, पर अन्त मे राजकुमार हठ पकड गया कि वताओ तुम्हे इन सकटो का कैसे ज्ञान हुआ तो मित्र ने सव हाल कहा। वह पत्थर का होगया तव राजकुमार और सुन्दरी से जो पहला पुत्र उत्पन्न हुआ उसके स्पर्श या रक्त से वह पाषाण पुन जीवित हो उठा। यह कहानी इन्द्र उषा, सरमा अग्नि, पणि की ही लोक-कल्पना मे जीवित रहनेवाली आवृत्ति है। अग्नि के तीन रूपो से तीन सकटों की कल्पना हुई है। सव सकटो से अग्नि रक्षा करती है। इससे मित्र द्वारा रक्षा की भावना लोक-कहानी मे मिलती है। पणि दूती है। अग्नि की सामर्थ्य वीत जाने पर पाषाणवत शीतल और वह तभी पुनरुद्दीप्त हो सकती है जव पुन उद्योग किया जाय। वेदो मे अग्नि के आरम्भिक रूप को प्रथम उत्पन्न शिशु भी कहा गया है—"He (it is) whom the two stick have engendered like a new

१—जैसा वेदों मे अग्नि के सम्बन्ध मे कहा गया है कि वह कभी नहीं सोता वैसे ही लोक-कथा मे वताया गया है कि लक्ष्मण वनवास मे कभी नहीं सोए।

born" RV. V P. 10. "इसे ही दो अरणियो ने उत्पन्न किया है नव-जात (शिशु) की भाँति।"

और यह भी कहा गया है कि उसके कारण वृद्ध युवा हो जाते हैं। "but he has (again) been born, and they which have become grey haired are (once more) young. [RV. V. 1. 2. "किन्तु वह(पुन) उत्पन्न हुआ है, और वे जो कि श्वेत केशी हो गये थे (एकवार पुन)युवा हो गये हैं।

यह लोकवार्ता विविध दलो के व्यक्तियो के साथ अलग अलग देश मे गयी और अपनी उस मौलिक रूपरेखा की रक्षा करते हुए भी विविध देशो मे इसने विविध रूप धारण कर लिये, जिन्हे तुलना करने पर यह स्पष्ट विदित हो जाता है कि यह एक ही कहानी है जिसने इतने वेप वदल लिये है। जर्मनी मे यह फेदफुल जोह्न के नाम से प्रचलित है, दक्षिण मे राम-लक्ष्मण की कहानी का रूप लिया, बङ्गाल मे फकीरचन्द वनी, व्रज मे 'यारू होइ तौ ऐसौ होइ' के नाम से चल रही है। और भी इसके कितने हो अवान्तर रूप इधर उधर के अनेको प्रदेशो मे मिलते हैं।[1]

इस विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि लोक-वार्ता मे हम किसी न किसी रूप मे किसी प्राचीन युग को झाँकता देख सकते हैं। वह कहानीकार की मौलिक कल्पना नही होती। वरन् किसी प्राचीन कल्पना का रूपान्तर होती है और उसके विविध निर्माण-ततुओ मे ऐसी अद्भुत असभावनाओ का समावेश होता है कि वे किन्ही *अन्य तत्वो की व्याख्या* के द्वारा ही सभावना का रूप ग्रहण कर पाती हैं। इन लोकवार्ताओ के कथा-तत्वो को समझने के लिए उनमे झाँकते हुए रहस्य का उद्घाटन करना आवश्यक होता है।

जैसा कि उपरोक्त विवेचन से प्रकट होता है, यह अत्यन्त प्राचीन कथा एक ओर शुद्ध लोक-कहानी के रूप मे और दूसरी ओर पुराण-कथा (माइथालाजी) के रूप मे साथ साथ चलती रही है। यह लोक-कहानी निम्न तत्वो-अथवा अभिप्रायो से बनी हुई है —

१—दो व्यक्ति ये मित्र हो सकते है, वे भाई हो सकते हैं अथवा स्वामी और सेवक हो सकते हैं। प्रत्येक दशा मे एक, जो छोटा ही माना जाना चाहिये, वडे

१—देखिए व्रज भारती, वर्ष २ अंक ५, ६, ७, सवत २००३ मे लेखक की व्रज की इसी कहानी पर टिप्पणी।

का अभिन्न सहायक है, निरन्तर जागरूक और प्रबल पराक्रमी है।

२—दो में से बड़ा अपनी प्रेयसी को प्राप्त करने के लिए व्यग्र। सामान्य कहानी में यह प्रेयसी चित्र-दर्शन से प्रेयसी बनती है, अथवा मूर्ति-दर्शन से। यहाँ यह प्रेयसी अपहृत है, पहले प्राप्त हो चुकी है, अब उसका अपहरण हुआ है। यह अभिप्राय मूल कहानी में बाद में जुड़ा है, जब इस मूल कहानी में पहली पुरस्कार प्रतियोगिता की कहानी जोड़ी गयी।

३—प्रेयसी जल से घिरे अगम्य द्वीप में एक भयानक परकोटे में रहती है, जिसका मार्ग पाना सरल नहीं।

४—प्रेयसी या तो (१) सुप्त सौन्दर्य (स्लीपिंग ब्यूटी) की भाँति यहाँ रहती है, अथवा (२) उसका पिता दानव है जिसे मारकर ही प्रेयसी को प्राप्त किया जा सकता है। (३) दानव के द्वारा अपहृत सुन्दरी भी लोक-कहानी में आती है। इस कहानी का लोक रूप तो दानव कथावाला ही है। किन्तु राम-कथा के पूर्वापरि संबंध के कारण अपहृत सुन्दरीवाला रूप इसमें प्रस्तुत हुआ है।

५—नायक प्रेयसी के संरक्षक दानव के गुप्त भेद को जानकर उसी विधि से उसका संहार करता है। इसमें पदार्थ-प्राण का अभिप्राय प्राय रहता है। दानव के प्राण किसी पक्षी में या पदार्थ में अन्यत्र रहते हैं। रावण के प्राण अन्यत्र तो नहीं पर उसके शरीर के

नाभि-कुण्ड के अमृत के कारण वह अमर होरहा है। अत इस मुख्य और मर्म स्थान को वेधकर ही रावण का सहार किया जा सकता है और प्रेयसी प्राप्त हो सकती है।

मूल प्रेम-कथा का यह रूप राम-कथा मे ही नही, पदमावत और उसी की भाँति की अन्य प्रेम-कथाओ मे मिलता है। यहाँ तक कि यह एक शुद्ध आनुष्ठानिक् धार्मिक काव्य 'जहारपीर' मे भी मिलता है। राम-कथा तो कथा के आनन्द के लिए भी प्रस्तुत की जाती है। तुलसी के रामचरितमानस का एक दृष्टिकोण जहाँ धार्मिक महात्म्य है, वहाँ दूसरा कथा सुनने का आनद भी है। पर जहारपीर के गीत का तो केवल आनुष्ठानिक मूल्य है, वह कथा के आनद के लिए नही गाया जाता। उसका भी ढाँचा यही है। राम-कथा, प्रेम-कथा और अनुष्ठान-कथा के तत्वो को तुलना के लिए यहाँ साथ साथ प्रस्तुत किया जाता है।

राम-कथा	प्रेम-कथा	अनुष्ठान-कथा
१. दो भाई या मित्र या स्वामी-सेवक।	१ राजा तथा तोता। तोता निरतर लक्ष्मण या फेथफुल जोह्न की तरह राजा की सहायता करता है।	१ जाहरपीर और गोरखनाथ अथवा जाहर का घोडा।
२. राम प्रेयसी को प्राप्त करने के लिए चेष्टाशील। कितने ही जगलो, सकटो और समुद्रो को पार करते है।	२. राजा पदमावती को प्राप्त करने के लिए चेष्टाशील। कितने ही जङ्गलो और समुद्रो को पार करते है।	२. जाहरपीर सीरियल को प्राप्त करने को चेष्टाशील। कठिन मार्ग को पारकर सीरियल के देश मे पहुँचते हैं।
३. प्रेयसी लका द्वीप मे	३. प्रेयसी सिंहल द्वीप मे	३. प्रेयसी जादू के देश मे
४. प्रेयसी राक्षस के अधिकार मे।	४. प्रेयसी अपने कठोर पिता के अधिकार मे, जो राजा से उसका उस समय तक	४. प्रेयसी अपने पिता के आधीन जो जाहर से उसका विवाह

	विवाह करना नही चाहता जब तक अपने नाश का उसे निश्चय नही हो जाता ।	नही करना चाहता । अत्यत विवश होकर ही विवाह करता है ।
५. राक्षस रावण का सहार करके राम सीता को प्राप्त करते हैं ।	५. रत्नसेन पदमावती के पिता को हराकर अथवा देवताओ के आतक से उसे विवश कर पदमावती को प्राप्त करता है ।	५. जाहरपीर तातिग की चाल से विवश करके और युद्ध मे गोरख तथा देवी को अपने साथ प्रस्तुत करके सिरियल को प्राप्त करता है ।

अत यह कथाश अत्यन्त ही महान लोक-कथा है जो ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त प्राचीन है और विश्व के एक बडे भू-भाग मे अत्यन्त लोकप्रिय है ।

स्टिथ थामसन ने प्राचीन मिस्र की एक कहानी के सम्बन्ध मे लिखा है .

"The earliest of these surviving Egyptian tales dating from about 2000-1700 B C is that of ship-wrecked man. An Egyptian sailing in the Red Sea is ship-wrecked He is cast upon a loney island which is inhabited by a King of the spirits in the form of a serpent. The latter recieves him kindly and succeeds after four months in having a passing ship rescue him but in the meantime tells him of his own misfortbnes and predicts that his days are numbered and that the Island will sink into sea. Mention is also made without explanation of an earthly maiden who had formerly lived on the Island but had perished along with the family of the King of spirits The story is so confused that it seems hardly possible that the man who took it in the present form understood its motivation The hero is said to have been in great fear, before the giant serpent who is so kind to him. The role of maiden is left unexplained and undeveloped Are we dealing with the tale of an ogre and the rescue of a girl as in folktale of today. [Folktales, Stith Thompson]

तीसरा अश सीता के वनवास और लवकुश के जन्म से सम्बन्धित है।
इस कथाश मे निम्नलिखित प्रमुख अभिप्राय हैं :

१. गर्भवती स्त्री।
२ उस पर सदेह और उसका निष्कासन।
३ वन मे पुत्र जन्म। वन मे ही लालन पालन।
४. पुत्रो ने अनजाने ही पिता को परास्त किया।
५ किसी विधि से पुत्र-पिता का परिचय।
६. पिता पत्नी को लेने को 'आग्रहशील।
७. पत्नी लुप्त।

यह बात ध्यान योग्य है कि यह कहानी अधिकाश लोक-नायको अथवा लोक-देवताओ के जन्म के सम्बन्ध मे कही जाती है, बहुत थोडा हेरफेर होता है।

हनुमान चरित्र मे हनुमान का जन्म वन मे हुआ। अजना को भी सन्देह मे माता-पिता सास-ससुर के यहाँ से निष्कासन मिला।

नल के जन्म के समय उसकी मा रानी मझा को तो कनासो (जल्लादो) को सौप दिया गया था कि उसे जङ्गल मे जाकर मार डालें। नल का जन्म 'हीस विरे' हीस नामक झाड के बिल अथवा कुज मे हुआ था।

भगवान बुद्ध का जन्म भी जगल मे हुआ था।

जाहरपीर या गोगाजी की मा को भी सन्देह की दृष्टि से देखा गया और ससुर ने उसे महलो से निकाल दिया। उसके पिता भी उसे अपने यहाँ आने देने को प्रस्तुत नही थे, पर गोगाजी ने गर्भ मे से ही दोनो को चमत्कार दिखलाया, तब उसकी माँ के सास-ससुर ही उसे घर लिवा ले गये अन्यथा स्थितियाँ ऐसी ही हो चली थी कि गोगाजी जगल मे ही जन्म लेते।

सीता का परित्याग भी राम सदेह के कारण ही करते हैं।

यह स्पष्ट हैं कि तुलसीदास ने रामचरितमानस मे 'लवकुश-काड' नही रखा, किन्तु केशव तथा अन्य रामचरित लेखको ने इस काड को स्थान दिया है।

अनेको कथाओ मे पुत्र पिता से अलग हो गया है। रामकथा मे सीता अर्थात् माता के वनवास के कारण ऐसा हुआ है, किन्तु प्रद्युम्न को दानव जन्म के समय हर ले गया है। इसके उपरात उसका लालन-पालन अन्यत्र हुआ है।

अर्जुन अपने पुत्र बभ्रुवाहन को गर्भ मे छोडकर ही अन्यत्र प्रवास कर गये थे। वह उनका प्रवास काल था।

लवकुश की भाँति अन्य पिता-त्यक्त पुत्रो का लालन-पालन वनो मे नही हुआ। पर ऐसे प्रत्येक परित्यक्त बालक ने पिता को अपने पराक्रम से परास्त करके अपना परिचय दिया है। प्रद्युम्न-चरित्र मे जैन लेखक ने दिखलाया है कि प्रद्युम्न भरी सभा मे ललकार कर कहता है कि मैं कृष्ण की प्रियतमा रुक्मिणी का हरण करके ले जा रहा हूँ, किसी मे शक्ति हो तो रोके, और परिणामत युद्ध हुआ जिसमे सभी परास्त हुए, तब प्रद्युम्न का परिचय कृष्ण को मिला।

अर्जुन को भी उसके पुत्र ने बुरी तरह परास्त किया।

निश्चय ही लोक कथाओ मे यह एक रोचक अभिप्राय माना गया, और इसका बहुधा उपयोग हुआ है। जाहरपीर ने जन्म से पूर्व ही गर्भ मे से ही जाकर अपने बाबा को पछाडा है, जिससे उन्हे बाछल के निर्दोष होने का विश्वास हुआ, वे उसे घर ले आये।

अत लवकुश काँड वाला पिता को युद्ध मे परास्त करने का अभिप्राय बहुत ही लोकप्रिय अभिप्राय है।

अब अन्तिम अभिप्राय है प्रेयसी के लुप्त हो जाने का। भारतीय लोक कथाकार को यह अभिप्राय भी बहुत प्रिय है। वैदिक आख्यानो मे उर्वशी लुप्त हो जाती है, पौराणिक आख्यानो मे गगा लुप्त हो जाती है, लोक-कथाओ मे मोतिनी इसी प्रकार लुप्त हो जाती है। इस प्रकार के लोप हो जाने मे कोई न कोई कारण रहता है, बहुधा यह लोप किसी शर्त के उल्लघन के कारण होता है। सीता पृथ्वी मे समा गयी, यह लोप होने की क्रिया का ही रूपान्तर है। पृथ्वी से सीता का जन्म मान लेने पर अत मे पृथ्वी मे समाकर लोप हो जाना कथातर से समीचीन ही विदित होता है।

तुलसी की रामकथा मे सीता का परित्याग या लवकुश काँड नहीं है। अत तुलसी की रामकथा प्रथम दो कहानियो के मेल से ही खडी हुई है। अब हमे यह देखना है कि प्रथम अग के लिए और किन किन अभिप्रायो की सयोजना की गयी है।

प्रथम कहानी का केन्द्र स्थल धनुष-भग होते हुए भी उससे पूर्व कई कथाश प्रस्तुत होते हैं। ये कथाश "धनुष-भग" विषयक अभिप्राय के नायक और नायिका विषयक है। "धनुष-भग" विषयक समस्त प्रकरण बालकाण्ड मे ही तुलसी ने नियोजित किया है। इस प्रकरण मे तुलसी ने यह क्रम रखा है,

१—भूमिका शिव पार्वती विवाह के लिए शिवोपाख्यान। राम-कथा शिव ने पार्वती को सुनाई। इसी भूमिका अथवा प्रारभ के लिए शिव का उपाख्यान दिया गया है।

२—पृष्ठभूमि राम के अवतार की हेतु-कथा।

३—जन्म ।

४. वाल-क्रीडा और शौर्य वाल-क्रीडा मे एक अभिप्राय तुलसी को भी प्रिय है और सूरदास को भी । भगवान को जो भोग चढाया जाता है, यह निकाला जाता है, उसे जाकर राम या कृष्ण स्वय खाते हैं । तुलसी की कौशल्या एक ओर तो राम को सोते देखती है, दूसरी ओर उसी समय पाकशाला मे भोजन करते देखती है ।

५. स्वयवर धनुषभग ।

शिव-पार्वती के आख्यान और उसके सवाद का समावेश इस राम-कथा को लोक तत्व से युक्त करने मे पूरी तरह सहायक हैं । समस्त देवताओ मे शिव-पार्वती सबसे अधिक लोक-वार्ता तत्व वाले देवता है । अवतार के हेतु-रूप जो कहानियाँ दी गयी हैं वे हैं

अ. नारद का मोह भग करने मे नारद से शाप मिला जिसके कारण रामावतार लेना पडा ।

आ. मनु-शतरूपा ने तपस्या की, वरदान मे उन्हे पुत्र-रूप मे मागा ।

इ. भानुप्रताप का शाप वश रावण होना, और अत्याचार करना । देवता और पृथ्वी की पुकार पर अवतार लेने का आश्वासन ।

मनु-शतरूपा की तपस्या की कथा को छोडकर शेष सभी कथाएँ लोक-कथाएँ हैं ।

राम का जन्म यज्ञ की हवि मे हुआ है । इसी प्रकार लोकवार्ता मे विशिष्ट नायक किसी के आशीर्वाद से, भभूत से, किसी फल से अथवा जी या गूगल से होते हैं । यह अभिप्राय विश्व भर मे किसी न किसी रूप मे प्रचलित है ।

२००० ई० पू० मे मिस्र मे होरस नाम के देवता के जन्म के सम्बन्ध मे जो अनेक बातें कही जाती हैं, उनमे से एक यह भी है कि 'फल' से आइसिस के गर्भ धारण हुआ था । देखो "माइथालाडी आव आल रेसेज इजिप्सियन"

कथा के मूल रूप पर ध्यान दें तो ऐसा पुरुष वियावान जगल मे पैदा होना चाहिये । वही किसी ऋषि-मुनि या अन्य व्यक्ति के आश्रम मे उसका लालन-पालन आदि होना चाहिये । विदित होता है कि राम का जन्म भी ऐसे ही किसी जगल मे हुआ होगा और किसी जगल मे ही लवकुश की भाँति उनका लालन पालन, शिक्षा-दीक्षा हुई होगी । पर जन्म की परिस्थिति को वाल्मीकि अथवा तुलसी जैसे साहित्यकार व्यक्तियो ने सुधार लिया । और उनकी माँ को जगल या वन्दीगृह मे नही भटकाया । पर अन्य वाल्यकालीन

घटनाक्रम घोर वनो से सम्वन्धित है इसमे सन्देह नही। राम का वाल्य जीवन विश्वामित्र के आश्रम मे वीता है, जहाँ उन्होंने विविध पराक्रम दिखाये हैं। अंतिम पराक्रम स्वयवर मे धनुष-भग का था। राक्षसो का मारना, ताडका-वध, और अहिल्या का उद्धार शुद्ध लोकवार्ता की कहानियाँ हैं।

इस प्रकार रामकथा मे लोक तत्वो के समावेश की स्थिति स्पष्ट हो जाती है।

दूसरे कथा-भाग के मूलाश पर ऊपर विचार हो चुका है। तुलसी रामायण में अथवा हिन्दी रामचरित में यह कथाश निम्न योजना के साथ प्रस्तुत किया गया है

१—राम के राज्याभिपेक का निश्चय।

२—कैकेयी ने दशरथ से दो वरदान माँगे।

अ—राम का चौदह वर्ष का बनवास।

आ—भरत का राज्य पाना।

३—राम का बन को प्रस्थान तथा दशरथ की मृत्यु।

४—भरत-शत्रुघ्न का अयोध्या आकर वन मे राम से मिलने जाना

५—चित्रकूट में राम-भरत मिलाप तथा पादुका लेकर लौटना।

६—वन मे—

मुख्य तथा	प्रासगिक
शूर्पणखाँ काड	जयत की कुटिलता
श्री सीताजी का अग्नि प्रवेश	विराध वध
तथा माया सीता	खरदूषण का वध।
मारीच-मृग प्रसङ्ग	कवध उद्धार
सीता हरण	शवरी पर कृपा
जटायु-रावण युद्ध	बालि बध
राम सुग्रीव मैत्री	सुरसा
वदरो द्वारा खोज को प्रस्थान	छाया पकडने वाली राक्षसी
हनुमान का लका पहुँचना	का वध।
अक्षयकुमार वध	लकिनी वध
	हनुमान द्वारा अशोक
मेघनाद के नागपाश मे बँधन	वाटिका का विध्वस
लका दहन	
सीताजी से चूडामणि लेकर	
लौटना।	

७—लका में राम की लका पर चढाई, तथा समुद्र का पुल वांधना ।	लक्ष्मणजी को शक्ति लगना ।
कु भकर्ण वध	हनुमान का सजीवनी लाना
मेघनाद वध	भरत के वाण से हनुमान का
रावण-वध	गिरना और फिर उठकर
सीता की अग्नि परीक्षा	लङ्का पहुँचना ।
८—पुष्पक विमान द्वारा अयोध्या लौटना ।	

इस कथाश मे 'राम को वनवास' पहली और दूसरी मूल कथा को जोडन के लिए है । राम को वनवास भेजने के लिए दशरथ-शाप की वात, और श्रवण-कुमार के अधे माँ-वाप की कहानी दूसरे लोकवार्ता क्षेत्र से मिली है । श्रवण की कथा वस्तुत श्रमण-सस्कृति से सम्वन्धित है । श्रवणकुमार की आज भी व्रज के घर-घर मे पूजा होती है । रक्षा-वधन के दिन घरो मे भीतो पर 'सरमन' रखे जाते हैं । वे डोली कधे पर डाले होते हैं, जिनमे अधी-अधा वैठाये जाते हैं । पहले इस सरमन को सेमई चावल से भोग लगाया जाता है, तव घर के लोग भोजन करते हैं ।

'सरमन' अथवा श्रवणकुमार की कथा एक स्वतत्र लोक-कथा थी । इसका एक प्रमाण वौद्ध जातक है । उसमे साम जातक मे जो कथा दी गयी है, वह सरमन की ही कथा है । उसका सक्षिप्त रूप यह है । दो शिकारियो ने परस्पर प्रतिज्ञा की कि यदि एक के लडका और दूसरे के लडकी हुई तो दोनो का विवाह कर देंगे । अत: दुकूलक और पारिका का विवाह कर दिया गया । पर वे दोनो व्रह्मलोक से आये थे,वे परस्पर स्त्री-पुरुप की तरह नही रह सकते थे, भाई वहिन की तरह रहे । सक्क या शक्र ने भावी सकटो की आशका देखकर उन्हे फुमलाया कि उनके एक पुत्र होना चाहिये । तव दुकूलक ने पारिका की नाभि को छू दिया । उसके गर्भ से सुवर्ण साम पैदा हुआ । दुकूलक और पारिका वन से कद-मूल एकत्र करके लौटे तो एक पेड की छाया मे वैठे । उनके शरीर से वूँदें टपक कर एक विल मे गयी, जिसमे एक साँप रहता था । वह साँप उन वूंदो के गिरने से क्रुद्ध हुआ और उसने ऐसी फु ककार मारी कि दोनो अधे हो गये । साम उनकी सुश्रूषा मे लगा रहता । एक दिन साम एक नदी के किनारे पानी भर रहा था । एक हिरण उनके पास निर्भय खडा था । वनारस के राजा

पोलियख ने यह दृश्य देखा और उसने समझा कि यह कोई दैवी पुरुष है। उन्होंने वाण मारकर उसे गिरा दिया। पोलियख को जब साम का यथार्थ हाल विदित हुआ तो वह बहुत दुखी हुआ। वह बहुसोदरी देवी के कहने से अधी-अधे के पास गया, उन्हें लेकर साम के पास गया। अधी पारिका ने सत्य-क्रिया की, जिससे साम का विष उतर गया और वह जीवित हो उठा। उधर बहुसोदरी देवी ने भी सत्यक्रिया की जिससे दुकूलक और पारिका के नेत्र ठीक होगये। यहाँ शाप की बात नही है। पर कहानी सरमन की है, इसमे सन्देह नही। यह स्वतत्र कहानी के रूप मे किसी क्षेत्र मे थी, यह जातक इसका प्रमाण है।

इसी प्रकार 'सीता-हरण' भी मूल कथा मे अन्यत्र से आया है। स्टिथ थामसन ने बताया है कि इस मूल कथा के बहुत से सस्करणों मे दानव अथवा दैत्य द्वारा सुन्दरी हरण का अभिप्राय रहता है। रामायण की यह कथा उसी सुन्दरी वाली लोक-कथा का रूपान्तर ही हो सकती है। इस हरण विषयक मूल कथा के कई अन्य तत्व भी इस राम-कथा मे दिखायी पडते है।

१—हरण की हुई सुन्दरी से दानव या दैत्य विवाह करना चाहता है। यहाँ रावण सीता से विवाह करना चाहता है।

२—हरण की हुई सुन्दरी प्राय कुमारी ही होती है, यो विवाहित भी हो सकती है। राम-कथा मे सीता का जो मौलिक रूप दृष्टिगत होता है, वह कुमारी सीता का है, क्योकि

अ—सीता का जब हरण होता है तब वे अकेली हैं।

आ—सीता के सतान नही, यह कुमारी का सबसे प्रधान सकेत है।

इ—रावण सीता से विवाह करने का हठ करता है, विवाहिता से ऐसा हठ करने की कम सभावना है।

इस राम-कथा के मूल सस्करण मे कथा-मूल यो है

बौद्ध जातको के 'दशरथ-जातक' मे कथा का जो रूप मिलता है, वह इस कथा से भिन्न है। उसमे राम-सीता-लक्ष्मण बहिन भाई हैं। पिता उन्हे सौतेली माँ से मिलने वाले कष्टो की आशका से सुरक्षार्थ बारह वर्ष के लिए वन मे भेज देते हैं। नौ वर्ष बाद दशरथ की मृत्यु हो जाती है। मत्री सौत के पुत्र भरत की आज्ञा मानने को तैयार नही। तब भरत राम को लौटाने वन को जाते हैं। राम बारह वर्ष मे पहले लौटना नही चाहते। वे भरत को दूब की खडाऊँ दे देते हैं। उन्हे गद्दी पर स्थापित करके भरत न्याय करते है। यदि न्याय मे कोई त्रुटि होती है तो खडाऊँ परस्पर बज उठती है।

इस कथा मे सीता-हरण और रावण-युद्ध का उल्लेख नही। इस कथा मे यह सिद्ध होता है कि वन मे भरत-मिलाप और खडाऊँ लाने की लोक-कथा भी अलग प्रचलित थी। इस कथा को देखने मे तो विदित होता है कि सीता हरण और रावण-वध इसी मे बाद मे जोडा गया। किन्तु इस राम-कथा का अभिप्राय वस्तुत खडाऊँ का चमत्कार दिखलाना है जबकि मूल कथा का सम्बन्ध सीता-प्राप्ति और रावण-वध मे प्रतीत होता है। अतः सुन्दरी को राक्षस के फदे से मुक्त करने वाली कथा मे यह खडाऊँओ वाली कथा बाद मे जोडी गयी।

इस राम-कथा के मूल सस्करण मे कथा-मूल यो हैं :

पिता ने वर्जित किया कि दक्षिण दिशा मे मत जाना।

पुत्र (राम) अपने सेवक (लक्ष्मण) के साथ उसी दिशा में शिकार के लिए चल पडे।

एक स्वर्ण मृग का पीछा किया, यह उन्हे दूर दडकारण्य मे पचवटी के पास ले गया।

वहाँ दानव-पुत्री अथवा दानव की बदिनी (सीता) सैर सपाटे को आया करती थी। राम ने वहाँ सीता को देखा तो सीता विमान द्वारा उडकर लङ्का चली गयीं। (एक कथा मे सीता रावण-मन्दोदरी की सतान हैं)

राम ने कहा वे इस सुन्दरी को प्राप्त करेंगे। सेवक (लक्ष्मण) ने साथ दिया।

उन्हे विदित हुआ कि वह सुन्दरी एक समुद्र मे घिरे कठिन परकोटे (लकागढ) मे रहती है।

राम ने हनुमान को पता लगाने और सदेश देने दूत बनाकर भेजा।

मूल कथा मे ऐसा सदेश वाहक और मार्ग निर्देशक कोई पक्षी होता है, जैसे शुक या हस या गरुड। यह बात यहाँ द्रष्टव्य है कि हनुमान मे लोक-वार्ता के पक्षी के उडने के गुण आरोपित कर दिये है। वस्तुत इस कथा मे हनुमान किसी अन्य लोक-वार्ता से लिये गये है। जैसे किसी युग मे श्रमण-सस्कृति का प्राबल्य था, उसके प्रतीक श्रमणकुमार की कथा को रामकथा मे जोड दिया गया है, उसी प्रकार हनुमान-पूजा एक अन्य स्वतत्र क्षेत्र की चीज है। राम-कथा से उनको सम्बन्धित करने के लिए जब विचार किया गया तो कथा का यह रूप हुआ। मूल कथा के पक्षी के गुण भी हनुमान में आरोपित किये गये। उन्हे शाखामृग मे खग भी बना दिया गया। पक्षी की भाँति हनुमानजी ने वृक्ष से ही सीताजी को देखा और सदेश दिया।

राम ने वानरो और दैवी शक्ति के महारे ममुद्र पार किया।

दैवी शक्ति का परिचय वहाँ मिलता है जहाँ अकेले राम शिव-मदिर की स्थापना करते है। लोक-कथाओ मे ऐसे अवमर पर शिव ही महायक होते है। दूमरे समुद्र पर क्रोध करते हैं और ममुद्र आकर उन्हें मेतु बाँधने का रहस्य बताता है।

राम-रावण का युद्ध हुआ—विविध दैवी शक्तियो से। रावण पराजित हुआ।

राम ने सुन्दरी का उद्धार किया और उसे प्राप्त किया।

यह स्पष्ट है कि उक्त मूल कथा को आवश्यक मंशोधन के साथ राम-कथा मे परिणत किया गया है। शूर्पणखा का वृत्त भी अन्य किमी लोकवार्ता क्षेत्र से लिया गया है और सीता-हरण के लिए एक हेतु-कथा के रूप मे उसका उपयोग किया गया है।

राम-कथा के इस प्रसिद्ध रूप के साथ लवकुश काड का मयोग भी लोक वार्ता से लिया गया। शाक्तो के स्रोत मे आने वाली लोक-कथा ने हिन्दी को 'जानकी विजय' नामक काव्य भी प्रदान किया। एक रावण को सहार करके राम को बडा अहकार हुआ तो सीता ने एक अन्य प्रवल रावण का पता दिया। उस रावण से राम भी परास्त हुए तव सीता ने शक्ति का रूप धारण करके उस रावण का महार किया। हस्तलिखित ग्रन्थो मे तो जानकी विजय का इतना ही कथानक है। किन्तु लोक-साहित्य मे जो मस्करण मिलता है उसमे इससे आगे का भी वृत्त है। सीताजी उस वडे रावण को मारकर सतुष्ट नही हुई, वे राम को छोडकर चल पडी और कलकत्ते मे काली वनकर काली के मन्दिर मे प्रतिष्ठित हो गयी।

इस विवेचन से हिन्दी साहित्य मे उपलब्ध समस्त राम-कथा के लोकतात्विक रूप का पता चल जाता है।

साम्प्रदायिक अनुभूतियो से जकडा हुआ राम-कथा का एक वह रूप भी मिलता है जो राधा-कृष्ण के प्रेम-योग से होड करता है। इसमे कथा-तत्व महत्वपूर्ण नही। कोई कथा है ही नही। इसमे 'राम-मीता' की प्रेम क्रीडाओ का धार्मिक अभिप्राय से वर्णन रहता है।

कथा-विन्यास के लोक-तत्व की प्रवलता के साथ तुलसी मे लोक-तत्व का गम्भीर प्रभाव देवताओ के वर्णन के सम्बन्ध मे भी मिलता है।

तुलसी ने किन और किस प्रकार के देवताओ का वर्णन किया है, यह नीचे की तालिका से विदित होगा।

लौकिक देवता	वैदिक देवता
गणेश	सरस्वती
भवानी शकर	ब्रह्मा
सीता राम	विष्णु हरि
हनुमान	सुरेश
सीता	कामदेव
राम	कपिल
नारायण	रवि
शकर	शशि
गगा	पवन
सरस्वती	वरुण
यमुना	अग्नि
नारद	यम
शेष	
अवध	
सरयू	
नर-नारायण	
नर्मदा	
अदिति	
कालिका	
कागभुशुण्डि	
गरुड	
बराह	
नरहरि	
आदिशक्ति	
वासुदेव	
कुवेर	
काल	
ग्रामदेवी	
नाग	

इस सूची से यह स्पष्ट हो जाता है कि तुलसी के मानस मे वैदिक देवताओ का महत्व बदल गया है। प्रधान देव यहाँ अत्यन्त गौण हो गये हैं। प्रधान देवताओ मे विष्णु सर्वोपरि हैं और उनके बाद महेश है। वैदिक देवताओ के

सम्बन्ध मे यह कहना भी तथ्य नहीं कि वे गौण होगये हैं। वस्तुत वे अपना मौलिक देवत्व खो चुके हैं और अत्यन्त क्षुद्र दिखाये गये हैं।

सुरराज इन्द्र की अवमानना प्रधानत परिलक्षित होती है। यह अवमानना वेद विरोधी लोक-तत्व के प्रभाव के कारण हुई है। इन्द्र का सम्बन्ध यज्ञ-सस्कृति से है। यज्ञ-सस्कृति को लोक मे बलि-प्रधान माना गया। बौद्ध धर्म ने उन लोक-तत्वो को उभारा जो बलि-प्रधान सस्कृति के विरोधी थे। इस विरोध ने पहले तो इन्द्र को अपने प्रधानपद से च्युत कर दिया। इन्द्र की जैसी सर्वोपरिता तो बुद्ध को मिली। इन्द्र विजित देवता की भाँति बुद्ध के सेवक और सहायक हो गये। सक्क अथवा शक्र हैं बौद्ध धर्म मे इन्द्र। ये सक्क जातक कथाओ मे बुद्ध के पूर्व जन्मो मे उनकी देख रेख करनेवाले दिखाये गये हैं। बौद्ध धर्म ने यह समझौता निबाहा। वैष्णव धर्म मे अहिंसा का भाव एक विशद रूप लेकर प्रस्तुत हुआ। इस उत्थान मे पुराणो ने भी साथ दिया। लोकधारा से सम्बन्धित विविध तत्व प्रबल हुए और परस्पर समन्वय और समझौता करने लगे। विविध देवताओ मे परस्पर स्पर्धा दिखायी देती है। यह स्पर्धा लौकिक भूमि पर लोक-देवताओ के साथ सम्पन्न हुई जिससे वैदिक देवता नगण्य हो चले थे। अत इस लोकोत्थान ने पहले तो इन्द्र-पूजा समाप्त की। पूजा के समाप्त होने के साथ ही इन्द्र की प्रतिक्रिया भी भयानक दिखायी गयी। प्रलय मेघ चतुर्दिक छा गये। लोक-शक्ति ने उस सकट का निराकरण किया। फलत इन्द्र उसकी दृष्टि मे और भी गिर गया। इन्द्र की मलिनताएँ उनके सामने आने लगी। वैदिक बीजो मे पुराणो ने जो इन्द्र-कथा खडी की थी, उसमे इन्द्र साकार राज्य अथवा साम्राज्य अथवा सामन्त शक्ति का आदर्श बन गया। इसकी कल्पना का यह रूप हुआ

> इन्द्र पद यज्ञ अथवा तपस्या करके मिलता है। यह इन्द्र पद अत्यन्त स्पृहणीय है, क्योंकि इससे अमरता तो मिलती ही है, देवताओ का राजत्व भी मिलता है, नन्दन कानन, कल्पवृक्ष, कामधेनु का उपयोग मिलता है। मर्त्यलोक की हवि और उनसे सम्मान मिलता है। ऐसे पद को प्राप्त करने के लिए कौन लालायित न होगा। असुर, दानव अथवा दैत्य अपने शारीरिक बल से पद को प्राप्त करते हैं, पर इस प्रकार प्राप्त किया हुआ यह पद क्षण स्थायी होता है। लोक-देवता विष्णु आर्य देवता इन्द्र की रक्षा से लिए आते हैं, और असुरो का सहार कर इन्द्र को फिर उसका सिंहासन देते हैं। पर ऋषि लोग उस पद को तपस्या और यज्ञ से प्राप्त करते हैं। यह प्राप्ति स्थायी होती है। अत ऐसे प्रत्येक उद्योग को इन्द्र विफल

करने की चेष्टा करता है। इन्द्र के ये उद्योग दो काम करते हैं: तपस्वी की तपस्या की परीक्षा करके उसके महत्व को बढा देते हैं। तपस्वी इस प्रकार कसौटी पर चढ जाता है। दूसरी ओर इन्द्र को क्षुद्र कर देते हैं कि वह अपने पद की रक्षा के लिए शुभ कर्म मे प्रवृत्त व्यक्तियो को कष्ट देता है। इन्द्र के ऐसे उद्योगो के जो व्यक्ति शिकार हुए हैं उनमे 'हरिश्चन्द्र' तो सबसे प्रमुख हैं। सगर, विश्वामित्र आदि अनेको इस सूची मे सम्मिलित किये जा सकते है।

शक्ति और राज्य के मद के सभी परिणाम इन्द्र मे प्रतिफलित मिलते है। अत इद्र रूप-लिप्सु भी दिखाया गया है। गौतम की स्त्री अहिल्या की घटना ने तो उसे बहुत ही पतित सिद्ध कर दिया है। आगे कवियो ने दमयन्ती स्वयवर मे भी इन्द्र को पहुँचा दिया है, जहाँ वह नल जैसे मानव से स्पर्द्धा करने को प्रस्तुत होगया है। यहाँ इन्द्र एक मानव से भी परास्त दिखा दिया गया है। इद्र इस प्रकार की लोक-विचार-धारा मे पडकर घृणा का ही पात्र प्रकट हो सकता था। ऐसा कौन सा निकृष्ट कार्य है जिसे इद्र नही कर सकता। और ऐसे निकृष्ट कार्य इद्र जिनके विरुद्ध करता है, लोक-मानस मे उनके लिए ही श्रद्धा होती है। इस विधि से लोक-वार्ता ने यज्ञ-देवता इन्द्र को लोक-नायक और लोक-देवताओ से पग पग पर परास्त दिखाया। सरस्वती ने देवताओ के सम्बन्ध मे अपना अभिमत प्रकट किया

ऊच निवास नीचि करतूती,
देखि न सकहिं पराइ विभूती ॥ अयोध्याकाड॥

आगे चित्रकूट प्रसङ्ग मे स्वय तुलसीदासजी ने कहा है.

सुर स्वारथी मलीन मन कीन्ह कुमत्र कुठाइ। अयोध्या २९५।

इससे भी सतोप न करके तुलसी ने इन्द्र की यह प्रशस्ति गायी है

"देखि दुखारी दीन, दुहु समाज नर नारि सब।
मघवा महा मलीन, मुए मारि मंगल चहत ॥
कपट कुचालि सींव सुरराजू, पर अकाज प्रिय आपन काजू।
काक समान पाक रिपु रीनी। छली मलीन कतहुँ न प्रतीती ॥

किन्तु तुलसी अपने इष्टदेव राम के अभिमत की भी मुहर लगा देते हैं·

लखि, हिय, हँसि, कह कृपानिधानू, सरिस स्वान मघवान जुवानू ।

इस प्रकार तुलसी ने इन्द्र को पतन के गभीर गर्त मे पडा दिखाकर उसको घोर घृणा का पात्र वना दिया है । यह सव लोक-वार्ता तत्व के प्रभाव के कारण ही हुआ है । जो तुलसी गणेश, शिव, पार्वती, सीताराम, हनुमान, नारायण, गगा, नारद, शेष आदि का वडे उत्साह से अभिवादन करते हैं, वे इन्द्र-वरुण का कही नाम तक अपने मगलाचरण मे नही लेते । जहाँ ग्रामदेवी, नागों तथा अन्य लौकिक देवताओ के नाम लेते समय तुलसी मे एक उमग दृष्टिगोचर होती है, वहाँ इन्द्र का नाम आने पर जैसे उनमे प्रव न क्षोभ उभर आता है ।

इस लोक-तत्व के प्रावल्य के साथ ही वेद-तत्व को सवर्धित रखने के लिए वे सुर और सुर-काज को भूलते नही । राम-चरित के मूल मे यह सुर-काज निरतर विद्यमान रहता है । किन्तु यह वात ध्यान मे रखने योग्य है कि तुलसी के ये सुर वैदिक परिभाषा के ही सुर नही, उनके साथ साथ इस शब्द मे लोक परिभाषा के सुर भी सम्मिलित होते हैं ।

राम-कथा के मूल के सवध मे तुलसी ने लिखा है :

रामचरित मानस मुनि भावन ।
विरचेउ संभु सुहावन पावन ।
त्रिविधि दोप दुख दारिद दावन ।
कलि कुचालि कुलि कलुप नमावन ।
रचि महेस निज मानस राखा ।
पाइ सुसमउ सिवा सन भापा ।

इस कथा की परपरा भी तुलसीदासजी ने दी है .

सभु कीन्ह यह चरित सुहावा ।
वहुरि कृपा करि उर्महि सुनावा ।
सोइ सिव कागभुसु डिहि दीन्हा ।
राम भगत अधिकारी चीन्हा ।
तेहि सन जागवलिक पुनि पावा ।
तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा ।
ते श्रोता वकता समसीला ।
सवदरसी जानहि हरिलीला ।
जानहि तीनिकाल निज ग्याना ।
करतल गत आमलक समाना ।
औरउ जे हरिभगत सुजाना ।

कहहि सुनहि समुझहि विधिनाना ।

मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सो सूकर खेत ।

+ + + +

भाषा बद्ध करवि मे सोई ।

इस प्रकार इस राम-कथा के मूल रचयिता शिव हैं, उन्होने इसे पार्वती को सुनाया । यह तत्व इस राम-कथा को लोक कथाओ की परपरा मे बैठा देता है । कथा-सरित्सागर अथवा वड्डुकहा अथवा वृहत्कथा की भूमिका से भी विदित होता है, वह कथा भी शिव ने पार्वती को, पार्वती के आग्रह से सुनायी थी ।

भारतीय सस्कृति के तत्वो पर मूल की दृष्टि से विचार करते समय यह वात स्पष्ट परिलक्षित होती है कि जिन तत्वो का सवध शिव-पार्वती से बैठता है, उनका मूल लौकिक ही होता है ।

शिव-पार्वती लोक-क्षेत्र मे सबसे अधिक प्रिय देवता हैं । लोक-कहानियो मे गौरा पार्वती ही जन जन का दुख दूर करने के लिए पृथ्वी की यात्रा किया करते हैं । वे स्थान-स्थान पर दुखी-दीन और सकटग्रस्त की सहायता करते मिलते हैं । अत लोक-मानस की समस्त देवताओ मे गौरा पार्वती मे आतरिक श्रद्धा है । एक सवसे महत्वपूर्ण तत्व यह दिखायी पडता है कि ये शुद्ध करुणा से पसीज कर ही सहायता देते हैं जवकि अन्य देवता अपने भक्तो को ही सहायता देते हैं, अथवा उन्हे सहायता देते हैं जो उन्हे स्मरण करते हैं । इस शुद्ध निष्काम करुणा-वृत्ति के कारण शिव-पार्वती विलकुल लोक धरातल पर प्रतिष्ठित होगये और कोई साप्रदायिक आग्रह भी उनके साथ लोक-मानस मे नही दिखायी पडता, इसी कारण समस्त लोकाभिव्यक्ति का मूल शिव-पार्वती से जोड दिया जाता है ।

फिर यह लोक-कथा लोक-भाषा मे कवि ने कही, जिसके सबध मे उसे अनेक बार कहना पडा कि .

भाषा भनिति भोरि मति मोरी ।

हँसिवे जोग हँसे नही खोरी ।

+ + + +

भनिति भदेस वस्तु भलि वरनी ।

+ + + +

स्याम सुरभि पय विसद अति भनत करहि सब पान ।

गिरा ग्राम्य सिय राम जस गावहि सुनहि सुजान ।

राम सुकीरति भनिति भदेसा ।

असमजस अस मोहि अँदेसा ।

इन्ही के साथ यह भी कहा है ·

का भामा का सस्कृत प्रेम चाहियतु साच ।
काम जु आवै कामरी का लै करै कुमाचु ।

इस विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि राम-कथा लोक-कथा है, वह लोक भापा मे लोक कथा की परपरा के साथ लोक-कल्याण की भावना से लिखी गयी । उसकी लोक-प्रियता को भी मवसे वडा रहस्य यही है कि इस कथा के माध्यम से ज्ञान-विज्ञान को भी लोक-तत्वो मे अभिमडित करके उन्हें लोक ग्राह्य वना दिया गया है । यही स्थिति रामचरित-मानस के छन्दो की है, चौपाई, दोहा, सोरठा, आदि सभी छन्द लोक मूलक हैं ।

ए. ए. मैकडोनल ने रामायण पर इन्साइक्लोपीडिया आफ रीलीजस एण्ड एथिक्स में जो लघु निवध दिया है उसमे वताया है कि ईसवी पूर्व चौथी शताब्दी के मध्य के लगभग रामायण का मूल अश प्रस्तुत हुआ । यह अश वाल्मीकि ने उस समय प्रचलित लोक-कहानियो का सग्रह करके और उन्हे एक व्यवस्थित कथा काव्य के रूप मे ढालकर खडा किया था । वालमीकि द्वारा प्रस्तुत अश परिवर्द्धित होकर वर्तमान आकार मे दूसरी शताब्दी ईसवी के अत तक हुआ । यही निष्कर्ष "रामकथा" नामक पुस्तक मे कामिल वुल्के महोदय ने निकाला है । इससे यह सिद्ध होता है कि यह राम-कथा वाल्मीकि से पूर्व भी लोक-वार्ता का ही अश थी । वही से उसे लेकर वाल्मीकि ने महाकाव्य का रूप प्रदान किया ।

इसी के साथ इसी निवध में राम-कथा के वौद्धिक वीजो का भी उल्लेख किया है जो इस प्रकार सक्षेप मे गिने जा सकते है ।

सीता १ खेतो मे हल से वने कूड (personified furrow)
२ जुते हुए खेत की देवी (कौशिक सूत्र १०६) वर्पा के देव की पत्नी ।

राम · इंद्र (सीता की उक्त व्याख्या के सवध से)

रावण · वृत्र

रावण पुत्र मेघनाद को रामायण मे भी "इद्रशत्रु" कहा गया है ।
इद्रशत्रु वेदो में वृत्र को कहा गया है ।

सीता हरण दानवो द्वारा गायो का हरण ।

हनुमान अथवा मारुतिपुत्र इद्र के सहायक मरुतो का अवशेप ।

त्रिजटा सरमा नामक कुत्ता जिसने इद्र के लिए गायो का पता लगाने के लिए रसा नदी पार की थी।

वेवर ने यह सिद्धान्त प्रस्तुत किया था कि रामायण पर यूनानी प्रभाव है, क्योकि रावण द्वारा सीताहरण श्रौर राम द्वारा उद्धार हेलन के हरण श्रौर ट्रोजन युद्ध के तुल्य है। राम ने जैसे सीता के लिए धनुष भग किया वैसे ही यूलिसीज ने भी किया। मैकडोनल ने इस तुलना से यूनानी प्रभाव को स्वीकार नही किया, क्योकि ऐसी घटनाए श्रन्य साहित्यो मे भी हैं श्रौर स्वतत्र-रूपेण इनका उदय होसकता है। इसी प्रकार जै को वी के वैदिक मूल के सिद्धान्त को भी नही माना जा सकता। श्लेप श्रौर साम्य से यह भ्रम हुश्रा है जो यथार्थ नही, राम-कथा लोक-कथा ही है।

राम-कथा सम्बन्धी टिप्पणी

ए० ए० मैकडानल ने राम-कथा के सबध मे लिखा है

लेकिन इनमे परस्पर अतर भी है। महाभारत श्रपने साहित्यिक पहलू से पुराना[१] कहे जाने वाले प्राचीन लोकप्रिय श्रवदान कहानियो का प्रतिनिधित्व करता है, जवकि रामायण उस वर्ग की रचना है जिसे काव्य कहते हैं, श्रथवा प्रयत्नज (Artificial) महाकाव्य (Epic) जिसमे कथा के रूप को श्रधिक महत्व दिया जाता है। श्रौर जिसमे काव्य शोभाकर (श्रलकार) प्रचुरता से उपयोग मे श्राते हैं। महाभारत तो कितने ही स्वतत्र श्रशो का समूह है, जो महाकाव्य के गूदे के ततु को मात्र शिथिलता से जोडे हुए है, श्रौर वह गूदा समस्त रचना का कठिनाई से पाचवा भाग होगा। श्रत. इसका महाकाव्य होना मुश्किल ही है। यह तो नीति-शिक्षा का विश्व-कोष है, उसके रचयिताश्रो का पता नही श्रौर उसको श्रतिम व्यवस्था देने वाले का नाम भी परपरागत 'व्यास' विन्यस्त करने वाला (Arranger) है, जो स्पष्टत ही मिथ्याश्रित (Mythical) है। रामायण यथार्थतः रोमाण्टिक रूप का

१—"द पुराण इडैक्स" खड १ भूमिका पृष्ठ viii पर वी० श्रार० रामचन्द्र दीक्षितार ने पुराण की व्युत्पत्ति मे यह चरण दिया है। "यस्मात् पुरा हि श्रनति इदम् पुराणम्" (Verse 203 Chap I) वायुपुराण। वायुपुराण में एक श्रौर श्लोक है प्रथमम् सर्वशास्त्राणाम् पुराणम् ब्रह्मणा स्मृतम्। श्रनन्ताम् च वक्त्तेभ्यो वेदातस्य विनिस्सृत"। वायु पु०। ६०। मत्स्य पुराण का इसकी पुष्टि मे श्रौर उल्लेख करके उन्होंने वताया है कि पुराण वेदो से पूर्व था। तव एक था वाद मे उससे कई पुराण बने। वेदो में जो जहा तहा पुराण कथाश्रो की श्रोर सकेत है, वह भी पुराणो की वेदो से प्राचीनता सिद्ध करता है। पुराण भौतिक परपरा से बहुत प्राचीन काल से चला श्रा रहा था, श्रत यह सिद्ध है कि यह लोक-वार्ता के रूप मे प्रचलित था।

महाकाव्य है जिसमे एक निश्चित योजना और प्रयत्न मिलता है और समस्त ग्रन्थ वाल्मीकि नाम के एक रचयिता द्वारा प्रस्तुत किया गया है ।

आगे चलकर ये लिखते हैं :

पाली "त्रिपिटक" नाम के प्राचीनतम बौद्ध साहित्य मे रामायण का किंचित भी उल्लेख नही है । यह सच है कि राजा दशरथ सबधी एक जातक मे बारह पद्य हैं । जिनमे राम अपने पिता दशरथ की मृत्यु के सबध मे अपने भाइयो को सान्त्वना देते हैं, और इनमें से एक पद्य सचमुच हमारी "रामायण" मे आता है । किबहुना इस तथ्य से कि एक ही पद्य दोनो मे समान है यह सकेत मिलता है कि जातक के पद्य महाकाव्य से नहीं लिये गये । वे किसी अन्य पुरानी राम-कथा से लिये गये हैं । क्योंकि जातक मे राजा का और उसके अनुयायियो का नाम तक नहीं है, हालाकि वे कथा-कहानियो (Fabulous-Matter) से महत्वपूर्ण हैं, और उन्होने दैत्यो और राक्षसो के सबध मे भी बहुत कुछ कहा है ।

और तब कितनी ही अन्य विचारणा के उपरान्त वे आगे कहते हैं

"समस्त उपलब्ध सामग्री के पर्यवेक्षण से इन पक्तियों के लेखक को यही विदित होता है कि वे यही बताती हैं कि रामायण का मूल भाग चौथी शताब्दी ईस्वी पूर्व के मध्य मे प्रस्तुत हुआ, जब राम के सबध मे प्रचलित लोकप्रिय (Popular) कहानियो को एकत्र करके कवि वाल्मीकि ने एक व्यवस्थित 'महाकाव्य' गूथ कर खडा किया ।"

रामायण की वस्तु का विश्लेषण करते हुए उन्होने लिखा है

"रामायण की कथा मे जैसी कि वह मूल ग्रन्थो मे लिखी गयी है, दो खड स्पष्ट दिखायी पडते हैं । पहले मानव जीवन का सामान्य वृत्त है, गाथा तत्वो (Mythological Elements) की मिलावट से सर्वथा शून्य । इसका आरम्भ अयोध्या के दरबार मे रानी के उन षड्यन्त्रो से होता है जो उसने अपने पुत्र को गद्दी दिलाने के लिए किये । इसमे इनसे होने वाले परिणामो का वर्णन है । पिता राजा दशरथ की मृत्यु के उपरान्त राम के भाई भरत के अयोध्या मे लौट आने पर ही यदि यह काव्य समाप्त हो जाता तो इसे ऐतिहासिक घटनाओ पर आश्रित एक महाकाव्य मान लिया जाता । दूसरी ओर दूसरा खड गाथाओ (Myths) पर खडा हुआ है, जिसमें चमत्कारी और ऊहात्मक (Fantastic) साहस कृत्यो का वर्णन भरा पडा है ।

२

कीथ ने भी "द माइथालाजी आव आल रेसेज । खड ६ । (१९१७) में धर्मगाथाओ पर लिखते हुए यही बातें लिखी हैं । दोनो ने राम सीता की कहानी

के लिए एच० जेकोवी द्वारा दी गयी व्याख्या स्वीकार कर ली है, जिसमें राम कथा के मूलो को वैदिक मूल से सवधित दिखाया गया है, जिसे यो समझा जा सकता है ।

वैदिक	रामायण
सीता—खेतो में हल चलाने से वने कूड	सीता—यहाँ इसे पृथ्वी से ही उत्पन्न माना गया है।
सीता—जुते खेतो की अधिष्ठात्री अद्भुत सुन्दरी और इन्द्र अथवा पर्जन्य की पुत्री । कौशिक सूत्र के अद्भुताध्याय मे तथा पारस्कर ग्रह्यसूत्र में ।	
इन्द्र—सीतापति	राम
परिणस द्वारा गायो का हरण	सीता-हरण
वृत्र—(अपहर्ता) चोर इद्रशत्रु	रावण—क्योकि रावण का पुत्र इद्रजीत कहाया इन्द्र का शत्रु ।
वृत्र गुफा मे रहता है ।	कुभकर्ण रावण का भाई गुफा मे रहता है ।
वृत्र वध में इद्र के सहायक 'मरुत'	रावण वध मे राम के सहायक मारुतपुत्र हनुमान
सरमा की यात्रा । रसा के पार जाकर परिणस द्वारा अपहृत मेघो का पता लगाना ।	हनुमान की सीता की खोज में लका यात्रा ।

इस प्रकार कृषि के रूपक के साथ वैदिक देव-कथा रूपान्तरित होकर रामकथा वनी । पर इतने से तो पूर्ण व्याख्या नही होनी । 'सीता' नाम तो वेदो से आया । पर यह राम ।

तव कीथ लिखते हैं

राम इन्द्र के चरित्र से मिलते-जुलते चरित्रवाला कोई स्थानीय देवता होगा जो प्रधानत कृषि-रत समाज के विचारो का प्रतिनिधित्व करता होगा, गोचारणी (pastoral) समाज का नही ।

३

इन विद्वानो के इन निष्कर्षों से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि 'रामकथा'

लोक-कथा-कहानियो के रूप में प्रचलित थी, जिसे वाल्मीकि ने सग्रह करके व्यवस्थित रूप दिया, और रामायण नाम रखा। वाल्मीकिजी द्वारा प्रस्तुत इस रूप में भी आदि और अत में कितने ही जोट लगाये गये और यह वृद्धि स्वभाव से लोकवार्ता से ली गयी सामग्री से की गयी प्रतीत होती है। साहित्य में वाल्मीकिजी द्वारा ग्रहण किये जाने के उपरान्त भी यह वृद्धि चलती रही। और समय-समय पर लोक-प्रवाह और लोकवार्ता के परिणामस्वरूप यह अपना रूप जहाँ तहाँ कुछ बदलती रही। तुलसी में हमे इसका अतिम रूप दिखायी पडता है।

वैष्णव भक्तों की जीवनी-साहित्य

सिद्धो और सतो मे जिस चमत्कार और शक्ति के दर्शन होते हैं उसे हम यथास्थान देख चुके है। सिद्धो मे वह शक्ति सिद्धि की शक्ति थी। सतो मे इसका रूप द्वैध होगया। उनकी निजी शक्ति और सिद्धि का चमत्कार भी मिलता है, तथा उनके लिए ईश्वर या गुरु द्वारा किये गये चमत्कारो का भी वर्णन मिलता है। भक्तो मे मी यह परम्परा चली आयी। पर जैसा स्वाभाविक है, यहाँ भक्तो के निजी चमत्कार कम, उनके लिए किये गये चमत्कार अधिक। भक्तो के लिए किये चमत्कारो का आदर्श रूप बहुत पहले ही प्रह्लाद-कथा मे प्रस्तुत हो चुका था। इस कथा द्वारा भक्त चमत्कार-कथाओ का एक रूप ही सामने आता है . १—भक्त पर अत्याचार किये जाते हैं, (२) वे अत्याचार भक्त पर नही पड़ते, उस तक पहुँचते-पहुँचते उनका प्रभाव उलटा सुखप्रद होजाता है। अन्त मे (३) अत्याचार करने वाला नष्ट हो जाता है, या झुक जाता है और भक्त का महत्व स्वीकार करता है।

दूसरा रूप इस कथा का वह होता है जिसमे १—भक्त अपने भगवान की पूजा-उपासना मे या सत्सग मे या भक्तो के सत्कार मे सलग्न है, और उसे ध्यान नहीं रहता कि इसी समय उसे किसी दूसरे का कोई आवश्यक कार्य करना है। २—भगवान स्वय भक्त का रूप धारण कर उस काम को कर आते हैं, जिससे उसका अभाव नही खटकता।

तीसरा रूप—सिद्ध परम्परा का अवशेष होता है। भक्त ने कुछ कहा, वह

सत्य होगया। उसके वचनो का यह निर्वाह स्वय भगवान अपने वचन की भाँति करता है। **चौथा रूप** वह है जिसमे भक्त स्वय भगवान के साथ रहता-खेलता दिखायी पडता है। भगवान स्वय उसके समक्ष हो, पास हो, भक्त स्वय भगवान के चमत्कार दिखाता हो।

यहाँ पर हम इस काल की कुछ भक्त-कथाओ से ऐसे ही चमत्कारपूर्ण अद्भुत वृत्त दे रहे हैं।

१—++ ऐसी रीत सो **श्री आचार्य महाप्रभु** कथा कहत हुते। सो ऐसे मे एक वरसात की घटा उठी। सो सव आकाश घटा सो छाय गयो सो जव वू द आयवे लगी। तव श्री आचार्य जी महाप्रभु श्री मुखते वरजें। ता समे श्री आचार्यजी महाप्रभू विराजे हुते। तिनसो दूरि दूरि चार्‍यो ओर आडी मेह वरसै। और वीच मे एक चक्र सौ रहि गयौ। तहाँ एक वू दहू न परी। ऐसे वरसा वौहौत भई। तव गोविंद दुवे नें श्री आचार्य जी महाप्रभुन सो वीनती करी। जो हमतो आपको साक्षात् पूरण पुरुषोत्तम जानत हैं।××

२—++इस्लाम धर्म के गुरू मुल्ला लोग वडे मान्त्रिक तान्त्रिक थे। वादशाहो को प्रसन्न करने के लिए उन्होने अपने पैगम्बरो से मन्त्र तन्त्र सिद्ध किये थे। **श्रीवल्लभाचार्य** महाप्रभू के समय मे वादशाहो के तान्त्रिक मुल्लाओ ने एक यंत्र सिद्ध करके, श्री मथुरा जी के मुख्य तीर्थ स्थान विश्राम घाट पर लटका दिया और उस पर पहरा बैठाया कि कोई उसको तोड न सके। उस यंत्र का प्रभाव था कि उसके नीचे से जो हिन्दु जाति का निकले उसकी चोटी गिर जावे और दाढी निकल आवे उस समय जगन्नियता परम दयालु अन्तर्यामी श्री वल्लभाधीश प्रभू पधारे और अपने तीर्थ पुरोहित श्री उजागर जी चौवे को तीर्थ पूजन स्नान करवाने की आज्ञा दी। श्री पुरोहित जी चौवे ने यंत्र की सव घटना का वृतात कह सुनाया। आप अन्तर्यामी से क्या यह घटना छिपी थी ?

++आप स्वय, और आपके साथ वहुत सा प्रजामडल, विश्राम घाट तीर्थ स्नान को श्री यमुना जी के घाट पर पधारे। आपके श्री अतुल तेज प्रताप से उस यंत्र का किसी पर कुछ प्रभाव नही पडा। ++आप श्री ने कृपा करके अपने कर कमलो से एक यन्त्र लिखकर अपने परम कृपापात्र महानुभाव श्री वासुदेवदासजी छकडा और एक दूसरे कृपापात्र सेवक कृष्णदास मेघन दोनो को आपने उस यंत्र को दिल्ली शहर के सदर दरवाजे पर लटकाने की आज्ञा दी। आप श्री ने दो कृपापात्र सेवको को यह भी आज्ञा दी कि वादशाह तुमको वुलाकर यन्त्र हटाने को कहे तव उनसे कहना कि वादशाहो का यह धर्म नही है कि किसी के धर्म मे हस्तक्षेप करे। आपके मुल्ला लोगो ने हमारे तीर्थ स्थान पर यन्त्र लटकाया है। उसके विपरीत हमारे गुरुदेव श्री वल्लभाचार्य महा-

प्रभु ने उनके यन्त्र के प्रतिकारार्थ हम लोगो को यन्त्र यहाँ लगाने की आज्ञा प्रदान की है। तदनुसार हमने लगाया है। आप मथुरा के सूवे को आज्ञा दें, कि वह जो हमारे धर्म के विपरीत यन्त्र लटकाया है उसको तुरन्त हटा लेवें। उक्त यन्त्र का यह प्रभाव था कि जो मुसलमान उसके नीचे से जाये उसकी दाढी गिर जाये और चोटी निकल आये। आचार्य यत्र का प्रतिकार करने की किसी की सामर्थ नही हुई। दिल्ली में हाहाकार मच गया। वादशाह को खवर हुई तव उन श्री महाप्रभु जी के सेवको को वुलवाया। उन ने वादशाह से निवेदन किया। उस से वादशाह ने मथुरा के सूवे को विश्राम घाट का यन्त्र हटाने की आज्ञा दी। तदनुसार जव वह यन्त्र हटा दिया गया तव आप श्री का यन्त्र हटा लिया गया। ++

+ + +

३—योगी प्रकाशानन्द जी ने वर्षों की साधना के उपरान्त अलौकिक सिद्धियाँ उपलब्ध की। हिमालय की कन्दरा छोडकर व्रज मे आये, अपनी शक्ति की परीक्षा करने। सोचा, स्वामी हरिदास जी ही अनन्य शिरोमणि है। इनकी परीक्षा ही करनी चाहिए। स्वामीजी, मोर, वन्दरो को प्रसाद वितरण कर रहे थे। प्रकाशानन्द भी मयूर वनकर चुगने लगे। भला निकुंजेश्वरी के वृन्दावन मे किसकी सिद्धि चल सकती है! स्वामीजी ने तत्काल ही पहिचान कर कहा- 'योगिराज! तुम्हारे भाग्य खुल गये जो दिव्य-वृन्दावन मे आगए। यह तो कुंजविहारी की असीम कृपा का ही फल है।' सिद्धि की पोल खुल जाने से प्रकाशानन्द लजित हो गए। ++

४—दयाराम नामक एक भक्त को भगवत्कृपा से पारस-पत्थर प्राप्त हो गया। स्वामी जी की कीर्ति सुनता सुनता वह वृन्दावन आया। 'ऐसे सन्त शिरोमणि को क्यो न मैं यह अप्राप्य वस्तु भेट करदूँ, जिससे श्री वाकेविहारी की सेवा होती रहे!' दयाराम मन मे सोचता आ रहा था।

जव स्वामी जी की सेवा मे उपस्थित हुआ तो पारस भेंट करने से पहले ही उन्होने आज्ञा दी—'जाओ, इसे श्री यमुनाजी के अर्पण कर आओ। और स्नान करके पवित्र होकर आओ।'

मन मार कर दयाराम पारस पत्थर को यमुना मे फेंक आया। पर उसके प्रति उसका मोह वना ही रहा। स्वामी जी सव जान गये। एक दिन जव दयाराम स्नान करने जा रहा था तो आज्ञा दी—'दयाराम! आज श्री यमुना जी मे से थोडी सी रज हमारे लिए लेते आना।'

स्नान के उपरान्त स्वामी जी के आज्ञानुसार रज ले जाने के लिए दयाराम

ने यमुना मे हाथ डाला तो असख्य पारस पत्थर हाथ मे आगए। तब दयाराम की अन्तर्दृष्टि खुल गयी।+ +

५—+ +अन्त मे बघेला नरेश पर न रह गया। हाथ जोड कर बोला—'महाराज! मिट्टी के पात्र तो एकबार काम मे लेने के उपरान्त अशुद्ध मान लिए जाते हैं। मुझ सरीखे तुच्छ सेवको को भी आपकी कृपा से कोई कमी नही। आज्ञा करें तो श्री बिहारी जी की सेवा के लिए स्वर्ण-पात्र भिजवा दूँ?'

श्री बिहारी जी का भोग लग रहा था। स्वामी जी ने (बघेला नरेश) राजाराम को दर्शन कर आने की आज्ञा दी। राजा ने जाकर देखा तो आश्चर्य मे रह गया। मिट्टी के स्थान पर सोने के पात्र सजे हुए थे। हैरान सा होकर वह लौटा तो स्वामी जी ने हँसकर कहा—'राजन्! श्रीधाम की रज स्वर्ण से भी अधिक पवित्र और बहुमूल्य है।'

६—एक दिन पुलिन मे विराजे हुए स्वामी जी कुजकेलि मे मग्न हो रहे थे। किसी एक भक्त ने बहुमूल्य इत्र लाकर बिहारी जी की सेवा के लिए स्वामी जी को भेट किया। अचानक ही स्वामी जी ने शीशी उठाकर बालू मे औंधा दी। बेचारे भक्त को बड़ा दुःख हुआ। लाया तो था श्री बिहारी जी के अङ्ग पर लगाने को और फला दिया बालू मे। करता क्या? मन मार कर रह गया। उसे उदास देखकर स्वामी जी ने शिष्य के साथ श्री बिहारी के दर्शनो को भेजा। वहाँ देखा तो श्री बाँकेबिहारी जी की सारी पोशाक उसी इत्र मे तर हैं और सुगन्ध से सारा वातावरण महक रहा है। प्रसन्नता के मारे वह भक्त गद्-गद् हो गया, पर उसे आश्चर्य भी बहुत हुआ। ध्यान भग होने पर स्वामी जी बोले—'आज प्रिया-प्रियतम मे फाग मची थी। श्री किशोरी जी के कर मे तो पिचकारी थी पर श्याम के हाथ रीते थे। मैंने इत्र की शीशी ही उन्हे पकड़ा दी। समय पर अच्छा काम मे आया।' सुनकर सेवक कृतार्थ हो गया।

+ + +

७—'भक्तनिके हित सुत विष दियौ उभैबाई कथा सरसाइ खोलिकै बताइये। भयो एक भूप ताके भक्तहू अनेक आवें आयो भक्त भूप तासो लगनि लगाइये। नितही चलत तोपै चलन न देत राजा वितयो वरष मास काहे भोर आइये। गई आस टूटि तन छूटि वेकी रीत भई लई बात पूंछी रानी सबै लै जनाइये।२०८। दियो सुत विष रानी नृप जीवे नाहि सत हैं स्वतन्त्र सोई इन्हे कैसे राखिये। भये विनभोर वधू सोर करि रोइ उठी भोइ गई रावलमे सुनी साधु भाखिये। खोलि डारी कटिप भवन मे प्रवेश कियो लियो देखि बालक को

नीलतनु साखिये । पूछ्यों भूप तियासो जु साच कहि कियो कहा कही तुम चल्यो चाहो नैन अभिलाखिये ।४०। छाती खोलि रोये क्योंहू बोलिहू न आवे मुख भयो भारी भक्ति रीति कछू । न्यारिये जानीहू न जाति पाति जाको सो विचार कहा अहो रससागर सो सदा उर धारिये । हरिगुण गाय साखि संतनि बताय दियो बालक जिवाय लागी ठौर वह प्यारिये । सगकै पठाय दिये रहे जे वे भीजे हिये बोले आप जाऊँ जौन मारिकै विडारिये ।१०७।+ +

\+ \+ \+

८—'निष्किचन इकदास तासुके हरिजन आये ।। विदित बटोही रूप भये हरि आप लुटाये ।। साखि देनको श्याम स्वयं प्रभु आप पधारे ।। रामदास के सदन राय रणछोर सिधारे ।। आयुधछातन अनुगके वलि वधन अपु बपु घरे ।। भक्तनि सग भगवान नित ज्यो गउ वछगोहन फिरे ।।५३।।

\+ \+ \+

९—"वीच दिये रघुनाथ भक्तसग ठगिया लागे ।। निर्जन वनमे जाय दुष्टक्रम कियो अभागे ।। वीच दिये सो कहाँ राम कहि नारि पुकारी ।। आये शारग पाणि शोकसागरते तारी ।। द्रुति दुष्ट किये निर्जीव सव दासप्राण-सज्ञा धरी ।। और युगनेत कमलनयन, कलियुग वहुत कृपा करी ।।५५।।

१०—विप्र हरिभक्त करि गौनी चल्यौ तिया सग जाके दूनो रग ताकी बात ले जनाइये ।। मन ठग मिले द्विज पूंछे अहो कहाँ जात जहाँ तुव जावो यामे मन न परयाइये ।। पथ को छुटाय चाहै वनमे लिवाय जाय कहूँ अति सूधो पेंडो उरमे न आइये ।। वोले वीच रामतऊ हिये नेकु धकधकी कही उही भाम श्यामनाम कहा पाइये ।।२५३।। चले लागि सग अव रग को कुरग करौ तिया पर रीझे भक्ति साँची इन जानी है ।। गये वनमध्य ठग लोभलगि मार्‍यो विप्र क्षिप्र लेके चले वधू अति बिलखानी है ।। देखे फिरि फिरि पाछे कहै कहा देखै मार्‍यौ तब तो उचारयो देखो वाहि वीच प्रानी है । आये राम प्यारे सब दुष्ट मारि डारे साधु प्राण दै उवारे हित रति यो बखानी है ।।२५४।।

\+ \+ \+

११— + + +खायो विप ज्यायो पुनि फेरिकै पठायो सब आयो सो समाज द्वारवती सुखसार है ।। + + +चले मग दूसरे सु तामें एक सिंह रहे आयो बास लेत शिष्य कियो समझायो है ।। + +

\+ \+ \+

१२—घर आये हरिदास तिनहिं गोधूम खवाये ।। तात मात डर थोथे खेत लाँगूल वुवाये ।। आसपास कृषिकार खेत की करत वड़ाई ।। भक्त भजे की

रीति प्रगट परतीत जु पाई ।। अचरज मानत जगत मे कहा निपज्यो कहा उन-
घायौ ।। धन्य धनाके भजन को बिनहि बीज अंकुर भयो ।। ६२ ।। +

+ + +

१३—सदृश गोपिका प्रेम प्रगट कलियुगहि दिखायो ।। निरअकुश अति
निडर रसिक यश रसना गायौ ।। दुष्टनि दोष विचार मृत्यु को उद्यम कीयो ।।
वार न वाको भयो गरल अमृत ज्यों पीयो ।। भक्तिन गाय बजाय कें, नाहृतं
नाहिं न लजी ।। लोकलाज कुल श्रृंखला, तजि मीरा गिरिधर भजी ।।११५।।

+ + +

१४—++कलि कुटिल जीव निस्तारहित, वाल्मीकि तुलसी भयो
।।१२६।।

+ + +

++ कियो तन विप्र त्याग लागी चली सग तिया दूरि ही ते देखि
किये चरण प्रणाम है ।। वोले यो सुहागवती भन्यो पति होहि सती अब तौ
निकसि गई ज्याऊ सेवो राम है ।। बोलिके कुटुम्ब कही जोपै भक्ति करो नही
गही तब वात जीव दियो अभिराम है ।। भये सब साधु व्याधि मेटि ले विमुखता
की जाकी वास रहे तौ न सूझे स्यामधाम है ।।५१४।। + + देखें राम कैसो
कही कैद किये हिये हूजिये कृपाल हनुमानजू दयाल हो ।। ताही समै फैलि
गये कोटि कोटि कपि नये लोचें तन खैचें चीर भयो यो विहाल हो ।। फोरे
कोट मारे चोट किये टारें लोट पोट लीजै कौन ओट जाय मानो प्रलैकाल हो ।।
भई तब आँखें दुखसागरको चाखें अब वेई हमे राखें भाखें वारो धन माल हो ।।
५१६।। आदि ।

भक्तो और सन्तो के सम्बन्ध मे ऐसे अद्भुत चमत्कारक वर्णन भक्तो
के जीवनी साहित्य मे और वार्ता-साहित्य मे भरे पडे हैं। ऐसे वर्णन केवल
भारत मे ही नहीं मिलते। विश्व के प्राय समस्त धर्मों के सन्तो और भक्तो
के चरित्र ऐसे ही चमत्मकारो से पूर्ण हैं।

———

छठवाँ अध्याय

काव्यरूपों में लोक-तत्वों की प्रतिष्ठा

प्रत्येक उच्च शिष्ट, मनीषी, कलात्मक अभिव्यक्ति का मूल लोक-वार्ता में होता है, यह एक अखंड सत्य है। यह वैज्ञानिक प्रणाली से किये गये अनुसंधानों से निर्विवाद सिद्ध हो चुका है। इस लोकाभिव्यक्ति को हिंदी अथवा भारतीय दृष्टि से 'प्राकृत-वाणी' अथवा 'प्राकृत-अभिव्यक्ति' कह सकते हैं। संस्कृत का मूल 'प्राकृत' है और यह 'प्राकृत' विशाल नद की भाँति पूर्व वैदिक युग से अबतक निरन्तर प्रवाहित है। इसी प्राकृत धारा के ऐतिहासिक क्रम से कितने ही नाम रखे गये हैं। इस प्राकृतों में से ऐतिहासिक क्रम से साहित्यिक भाषा का निर्माण हुआ। हिन्दी भाषा के किसी भी प्रामाणिक इतिहास से इस तत्व को हृदयगम किया जा सकता है। जैसे

१—मूल प्राकृत
२—वैदिक प्राकृत
३—पाली—प्रथम प्राकृत
४—प्राकृत—बौद्ध प्राकृत—जैन-प्राकृत । जातकों तथा जैन पुराणों तथा काव्य भी प्राकृत ।
५—अपभ्रंश—साहित्यिक अपभ्रंश

६—पुरानी हिन्दी	तुलसी-केशव की
७—भापा हिन्दी	विहारी की भापा
८—जनपदीय हिन्दी —	उच्च हिन्दी खडी वोली ।

वस्तुत समस्त अभिव्यक्ति की सर्वत्र दो ही प्रमुख प्रवृतियाँ होती हैं वैदिक तथा लौकिक अथवा 'सस्कृत तथा प्राकृत'। 'सस्कृत' शब्द ही 'मस्कार' से युक्त का अर्थ देता है। एक प्रकृति प्रत्येक अभिव्यक्ति की मस्कृत रूप देने की सर्वत्र विद्यमान है, इसी प्रकृति से किसी भी अभिव्यक्ति का एक आदर्श सम्वन्ध निश्चित किया जाता है, उसके लिए शास्त्र रचना होती है।

दूसरी प्रकृति लौकिक अथवा प्राकृत होती है, इसका सम्वन्ध सर्वतत्र स्वतत्र मानव की अभिव्यक्ति की स्वाभाविक धारा से होता है। ये दोनो प्रवृतियाँ एक साथ चलती मिलती है। किन्तु दोनों की प्रकृति में वहुत अन्तर है, और वह अन्तर सहज अन्तर है। सस्कृत प्रवृत्ति का सम्वन्ध मनुष्य की सौन्दर्य, विपयक कल्पना वृति से है। वह प्राकृत अभिव्यक्तियो से सुरुचि और सौन्दर्य के तत्त्वो को चुन लेता है। उन चुने हुए अशो के आधार पर सुरुचि और सौन्दर्य के एक आदर्श अथवा निरपेक्ष स्वरूप की कल्पना करता है। उसे प्राप्त करने के सामान्य और विशेप नियमो का अनुसधान करता है। निश्चय ही इस सुरुचि सौन्दर्य-मस्कार का सम्वन्ध शिक्षा और शिक्षित मेधाओ से ही होगा। शिक्षा और शिक्षित मेवा के विकास का क्रम पहाड की चढाई के सदृश होता है। सामान्य लोक भूमि से पहाड ऊँचा होता जाता है और यह ऊँचाई आकाश मे एक सीमा तक उठती हुई शिखर-विन्दु चोटी तक पहुँचती है। उसके उपरान्त फिर उतराई है जो पुन सामान्य भूमि तक पहुँचती है और कभी-कभी उससे भी नीचे गर्त मे उतर जाती है। अत सस्कृत प्रवृति की प्रकृतित दो नियमानुसार श्रेणियाँ होती हैं और प्रत्येक श्रेणी का एक शिखर होता है। किन्तु प्राकृत प्रकृति सामान्य भूमि के सदृश है, जो निरतर एक धरातल पर विद्यमान किन्तु प्रवहमान रहती है। अत इस अभिव्यक्ति को सामान्य सम-भूमि पर प्रवाहित नद माना जा सकता है, जिसमे विशाल लहरें उठती हैं, सस्कृत साहित्य की तरह। इसीलिए मूल प्राकृत से आज हिन्दी तक वह प्राकृत धारा निरतर प्रवाहमान है भाषा की दृष्टि से ही नही, समग्र अभि-व्यक्ति की दृष्टि से, जिसमे भावो का रूप, भावो का कोटिक्रम, विपय और कलातत्व सभी सम्मिलित रहते हैं। फलत हिन्दी के प्रत्येक मौलिक रूप का इसी प्राकृत धारा से जन्म होगा।

सस्कृत और प्राकृत धारा मे एक और सहज अन्तर प्रतीत होता है। सस्कृत धारा सदा पीछे की ओर देखती है। प्राकृत धारा सदा आगे की

और प्रत्येक देश में प्रत्येक भौगोलिक महान् इकाई की भाषा के क्षेत्र मे एक ऐसा शास्त्रीय मेधा का युग आता है, जिसमे प्रत्येक अभिव्यक्ति का चरम सस्कार होगया विदित होता है। इस युग मे जहाँ कलात्मक अभिव्यक्तियाँ शिखर पर पहुँच जाती हैं, वही शास्त्रीय विधान भी चरम उत्कर्ष पा लेते हैं। एक प्रकार से कला और शास्त्र दोनो मे इस युग की मौलिक मेधा का सर्वतो भावेन उत्कर्ष होता है। बस यह उपलब्धि आदर्श बन जाती है। बाद के युग के लोग अपनी कृतियों को प्रामाणिक बनाने के लिए पिछले युग के कृतित्व और शास्त्र को देखा करते है, उनसे अपनी रचनाओ को मापने लगते हैं। उस युग के कृतित्व और शास्त्रीयता का आतक ऐसा छाया रहता है कि सस्कृत प्रवृति के लोग यह समझने लगते है, नही, विश्वास ही करते हैं कि जो पूर्वजो ने प्राप्त किया, वह आगे असभव है। वे पूर्वजो की कृतियो मे देवत्व, आदर्श परिमिति और दिव्यता देखते हैं, अपने कृतित्व को वे उनके अनुकरण में ही सफल समझते है। इसी को वे आस्तिकता भी मानते हैं।

प्राकृत धारा स्वाभाविक रूप से आगे बढती जाती है। उत्तुंग लहरें उसमे उठें और किसी दैवी शाप से या बरदान से वे उठी लहरें पर्वत-शिखर की तरह स्थिर होकर रह जायें, तो भी प्राकृत धारा निरतर वहती चलती है: वैसी जड लहरो को पीछे छोडती हुई वह आगे बढती जाती है, यह प्राकृत धारा वर्तमान मे पनपती है और आगे की हवाओं को भी आने से नही रोकती। इसमे नये नये निर्माण होते चलते हैं जिन्हे फिर कोई सस्कार-प्रेमी मेधावी अपनी तपस्या अथवा साधना से बहुत ऊंचा उठाकर जड बना देता है। अत प्रत्येक युग की सस्कृत प्रवृत्ति अपनी प्रामाणिकता के लिए शास्त्रो को देखती है। उसकी अनुकूलता पाती है। उदाहरणार्थ "केशव" सस्कृत प्रवृत्ति का अच्छा प्रतिनिधित्व करते हैं।

उधर तुलसी मे लौकिक अथवा प्राकृत प्रवृत्ति है। दोनो की अभिव्यक्ति के माध्यमो की तुलना कीजिये:

सस्कृत प्रवृत्ति केशव	प्राकृत प्रवृत्ति तुलसी
१—बाल्मीकि की रामकथा का अनुकरण किया	२—लोक धारा से प्राप्त रामकथा को ग्रहण किया तभी तुलसी ने अपनी रामकथा के लिए यह लिखा: कीन्हि प्रश्न ऐहि भाँति भवानी जेहि विधि संकर कहा बखानी

मो मव हेतु कहव मैं गाई
कथा प्रवव विचित्र वनाई
जेहि यह कथा सुनी नहि होई
जनि आचरजु करै सुनि सोई
कथा अलौकिक सुनहि जे ग्यानी
नही आचरजु करहि अस जानी
रामकथा के मित जग नाहीं
असि प्रतीति तिन्ह के मनमाही
नाना भाँति राम अवतारा
रामायन मत कोटि अपारा
कलप भेद हरि चरित सुहाए
भाँति अनेक मुनीसन गाए
करिम न ममय अम उर आनी
सुनिअ कथा मादर रति मानी
राम अनंत अनंत गुरु,
अमित कथा विस्तार
सुनि आचरजु न मानिहहि
जिन्ह के विमल विचार

तुलसी ने वह कथा कही जो (गुरु से) सुनी।

२—केशव ने रामचन्द्रिका मे पिंगल की दृष्टि से सस्कृत वृत्तो को ही महत्व दिया है उन्ही मे रामचन्द्रिका लिखी है। उनमे वृत्तो का वहुत अधिक वैविध्य है जो उनके शास्त्रीयज्ञान को सिद्ध करता है।	२—तुलसी ने समस्त रामचरित मानस चौपाई, दोहा, सोरठा, आदि कुछ गिनेचुने छन्दो मे रचा है। ये सभी छन्द मात्रिक हैं। उनमे भी शास्त्रानुकरण नही, लौकिक परिपाटी का स्वाभाविक रूप मिलता है।
३—केशव का लक्ष्य काव्य है।	३—तुलसी का लक्ष्य कथा कहना है।
४—केशव की चन्द्रिका सर्ग-वद्ध है।	४—तुलसी की रचना कांड-वद्ध है।
५—सस्कृत भापा के चमत्कारो से युक्त	५—स्वाभाविक सतवाणी से युक्त

सत वाणी प्राकृत परम्परा का वह रूप है जो विविध प्रभावो का परिणाम होती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी मे एक "सधुक्कडी" भाषा के रूप

का अन्वेषण किया था। कबीर को सधुक्कडी भाषा का प्रमाण माना जा सकता है। पर यह सधुक्कडी भाषा प्रकृत रूप मे प्राकृत के साथ सदा विद्यमान रही है। वेदो मे इसके प्रमाण हैं। पाली. प्राकृत और अपभ्र श इससे परिपूर्ण है। विविध विद्वान ऐसी सधुक्कडी भाषा पर विचार करते समय भ्रम मे पड जाते है और अपनी रुचि और प्रवृति के अनुसार उस भापा का नामकरण करते हैं। वैदिक भाषा मे सस्कृत और प्राकृत तत्वो का अन्वेषण हो ही चुका है। ये दोनो तत्व साथ मिलते हैं। बुद्ध की भापा और अशोक के शिलालेखो की भाषा मे शौरसेनी-महाराष्ट्री-मागधी अथवा अर्द्धमागधी के लक्षण अलग-अलग खोजे गये हैं। सिद्धो मे से किसी मे बगला का मूल, किसी मे मैथिली का मूल, किसी मे भोजपुरी का मूल, किसी मे पश्चिमी का मूल परिलक्षित हुआ है। जिससे कोई उन्हे बगाली, कोई मैथिली, कोई हिन्दी का मानते हैं और खीचातानी रहती है। नाथो की रचनाओ मे, विद्यापति और व्रजबुली मे, वैसे ही सन्तो मे यह प्रवृत्ति है। इसी को शास्त्रो ने भी आगे चलकर प्रामाणिक मान लिया और प्रत्येक काव्य के लिए व्रजभाषा की मुख्य पृष्ठभूमि पर षडभाषाओ से युक्त होना आदर्श माना। इस शास्त्रीय मान्यता का मूल "सतवाणी' अथवा 'सधुक्कडी' भाषा की विद्यमानता मे ही है। तुलसी ने इसी प्राकृत धारा की सतवाणी मे रामचरित मानस रचा और अपनी भणिति को भाषा-भणिति माना।

वस्तुत तुलसी लोक धारा के स्वाभाविक परिणाम थे और केशव थे सांस्कृतिक पुनरोद्धारक। अकवर के समय मे समस्त क्षेत्रो मे दोनो प्रवृत्तियो को वहुत प्रोत्साहन मिला था। सास्कृतिक पुनरोद्धारण का अकवर के राज दरवार से सीधा सम्वन्ध था। अकवर ने सस्कृत के अध्ययन और उसके ग्रन्थो के अनुवादो का प्रवल उद्योग किया था, उसी पैमाने पर अरबी और फारसी के अध्ययन का भी प्रयत्न हुआ था।

राज्य-प्रभाव से मुक्त प्राकृत अथवा लौकिक प्रवृत्तियो को प्रोत्साहित करने की अकवर की प्रणाली यह थी कि वह स्वय उन लोक पुरुषो के पास छिपकर जाता था। ऐसे स्थानो की यात्रा करके वह अपने को कृतकृत्य मानता था।

अत यह स्पष्ट है कि लोक-धारा से साहित्य के लिए केवल विषय अथवा विचार ही नही लिये जाते हैं, लोकधारा मे उत्कृष्ट नये रूपो को भी ग्रहण करना पडता है। यह वात काव्य-रूपो के विकास पर विचार करने से स्पष्ट हो जाती है। इस विकास के इतिहास को इस प्रकार समझ सकते हैं —

साहित्य के रूप

साहित्य के रूप क्यो ? साहित्य अथवा काव्य के सम्बन्ध मे यह कहा गया है कि वह 'काव्यात्मक' अनुभूति की अभिव्यक्ति है। तब इस अनुभूति को रूप वैविध्य क्यो प्राप्त होता है ?—वह 'अनुभूति' एक रूप क्यो नही ? १. वास्तविक बात यह है कि कोई भी अनुभूति अभिव्यक्ति के समय रूप तो ग्रहण करेगी ही, बिना रूप के वह अभिव्यक्त नही हो सकती । इसका क्रम यही होगा (अनुभूति) अभिव्यक्ति ' शब्द-अर्थ रूप। जिस प्रकार आत्मा चेतन प्राण शरीर (अभिव्यक्ति) प्राप्त करते हैं, तो रूप भी अनिवार्य है। काव्यात्मक अनुभूति भी बिना रूप के अभिव्यक्त नहीं हो सकती । रूप अभिव्यक्ति सहजात तत्व है। फिर यह रूप-वैविध्य ?

रूप, अभिव्यक्ति और अनुभूति का नित्य सम्बन्ध है, तो रूप के वैविध्य के साथ अभिव्यक्ति और अनुभूति का वैविध्य भी स्वीकार करना होगा। रूप-तत्व (मेटाफिजिक्स आफ फार्म। पर मौलिक विचार कहाँ किया गया है। अद्वैतवाद तो नामरूपात्मक जगत को मिथ्या मानता है । मिथ्या के अर्थ केवल यह हैं कि वह शुद्ध ब्रह्म-सत्व की भाँति नित्य नही। साहित्य मे भी काव्यात्मक अनुभूति को मूलत अद्वैत ही मानना पडेगा, और मूलतः रूप को मिथ्या। इस दार्शनिक उपपत्ति का इसके अतिरिक्त और कोई अर्थ नही कि रूप के द्वारा जिस अनुभूति की अभिव्यक्ति हो रही है, वह सार वस्तु है, वही समस्त रूपों मे समभाव से व्याप्त है, वही अनुभूति यथार्थ काव्य है—यह तभी जब हम 'रूप' को ग्रहण कर अभिव्यक्ति के माध्यम से अनुभूति से साक्षात्कार करने के लिए अग्रसर होते हैं। दूसरे शब्दो मे आलोचक या दार्शनिक के लिए। पर साहित्यकार, कवि अथवा अभिव्यक्तिकार के लिए इससे भी अधिक सत्य इस क्रम से है अनुभूति-अभिव्यक्ति-रूप । उसकी अद्वैत अनुभूति अभिव्यक्ति के उपादानो (शब्द-अर्थ-कल्पना-चित्रो) से रूप में अवतरित होती है, और बिना उसके वही कोई 'नाम' भी नही प्राप्त कर सकती, उसकी सत्ता का आभास भी नही मिल सकता। इस छवि के लिए रूप निश्चय ही सत्य है। किन्तु मौलिक प्रश्न जहाँ का तहाँ है ? यह वैविध्य कहाँ से ?

वस्तुत. विविधता तो अनुभूति के अद्वैत के विस्तार में ही निहित है—केन्द्र-बिन्दु जब अपनी अभिव्यक्ति के लिए आत्म-प्रसार करता है तो वह परिधि का निर्माण करता चलता है। परिधि देश काल को जन्म देते हुए ही उद्‌भूत होती हैं । बीज में वृक्ष, उसकी शाखाएँ, पल्लव, पुष्प तथा फल सभी समाये हुए हैं, वे बीज के विस्तार के ही परिणाम हैं। अनुभूति भी इसी प्रकार अपने अन्तरग निर्माण मे वैविध्य समा-

हित किये हुए है। इस प्राकृतिक प्रक्रिया का आश्रय न भी लेकर अनुभूति की उद्भूति पर ही ध्यान दें तो यह स्पष्ट हो जायगा कि कवि की अद्वैत अनुभूति को तो अनिवार्यत वैविध्य युक्त होना होगा। अनुभूति कवि को होती है—कवि क्या है ? शरीर—मन (माइण्ड) से उसका स्थूल पाशविक निर्माण होता है, जिस पर 'आहार-निद्रा-भय-मैथुन' की प्रवृत्तियो के कारण शेष सृष्टि से उसका साम्यवाद खडा होता है। किन्तु कवि इससे भी अधिक है। इस कुछ अधिक को उसकी प्रतिभा कह सकते हैं। यह प्रतिभा उसे अपने शरीर की स्थूल सीमाओ का उल्लघन करने को विवश करती है तब कवि क्रान्तदर्शी हो उठता है —और युग ही नही युग-युग भी उसके लिए हस्तामलकवत् हो जाता है। यहाँ वह होता है अपनी शारीरिक स्थूलता और उसकी आवश्यकताओ के साथ सामने होती हैं उसके युग की परिस्थितियाँ जिनसे रहता है उसका सघर्ष, और इन सब मे से होकर उसकी प्रतिभा उस भूमि पर जा पहुँचती है जहाँ पर वह प्रकृति (परिस्थितियाँ) और पुरुष (मानव) के परम्परा के आदि-मध्य-अत की स्थितियो और विकृतियो का दर्शन कर सकता है यही दर्शन काव्यानुभूति है। फलत उसके निर्माण का समग्र रूप यह हो जाता है कवि= शरीर+मन+प्रतिभा<युग<युग युग। इस प्रकार अनुभूति मे कवि व्यक्ति,उसकी युगीन प्रतिक्रिया और उस प्रतिक्रिया मे युग-युगीन तादात्म्य सन्निहित रहता है, तो यह अनुभूति अद्वैत होते हुए भी वैविध्य सपन्न होगी ही। कवि के शरीर और मन का निर्माण भी सहज नही होता : कितने विज्ञान इस निर्माण के स्वरूप को समझने के लिए सतत् प्रयत्न मे लगे हुए हैं और अभी तक यथार्थ को प्राप्त कर सकने मे असफल रहे हैं। इसी कारण अनुभूति मे निजी वैविध्य ही नही होता, वह कवि-प्रतिभा और उसकी सामर्थ्य के भेद से भी भिन्न हो जाती है। तब, जब यह अनुभूति अपनी अभिव्यक्ति के लिए अग्रसर होती है तो अपने अनुकूल ही रूप ग्रहण करती है। बीज मे ही वृक्ष का रूप निश्चित है। 'बोये पेड बबूर के आम कहाँ ते होय' की प्राकृतिक प्रवृति अनुभूति की अभिव्यक्ति के रूप के साथ भी होती है। रूप को शोध कर उसमे अनुभूति अपने को अवतीर्ण नही करती। अनुभूति की अभिव्यक्ति होते ही वह स्वयमेव ही सहज रूप धारण करती जाती है। यही सहज स्थिति है। इसमे अनुभूति और रूप प्रकृतत. अनिवार्य सम्बन्ध रखते हैं, रूप से अनुभूति और अनुभूति से रूप को हृदयगम किया जा सकता है। किन्तु यह केवल मौलिक प्राथमिक अवस्था मे ही होता है।[1] रूप अपनी स्थूलता के कारण बाद मे प्रमुख हो उठता है, और अनुभूति

---

१ क्रौंच वध को देखकर वाल्मीकि के मुख से कुछ वाक्य अनायास ही निसृत हुए। इन वाक्यो ने स्वयं महर्षि को आश्चर्यचकित कर दिया। वे विचारने

गौण हो उठती है। इनका अनिवार्य सम्बन्ध शिथिल हो जाता है, वस रूप अनुभूति से अलग होकर भी अपने लिए आकर्पण सग्रह कर सकता है। उस ममय 'रूप' का शास्त्र वन जाता है, उसकी टेकनिक ढाल ली जाती है, उसके लक्षरण और परिभापाए निरूपित हो उठती हैं। तव यह रूप साचे का स्थान प्राप्त कर लेता हैं और अनुभूति रहित होकर भी जीवित रह सकता है, अथवा तत्र अभ्याम से किसी रूप की प्राकृतिक अनुभूति किसी अन्य रूप मे भरी जा सकती है। इसी सत्य को व्यक्त करने के लिए हमारे भारतीय शास्त्रकारो ने वताया कि —

"शक्तिर्निपुणता लोककाव्य शास्त्राद्यवेक्षणात्।
काव्यज्ञ शिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे ॥

काव्यप्रकाश ।१–३

कि तीन प्रकार से काव्य उद्भव हो सकता है। (१) शक्ति निपुणता अथवा प्रतिभा द्वारा (२) ज्ञानार्जन से लोक काव्य शास्त्राद्यवेक्षणम्। और (३) अभ्यास से (काव्यज्ञशिक्षियाभ्यास)

अत अव प्रश्न यह है कि इस अनुभूति के रूप कैसे हो सकते हैं?

मनुष्य को वाणी का वरदान मिला और वह मनुष्य की प्राकृतिक आवश्यकताओ के अनुरूप द्विधा होगया। एक रूप तो व्यवसायिक वृत्ति के लिए प्रस्तुत हुआ। इसे वात, वार्ता अथवा साहित्य-शास्त्र की शव्दावली मे गद्य कहा जा सकता है। यह आदान प्रदान का माध्यम था। किन्तु आरम्भिक अवस्था मे मानव के पास व्यवसाय कम और प्राकृतिक प्राणियो की भाँति चहक विशेप थी। यह यो व्यवसाय कर्म के साथ भी लिप्त रहती थी और कोकिल की कूक की भाँति सभवत उल्लास-उन्माद के क्षणो मे यही चहक लय-ध्वनि से युक्त होकर 'गीत' रूप मे कठ से अभिव्यक्त हुई होगी। फलत. मानव की वाणी की दो ही प्रवृत्तियाँ आरम्भ मे हुईं। १—गीत तथा २—वात। गीत का उदय वात से पहले ही होना चाहिए क्योकि गीत प्राकृतिक इकाई है। उसका भावोच्छ्वास से गहन सम्वन्ध वताना भी गीत के स्वरूप का ठीक से प्रतिपादन करना नहीं, वस्तुत गीत स्वय भावोच्छ्वास है। आदिमावस्था मे भावोच्छ्वास के रूप मे ही गीत उत्पन्न हुआ होगा, उस काल के मानव-जीवन मे इस गीत ने प्रमुख स्थान ग्रहण किया था इसमे सदेह नही किया जा सकता। उस अवस्था

लगे कि ये शव्द क्या हैं? और वे इसी निश्चय पर पहुँचे कि 'शोकार्तस्य प्रवृता मे श्लोक भवतु न अन्यथा' 'मेरी शोकार्त प्रवृति ही श्लोक होगयी है, यह कुछ अन्यथा नहीं। यहाँ शोकार्त प्रवृति से श्लोक की अनिवार्यता कवि ने स्वीकार की है। शोक की अनुभूति ने अनिवार्यत श्लोक का रूप ग्रहण किया।

मे मनुष्य की प्रत्येक क्रिया भले ही वह व्यवसाय-वृत्ति से उद्भूत हो भावोच्छ्वास-मयी रहती है। भाषा के जन्म के निरूपण में 'यो-हे-हो-वाद' भले ही पूर्ण मान्यता नही प्राप्त कर सका हो, पर गीत के उद्गम का कारण उसे निर्विवाद माना जा सकता है परिश्रम का अङ्गी बनकर। अवकाश आदिम अवस्था मे अवकास और व्यस्तता मे अन्तर नही हो सकता। इस अवस्था मे प्रत्येक क्रिया सजीवनीय उपयोगिता और अनिवार्यता रखती है। ऐसे क्षणो मे भावोच्छ्वास का प्रतिरूप होकर गीत ने जन्म लिया और अपनी आतरिक क्षमता के कारण अपने अतीत आधारो का उल्लघन करता हुआ मानव के विशेष आकर्षण का पात्र होगया। निश्चय ही गीत का जन्म बात से पहले हुआ होगा और इसी गीत ने अपने विकास क्रम मे शास्त्रीय नियमन से पद्य मे रूपान्वय प्राप्त किया होगा। यह गीत तव से अवतक विकसित होकर निम्नलिखित रूप ग्रहण कर सका है :—
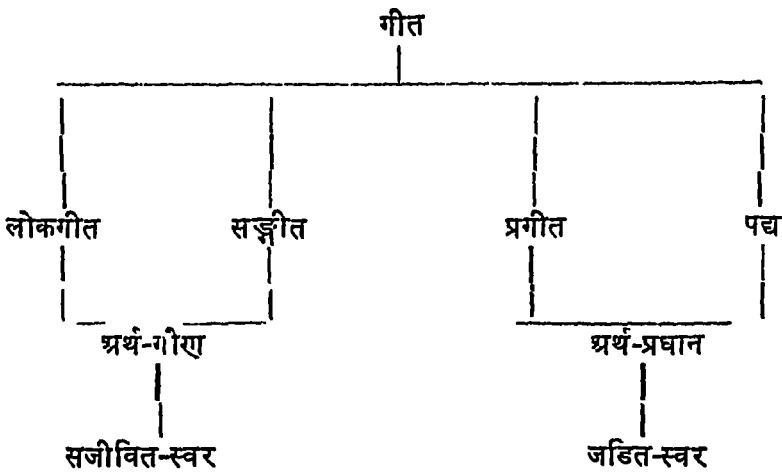
लोक-गीत ही आदिम गीत का यथार्थ उत्तराधिकारी है : और यह निरर्थक जगली गीत-ध्वनि से लेकर सार्थक शहरी खयालो तक के विविध प्रकारो मे व्याप्त है। इसका प्रधान धर्म है सजीवित स्वर का सहज उन्मुक्त उपयोग। मानव भावोन्माद मे अपने को भूलकर जब गीत के हाथो अपने को बेच देता है, उसमे मनत और शरीरत लीन हो जाता है, तब वह लोक गीत रचता होता हैं। स्वर, लय, तान, ताल आदि भाव की थिरकन के साथ स्वयमेव आते जाते हैं। यही सजीवित स्वर जब विशिष्ट चमत्कारों को स्थाई बनाने के लिए रूपबद्ध कर लिया जाता है, और आगे उसमे परिमार्जन और सस्कार द्वारा ऊँचाई अथवा भव्यता के लिए शास्त्रीयता का सहारा लिया जाने लगता है तो वह सगीत हो जाता है। लोक-गीत और सङ्गीत का प्राण यह सजीवित स्वर

जब उच्छ्वास-गति के साथ भाव और उससे भी अधिक शब्द अर्थ के तत्व से बोझिल, मथर और लघुकाय होने लगता है तो प्रगीति अथवा लीरिक मे परिणति प्राप्त कर लेता है। यहाँ तक स्वर पूर्णत सजीवित रहते है, अपने स्वाभाविक लोच और लचक के साथ, उच्चारकर्ता के व्यक्तित्व से लिपटे हुए किन्तु जब इन सजीवित स्वरो को जमा दिया जाता है, मात्रा की ताल मे स्वर को नही अक्षर या वर्ण को बाँध दिया जाता है, और साँचे बना दिये जाते हैं तब वह गीत 'पद्य' का रूप ग्रहण कर लेता है। शास्त्र नियमो का निर्माण तो अध्ययन की सुविधा तथा विचार-कोटि तथा कला कोटि का स्तर स्थिर करने के लिए करता है, पर ये नियम कला के बंधन बन जाते है, और मर्यादाओ का स्थान ग्रहण कर लेते हैं। इससे फिर किसी कृति मे सहज और स्वाभाविक गति और लोच का स्थान नही रह जाता है। शास्त्र ऐसे स्वातन्त्र्य को उपेक्षा ही नही घृणा की दृष्टि से देखने लगता है। यही कारण है कि साहित्य-शास्त्र द्वारा पद्य तो मान्य हुआ, गीत नही। वह गीत अपनी स्वाभाविकता सहित लोक मे पनपता रहता है। पद्य स्वर और वर्ण की मात्राएँ निश्चित करके ध्वनि-वैपम्य को अनुशासित करता है, तो सङ्गीत गीत की इस सहज विशेषता का सम्मान करते हुए, उसी वैपम्य मे नियम-प्रतिष्ठा करके उसे एक कला का रूप प्रदान करता है। प्रगीतियो मे भी जब इस स्वाभाविक प्रवाह मे भाव और अर्थ-गाभीर्य सन्निविष्ट होजाता है, तब लोक-गीत की उद्दामता बोझिल और पगु होकर चलती है। साथ ही अजाने स्वर की एक तौल उसमे घर कर जाती है, जो शास्त्र की जडता के विरुद्ध पहुँची हुई होती है। इस सजीवित स्वर की कुछ शक्ति का ह्रास प्रगीत (लीरिक) मे होता है। उससे अधिक पद्य के उस रूप मे होता है, जिसे मात्रिक छन्द कहते हैं। मात्रिक मे मात्रा को अक्षर की तौल स्वीकृत किया जाता है। ये मात्रिक छन्द लघु-गुरु मात्राओ के विधान से एक स्थिर स्वरूप ग्रहण कर लेते हैं—यथा रोला छन्द मे २४ मात्राएँ होगी और ग्यारह तेरह पर यति होगी आदि। अब कोई भी कविता करने वाला व्यक्ति इस रोला के लक्षण के अनुसार छन्द-रचना कर सकता है। पर इन मात्रिक छन्दो के सम्बन्ध मे यह बात ध्यान देने योग्य है कि केवल लक्षणानुसार मात्रा की योजना कर देने मात्र से छन्द समीचीन नही हो पाता। यथा—

राम तुम्हारा चरित ११ स्वय ही काव्य है। १०
कोई कवि हो जाय ११ सहज सभाव्य है। १०
यह २१ मात्राओ का छद है और ठीक है। किंतु यदि

इसे यों लिख दिया जाय— रामचरित तुम्हारा स्वय ही काव्य है।
सहज कोई कवि हो जाय सभाव्य है।

तो छन्द मे कुछ न कुछ विकार अनुभव होता है। मात्राएँ उतनी ही है, शब्द भी बिलकुल वही हैं। किन्तु वह प्रवाह और प्राण कहाँ है? वह प्राण लाने के लिए मात्रिक छन्दो को सजीवित स्वर की अनुकूलता ग्रहण करनी होती है। अत मात्रिक छन्दो मे मात्रा-तोल ने सजीवित स्वर की नितान्त उपेक्षा नही कर डाली। किन्तु यह बात वर्ण-वृत्तो के साथ नही। वर्ण-वृत्तो में अक्षर का स्थान-क्रम और मात्रा सभी नियत्रित कर दी जाती हैं। गणो के निश्चत रूप के विशिष्ट सयोजन वृत्त को ऐसा बधन युक्त कर देते हैं कि उसमे सजीवित स्वर की अनुकूलता का प्रश्न ही नही उठता, उस वृत्त के लिए समीचीन स्वर सौष्ठव उस आयोजन से स्वयमेव एक अगी की भाँति आ जाता है।

गीत की अभिव्यक्ति का अभिप्राय 'बात' अथवा वार्ता की अभिव्यक्ति से भिन्न होता है। गीत निरर्थक होते हुए भी गीत रहता है। अर्थ उसमे भरा जाता है। अर्थ का उसमे आरोप होता है। किन्तु "बात" का जन्म ही अर्थ प्रेषण के लिए होता है— अत बात का प्रधान धर्म विचार-विनिमय-साध्यता है। निश्चय ही इसका आरभ व्यवसायिक विनिमय मे हुआ होगा, किन्तु शीघ्र ही बात करने अथवा बात कहने की सामाजिक स्थिति के कारण बात का महत्व मात्र व्यावसायिक विनिमय-साध्यता से अतिरिक्त भी होने लगा होगा मनुष्य की जब अनिवार्य आवश्यकताएँ 'आहार-निद्रा-भय-मैथुन' के दो रूप होते थे। एक भूख का भाव उसी प्रकार "निद्रा-भय-मैथुन" का और दूसरा 'इनकी पूर्ति का" रूप। पूर्ति का रूप तो "शुद्ध व्यावसायिक बात" से सतुष्ट हो सकता था। "फल खाऊ गा" आदि। किन्तु उनके भाव की अभिव्यक्ति मे इतनी व्यावसायिकता नही हो सकती थी। 'आहार-निद्रा' मे तो इन भावो मे भी कुछ स्थूलता मिल सकती है, पर 'भय और मैथुन' के भावो मे भाव-जटिलता स्पष्ट है। इन्हे व्यक्त करने के लिए बात को शुद्ध व्यवसाय से ऊपर उठना पडा। और इस अभिव्यक्ति का मूल्य व्यवसाय के अतिरिक्त होने लगा। इस कोटि-क्रम मे गीत और वार्ता ये दो ही मौलिक रूप प्रतीत होते हैं। ये साहित्य-शास्त्र की शब्दावली मे विकास और सस्कार प्राप्त करने के पश्चात् गद्य और पद्य कहलाए। यही कारण है कि भामह, दण्डी, वामन आदि आचार्यों ने काव्य के रूपो मे सबसे पहले इन्ही दो को स्थान दिया है।

पर यह बात भी ध्यान मे रखने योग्य है कि यह भेद तो 'अभिव्यक्ति' का है। गीत या बात—गद्य या पद्य तो केवल अभिव्यक्ति के ही प्रकार हैं— काव्य के प्रकार नही। अभिव्यक्ति मात्र काव्य नही, काव्य तो अभिव्यक्ति मे

प्रतिष्ठित होता है। हम उसी प्रतिष्ठित काव्य अथवा साहित्य के रूपो को समझते हैं, केवल उसकी अभिव्यक्ति के रूपो को नही। न हमे अभिव्यक्ति के माध्यम के रूपो को ही देखना है। हमारे भारतीय आचार्यो ने अभिव्यक्ति के माध्यम दृष्टि से काव्य के साधारणत तीन भेद किये—सस्कृत काव्य, प्राकृत काव्य और अपभ्र श काव्य। भामह और दण्डी ने ये तीन रूप ही स्वीकार किये किन्तु रुद्रट ने तीन रूप और सम्मिलित किये—माग। पिशाच और शूरसेन। रुद्रट के इस विवर्द्धन से यह अत्यन्त स्पष्ट है कि उसने भाषा के स्थानीय और जातीय रूपो को भी मान्यता दी है। सस्कृत, प्राकृत अथवा अपभ्र श नामो का किसी स्थल अथवा जाति से सम्बन्ध नही, जैसे मागध का मगध प्रदेश से, शूरसेन का व्रज से, अथवा पिशाच का पिशाच जाति से है। वस्तुत. ये तीनो विभेद प्राकृतो और अपभ्र शो मे अन्तर्भुक्त है।

साहित्य और काव्य के रूपो का एक मौलिक वर्गीकरण हमे विश्वनाथ के साहित्य-दर्पण मे मिलता है—वह विभाजन है : दृश्य और श्रव्य काव्य मे। इन नामो से न सही। किन्तु यही विभाजन साहित्य-शास्त्र मे सबसे पहले सभवत. हेमचन्द्र ने किया। उन्होंने इसे प्रेक्ष्य और श्रव्य नाम दिया। प्रेक्ष्य अथवा दृश्य के अन्तर्गत जो साहित्य आता है, उसे भामह ने प्रतिपादक स्वरूप के आधार पर किये गये विभाजन के अन्तर्गत पाँच भेदो मे से एक भेद 'अभिनेयार्थ' नाम से स्वीकार किया था। दडी ने अभिव्यक्ति के रूपो मे ही गद्य-पद्य के साथ मिश्र नाम से तीसरा भेद स्वीकार किया और उसी के अन्तर्गत 'नाटक' का समावेश किया। इसमे इस रूप को स्थान तो मिला पर वह प्रमुखता नही मिली जो हेमचन्द्र और विश्वनाथ के हाथो मिली। हेमचन्द्र ने जिसे प्रेक्ष्य लिखा उसे विश्वनाथ ने दृश्य कहा। इस विभाजन को देखने से विदित होता है कि भारतीय शास्त्री ने जैसे अपनी वस्तुपरक शैली को त्याग कर व्यक्तिपरक शैली अपनायी है। यह काव्य का भेद उसकी गोचरता के आधार पर किया गया है। जो नेत्रो का विषय हो, जिसे देख सकें वह दृश्य, जिसे सुन सकें जो श्रवणो का विषय हो वह श्रव्य। निश्चय ही यह गोचरता कवि की अपनी गोचरता नही, सहृदय की गोचरता है। किन्तु वास्तव मे यह बात नही, दृश्य केवल सहृदय की गोचरता ही नही, कवि की अनुभूति भी है। दृश्यानुभूति को पाश्चात्य आलोचना-शास्त्रियो ने भी महत्व दिया है। उन्होंने तीन प्रकार की काव्यानुभूतियाँ स्वीकार की हैं लिरिकल (गेय) ऐपिक या नैरेटिव [कथात्मक] तथा ड्रामेटिक [नाटकीय-दृश्य] इससे भी हमारे साहित्य-शास्त्री का पक्ष स्पष्ट नही होता। उसने शास्त्र मे किसी भी दृष्टि से व्यक्तिपरक परि-

भाप एँ नही स्वीकार की हैं, न प्रस्तुत की है। फिर दृश्य क्या है और इसकी क्या सार्थकता है ?

दृश्य शब्द किसी यथार्थ के प्रत्यक्षीकरण अथवा साक्षात्कार से सम्बन्ध रखता है। किन्तु किसी दृश्य का साक्षात्कार मात्र तो काव्य नही। काव्य तो दृश्य-दर्शन-प्रस्तुत अनुभूति मे प्रतिष्ठित होता है। यह अभिव्यक्ति के माध्यम से सहृदय के पास पहुँचती है। वह उस माध्यम से अपने व्यक्तित्व की पृष्ठभूमि पर उस दृश्य का मानसिक साक्षात्कार करता है। दृश्य को अपनी अनुभूति के साथ अभिव्यक्ति का विपय वनाते समय कवि जव उस दृश्य की 'सर्वाकारता' (आल डाइमेन्सन्स) का अङ्कन करता है और दृश्य से हुई अपनी अनुभूति को भी दृश्य वस्तु के अङ्ग की ही भाँति देता है, और स्वय समस्त का, अपनी निजी अनुभूति तक का एक द्रष्टा वनकर ही रह जाता है, तव जो रूप उसकी रचना का होता है, वह दृश्य होता है और यही दृश्य का काव्य कहलाता हैं। इस विवेचन से स्पष्ट है कि —

१—दृश्य काव्य के इस नामकरण मे शास्त्रकार ने किसी व्यक्तिपरक दृष्टिकोण से काम नही लिया। दृश्य काव्य वह नही जो देखा जा सके, वरन् दृश्य काव्य वह रचना है, जिसमे दृश्य के गुण विद्यमान हैं।

२—दृश्य काव्य पूर्णत वस्तु निष्ठ काव्य है। इसमे दृश्य की सर्वकारता होनी चाहिए—'सर्वकारता' से अभिप्राय है कि [अ] दृश्य केवल कवि के मानसिक प्रतिबिंब की भाँति प्रस्तुत नही हुआ [आ] उसमे प्रकृति, परिस्थिति, पात्र अपने-अपने सम्पूर्ण और पृथक् व्यक्तित्व के साथ अवतीर्ण होते हैं [इ] कवि की अनुभूति भी उसमे व्याप्त रहती है, वह अनुभूति ही दृश्यमय हो रहती है। ऐन्द्रिक दृश्य से उद्रेकित अनुभूति उस दृश्य का मानसिक प्रत्यक्षीकरण पुन. अपने दृष्टिकोण से व्यवस्थित कर देती है [ई] फलत कवि तो व्यक्तित पूर्णत लुप्त होजाता है, पर व्यक्तित्वत ब्रह्म की भाँति अपनी दृश्य सृष्टि मे विद्यमान रहता है। इस काव्य की सृष्टि कवि के द्वारा होते हुए भी, कवि की विदित नही होती।

३—पाठक अथवा सहृदय दृश्य काव्य की स्थूलता का दर्शन करते समय यह विस्मृत किये रहता है कि यह कवि है जो अपनी अनुभूति का ही साकार साक्षात्कार करा रहा है, वह समझता है कि वह दृश्य वह प्रथमत स्वय ही देख रहा है।

४—इस आयोजन से कवि दृश्य की अनुभूति को दृश्य वनाकर उसे यथार्थ की भूमि पर खडा कर देता है। कवि की कल्पनानुभूति को दृश्य काव्य ही यथार्थ का वाना पहिनाता है।

दूसरे रूप मे कवि दृश्य की अनुभूति को अपने शब्दो में प्रस्तुत करता है। वह वक्ता का रूप ग्रहण कर लेता है, और समस्त रचना उसके प्रवल व्यक्तित्व की छाप और उसकी निजी उपस्थिति मे आक्रान्त रहती है। ऐसी रचना के रूप को ही श्रव्य नाम दिया जाता है। इन रचनाओ मे श्रव्य गुण की प्रधानता है। दृश्य से उत्पन्न यह कवि की अनुभूति इसी कारण श्रव्य भी हो सकती है।

श्रव्य—

'श्रव्य' शब्द वस्तु का विशेषण होते ही.वस्तु के अतिरिक्त दो अन्य सत्ताओ की उपस्थिति की भी सूचना देता है। एक वक्ता दूसरा श्रोता। श्रव्य वस्तु का गुण है, अत वक्ता के उस वस्तु के निर्माण के समय ही किसी श्रोता की उपस्थिति अनिवार्य नही। वक्ता जो वस्तु प्रस्तुत कर रहा है, वह श्रवण योग्य है, बस इतनी ही अनिवार्यता अपेक्षित है। अत श्रव्य-वस्तु का रूप भी शास्त्रकारो ने वस्तुनिष्ठ ही रखा है, इसमे सदेह नही। वक्ता का श्रव्य से अनिवार्य सम्बन्ध है, अत श्रव्य वस्तु मे प्रत्येक पक्ति और शब्द को वक्ता की उपस्थिति की सूचना देने मे समर्थ होना चाहिए। अत श्रव्य काव्य या तो कवि के ही निजी शब्दो मे होगा, जो कवि के ही अर्थ को प्रकट करेगा, या कवि के शब्दो मे, ऐसी शैली मे कि उससे विदित हो कि कवि कह रहा है, किसी अन्य की उक्ति को प्रकट करेगा।

दृश्य और श्रव्य के इन्ही गुणो के कारण दोनो के स्वभाव और दोनो की सीमाओ मे वहुत अन्तर होजाता है।

फलत दृश्य और श्रव्य ये दोनो रूप रचना के यथार्थत रूप-भेद ही है। अपने भारतीय साहित्य मे भी आजतक साहित्य के रूपो का विवेचन हुआ है। यहाँ सक्षेप मे उसका सिंहावलोकन करा देना उचित होगा।

भामह—
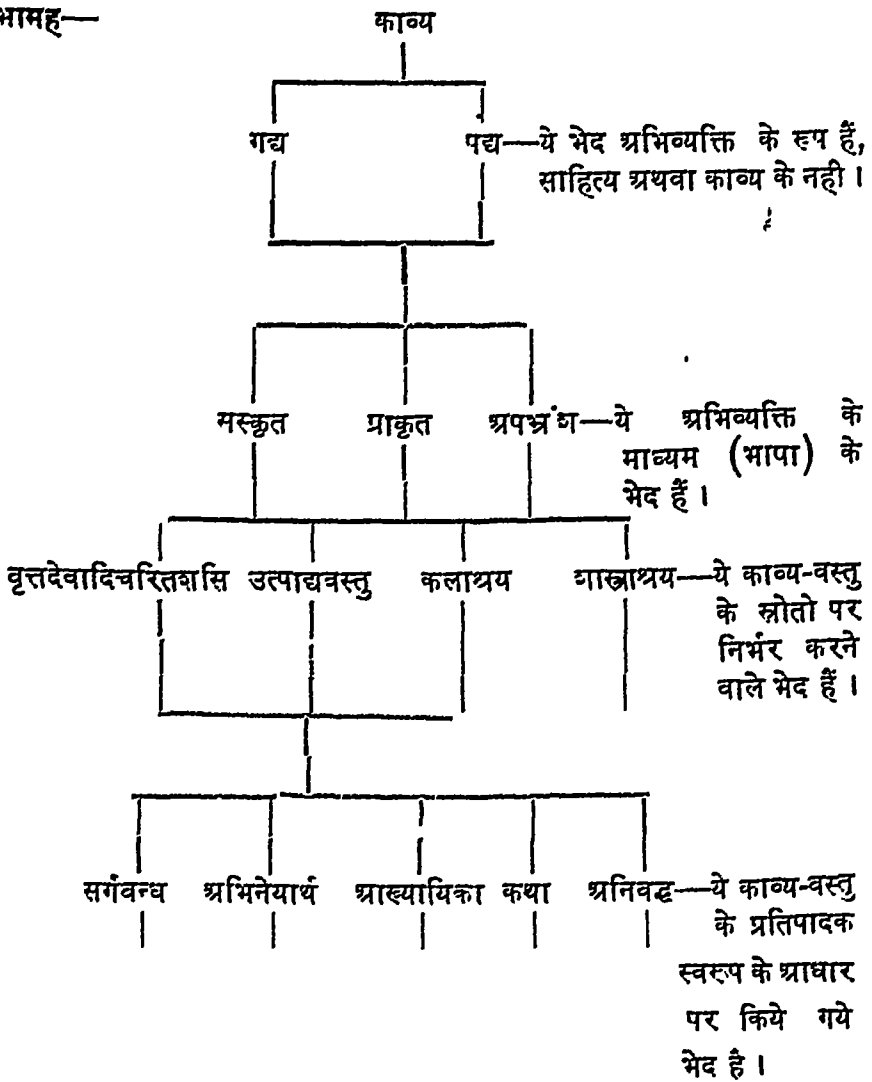
भामह ने काव्य के विभागो के उक्त चार आधार स्वीकार किये हैं। और चारो को पृथक् पृथक् रखा है। पर दडी ने अभिव्यक्ति के भेदो मे से यह स्वीकार कर लिया है कि प्रतिपादक के रूपो मे से कुछ का एक अभिव्यक्ति के रूप मे सम्बन्ध है, तो कुछ का दूसरे से। दडी ने नाटको को अभिव्यक्ति के 'मिश्र' नाम के भेद के अन्तर्गत स्थान दिया है। चपू को कथा-आख्यायिका के साथ एक और भेद माना है। इसी प्रकार पद्य के अन्तर्गत कुलक, कोष संघात जैसी रचनाएँ भी सम्मिलित की हैं।

दडी—

१
काव्य
गद्य
पद्य
मिश्र
कथा
आख्यायिका
नाटकादि
चपू
सर्गवद्ध
मुल्कक
कुत्तक
कोष
सघात

२
काव्य
सस्कृत
प्राकृत
अपभ्र श
मिश्र

रुद्रट

काव्य
सस्कृत
प्राकृत
मागध
पिशाच
शूरसेन
अपभ्र श
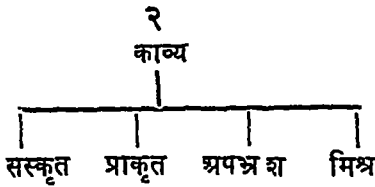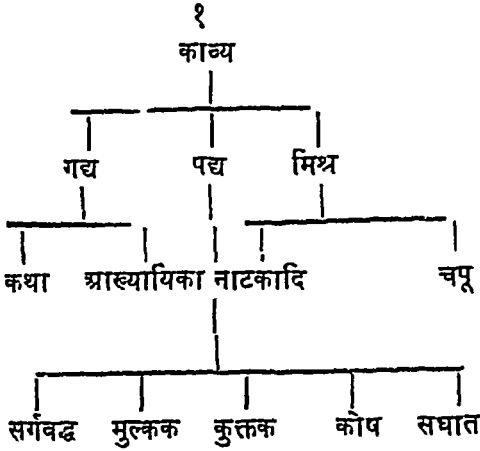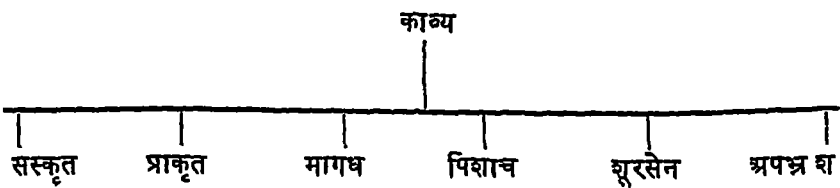
इस विभाजन को वैज्ञानिक नही माना जा सकता । दडी ने अपनी मौलिकता दिखाने का तो प्रयत्न कियां है, उसने समस्त भेदो को एक परपरा मे बाँधसे का यत्न किया है । उसने अभिव्यक्ति के माध्यम, भाषा के भेद से काव्य के भेद भामह की भाँति ही स्वीकार किये हैं, और वह उसे ऊपर की परम्परा मे नही विठा सका । रुद्रट ने इसी कोटि मे सस्कृत-प्राकृत-अपभ्र श के साथ, मागध-पिशाच-शूरसेन को और बढाया है । स्पष्ट है कि भाषा के ये स्थलीय भेद सम्मिलित करके रुद्रट ने कोई विशेष बुद्धिमानी का परिचय नही दिया । सस्कृत प्राकृत-अपभ्र श काव्य मे किसी प्रादेशिकता की छाप नही और उक्त प्रादेशिक भेद इनके अन्तर्गत ही आ जाते हैं ।

वामन

हेमचन्द्र के समय मे हनुमन्नाटकादि जैसे पूर्णत गेय नाट्य काव्य प्रस्तुत होने लगे थे। इसीलिए उसने गेय को प्रेक्ष्य में स्थान दिया है। हिन्दी की नौटकी रचनाएँ गेय-प्रेक्ष्य हैं।

कथाओ के इतने भेद हेमचन्द्र ने जैन होने के कारण किये हैं।
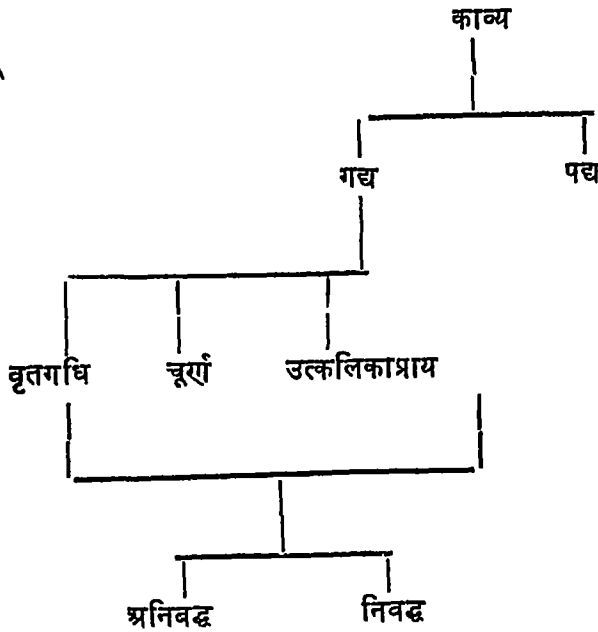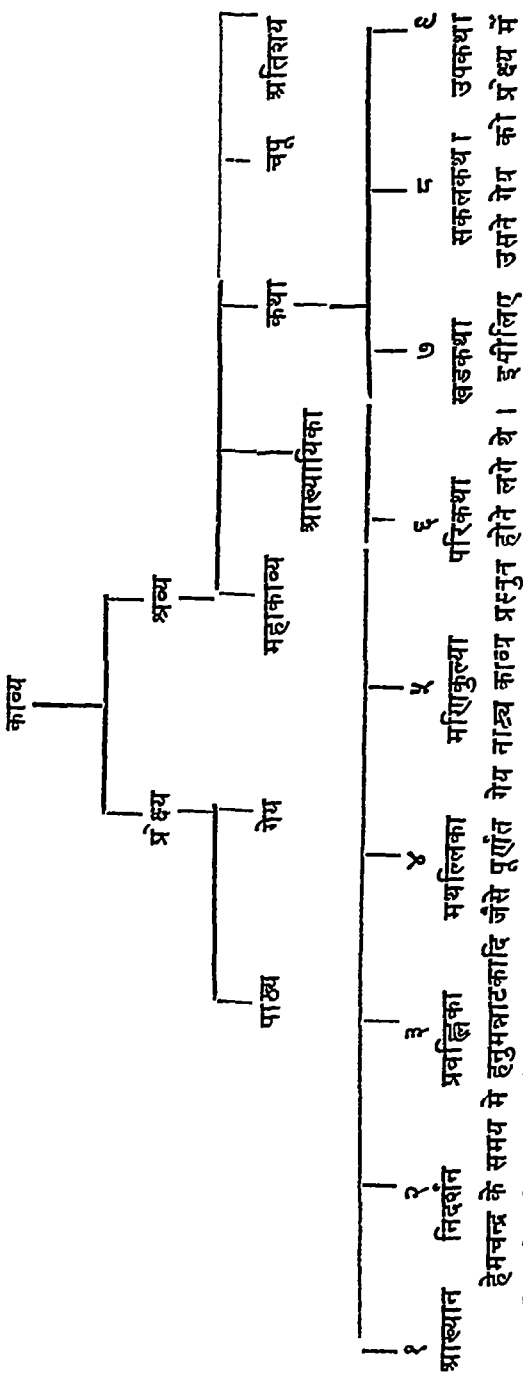
लास्यच्छलित शम्पादि प्रेक्षार्थभितरत् पुन'
श्रव्यमेवेति सैवापि दुयी गतिरुदाहृत
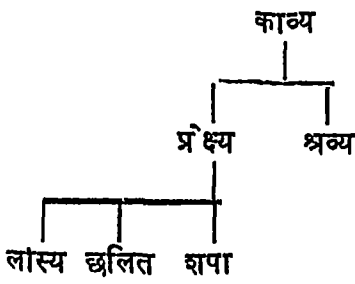
हेमचद्र ने अपने काव्यानुशासन मे 'काव्य प्रेक्ष्य श्रव्यच' कहकर विवेक मे भट्टतौत को उद्धृत करते हुए कि 'दर्शनाद्वर्णनाच्चाथ रूढा लोके कविश्रुति' आदि, कवि के दो कर्म स्वीकार किये हैं—वे हैं—१—दर्शन और २— वर्णन। उन्होने यह भी प्रतिपादित किया है कि ये दोनो कर्म कवि मे ही मिलते हैं, अन्यत्र नही। हेमचन्द्र के शब्द हैं—नानृषि कविरिति कन् वर्णन इति च दर्शनाद्वर्णनाच्च कविस्तस्य कर्म काव्यम्।'

पाठ्य मे हेमचन्द्र १—नाटक २—प्रकरण ३—नाटिका ४—समवकार ५—ईहामृग ६—डिम ७—व्यायोग ८—उत्सृष्टाक ९—प्रहसन १०—भाण ११—वीथी १२— सट्टक आदि मानते हैं। 'पाठ्य नाटक प्रकरण नाटिका समवकारईहामृगडिम व्यायोगोत्सृष्टाक प्रहसन भाण वीथी सट्टकादि।'

गेय के लिए हेमचद्र की कारिका यह है —

'गेय डोम्बिकाभाणप्रस्थानशिगकभाणिकाप्रेरणरामाक्रीडहल्लीसक रासकगोष्ठीश्रीगदित राग का व्यादि.' इन्ही के साथ विवेक मे उसने तीन गेय काव्य और बताये हैं, शम्पा, छलित और द्विपदा।

गेय काव्य को उसने तीन प्रकार का माना है

१—मसृण (कोमल) उदाहरण डोम्बिका।

२—उद्धत उदाहरण भाण

३—मिश्र

यह विचारणीय है कि हेमचन्द्र ने भाण को पाठ्य मे भी रखा है और गेय मे भी। सभवत भाण दोनो शैलियो मे लिखा जाता था।

पाठ्य और गेय का भेद बताते हुए श्री बल्देव उपाध्यायादि सपादको ने और टीकाकारो ने यह टिप्पणी दी है. "The notable difference between a गेय काव्य and the Rupakas defined above is that the former has no consistant plot in it, but deals with the accompaniment of gestures while all the varieties

of a drama have a consistant plot which has to be enacted on the stage. Prominence of music is also another feature of गेय compositions Movement of all the limbs is a prominent characteristic of a गेय composition—

कथा के हेमचद्र ने ग्यारह भेद किये हैं जो निम्नलिखित हैं —

१—उपाख्यान—प्रबंध मध्ये परबोधनार्थ नलाद्युपाख्यान। किसी प्रबंध काव्य मे प्रबोध कराने के लिए उदाहरण की भाँति जो कथा आये वह उपाख्यान है, जैसे महाभारत मे 'नलोपाख्यान'

२—आख्यान— पठनगायन यदेको : जिसे कोई एक व्यक्ति पढे या गाये— जैसे 'गोविंदाख्यान'

३—निदर्शन—निश्चीगते तिरश्चामतिरश्चावापि यत्र चेष्टाभिर्यत्र कार्यमकार्यंवा तन्निदर्शनं पचतत्रादि . जिस कथा के द्वारा कार्य अकार्य का निदर्शन कराया जाय और उसके लिए अन्मानुपी पाशवी पात्रो की कल्पना से कथा बने वह निदर्शन कहलाती है जैसे 'पचतत्र'।

४ —प्रवल्हिका —'यत्र द्वयोर्विवाद. प्रधानमधिकृत्य जायते ग्रंथिक सदासि : जिसमे कथा दो पात्रों के विवाद के माध्यम से प्रकट हो।

५—मन्थल्लिका—क्षुद्रकथा मन्थली प्रेत महाराष्ट्भाषया भवसि गोरोचनेव आगे बताया है · यस्यामुपहास स्यातपुरोहितमात्य तापनादीनाम प्रारब्धे निर्वाहे साधि हि मन्थल्लिका भवति।

६ — मणिकुल्या—यस्या पूर्ववस्तु न लक्ष्यते पश्चातु प्रकाश्यते उदाहरण मत्स्यहामिता। जिसमे वस्तु का पहले तो प्रकाश न हो—किन्तु बाद मे उसका प्रकाशन हो।

७—परिकथा—पर्यायेण वहुतां यत्रप्रतियोगितां कथा कुशलै · शूयते शूद्रकवज्जिगियूमि परिकथा सातु

जिसमे कितनी ही प्रकार से एक कथा प्रस्तुत हो वह परिकथा है।

८—खडकथा—ग्रथांतर प्रसिद्ध यस्यामितिवृतमुच्यते विवुधै.।
मध्यादुपान्त तो वा सा खडकथा यथेन्दुमती ।।

९—सकलकथा—समस्त फलान्ते निवृत वर्णना समरादित्यादिवत् सकलकथा।

१०—उपकथा—एकतरचरिताश्रवेण प्रसिद्ध कथान्तरोपनिवद्ध उपकथा

११—वृहत्कथा—लम्भाकितादभुतार्था लम्भ चिह्न से अङ्कित अद्भुत अर्थवाली कथा वृहत्कथा कहलाती है।

पाश्चात्य विद्वानो ने कवि की तीन प्रकार की अनुभूति के अनुसार काव्य के तीन रूप स्वीकार किये हैं। वे है—

लीरिक (lyric), ऐपिक (Epic) तथा ड्रामैटिक (Damatic)। ऐवरकोम्बे जैसे साहित्य-शास्त्री ने लीरक अनुभूति को ही प्रमुख अनुभूति माना है और उसी के आश्रय से शेष दो का भी स्पष्टीकरण किया है। लीरिक मे जो काव्य-तत्व से अधिक गीति तत्व को मन्यता है, उससे वह हमारे भारतीय शास्त्रियो के क्षेत्र से बाहर हो गयी है। ऐपिक तथा ड्रामेटिक श्रव्य और दृश्य के पर्याय माने जा सकते हैं, भले ही इनकी परिभाषा करते समय पश्चिम के विद्वान् व्यक्ति-निष्ठ दृष्टिकोण से ही काम लेते हो।

यह तो शास्त्रो के आधार पर काव्य के रूपो के विकास का स्वरूप है। इससे भी यह स्पष्ट है कि दण्डी और भामह के समय से ही लोकतत्व को साहित्य में स्थान देने की शास्त्रकारो ने भी चेष्टा की है, और यह चेष्टा निरन्तर बढती गयी है। इससे यह भी प्रकट होता है कि शास्त्रकारो ने इस प्रवृत्ति के कारण नये नये रूपो को अपने शास्त्रो में स्थान दिया।

किन्तु शास्रो से हटकर जब हम उस समय विद्यमान साहित्य का साक्षात्कार करते हैं तो हमे लोकक्षेत्र मे और भी नयी उद्भावनाएँ दिखायी पडती है। इन उद्भावनाओ को तत्कालीन लोक-भाषा के कवियो ने मान्यता प्रदान की। यह सब ऊपर के अध्याओ मे हिन्दी के उदय की पृष्ठभूमि का विश्लेषण करते हुए देख चुके हैं कि आठवी से चौदहवी शती के अन्दर निम्न काव्य खडे हुए थे —

१—छ १—गाथाबध
छ २—दोहाबध
छ ३—पद्धडियाबध
छ ४—चौपाई-दोहावली-रमैनी
छ ५—छप्पयबध
छ—६—कु डलिनी बध
छ—७—रासा बध
२—गी—८—चर्चरी या चाचर
गीत वि—९—फाग
१०—साखी
११—सबदी
छ-१२—दोहरे

३—वि १३—सोहर
गी-१४—पद
वि-१५—मगलकाव्य
४—स-१६—चौंतीसा
स-१७—विप्रमतीमी
वि-१८—वसंत
१९—वेलि
२०—विरहुली
वि-२१—हिंडोला
छ-२२—कवित्त-सवैया
छ-२३—कहरा
छं-२४—वरवै
वि-२५—विनय
वि-२६—लीला
५—शै-२७—अखरावट
वि-२८—नहछू
वि २९—रासक
वि-३०—रास
वि-३१—भमरगीत
५—शै ३२—मुकरी
शै-३३—दो सखुने
शै-३४—अनमिल
शै-३५—ढकोसला
शै—३६—वुझावल
वि—३७—पटऋतु
वि—३८—वगसाला
वि—३९—नखशिख
वि—४०—दसम दशावतार
वि—४१—भडौआ
वि—४२—जीवनी

इनके अतिरिक्त भी ध्यान देने से और भी कई नये रूप दिखायी पड जाते हैं।

स—१—सतसई
वि—२—मगल
वि—३—महात्म्य
स—४—पचीसी
स—५—वत्तीसी
शै—६—पुराण
शै—७—संवाद
वि—८—घोड़ी
वि—९—पत्तल
शै-१०—काव्य
शै-११—चरित

इन रूपो पर विचार करने से विदित होता है इनके नामकरण के पाँच आधार हैं

१—छद
२—गीत
३—शैली
४—सख्या
५—विपय

किसी भी दृष्टि से इन रूपो का नामकरण क्यो न हुआ हो एक वात स्पष्ट दिखायी पडती है कि इन सव का मूल लोक-क्षेत्र है, और प्रत्येक रूप का लोक-तत्व से घनिष्ठ सम्वन्ध है।

छन्दो के आधार पर जो रूप खडे हुए हैं उनमे इतिहास से हमे विदित होता है कि 'गाथा' काव्य रूप प्राकृत भापा का एक प्रकार से पर्याय हो गया था। इसी प्रकार 'दोहा' अपभ्र श का। 'दोहा वध' का अर्थ होता था, अप-

भ्र श काव्य । पद्धडिया वध उत्तर कालीन अपभ्र श अथवा अवहठ्ठ से सम्ब-न्वित माना जा सकता है ।

चौपाई दोहा वध रूप कथा अथवा चरित-काव्य से सामान्यतः संवद्ध हो गया, और यह रूप हिन्दी के प्राचीन काव्य से चलकर वीसवी शती के आरभ तक अत्यन्त दृढता के साथ प्रवाहित होता चला आया है ।

हिन्दी का गुण कितनी ही शताब्दियो मे फैला हुआ है, फलतः इसमे छदो के आधार पर कितने ही रूपो का विकास हुआ, ऊपर की तालिकाओ से यह सिद्ध है ।

इस समस्त छन्द-परम्परा का मूलत लोक क्षेत्र और लोक तत्व से सवध है । इसका सवसे प्रवल प्रमाण तो इन छन्दो का स्वभाव है । ये छन्द स्वभाव से मात्रिक है । मात्रिक छन्द मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति से उत्पन्न होते है, क्योकि 'मात्रा' का आधार मूलत' ताल है, और ताल का जन्म नृत्य के साथ हुआ । ताल का जितना सम्वन्ध नृत्य से है, उतना सगीत से नही । क्योकि निश्चय ही सगीत के दो रूप मूल मे रहे हैं । एक लयवद्ध और दूसरा ताल-वद्ध । तालवद्ध सङ्गीत नृत्य-वद्ध सङ्गीत था । लय-वद्ध मुक्त सङ्गीत था । आगे दोनो प्रणालियाँ मिल गयी । 'नृत्य' अथवा ताल मे विराम लाने के लिए 'लय' सङ्गीत का उपयोग होने लगा । इससे वैभिन्य भी आया । यह 'लय' जव आरम्भ में उपयोग मे आने लगी तो 'टेक' कहलायी । आज पर्यन्त नृत्य-ताल से गुँथे हुए गीत मे लय द्वारा विराम प्रचलित है । रसिया या चौवोलो को देखिये । रसिया मे जव अत्यन्त तीव्र ताल-गति से झमाके के साथ रुकते हैं तो किसी दोहे के रूप के 'लय' वद्ध छन्द का उपयोग किया जाता है । चौवोले मे ताल पर पहुँचने के लिए पहले दोहे के वोल रखे जाते है, जिसका लय से ही सम्वन्ध है । इस प्रकार तालवद्ध लवे नृत्य गीतो मे 'लय-विराम' की प्रणाली प्रचलित हुई । इस लय के आवरण मे 'ताल' को अधिकाधिक लपेटा गया । आज यह देखा जा सकता है कि प्रत्येक सङ्गीत मे 'ताल' उसकी रीढ है । और स्वर का उतार-चढाव और लय उसके सौन्दर्य और माधुर्य प्रसाधन के तत्व हैं । यह ताल नृत्य से विलग होकर गीत मे रही । गीत मे लय और उतार-चढाव के तत्व जव जड होने लगे, और शब्द की, अर्थ की दृष्टि से, अधिकाधिक प्रव-लता होने लगी, तव उनका सम्वन्ध मात्र रीढ़ अथवा ताल से रह गया । ये, शब्द मे वँधने पर ताल, 'समय की कला अथवा अश', पर निर्भर नही कर सकते थे : उसके लिए शव्द मे ही कोई आधार ढूँढना होगा, और यह आधार मात्रा का था । एक 'मात्रा' इसकी इकाई वनी । यह एक मात्रा एक अक्षर के 'उच्चा-रण' के काल की कला का मान प्रस्तुत करती थी । हिन्दी की मात्राओ के

स्वरूप के अनुकूल ये मात्राएँ 'लघु' और 'गुरु' मे बाँट दी गयी। 'लघु' मात्रा की एक इकाई है। गुरु मात्रा दो इकाइयो के समान। इस प्रकार 'शब्द' के निर्मायक अक्षरो मे गुरु-लघु के माध्यम से वस्तुतः ताल को, 'ताल' की लघुतम कालकला (टाइम फैक्टर) को घनिष्ठत. बाध दिया गया है। इससे यह सिद्ध है कि ताल का ही एक रूप मात्रिक छन्द-विधान है।

इस सम्बन्ध मे कोयलरीज ऐनसाइक्लोपीडिया मे पोयट्री शीर्षक निबन्ध मे यो लिखा गया है.

"Rhythm (यही हमारी ताल है) is one of the facts of nature. There is a kind of rhythm in the stars, in the seasons and the blood of man. It is also, being in human mind, an instinct which both demands and responds to orderly repetition, and so it appears in many human activities, partly from nature and partly for the sake of economy of effort and so, likewise, it appears in language discontinuous, to be sure, but latent and available for aesthetic uses. The connection of rhythm with poetry is usually accounted for thus: people work and dance, they accompany their rhythmic movements with rhythmic sounds, the sounds becoming words and songs The songs then may be sung without the movements, and the words may be recited without the time Thus poetry comes into being. This is somewhat theoretical, but plausible and to a degree confirmable There remains only the deliberate artistic act of arranging words "in the best order", the order that gratifies the rhythmic source, and then the gradual growth of formulae (metrical pattern) which facilitate this creative Act.

मात्रिक छद मे यथार्थत केवल मात्राओ की तौल ही अभीष्ट होती है। किन्तु छद तो शब्दो से बनते हैं, शब्द अक्षरो से। अक्षर ही मात्रा की इकाई प्रस्तुत करते हैं। इन इकाईयो का प्रयोग मात्रिक छदो मे किसी सीमा तक पर्याप्त मुक्त रूप से होता है। यथा चार मात्राओ के अक्षरो का जितने रूपो मे सयोग हो सकता है, उसमे से चाहे जिस रूप का उपयोग करने से काम चल जायगा

। । । ।—भगवन

। । ऽ —मघवा

ऽ । ।—मानस

। ऽ ।—महान
ऽ ऽ —राजा

यही नही मात्रिक छद मे इससे भी अधिक लोच होती है। उसमे यदि एक दो मात्राएँ कम या अधिक हो तो लय के आवश्यक पुट और सकोचन से यह असुविधा दूर हो सकती है। मात्रिक छद मे यही नही कि शब्द और उनके विकास मे ही यह लचीलापन और मार्दव हो, उसमे प्रयुक्त कितने ही अक्षरो मे भी 'लय-तत्व' के कारण यह मार्दव आजाता है। अनेको स्थलो पर 'ए' जो दीर्घ है, लघु की भाँति ग्रहण किया जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि मात्रिक छन्दो मे 'सजीवित' शब्द स्वर भरते हैं। अतः मात्रिक छन्द स्वभाव से ही कठोर शास्त्रीय ढाँचे मे नही बैठ सकते। एक आतरिक स्वच्छन्दता उनमे रहती है। जो लोक-प्रकृति के अनुकूल है। इससे मात्रिक छन्दो मे लोक-तत्व रहता है। किन्तु यह मात्रिक छन्दो मे से प्रत्येक मे समान मात्रा मे नही रहता। कुछ लय नृत्य की ताल से बहुत अधिक निकट होती हैं जिसका अभिप्राय यह है कि ताल-बधान रहते हुए भी लय को अपने सकोच-प्रसार के लिए बहुत अवकाश रहता है, और उसके रूप मे उसी ताल पर वैविध्य प्रस्तुत हो सकता है। जिन छन्दो मे मात्रा के साथ यह सम्भावना जितनी अधिक है, उतनी ही वह लोक-प्रवृति के अनुकूल होती है। ऐसे प्रयोग वे होते हैं जिनमे गीत और छद का पारस्परिक अन्तर कम से कम रहता है। छन्द शास्त्र मे जितने भी छन्द दिये हुए हैं, उनमे से 'चौपाई' एक ऐसा छन्द है जिसमे यह लोक-प्रवृति की अनुकूलता सबसे अधिक है। यथा—

राम रा ऽ ऽ म ऽ ऽ कहिजेऽजमुहाही—तिन्हहि न पाप पुंज समुहाँही
राम रा म कहि जे जमुहा ही
राम राम कहि जे जमुहाँ ही
राम राम कहि जे ज मुहा ही
रा म रा म कहि जे ज मु हा ही
राम राम क हि जे ज मु हाही
राम राम कहि जे जमु हा ही

एक चौपाई विविध लयो मे हो सकती है।

इसीलिए लोक-कथा के लिए यही छन्द विशेषत चुना गया। इसमे रूप और वस्तु की दृष्टि से अद्भुतरूपेण लोक-तत्व अभिमडित है। चौपाई का निर्माण एक ऐसे सामान्य मान के रूप मे हुआ है कि इसमे मद तथा मध्यम तथा चचल, चपल, तीव्र, सभी गतियाँ समान रूप से मिल जाती हैं। अत विविध आवेग, विविध आवेश, विविध रस और विविध भाव इस छन्द मे गुम्फित हो सकते हैं। इस छन्द मे वर्णन, कथा, विचार और विवेचन सभी खप जाते है।

ऐसा सर्वग्राही छन्द यह चौपाई है। अन्य जिन छन्दों के नाम से काव्य-रूप सृष्ट किये गये है, वे हैं ३—छप्पय ४—कुण्डलिनी १—रासा २—दोहरा ५—कवित्त ६—सवैया ७—बरवै।

रासा छन्द का उल्लेख स्वयंभू ने किया है। गाथा-बंध जिस प्रकार प्राकृत का पर्याय होगया था, दोहा बंध अथवा 'दूहा-विद्या' जैसे अपभ्रंश है, वैसे ही रासाबंध का सम्बन्ध अपभ्रंश और पुरानी हिन्दी के संधि काल की कथा-चरित-काव्य की शैली वाली भाषा मे विदित होता है। रासा-बंध मे पहले रासा छन्दो का ही बाहुल्य होता होगा, बाद मे रासा का सम्बन्ध विषय से जुड़ गया, रासा छन्द गौण होगया। धीरे-धीरे रासा काव्य मे से इस छन्द का लोप हो चला, और रासा विषय मे वैविध्य लाने के लिए छन्द वैविध्य का आश्रय लिया गया। अब रासा-काव्य रासा-बंध नही रह गया। यह स्थिति स्वयंभू के समय मे ही होगयी थी। रासो मे स्वयंभू ने घता, छर्दनिका, पद्धरिया तथा अन्य छन्दो के उपयोग की बात लिखी है। स्वयंभू प्रतिपादित रासो काव्य की शैली का उपयोग आगे के प्रमुख रासो मे हुआ है। पृथ्वीराज रासो मे दोहा, छप्पय गाहा, पाधडी, मौजीदाम, अडिल्ल आदि छन्दो का उपयोग हुआ है। इन्ही छंदो का उपयोग 'बुद्धरासो' मे हुआ है।[1] इन छन्दो मे दोहा घत्ता का स्थानापन्न है। छप्पय और छर्दनिका प्राय एक हैं। पाधरी पद्धरी है तो पद्धटिका का ही रूपान्तर है। इसमे दूहा अथवा दोहा और पद्धरिया अपभ्रंश के अवशेष है तथा छप्पय मे हिंदी तत्व विभासित है। इन सब मे वे तत्व विद्यमान हैं, जिनका जन्म लोक-मेधा मे हुआ तथा जिन्हे कवियो तथा साहित्यकारो ने पहले लोक-क्षेत्र मे रहकर अपनाया, फिर उन्हे शास्त्रीय दृष्टि से सस्कार प्रदान किया।

यहाँ एक बात यह ध्यान मे रखने के योग्य है कि छन्दो के नाम से साहित्य के रूपो का वर्गीकरण या नामकरण एक अद्भुत व्यापार है? किन्तु इससे भी पहले यह प्रश्न प्रस्तुत होता है कि छन्द का नाम पहले पडा या वस्तु के कारण छन्द ने नाम ग्रहण किया। लोक-साहित्य के सामान्य पर्यवेक्षण से यह विदित होता है कि बहुधा छन्द का नाम वस्तु के नाम पर रखा गया। आज लोक मे प्रचलित गीतो को लीजिये, ढोला, आल्हा, निहालदे, रसिया, होली, पँवारे, साके, एकानेक लोक-गीत अपने विषयो के नाम पर ही गीत के प्रकार को भी अभिहित करते हैं। ऐसे गीत साहित्यिक अभिव्यक्ति के अद्वैत को सिद्ध करते हैं। रूप, वस्तु और अनुभूति तीनो एक साथ एक दूसरे से

---

१. देखिए हिन्दी अनुशीलन वर्ष १० अङ्क १ जनवरी—मार्च १९५७ ई० प्रकाशन तिथि २५ मई १९५७ पृ० ५, डा० माताप्रसाद का निबन्ध—हिन्दी की परम्परा का एक विस्मृत कवि—जल्ह।

अविछिन्न ही अवतीर्ण होते हैं। लोक-गीतो मे आज भी यह तथ्य विद्यमान है, उसमे प्रत्येक गीत का अपना पृथक् राग होता है। चन्द्रावली का अपना राग है और वह चन्द्रावली राग ही है। 'विजरानी, भानजा, बनजारा, नटवा, ये सभी वर्ण्य विषयो के नाम हैं, पर प्रत्येक का राग निजत्व रखता है और वही नाम राग का भी कहा जा सकता है।

साहित्य के जिन रूपो मे ऐसे छन्दो और विषयो का तादात्म्य अथवा अद्वैत है, वे भी लोक-प्रवृति के प्रबलता के साक्षी हैं। अत ऐसे छन्दो के नाम मे साहित्य रूप का नामकरण तो समीचीन है, क्योकि छन्द और वस्तु मे रूप की रीढ वस्तुत वस्तु के विन्यास मे रहती है, हाँ छन्द उसका सहज साथी होता है।

साहित्य के जिन रूपो का नाम प्रधानत छन्दो पर ही निर्भर है, और जिन छन्दो के नाम से और विषय से कोई सम्बन्ध नही विदित होता, ऐसे छन्द-नाम कई विकास स्तरो मे से होकर प्राप्त होते हैं।

अद्वैत—रूप-वस्तु-अनुभूति समान महत्व

छन्द (शैली) विन्यास—वस्तु-अनुभूति। इस स्थिति मे वस्तु प्रधानता प्राप्त करती हैं, अन्य तत्व गौण हो जाते हैं।

विश्लेषण—छन्द (शैली)-वस्तु-विन्यास-अनुभूति इस स्थिति मे वस्तु अपनी महत्ता के कारण स्वतन्त्र सत्ता दिखाने लगती है। वह अपने सहज रूप से विलग होकर अन्य रूपो मे भी सम्मान पाती है।

शास्त्र—छन्द (शैली) विन्यास-बुध गिरा (वस्तु)-अनुभूति। इस अवस्था मे रूप-वस्तु अनुभूति के पृथक्-पृथक् अस्तित्व की मान्यता से प्रत्येक की परिभाषा होने लगती है। यही छन्दो का नामकरण छन्दो के नियम के अनुसार होने लगता है।

द्वैत—(लोक) ग्राम्य-गिरा

इस स्थिति मे स्वतन्त्र रूप से प्रवाहित लोक-गिरा अपने सहज छन्द के साथ तो रहती ही है, पर शास्त्रीय प्रभाव से वह अन्य छन्द का नाम ग्रहण करती है। क्योकि शास्त्र के लिए उसका और छन्द का महत्व ज्यादा है।

छन्दो के नाम से जो रूप प्रचलित हुए वे इसी स्तर पर आकर उस नाम के पात्र बने हैं।

इसी लोक-प्रवृत्ति का एक दूसरा उदाहरण प्राकृत और अपभ्रंश के नामो मे भी दिखायी पडता है। गाथा प्राकृत का पर्यायवाची है। इसकी व्युत्पत्ति

की श्रेणियाँ ये होगी गाथा-अद्वैत-छन्द+विषय+भापा अर्थात् प्राकृत भाषा मे गाथा नाम के छन्द मे गाथा विपय। विपय की प्रधानता हुई तो गाथा विषय को द्योतित करने लगी और उसके माध्यम के लिए गाथा के अतिरिक्त अन्य छन्दो का भी उपयोग किया जाने लगा। गाथा छन्द का महत्व कम होगया, प्राकृत मे गाथा की प्रधानता। अत प्राकृत-गाथा।

और जव प्राकृत को इस रूप मे गाथा कहा जा सकता है तो अपभ्रंश को उसी शैली मे क्या नाम दिया जाय। जैसे प्राकृत मे गाथा-प्रधान थी, वैसे ही अपभ्रंश मे दूहा अथवा दोहा प्रधान था। इस काल मे विपय वैभिन्य था, पर छन्द साम्य था। दोहे या दोहरे ही लिखे जाते थे। अत भापा रूप अपभ्रंश और दोहे अभिन्न होगये। हाँ, दोहे का नाम-ज्ञान 'शास्त्रीय' विकास के वाद रखा गया, पर लोक गिरा का अद्वैत तो रहा ही, इसलिए दोहे मे अपभ्रंश युग के वैशिष्टय का अद्वैत लोक-रूप खडा हुआ।

किन्तु 'रूप' के साथ उस रूप के ज्ञान अथवा टेकनिक का ज्ञान भी तो आता ही। रुप को रुप होने के लिए एक रूप-विधान अवश्य होना चाहिये। छन्द छन्द है। उसका समस्त विधान अक्षर और शव्दो की ताल मे रहता है। अत उसमे साहित्यिक रूप के उस विधान का आभास नही आ सकता जो समस्त अभिव्यक्ति की समग्र इकाई का विधान एक साथ वनता है। विश्लिष्ट अवस्था के उपरान्त जव शास्त्रीय चेतना छन्दो के साथ हो जाती है तो वह विधान तत्व और भी शून्य हो जाता है। क्योकि उसके वाद छन्द वस्तु, विपय, अनुभूति आदि से पृथक् एक निजी सत्ता का आकाक्षी हो जाता है। अत यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि साहित्य के उन रूपो को छोडकर जिनमे समस्त अभिव्यक्ति एक समान इकाई अथवा अद्वैत के रूप मे प्रस्तुत हुई है, 'छन्दो' के नाम पर साहित्य के रूप नही खडे किये जा सकते। अत ऐसे समस्त काव्य-रूप जो कवित्त, सवैये, छप्पय, कुडलियाँ, वरवै आदि के नाम से खडे हुए हैं, उनमे काव्य-रूप का कोई प्रमुख तत्व नही। ऐसे समस्त काव्यों का एक नाम तो 'मुक्तक' शास्त्रो ने दिया है, और उस 'मुक्तक' के सग्रह जब एक प्रकार के ही छन्दो मे ही विशेष रूप से हो तो वे छन्दो के नाम से अभिहित किये जा सकते हैं।

छन्दो के उपरान्त 'गीतो' के नाम पर काव्य-रूप मिलते हैं। इन गीतो की स्थिति भी छन्दो की भाँति का विकास प्रस्तुत करती हैं। रसिया, होली, अथवा फाग मे 'गीत' और वस्तु का तादात्म्य है। और वस्तुत इन रूपो का नामकरण उसकी वस्तुओ के कारण ही हुआ हैं। किन्तु आज वह गीत का अपना नाम होगया है, इसीलिए होली विषय का वर्णन यदि किसी अन्य गीत मे होगा

तो उस गीत को होली नही कहा जायगा। इसी प्रकार 'होली' राग मे होली वर्णन के अतिरिक्त भी कोई अन्य वर्णन होगा तो वह होली ही कहलायेगा। वस्तुत तो होली विषय और होली गीत मे अद्वैत ही है। होली के वर्णन की शोभा होली गीत मे ही है।

गीतो मे सामान्यत छन्दो से अधिक लोक-तत्व विद्यमान रहता है। गीतो मे वस्तुत. लोक का भावुक और मर्मी पन अभिव्यक्त होता है। एक-एक भाव-करण के लिए एक स्वतन्त्र गीत अवतरित होता हैं। इसकी लय और ताल लोक नृत्य के मौलिक रूप से अधिक सम्बन्धित होती है। मनुष्य के स्वाभाविक सङ्गीतो के द्वारा ये ताल की प्रधानता वाला अश जिस प्रकार छन्द का रूप ग्रहण कर लेता है, उसी प्रकार लय की प्रधानतावाला अश गीतो और रागरागिनियो मे परिणत होजाता है। छन्द जहाँ कथा जैसी प्रबधात्मकता या वर्णनात्मकता के लिए उपयोगी सिद्ध होता है, वही गीत भावोच्छ्वासो के लिए। गीतो मे जब गीतो का रूप, वर्णन से पृथक् अस्तित्व की आकाक्षा करने लगता है तब शास्त्र के हाथो पडकर सङ्गीत कला के बीज पडने लगते हैं, तथा ताल और स्वर के विविध सयोगो को राग-रागिनियो के नाम दिये जाते है। उसके नियम खोज लिये जाते हैं, और उनके अभ्यास की एक जटिल प्रणाली निर्धारित हो जाती है।

किन्तु इस शास्त्रीय प्रवाह के साथ लोक-प्रवाह निरन्तर रहता है। लोक-प्रवाह शास्त्रीय नियम और नाम की परवाह नही करता। अनवरुद्ध गति से वह गीत-रचना मे प्रवृत्त रहता है, जैसे छन्दो मे लोक व्यवहार और व्यापार प्रधान हो उठते हैं, वैसे ही गीतो मे भाव और विचार-विन्दु। अथवा, दूसरे शब्दो मे लोक अपनी आस्था को गीत से सिद्ध करता है। यही नही कि लोक-प्रवाह भी शास्त्रीय प्रवाह के साथ चलता है, गीत के शब्द लोक की आस्था को लिये हुए बहुधा लौकिक ही होते है, केवल उनकी स्वर-साधना मे सङ्गीत शास्त्र का उप-योग होता है, इसीलिए गीत के 'शब्द' पद कहलाते हैं, उनका राग कोई भी हो।

पद-साहित्य का इतिहास बतलाता है कि इसका जन्म लोक भाषा का लोक क्षेत्र था, और जिस सम्प्रदाय ने सबसे पहले लोक सम्प्रदाय अथवा लौकिक धर्म की प्रतिष्ठा का उद्योग किया उसने जहाँ लोक भाषा को अपने सम्प्रदाय का माध्यम बनाया, वही उसी लोक परम्परा से प्राप्त गीत अथवा पद को भी चुना। बौद्ध सिद्धो ने पदो को अपनाया, नाथो ने अपनाया, फिर सतो ने अप-नाया, इसी प्रकार आल्वारो, बाउलो ने पद गाये और उनकी परम्परा मे वैष्णव सन्तो ने इनमे अत्यन्त ही उत्कर्ष प्रकट किया। ये शास्त्रीय सौन्दर्य और

शास्त्रीय तात्विकता से अभिमडित हुए, लोक-वेद की खाई पाटने का काम किया गया। ये सभी सम्प्रदाय लोक-तत्वो पर पोषित हुए है, इन्होंने ही लोक-तत्वो को समन्वित करने का उद्योग किया, लोक की विजय वैजयती को विना झुकाये। इन लोक-सम्प्रदायो की वाणी, शब्द या सवद आदि नामो से अभिहित हुई। इनमें ही इन सम्प्रदायो के अग्रणियो ने अपने सिद्धान्तो की आध्यात्मिक अनुभूति प्रस्तुत की।

ये पद प्राय. दो वर्गों मे वँटे

१—निर्गुण वाणी तथा २—सगुण गान

और इन दोनो वर्गों में लोक की अनुकूलता निरन्तर वनी रही। एक ने लोक की आस्था को लोक परिभाषा और लोक विवेक के साथ सयुक्त करके गीतो को प्रचारित किया, दूसरे ने सगुण के आध्यात्मिक सौन्दर्य की मूर्त कल्पना को लोक भाव से अभिमडित कर दिया।

इन रूपो मे शैलीगत रूप भी दिखायी पडते हैं। वस्तु-विधान वाले रूप भी हैं, और सख्याओ की दृष्टि से भी नाम रखे गये है।

शैलीगत रूपो मे 'अखरावट' पर ध्यान जाता है। अखरावट अथवा अक्ष-रावृत स्वभावत शास्त्रीय प्रवृत्ति से सम्वन्धित है। अक्षर क्रम से अक्षरो को आदि में लेकर किसी चरण की अथवा छन्द की अथवा काव्य-खड की रचना करने में जिस क्लिष्ट मनोवृत्ति का उपयोग होता है, वह मूलत. शास्त्रीय विदित होती है। पर वस्तुत ऐसा नही। अखरावट जैसी रचनाओ के मूल मे शब्द ब्रह्म नही, अक्षर ब्रह्म की वह धारणा व्याप्त है जो आदिम मनुष्य के ऐनिमि-स्टिक पदार्थ-आत्म-तत्व से सम्वन्वित है, साथ ही जो उस अक्षर-आत्म मे अकारण रूप कार्यकारण परम्परा से किसी ऐसे तत्व की स्थिति मानती है जो उस अक्षर से आरम्भ होता है।

ना—नारद यह रोय पुकारा।

कि जुलाहे से मैं हारा। आदि।

'ना' का नारद से सम्वन्ध उक्त लोक तत्व से ही चरितार्थ हुआ है। इस प्रवृत्ति के फलस्वरूप 'अक्षरो' मे सजीवित आत्म-शक्ति का विश्वास प्रकट होता है। जो केवल अक्षर अथवा शब्द विपयक शास्त्रीय खिलवाड नही रह जाती। शैलीगत मे अनामिका और ढकोसला तथा मुकरी पर भी ध्यान जाता है। इन तीनों का जन्मदाता अमीर खुसरो माना जाता है। अमीर खुसरो का जन्म एटा मे हुआ था, वह जन्म से व्रज-क्षेत्र के थे। व्रज मे अनामिका और ढको-सला का एक प्रवल प्रवाह प्रवाहित है। यहाँ से अमीर खुसरो ने इन्हे लिया होगा। क्योकि इनमे अमीर खुसरोपन नही दीखता है।

विषय अथवा वस्तु के आधार पर खडे किये गये रूपो मे नहछू अथवा मगल विशेष रूप से द्रष्टव्य है। ये दोनो लोक-तत्व पर निर्भर हैं। 'नहछू' एक सस्कार है। उस सस्कार पर जो गीत गाया जाता है, वह 'नहछू' कहा जाता है। उसका गीत-रूप-नाम अभिन्न है। वह वस्तु भी पूर्ण लौकिक है।

मगल का सम्बन्ध विवाह से होता है। विवाह के अवसर पर ही यह मङ्गल गीत गाया जाता है। असस्कृत जातियो मे तो इस मगल गीत को ही मंत्र का स्थान मिला हुआ है। और उसमे दी गयी विधियो से ही भावरे पड जाती हैं।

इस प्रकार मगल गीत मूल मे लोक-प्रवृत्ति के ही परिणाम हैं। मङ्गल का दूसरा नाम 'व्याहुलो' भी है। यही स्थिति सोहर की है। 'सोहर या सोहिले' 'सोभर अथवा सौरिगृह' के गीत हैं जो सतान के जन्म के समय गाये जाते हैं।

सख्या के आवार पर 'रूप' वस्तुत मुक्तक के ही भेद है। क्योकि उनमें मुक्तक छन्दो पर मुक्तक विषयो पर रचना रहती है, पर छन्दो की सख्या वोध हो जाती है। जैसे पच्चीसी, शतक, रातसई, दशक आदि। इन सख्याओ का रूप विशेष से सम्वन्ध नही माना जा सकता। यह रूप विभाजन अथवा नामकरण कोई विशेष अर्थ नही रखता। केवल रचना की सख्या का ज्ञान कराता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट विदित होता है कि इस काल के प्राय॰ समस्त रूपो का मूल लोक-क्षेत्र मे था। इन रचनाओ का विषय भी लोक-वस्तु से लिया गया था और अनेक व्यक्त सिद्धान्त भी लोक-मानस से घनिष्ठत. सम्वन्धित थे। ऐसी अवस्था मे इस साहित्य के 'अलकरण' भी लोक-क्षेत्र से सम्वन्ध रखने वाले होने चाहिये।

अलंकार-विधान

मनुष्य की अभिव्यक्ति का प्रत्येक अङ्ग उसके अस्तित्व और जीवन-प्रवाह का एक अभिन्न अङ्ग होकर जन्म लेता है॰ वाद मे विश्लिष्टावस्था की ओर वढता है। क्योकि उसके अस्तित्व और जीवन के प्रवाह विस्तृत होते जाते हैं, घनिष्ठत्व फैलता है,विवेक वढता है,वुद्धि और विश्लेषण भी वढता है। तत्व-मूल अद्वैत ही विविध रूपो और अंशो मे प्रसारित होकर वहुत्व, विविधत्व, विभिन्नत्व, प्राप्त कर लेता है। अलङ्कार-विधान भी इस प्रक्रिया के अनुसार मूल अभिव्यक्ति मे अगागी भाव से अद्वैतेन प्रकट हुए।

सर्वप्रथम 'अह' ने जन्म लिया। अह अद्वैत जिसमे समस्त प्रपच इसी प्रकार सन्निहित थे, जिस प्रकार वीज मे विशाल वृक्ष। सव कुछ 'अह' या मैं।

आदिम मानव ने प्रथमावस्था मे पर-अपर मे अपने साथ केवल अपने अस्तित्व को ही देखा।

किंतु यह 'अह' द्वैत मैं परिणत हो चला। 'अह' घोपी मानव से प्रकृति के तत्व जूझने लगे। यह 'अह' वादी अपनी रक्षा और विस्तार अथवा भय और रति की मौलिक प्रेरणाओ से उद्वेलित होकर 'अह और पर' का अस्पष्ट भेद तो समझने लगा, पर 'पर' मे अह का पुट लगा ही रहा।

तव तीसरी अवस्था मे 'परत्व' स्थिर हुआ, पर 'अहत्व' का तत्व' सादृश्य' के साथ उसमे लगा ही रहा .

१—मैं और तू

२—मैं और यह

इन दोनो स्थितियो मे से पहली 'सादृश्य' का प्रथम रूप है। और 'दूसरा' 'दूसरा' रूप है। यही 'सादृश्य विधान' प्रवल हुआ। 'मुझ जैसा यह'। यह आदिम अनुभूति ही सभ्यता के विकास मे आगे चलकर केवल सादृश्याधार पर 'अलङ्कार' के रूप मे (उपमावर्ग के रूप मे) परिणत होगयी। इसका आदिम मनोवृति के सवसे अधिक निकट रूप 'रूपक' और रूपकातिशयोक्ति है। इस प्रकार के अलङ्कारो मे हमे चमत्कार प्रतीत होता है, या आस्था या क्या? क्यो ये अलङ्कार हमे प्रिय प्रतीत होते हैं?

सीता का मुख चन्द्रमा है,

मुख चन्द्रमा के समान है।

ऐसे कथन जव कहे जाते हैं तव हमारे मन की क्या गति होती है? शास्त्र-कार कहता है कि सादृश्य विधान मे चार तत्व होते हैं ·

१—वर्ण्य उपमेय

२—अवर्ण्य · उपमान

३—धर्म उपमेय उपमान मे सादृश्य के आधार का तत्व।

४—वाचक सादृश्य वोधक।

'सादृश्य वोध' की नृविज्ञान की दृष्टि से व्याख्या होजाती है, जैसा ऊपर वताया जा चुका है। विना नृवैज्ञानिक व्याख्या के 'सीता के मुख के चन्द्रमा' होने जैसे वाक्य के अर्थ ही समझ में नही आ सकते।

मुख सुन्दर है। ठीक।

चन्द्रमा सुन्दर है। ठीक।

किन्तु मुख चन्द्रमा की भाँति सुन्दर है यह कैसे? मनुष्य का सभ्यता के साथ विकसित वौद्धिक मानस इसे गम्भीरतापूर्वक स्वीकार कर सकता है? सादृश्य मे सहज आस्था और विश्वास आज मनुष्य को भी आदिम उत्तराधि-

कार के रूप मे मिले हैं। वह जब 'शास्त्रोपरि मानस' से पहले-पहल इस प्रकार के कथन को सुनता है तो उसमे सादृश्य के साथ 'मुख और चन्द्रमा' के मूलभूत अद्वैत की आस्था रहती है, और इस प्रकार वह मूल आनन्दानुभूति के उत्स के पास पहुँच जाता है, जहाँ विकसित बौद्धिकता तो पगु हो जाती है, मूल अस्तित्व से निसृत लहरें उसके मानस का स्पर्श करने लगती हैं तभी वह बौद्धिक गर्विष्ठता से जिस पर हँसता, उसी पर मुग्ध और आनन्द विभोर हो जाता है।

इसलिए उसकी सादृश्यानुवृत्ति मे, 'उपमेय-उपमान' मे सादृश्य बोध होते हुए भी तादात्म्य अथवा अद्वैत रहता है, और जिसे 'धर्म' कहा जाता है, वह वस्तुत. अप्रस्तुत ही रहता है। यह 'धर्म' तो आगे की जिज्ञासा-वृत्ति का समाधान मात्र है।

इस 'सादृश्याधार' के आगे के विकास इसी मूल आदिम वृत्ति की आदिम कार्य-कारण प्रवृत्ति के परिणाम हैं, और उसी के कारण हमे आनन्द प्राप्त होता है। वस्तुत 'अलङ्कार विधान' आनन्द का माध्यम है, चमत्कार का नही। चमत्कार तो केवल 'आश्चर्य' अथवा अद्‌भुत का जनक है, जो बौद्धिक पक्ष मे पृच्छा अथवा जिज्ञासा की ओर अग्रसर करके ज्ञान के आविष्कार-अनुसधान मे सहायक होता है, और भाव पक्ष में स्वय एक भाव बनकर रह जाता है। और यह निश्चय है कि अलकारो से जो चमत्कार साहित्यकार सभावित मानते हैं, वह मात्र आश्चर्य का भाव बनकर नही रह जाता। अत अलङ्कार में चमत्कार की स्थिति नही स्वीकार की जा सकती। काव्य में अलङ्कारो का प्रयोग काव्य के अन्तिम लक्ष्य 'अलौकिक आनन्द' के लिए ही होता है। इस अलौकिक आनन्द की मनोवैज्ञानिक व्याख्या नृविज्ञान के लोक-मानस की व्याख्या के सहारे ही की जा सकती है।

रुय्यक ने सादृश्य गर्भ या उपमागर्भ २८ अलङ्कार बताये हैं।

४—भेदाभेद तुल्य प्रधान

१—उपमा, २—उपमेयोपमा, ३—अनन्वय, ४—और स्मरण

८—अभेद प्रधान

६—आरोप-मूल—रूपक–परिणाम–सदेह–भ्रान्ति—उल्लेख और अपह्नुति

२ अध्यवसाय-मूल, उत्प्रेक्षा-और अतिशयोक्ति

१६—गम्यमान औपम्य

२—पदार्थगत—तुल्ययोगिता और दीपक

३—काव्यार्थगत --प्रतिवस्तूपमा, दृष्टान्त और निदर्शन

३—भेद प्रधान व्यतिरेक—सहोक्ति—और विनोक्ति

२—विशेषण वैचित्र्य समासोक्ति और परिकर

१—विशेषण विशेष्य वैचित्र्य . श्लेष

१—अप्रस्तुत प्रशसा (समासोक्ति के विरुद्ध होने के कारण)

१—अर्थान्तरन्यास (अप्रस्तुत प्रशसा का सजातीय होने के कारण)

३—पर्यायोक्त व्याज स्तुति और आक्षेप गम्यत्व वैचित्र्य युक्त होने के कारण इसी वर्ग मे रखे गये हैं।

ये महत्वपूर्ण २८ अलङ्कार 'सादृश्याधार' पर खडे हुए हैं, सादृश्य के साथ किस विशेषता के समाविष्ट होने पर एक नए अलङ्कार का जन्म होता है, यह उक्त व्यौरे से स्पष्ट हो जाता है।

कार्यकारण और विरोध मूलवाले अलङ्कारो की स्थिति मे यह लोक-मानसीय तत्व और भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

१—विरोध २—विभावना ३—विशेपोक्ति ४—सम ५—विचित्र ६—अधिक ७—अन्योन्य ८—विशेप ९—असगति १०—अतिशयोक्ति ११—व्याघात १२—विपम।

इन अलङ्कारो के नियोजन के मूल मे शास्त्रीय दृष्टि विलक्षणता मानती है, और विलक्षणता अथवा चमत्कार के कारण इनमे अलङ्कारत्व मानती है। किन्तु जिस नियोजन मे आस्था ही न होगी, उसे मन ग्रहण कैसे करेगा, और बिना मन-बुद्धि को ग्राह्य हुए किसी प्रकार की विलक्षणता अथवा चमत्कार का भाव ही कैसे उज्ज्वल हो सकता है? उदाहरणार्थ

हनूमान की पूँछ मे लगन न पाई आगि।
सिगरी लङ्का जरि गयी, गए निसाचर भागि।

इसमे इतनी बातें हैं

१—हनुमान की पूछ मे आग नही लग पाई।

२—उधर लङ्का समस्त जल गयी।

शास्त्रकार के मत से इसमे चमत्कार है, क्योकि

१—कारण तो उपस्थित हुआ नही, और

२—कार्य होगया।

अब शास्त्रकार से सीधा प्रश्न यह पूछा जा सकता है कि बौद्धिक चेतना में इस कथन के किस अश मे चमत्कार है, जबकि इसे बुद्धि ग्रहण ही नही कर सकती।

लङ्का के जलने के लिए हनुमान की पूँछ मे आग लगना आवश्यक है?

क्यो ? क्योकि लङ्का हनुमान की पूछ की आग से ही जली थी यह कथा का तथ्य है ।

किन्तु यहाँ हनुमान की पूछ मे आग लगी भी नही और लङ्का जल गयी । यह कैसे ? यह हो ही नही सकता ?

यदि यह लङ्का वही रावण की लङ्का है, और वहाँ हनुमानजी हैं, तो पूछ मे आग लगनी ही चाहिये ।

इस तर्क-प्रणाली से बुद्धि पहली ही बात को ग्राह्य नही करती, तो दूसरी को कैसे ग्रहण करेगी ? ऐसा कथन उपहासास्पद और मूर्खता पूर्ण माना जायगा, बौद्धिक चैतन्य से ।

तब इस रचना को पहली बार सुननेवाला क्या इस अर्थ को ग्रहण करके इसमे चमत्कार मानता है कि अरे, इतनी शीघ्रता हुई लका के जलने मे कि उधर तो पूँछ मे आग लगायी गयी, किसी किसी ने समझा कि अभी लगी ही नही, इतनी जल्दी लग कैसे सकती है, और उधर लङ्का जल भी गयी । इतनी त्वरा दिखाने के लिए यह कथन है । काम दोनो हुए पर बहुत त्वरा के साथ, कि उनमे कार्य-कारण का सम्बन्ध ही नही जाना जा सका । अब इतना बडा अर्थ स्पष्ट होने पर तो चमत्कार कुछ रह ही नही जाता । यह छल छल के रूप मे क्या चमत्कार दे सकता है ?

अत ऐसे कथनो मे अलकारत्व का तभी प्रतिपादन हो सकता है, जब यह माना जाय कि पद्य का पहला प्रभाव यह पडा कि —

१—हनूमान की पूँछ मे आग लगाने की तय्यारियाँ हुई ।

२—आग लगायी गयी ।

३—पर अभी आग पूँछ मे लग नही पायी थी ।

४—उधर लङ्का एक दम उमसे पहले ही जलकर राख हो गयी ।

ये चारो बाते हुई और यथार्थत हुई । इस कथन की प्रत्येक बात सत्य है और तथ्य है । इसे ही इस कथन मे हम आस्था का नाम देते हैं ।

इस आस्था के कारण ही दूसरा प्रभाव होता है—

ओह, यह तो बडे आश्चर्य की बात हुई ।

यह तो वस्तुत चमत्कार हुआ । केवल इसी विधि मे ऐसे वाक्यो मे अलङ्कार अभिप्रेत सिद्ध होता है ।

क्या यह विधि शास्त्रीय-मानस-प्रदत्त है ? बौद्धिकता से अथवा शिष्ट-विशिष्ट-सस्कार से मानस इस चमत्कार को न ग्रहण कर सकता है, न इस मिथ्यात्व को अलङ्कार मान सकता है । लोक-मानस अपने आदिम काल की

स्फुलिंग से इसको उक्त विधि से स्वीकार कर लेगा, उसके आनन्द को प्राप्त कर लेगा और तब बौद्धिक आक्रमण से उसके भाषागत छद्म को दूर हटाकर शैली की विचित्रता का भी अनुभव कर लेगा।

उक्त कथन में अनुभूति का जो सत्य प्रस्तुत हुआ है, बिना कारण के ही कार्य होने की अनुभूति का सत्य, वह कथन के रूप के साथ अद्वैत होकर ही आता है, और उसे लोक-मानस पूर्ण प्रत्यय से स्वीकार करके कवियो के ऐसे उद्योगो को सार्थक करता है।

इस दृष्टिकोण से यह यथार्थ सिद्ध होता है कि अलङ्कार-विधान का समस्त रूप ही लोक-वार्ता तत्व से सम्बन्धित है, बिना उस तत्व के अलङ्कारो की अलङ्कारिता ही समाप्त हो जायगी और काव्य की शोभा मे कमी आ जायगी।

यह प्रश्न किया जा सकता है कि क्या चमत्कार तक पहुँचने के लिए कोई और भी मार्ग है ? चमत्कार जब चमत्कार के लिए हो तो भी क्या उक्त आस्था की और उसकी पृष्ठभूमि के लिए लोक-मानस की अपेक्षा रहेगी ? क्या यह सिद्धात सभी प्रकार के अलङ्कारो के सम्बन्ध मे लागू होता है ? या इसके कुछ अपवाद भी हो सकते हैं ? शब्दालङ्कारो के लिए किस प्रकार की आस्था अपेक्षित हो सकती है ?

सेठ कन्हैयालाल पोद्दार ने लिखा है ·

“शब्द रचना की विचित्रता प्राय वर्णों और शब्दो की पुनरावृत्ति पर अवलंबित है। और अर्थ की विचित्रता विभिन्न प्रकार के अर्थ वैचित्र्य पर। ‘विचित्रता’ कहते हैं लोकोत्तर अर्थात् लोगो की चित्रभावेक–साधारण बोलचाल से भिन्न शैली द्वारा अतिशये (अत्यन्त बढकर) वर्णन किया जाना। कहा है श्री अभिनवगुप्त पादाचार्य ने—

“लोकोत्तरेण चैवातिशय अनया अतिशयोक्त्या—विचित्रतया भाव्यते” (ध्वन्यालोक लोचन व्याख्या पृ० २०८)

जैसे [१] वन गाय गैय्या के समान है, [२] क्या यह वन गाय है अथवा गैय्या ? [३] यह वन गाय नहीं किन्तु गैय्या है, [४] वन गाय मानो गैय्या है। यह वाक्य लोगो की साधारण बोलचाल मे कहे गए हैं, इसमे उक्त वैचित्र्य नही, जिससे कुछ आनन्द प्राप्त हो। अतएव इनमें अलङ्कार की स्थिति नही। यद्यपि इन वाक्यों मे क्रमश उपमा, सदेह, अपह्नुति, और उत्प्रेक्षा अलङ्कारो के लक्षणो का समन्वय हो सकता है। किन्तु यदि इन्ही उपर्युक्त वाक्यो के स्थान पर [१] मुख चन्द्रमा के समान है [२] यह मुख है अथवा चन्द्रमा [३] यह मुख नही किन्तु चन्द्रमा है। [४] मुख मानो चन्द्रमा है इस प्रकार वाक्य कहे जाएँ तो इन वाक्यो मे क्रमश उपमा, सदेह, अपन्हुति, और उत्प्रेक्षा

अलङ्कारो की स्थिति हो जाती है। क्यो ? इसलिए कि यह वाक्य साधारण वोलचाल मे नही कहे गए, इनमे लोकोत्तर अतिशय अर्थात् उक्ति वैचित्र्य है। इस प्रकार का उक्ति वैचित्र्य ही काव्य को सुशोभित करता है"।[1]

इसमे सेठजी ने प्रमाण सहित यह वतलाया है कि

१—सामान्य वोलचाल मे अलङ्कार होते ही नही, उस वोलचाल के वाक्य का रूप भले ही अलकार की भाँति का हो।

दूसरे शव्दो मे 'व्यवसायात्मक' वाक्यो मे अलङ्कार नही माना जा सकता।

२—जो वाक्य सामान्य वोलचाल के नही होते उनमे ही अलङ्कार प्रतिष्ठित होता है।

दूसरे शव्दो मे जो वाक्य व्यवसायात्मक नही, जो वाक्य जीवन के सामान्य व्यापार अथवा तथ्य मात्र का उल्लेख नही करते वरन् इनसे अन्यथा वृत्ति को अभिव्यक्त करते है, उनमे ही अलङ्कार प्रतिष्ठित होता है।

३—ऐसी अन्यथा वृत्ति को लोकोत्तर कह सकते हैं ? लोक के सामान्य धरातल से उत्तर अथवा ऊँचा या श्रेष्ठ।

४—ऐसी लोकोत्तर स्थिति मे एक अतिशय भी होना चाहिये। इस अतिशय से ही वैचित्र्य आता है।

इस समस्त कथन मे 'लोकोत्तर' और 'अतिशय' विशेष व्याख्या चाहते हैं। यह वन गाय गैय्या के समान है। और यह मुख, चन्द्रमा के समान है—इन दोनो मे पहले से दूसरे मे क्या लोकोत्तरता है ? यह कहना कि दूसरे वाक्य मे वोलचाल की सामान्य शव्दावली नही, वस्तुत' कुछ न कहने के वरावर है। क्यो सामान्य वोलचाल की शव्दावली नही ? वास्तविक वात यह है कि दूसरे वाक्य का विधान एक प्रकार के सौन्दर्य-विधान के लिए हुआ है। वह सौन्दर्य-विधान क्यो है ? एक किसी का मुख है, उस मुख पर सौन्दर्य लक्षित है। वह सौन्दर्य चन्द्रमा के प्रतीक से हृदयगम कराया जाता है ?

मुख का वर्ण्य होना लौकिक व्यापार नही ? किसी मुख के वर्णन की क्या आवश्यकता है ? फिर मुख के सौन्दर्य का वर्णन क्यो ? उसके लिए एक वेकार की चीज चन्द्रमा को प्रतीक रूप मे प्रस्तुत करना—ये सभी व्यापार ऐसे हैं जो सामान्य लोक-स्तर के लिए व्यर्थ, उपहासास्पद, और वस्तुत अर्थहीन हैं। इन्हे मनीषी लोकोत्तर कहते हैं। आश्चर्य ! चन्द्रमा मे सौन्दर्य एक

---

१. सस्कृत साहित्य का इतिहास—लेखक कन्हैयालाल पोद्दार (द्वितीय भाग) प्रथमावृत्ति सन् १६३८ पृष्ठ सख्या १०३-१०४।

तथ्य हो सकता है, मुख मे सौन्दर्य एक तथ्य हो सकता है। पर चन्द्रमा और मुख के सौन्दर्य को परस्पर तुलनीय करने से ही तो व्यर्थता आती है। अत इस प्रकार के मात्र कथन मे कोई चमत्कार नही हो सकता। इसके लिए मनो-वैज्ञानिक पृष्ठभूमि भी अनिवार्य है। 'मुख और चन्द्रमा' के तुलनीय होने मे विश्वास अथवा आस्था होनी ही चाहिये। यह आस्था लोक-मानस से ही सभव है, मनीषी मानस से नही। अत चमत्कार केवल उक्ति वैचित्र्य मे नही होता। विचित्रतापूर्वक कहने मात्र मे अलङ्कार नही, वह 'उक्ति' अपने वैचित्र्य के द्वारा जिस वैचित्र्य को प्रकट करती है, उस वैचित्र्य को भी यथातथ्य मानने से ही वैचित्र्य सिद्ध होता है। विना इसके 'वैचित्र्य मे' चमत्कार नही हो सकता। क्योकि आस्था के विना अनुभूति नही हो सकती, जो कविता का प्राण है।

'चमत्कार जव चमत्कार के लिए' हो तव भी उक्त आस्था के विना असभव है। चमत्कार 'चमत्कार के लिए' का अभिप्राय केवल यह है कि उस चमत्कार का उपयोग किसी अन्य पूर्ति के लिए नही हो रहा है। किन्तु चमत्कार स्वय कव चमत्कार प्रतीत होगा, विना मन की उस आस्था के जिसका उल्लेख किया जा चुका है। वह आस्था लोक-मानस की वस्तु है, मनीषी मानस की नही। हाँ, शब्द-चमत्कार अथवा शब्दालङ्कार के सम्वन्ध मे यह आभास होता है कि इसके लिए वैसी किसी आस्था की आवश्यकता नही। अक्षरो अथवा शब्दो की विशेष प्रकार की आवृत्ति अथवा उपयोग मे एक कौशल रहता है, वह कौशल स्वत चमत्कार पैदा करता है।

राधा के बर बैन सुनि चीनी चकित सुभाय।
दाख दुखी, मिसरी मुरी, सुधा रही सकुचाय॥

जहाँ तक इन चरणो के अर्थ का सम्वन्ध है आस्था की आवश्यकता है, किन्तु 'ब' 'च' 'म' 'र' 'स' इन अक्षरो की आवृत्ति से जो चमत्कार पैदा होता है, उसके लिए तो किसी मानसिक आधार की जरूरत नही, इनमे चम-त्कार प्रत्यक्ष है, इसके लिए किसी अन्य मानसिक प्रक्रिया की अपेक्षा नही होती। किन्तु यहाँ भी एक मौलिक प्रश्न उपस्थित होता है कि हमे ऐसे अक्षरो की आवृत्ति में किसी प्रकार का चमत्कार क्यो प्रतीत होता है? क्या इसलिए कि कवि ने कैसा कौशल दिखाया है कि ऐसे अक्षर इकट्ठे कर दिये हैं? नही। क्योंकि पहले हमें इनमे चमत्कार प्रतीत होता है, चमत्कार से चमत्कृत होकर कृतिकार पर ध्यान जाता है। फलत चमत्कार तो उन अक्षरो की आवृत्ति से स्वय स्फूर्जित है। अक्षर अथवा शब्दो की यह आवृत्ति क्यो प्रिय और चमत्कारक प्रतीत होती है? यह क्या केवल एक शरीर-विज्ञान का तथ्य

मात्र है या उसके पीछे भी कोई मानसिक संस्कार है। यदि कुछ और विश्लेषण करके देखा जाय तो यह विदित होगा कि

१—अक्षर अथवा शब्द की ऐसी आवृत्ति से वाक्य में एक तुलगति (Rythm) (रिद्म ताल) पैदा हो जाती है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि अलङ्कार-शास्त्र ने अनुप्रास के लिए, अक्षरावृत्ति के लिए स्थानावृत्ति को महत्व दिया है। और यह महत्व स्वभावत 'तुलगति' के कारण ही है। जहाँ अक्षरावृत्ति से 'तुलगति' (ताल) पैदा नही होती वहाँ चमत्कार नही हो सकता। तुलगति का लोक-मानस के आदि नृत्य से घनिष्ठ सम्बन्ध बैठता है। तुलगति से बौद्धिकता को चमत्कृत होने का कोई कारण नही।

२—अक्षर अथवा शब्द की आवृत्ति का लोक-मानस मे आदिकालीन सम्बन्ध है। क्योंकि मूल मानसिक प्रक्रिया मे यदि प्रथम इन्द्रिय ज्ञान पुन· प्रस्तुत हो, तो वह विशेष परिचित और विशेष निजी विदित होने लगता है। इसमे वह प्रिय लगने लगता है। यद्यपि बौद्धिक प्रक्रिया के लिए इस आवृत्ति मे कोई अर्थ नही होता, पर लोक-मानस का अपना आदिम दाय आज भी इसमे आनन्द अथवा चमत्कार अनुभव करता है। यह आवृत्ति तुलगति (रिद्म) के साथ उसको और भी अधिक आल्हादक हो जाती है।

३—लोक-मानस के आदिम संस्कारो मे अक्षर अथवा शब्द के प्रति एक टोने जैसी आस्था थी। किसी अक्षर अथवा शब्द की बारबार की आवृत्ति मे उसे मंत्र जैसी आस्था रहती है, वह चाहे कितनी ही क्षीण क्यो न हो, कितनी ही दुर्बल क्यो न हो? इस कारण भी उसे ऐसी आवृत्ति मे एक विशेष उपलब्धि का आनन्द मिलता है। किसी विशेष नाम को बार-बार जपने मे भी यही आस्था काम करती है।

इन तत्वो के अतिरिक्त इन शब्दालङ्कारो मे ऐसे चमत्कारो को और कैसे सिद्ध किया जा सकता है? और इन सब तत्वो का सम्बन्ध मानस की लोक-वार्ता तत्व विषयक पृष्ठभूमि मे है।

अत अलङ्कार का अस्तित्व जिन तत्वो के आधार पर होता है, उनमे लोक-मानस की पृष्ठभूमि सदैव उपस्थित रहती है।

मनुष्य की समस्त सत्ता और जीवन-प्रवाह 'वर्तमान' को मध्य बिन्दु मानकर भूत और भविष्य के दो स्तम्भो पर खड़ा हुआ है। 'वर्तमान' केवल अपने अस्तित्व को प्रामाणिक मानता है, शेष दो को अप्रामाणिक। क्योंकि ये दोनो

अप्रत्यक्ष हैं। पर 'भूत' तो 'वर्तमान' मे होता हुआ ही भूत बना है। पर आज सत्ताशील न होने के कारण ही वह अप्रामाणिक होगया है। पर किसके लिए? यह अप्रामाणिकता केवल उस व्यक्तित्व के लिए है जिसकी समग्रता वर्तमान से ही सबद्ध है। यह व्यक्तित्व 'चेतना-मानस' के बौद्धिक व्यापार मे ही समग्रत ओत-प्रोत है। अत इतना वर्तमान-निष्ठ व्यक्तित्व ही भूत और भविष्य को अप्रामाणिक मानता है। पर मनुष्य का अवचेतन मानस पिछले वर्तमानो की अप्रामाणिकता का सग्रह है। वह कितने ही रूप मे अपने व्यक्तिगत भूत को भी सुरक्षित रखता है, और दाय के रूप मे अपने पूर्वजो की परम्परा के तत्वो को भी सुरक्षित रखता है, और इस भूत के कारण ही भविष्य के प्रति भी आस्थावान बन जाता है, क्योंकि 'वर्तमान' से हटने पर 'भूत और भविष्य का अन्तर महत्वहीन हो जाता है। वर्तमान के अतिरिक्त शेप समस्त अनुभूतियां 'अवर्तमान' ही होती हैं। अत. चेतन मानस के लिए ययार्थत. उनका एक ही दर्जा है। यही कारण है कि यह भूत ही वर्तमान को लाँघकर भविष्य का स्वरूप ग्रहण कर लेता है। जब तक हमारा चेतन मानस 'वर्तमान' मात्र से सम्बन्धित रहता है तब तक वह व्यवसायिक रहता है, तब तक वह अलोकोत्तर होता है। 'वर्तमान' से हटकर चेतन मानस जब मानस के अन्य पर्तों से किसी प्रकार की प्रेरणा ग्रहण करता है, तो हम उसे 'कल्पना' का सहारा लेते हुए मानते हैं, और उस प्रेरणा की उपलब्धि ही लोकोत्तर होती है। इस 'लोकोत्तर' उपलब्धि का रहस्य मूलत लोक-मानस से ही सबद्ध है। लोकोत्तर की सीधा परिभाषा यही है कि जो उपलब्धि हमे प्रवहमान-वर्तमान से सबद्ध चेतना से मुक्त करदे, वही लोकोत्तर है। प्रत्येक कला इसी की सिद्धि के लिए जन्म लेती है। लोकोत्तरता घनिष्ठ रूपेण लोक-तत्व के मूल संस्थान से सम्बन्धित है, यह इस विवेचना से सिद्ध है।

छन्दो और अलङ्कारो मे लोक-तत्व, लोक-वार्ता और लोक-प्रवृत्ति का हिन्दी मे यही रूप मिलता है।

वस्तु के सम्बन्ध में पहले अध्यायो मे चर्चा हो चुकी है। किन्तु यहाँ एक विषय का उल्लेख कर देना आवश्यक हैं। ब्लूमफील्ड ने कथानक रूढियो अथवा अभिप्रायो का अध्ययन करते हुए कई निबन्ध लिखे हैं। उनमे उन्होंने यह लिखा है कि

"हिन्दू कथाओ मे घटनाएँ भरी पडी हैं। ये, नियमत अन्य कहानियो से झपटी हुई घटनाओं की पुनरावृत्ति है, और ये विशेपत सुनिश्चित और प्रयोग-सिद्ध कथानक रूढियो की लम्बी परम्परा पर निर्भर करती

हैं।'[1] एक दूसरे स्थान पर वे लिखते हैं—

हिन्दू कथाएँ आधुनिक काव्य मे लोक वार्ता के रूप मे प्रसारित हो रही हैं।—नि सन्देह इन पुस्तको मे विविध हिन्दू मनीपी (classic) साहित्य की पुरानी कहानियो की ही अधिकाशत गूँज है।

यह अत्यत ही सन्देहास्पद है कि इनमे स्वतन्त्र प्रकार की भी सामग्री है, अर्थात् ऐसी भी कहानियाँ इनमे हैं जो पुरानी मौलिक है और जो केवल मौखिक परम्परा मे ही जीवित है, और जो कभी किसी हिन्दू भाषा मे नही लिखी गयी।[2]

ब्लूमफील्ड ने यह कथन कुछ अद्भुत रूप से किया है। इसका अभिप्राय सीधे शब्दो मे यह है कि लोक-कथाओ मे जो कथानक रूढियाँ अथवा कथाश मिलते हैं, वे सभी मनीपी परिनिष्ठित साहित्य से लिये गये है फिर इस सीधी सी बात मे एक घुमाव देकर वे यह कहना चाहते हैं कि ऐसे अभिप्राय, होसकता है, कभी स्वतन्त्र रहे हो पर आज उनकी स्वतत्र मौलिक परम्परा नही मिलती। वे हिन्दुओ की किसी न किसी भाषा मे परिनिष्ठित साहित्य मे अवश्य सम्मिलित हो चुके हैं। इनमे उन्होने इस सभावना को एक प्रकार से स्वीकार कर लिया है कि किसी भी भारतीय भाषा मे लिखे जाने से पूर्व वे अभिप्राय भले ही मौखिक रूप मे लोक-वार्ता की मूल सृष्टि के रूप मे प्रचलित रहे हो, पर आज तो उनका प्रत्येक अभिप्राय परिनिष्ठित साहित्य की जूठन ही है।

ब्लूमफील्ड ने वाद मे जिस सभावना को स्वीकार किया है, वह यथार्थ है। कितने अभिप्राय ऐसे हैं जो विश्व के अनेको भागो मे आज भी मौखिक रूप मे प्रचलित हैं। फिर वृहत्कथा अथवा वड्डुकहा का प्रमाण है। वह शिवजी से मौखिक सुना गया है। गुणाढ्य ने घोर जगल मे बैठकर वह कथा सग्रह लिखा। निश्चय ही वृहत्कथा लोक-कथाओ का एक व्यवस्थित सग्रह है। धनपाल ने लिखा है कि वृहत्कथा अन्य कथा-ग्रन्थो के लिए एक स्रोत का काम देती है। गोवर्द्धन ने गुणाढ्य को वाल्मीकि और व्यास के साथ आदर के साथ नमस्कार किया है। उसके मत से तो स्वय व्यास ही गुणाढ्य के रूप मे पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए है।

महाभारत की रचना के सम्बन्ध मे व्यासजी ने जो लिखा है, उससे भी यह सिद्ध होता है कि वह अनुश्रुतियो और लोक-वार्ता मे सकलित किया गया है। यो उसमे स्थान स्थान पर ऐसी कहानियो का भी सकेत है जो मौखिक रूप

१—जर्नल आफ अमेरिकन ओरियण्टल सोसाइटी, वोल्यूम ४० पेज १८।

१—जर्नल आफ अमेरिकन ओरियण्टल सोसाइटी, वोल्यूम ३६ पेज ५०-८६।

से प्रचलित थी और जहाँ तहाँ उदाहरण और दृष्टान्त के लिए काम मे लायी जाती थी। जैसे नलोपाख्यान। सर जार्ज ग्रियर्सन ने लिखा है कि

"कुछ ऐसे विद्वान हैं (जिनमे वे स्वय भी हैं) जो यह विश्वास करते हैं कि सस्कृत साहित्य ने प्राकृतो से जितना अधिक लिया है, उतना स्वीकार नही किया जाता है। यहाँ तक कि महाभारत ने भी पहले लोक महाकाव्य (Folk epic) के रूप मे प्राकृत मे किसी पहले की परम्परा से नाम ग्रहण किया। उससे सस्कृत मे लिया गया। संस्कृत मे उसे परिष्कृत किया गया। उसका सवर्द्धन किया गया और उसी मे उसे अन्तिम रूप मिला"[१]

इन समस्त प्रमाणों से यह सम्भावना पुष्ट होती है कि महाभारत भी लोक-कथा के रूप मे प्रचलित था। रामायण के सम्बन्ध मे हम आधुनिक अनुसधानो का परिणाम पहले लिख ही चुके हैं। अत भारतीय कथा साहित्य के समस्त स्रोतो का मूल स्रोत लोक-वार्ता मे ही विदित होता है। अत प्रत्येक अभिप्राय का जन्म लोक-क्षेत्र मे ही हुआ था, और वे अभिप्राय अथवा कथानक रूढियाँ अपने स्वभाव के अन्दर भी लोक-मानस का तत्व छिपाये हुए हैं।

रीतिकाल से पूर्व तक का हिन्दी साहित्य लोक क्षेत्र से घनिष्ठ रूपेण सम्बन्वित था। उस काल से पूर्व की प्राय समस्त साहित्यिक निधि लोक मे मौखिक रूप से सुरक्षित सामग्री मे से सकलित की गयी थी। और ऐसी महान प्रतिभाओ ने उन्हें परिनिष्ठित क्षेत्र मे स्थापित करने की चेप्टा की जो स्वय लोक-क्षेत्र के अश थे, जिनमे समस्त पाडित्य लोक-क्षेत्र के प्रवाह मे से ही मिला था।

कबीर, जायसी, सूर, तुलसी सभी ऐसे थे जो मुहाविरे की दृष्टि से 'मसि-कागद' नही छूते थे। जिनके व्यक्तित्व का समस्त मौलिक निर्माण लोक-प्रवाह मे हुआ था। इन और इनकी परम्परा के सभी कवियो की स्थिति लोककवियो की स्थिति थी। इनके काव्य के समस्त ताने-वाने मूलतः लोक के ताने-वाने थे। उस पर कभी कहीं कही मनीषा परिष्कार किया गया।

१—There are some scholars (including the present writer i. e. G. Grierson) who believe that Sanskrit Literature owes more than is generally admitted to works in the Vernacular and that even the Mahabharat first took its form as a folk epic in an early Prakrit, and was subsequently translated into Sanskrit, in which language it was further manipulated, added to and recieved its final shape (Ency. Britt. Vo. XXII, p. 253)

कबीर ने मसिकागद छुआ ही नही था। सूर अघे थे, वे मसिकागद छूते ही क्यो ? उनका भाषा-कोष लोक-भाषा का कोष था। उन्हे महाप्रभु वल्लभाचार्य ने वल्लभ-सम्प्रदाय मे दीक्षित किया, और तब उन्हे स्वयमेव समस्त भागवत-लीला स्फुरी। कोई भी सूर का पाठक यह जान सकता है कि लीला की प्रेरणा भागवत से हो भी सकती है, पर अधिकाशत· तो उसका जो लोक मे प्रचलित सूत्र था वह सूर के हाथ लगा और उसे ही उन्होने लोक-वाणी मे प्रस्तुत कर दिया।

तुलसी ने 'रामकथा' अपने गुरु से शूकर खेत मे सुनी थी। उसी सुनी कथा के आधार को लेकर बाद मे निगमागम पुराण तथा अन्य से उसे पल्लवित-पुष्पित किया।

अत सन्त सम्प्रदाय, कृष्ण सम्प्रदाय, राम सम्प्रदाय, और प्रेम गाथा प्रभृति सभी का साहित्य लोक-भूमि के अत्यधिक निकट है। यही कारण है कि आइने अकबरी की साहित्य की परिभाषा मे न तो इन महापुरुषो के काव्य आते थे, न इनकी कृतियो को साहित्य-ग्रन्थो मे उसने समाविष्ट ही किया।

———

सातवाँ अध्याय

लोक-विश्वास

हिन्दी साहित्य के उपरोक्त विवेचन से यह तो सिद्ध हो ही चुका है कि हिन्दी साहित्य ने लोक भाषा, लोक तत्व, लोक साहित्य से कई शताब्दियो तक घनिष्ठ सम्बन्ध बनाये रखा। हिन्दी साहित्य मे वस्तुत शास्त्रीय दृष्टिकोण सत्रहवीं शताब्दी में ही पनपा, उसमे भी लोक साहित्य से सम्पर्कित धारा निरन्तर प्रवहमान रही। लोक-साहित्य ने हमारे इस साहित्य को किस प्रकार कितना प्रभावित किया, यह अब विचार का विषय नही रह गया। किन्तु इस समस्त विचारणा के साथ जब हम यह देखते हैं कि हिन्दी साहित्य के इन युगो मे लोक विश्वास[२] जो लोक वार्ता और लोक गाथा की आधार शिला हैं, कितने गहरे पैठे हुए हैं, तो आश्चर्य होता है। यहाँ हिन्दी साहित्य मे, इस काल मे लोक विश्वासो की क्या स्थिति थी, इसका विश्लेषण करना है।

सुविधा की दृष्टि से लोक विश्वासो को तीन श्रेणियो मे विभाजित किया जा सकता है।

१—धर्म सम्बधित लोक-विश्वास।

२—इन्डियन मिथ एण्ड लीजेण्ड्स मे मेकेन्जी ने प्रीफेस मे लिखा है

All mythologies have animistic bases, they were to begin with systematised folk belief which were carried hither and thither in various stages of development by migrating and trading people. (P VII)

२—समाज सम्बन्धित लोक-विश्वास ।

३—व्यक्ति सम्बन्धित लोक-विश्वास ।

किन्तु वास्तविक बात यह है कि ऐसे लोक विश्वासो को उक्त रूप मे विभाजित नही किया जा सकता। क्योकि उसका प्रत्येक विश्वास उसकी धार्मिक आस्था है, भले ही वह उसमे कर्म धर्म न समझता हो। उस विश्वास का सबध किसी न किसी प्रकार की अभिव्यक्ति से होगा ही, और प्रत्येक अभिव्यक्ति का सम्बन्ध, समाज, व्यक्ति और उनकी परम्परा से भूत, वर्तमान, भविष्य तीनो कालो के लिए अभिप्रेत होता है ।

हाँ, ये विश्वास ऐतिहासिक क्रम से प्रस्तुत किए जा सकते हैं, किन्तु यहाँ भी वास्तविक कठिनाई आती है। ये विश्वास इतिहास के जिस युग मे पहले-पहल उदित हुए, उस युग की सामग्री आज कहाँ है। जिन्हे भी हम लोक विश्वास कहते हैं, उनका आदिम मूल प्रागैतिहासिक है। फलत सभी विश्वासो को ऐतिहासिक क्रम से विभाजित करके प्रस्तुत नही किया जा सकता।

अत यहाँ पर विना किसी वर्गीकरण का प्रयत्न किये लोक-विश्वासों और उन पर कुछ विचार देने की चेष्टा की जा रही है।

देवी-देवता फल प्रदान करते हैं, इस विश्वास का मूल आदिम टोने मे है। टोने का सिद्धान्त ही है कि विशेष अनुष्ठान से किसी शक्ति को वश मे करके अपने मन की अभिलाषा पूरी करा लेना। यह (magic) टोना धर्म का मूल वीज है। आर्यों का 'धर्म' का स्वरूप पूर्णत स्थिर हो गया है। फिर भी उसमे 'यज्ञ' से किसी फल की याचना का प्रश्न नही। यज्ञ देवताओं को सन्तुष्ट करने और प्रसन्न करने के लिए किये जाते हैं। किन्तु राम-कथा मे स्वय यज्ञ-देवता 'चरु' लेकर निकलते हैं, उस 'चरु' के पदार्थ से गर्भ रहता है और सन्तान पैदा होती है। वह यज्ञ किया ही गया था पुत्र प्राप्ति के लिए। दशरथ का यह पुत्रेष्टि-यज्ञ सभवत वैदिक के साथ लोक-धर्म के टोने के विश्वास का प्रथम मेल-जोल है। देवी-देवताओं की मान-मनौती सूरदास ने यशोदा के द्वारा बतायी है, वह बिल्कुल लोक-विश्वास की चीज है। देव>यज्ञ>यज्ञ-पुरुष>यज्ञ-पुरोहित >ऋद्धि>सिद्ध>नाथ>गुरु। यह एक वीज के विकास का स्वरूप है, उसमे यह स्पष्ट है कि शनै शनै. लोक-तत्व प्रबल होता गया है, वैदिक तत्व उसी क्रम से कम होता गया है। यज्ञ-पुरुष ने 'चरु' दिया।

सिद्ध	पुरुष ने फल दिया।
नाथ	भभूत दी।
गुरु	आशीर्वाद दिया।

इस समस्त व्यापार में 'अशाशी' सम्बन्ध से टोने का भाव विद्यमान है। 'चरु' अग्नि अथवा यज्ञ के द्वारा देवताओं का अंश ही 'चरु' के पदार्थ के रूप में प्राप्त होता है। 'फल' सिद्ध पुरुष के स्पर्श से उसका अंश रूप हुआ। 'भभूत' शरीर पर रहने से, अथवा चुटकी के स्पर्श से उसी महत्व को पा सकी। आशीर्वाद शब्द-रूप में वक्ता का अंश है। इसमें पदार्थ-प्राणता से सम्बन्धित ऐनिमिस्टिक (animistic) तत्व विद्यमान है। पदार्थ में उसके अंशी का प्राण अथवा आत्म-तत्व रहता है और उसके द्वारा वह अन्यत्र प्रेषित किया जा सकता है। चरु<फल<भभूत<आशीर्वाद।

यह क्रम भी एक विकास को ही सिद्ध करता है। लोक-वार्ता से यज्ञ के साथ 'चरु' का संयोग हुआ। 'यज्ञ' संस्कृति का आनुष्ठानिक रूप समाप्त हुआ तो यज्ञ के गुण पुरोहित अथवा ऋषि में संक्रमण कर गये। सिद्ध अथवा ऋषि बहुधा जंगलों में ही मिलते हैं। चरु के प्रसाद ने यहाँ फल का रूप लिया। ऋषि संस्कृति के वातावरण में यह फल 'जौ' या 'अक्षत' का रूप ग्रहण कर लेता। किन्तु तपस्वियों और योगियों के साथ धूनी भी होती है। धूनी एक अर्थ में 'यज्ञ' की ही स्थानापन्न (Substitute) है। अग्नि से संबंध स्थापित करने का माध्यम। भभूत में जहाँ 'अशाशी' टोने का भाव है, वहीं 'बलि' के 'प्रसाद' का भी भाव है। बलि दिये हुए पदार्थ के किसी 'अंश' को ले जाकर खेत में गाड़ देने से, आदिम मानव विश्वास करता है कि, उसकी ऊर्वराशक्ति बढ़ जायगी। भभूत उसी प्रकार 'उर्वरत्व' प्रदान करता है। उसी प्रकार 'आशीर्वाद' के 'शब्द' के साथ 'मन्त्र' का भाव भी प्रस्तुत होता है।

देवी-देवता के मूल बीज आदिम मानव की उस अनुभूति में थे जिसमें वह एक ऐसे अस्तित्व में आस्था करने लगता है जो उसकी चाह की पूर्ति करता है। उसे ढङ्ग से वश में किया जा सकता है। इसी 'अस्तित्व' ने अनेकों रूपों में देवी-देवताओं को खड़ा किया। इस चक्र से सृष्टि के चाहे जिस व्यापार में देवी-देवता के दर्शन किये जा सकते हैं।

रामचरित मानस में सीताजी गौरी पूजा के लिए गयी हैं। "खसी माल मूरति मुस्कानी" देवी द्वारा फल-प्राप्ति का संकेत है।

देवी देवता फल ही नहीं प्रदान करते रक्षा भी करते है।

देवी-देवताओं और मनुष्यों में आदिम मानस भेद नहीं करता। उसे दोनों

के व्यापार एक से विदित होते हैं। फिर भी वह देव को देव समझता है, और मनुष्य को मनुष्य। यह बात हमे साहित्य मे स्पष्ट दिखायी पडती है। शिव और पार्वती मे देवताओ का यह आदिम स्वरूप आजतक सुरक्षित है। ये ठीक मानव की तरह जहाँ तहाँ विचरण करते, और मानवो से बोलते-चालते, उन्हे कष्टो से मुक्त करते प्रतीत होते हैं। ये मनुष्य के साथ युद्ध भूमि मे भी उतर पडते हैं। सरस्वती देवी देवताओ के कहने से मथरा की बुद्धि को उलटा कर गयी। इन्द्र छद्म रूप मे अहल्या को छलते हैं। बडे देवता ही नही स्थानीय देवताओ का भी ऐसा ही रूप है।

वन देवी वन देव उदारा।
करिहहि सास ससुर सम सारा।

किसी देवता की कहानी या चरित का पाठ एक विशेष महत्व रखता है। इसमे यह मान्यता है कि ऐसा पाठ देवता को प्रसन्न करता है और उससे देवता वश मे होता है, और वह वहाँ प्रस्तुत होजाता है। रामकथा के साथ तो दुगने लाभ हैं। राम तो प्रसन्न होते ही हैं, और वश मे होते ही हैं, पर हनुमान जी भी साथ मे कथा सुनने के लिए आ उपस्थित होते हैं। रामकथा की समाप्ति पर प्राय यह कहा जाता है—

कथा समापत होत है, विदा होउ हनुमान।

'रामचरित मानस' के साथ कथा का माहात्म्य भी कहा जाता है। वास्तविक बात यह है कि "रामकथा" बैठाने और सुनने के जितने भी आयोजन होते हैं, उनमे कथा सुनने से प्राप्य फल का ही विशेष महत्व रहता है, कथा के मनोरजन से श्रोता को उतना सबध नही रहता। रामचरित मानस मे जो विविध श्रोता-वक्ताओ का चक्र बताया गया है, उसमे यही रहस्य है। यह सवाद के रूप मे किसी कथा को कहना इस युग से पूर्व से एक 'अभि-प्राय' या कथानक रूढि भी था। उस रूढि का पालन भी कथा ग्रन्थो मे हुआ है, पुराणो मे भी इसी परपरा का पालन है, और पुराणो का लोक-वार्ता रूप सिद्ध है।[1]

किसी व्यक्ति या देव की कथा या जीवन वृत कहने सुनने से उसे ही प्राप्त करने मे पूर्णत आदिम लोक-मानस का तत्व काम कर रहा है।

आदिम स्थिति मे वह चरित यथार्थत घटित हुआ। चरित-नायक वीर पुरुष है, किसी समूह विशेष का पति है, उसकी मृत्यु के उपरात उसको, उसके बल को उसके तत्व को कैसे पाया जाय? इसके लिए उसके चरित्र का

१—देखिए—The Purana India by V. R. Ramcharan Dikshitar, Introduction page VIII

रूपक के रूप मे अनुकरण या अभिनय किया जाय। यह देव या वीर विशेष की चरित्र-लीला एक अनुष्ठान (ritual) ही था। देव और वीर मे आदिम स्थिति मे अन्तर नही रहता था। प्रा० मास्पेरो [1] ने मिस्र के सबध मे टोने पर विचार करते समय यह बताया है कि देवता से अपनी मनचाही कराने के लिए उसे वश मे करना ही होता था, और वश मे करने के लिए कुछ अनुष्ठान, बलियाँ, प्रार्थनाए और मत्रो का उपयोग करना होता था, जो स्वय देवता ने ही प्रकट किये थे। इनसे उसे वश मे करके मनचाहा काम कराया जा सकता था। यह फ्रेजर द्वारा उद्‌घाटित होम्योपैथिक मैजिक (सादृशक टोने) से सबधित है।[2]

इस प्रकार अभिनय न हो सकने पर उसके मानसिक प्रत्यक्षीकरण से ही यह परिणाम सिद्ध हो जाता है। यह मानसिक प्रत्यक्षीकरण ही कथा कहने या सुनने का स्थान ग्रहण कर लेता है। इसीलिए कथा द्वारा राम या कृष्ण जहा दैत्यो या असुरो का संहार करते होते हैं, वहाँ वे श्रोता के भी वैसे ही शत्रुओ का सहार करते होते हैं। अत 'चरित' पाठ से न केवल उस पुरुष की प्राप्ति होती है, वरन्, ऐसे प्रकट-अप्रकट सकट भी टल जाते हैं। इसीलिए राम-लीला और रामकथा या अन्य कथाओ के पाठ का प्रचलन हुआ है। राधावल्लभी सप्रदाय मे राधाकृष्ण की सयोग लीलाओ को काव्य के माध्यम से तन्मय होकर प्रत्यक्षीकरण करने का अर्थ है, उन सयोगों के आनन्द को स्वय उपलब्ध कर लेना। यह केवल मानसिक क्रिया नही, यह इसी 'सादृशक टोने' की आदिम प्रवृत्ति से उपलब्धि का यथार्थ प्रयत्न है।[3]

कीर्तन और नाम के सबध मे भी यही आस्था है।

उलटा नाम जपत जग जाना,
वाल्मीकि भये ब्रह्म समाना।

१—The Golden Bough I Volume, abridged edition, Newyork 1953 page 61

२—देखिए वही पृष्ठ १३—"Homeopathic magic is founded on the association of ideas by similarity. Homeopathic magic commends the mistake of assuming that things which resemble each other are the same."

३—लोक-वार्ता क्षेत्र मे आज भी ऐसे कथा चरित हैं, जिन्हें गाकर देवता का आह्वान किया जाता है। कथा आकर्षक होती है, फिर भी इसका वहाँ कोई महत्व नहीं। इसका गायन केवल आनुष्ठानिक रूप से होता है, और देवता को विवश होकर आना पड़ता है उदाहरण जाहरपीर

यह तुलसी ने लिखा, वाल्मीकि ब्रह्म के समान क्यो हो गये। क्योकि 'नाम' से 'नामी' पर अधिकार किया जाता है। 'नाम' नामी का वह मौलिक तत्व है जिसकी उस नामी से अभिन्नता है।[१] अत 'नाम' एक मत्र का काम देता है। यह कहा जा सकता है कि मत्र की स्थिति स्वीकार करने मे टोने के अस्तित्व को तो मानना ही होगा, यह भी मानना होगा कि यह देवता को आधीन करने का साधन है, अपनी मोक्ष का नही। साहित्यकार और दार्शनिक राम-नाम के जाप के द्वारा ब्रह्मत्व पाना चाहता है, ब्रह्म को अपने वश मे करना नही चाहता। 'नाम' के इस जाप से जपी ब्रह्म की ओर जाता है, ब्रह्म जपी की ओर नही आता। यह जपी की योग्यता वढाता है, ब्रह्म पर प्रभाव नही डालता। वास्तव मे यह उसी मूल भाव का विपर्यय है, जो मनीषी मेधा के शील ने प्रस्तुत किया है। अन्यथा किसी "नाम" के जपने से जपी मे कोई परिणति कैसे सिद्ध हो सकती है? यदि इस सिद्धान्त को मानने का ही आग्रह हो तो इसकी भी व्याख्या लोक-मानस से ही होगी, वह इस क्रम से

'नाम' जाप से 'नामी' पर अधिकार
नामी - ब्रह्म - आत्मा - आप
आप - जापी - यहाँ अद्वैत सिद्धान्त है।

अत नाम मे ब्रह्म को वश मे किया जाता है, उस ब्रह्म को जो जापी के साथ अद्वैत है, पर जो आभासित नही। नाम जाप से वही ब्रह्म जापी मे से धीरे धीरे वश मे होता हुआ, जापी को ही पूर्ण ब्रह्ममय वना देता है।

इसी लोक मनोभूमि के कारण भक्ति के इस नवोत्थान मे प्राय प्रत्येक संप्रदाय ने 'नाम' को महत्व दिया है।

नाम के साथ ही कीर्तन है। वस्तुत जैसे 'मत्र' के विकास मे हमे यह दिखायी पडता है कि लवी मत्रावली को लघुतर करने के प्रयास हुए हैं, उसी प्रकार 'कथा' से 'नाम' तक आने की भी प्रयत्न परपरा है। कथा वहुत समय सापेक्ष्य है, 'कीर्तन' उससे कम समय चाहता है, 'नाम' सवसे कम। कथा मे कहने से अधिक सुनने का महत्व है।

कथा, कीर्तन तथा नाम, तीनो मे शब्द का महत्व है। तीनो का सवध किसी व्यक्ति से है। ऐसे व्यक्ति से जिसके चरित्र में कुछ चमत्कार होता है, जो चमत्कार कथा के रूप मे शब्दो में आ सकता है। जहाँ हम उस व्यक्तित्व को विविध घटनाओं मे प्रस्तुत चमत्कारो की समग्रता के लिए वश मे करना चाहेंगे, हमे 'कथा' का आश्रय लेना होगा, जहाँ उसके व्यक्तित्व के किसी

१—देखिए भारतीय साहित्य, प्रथम वर्ष मे लेखक का 'मत्र' शीर्षक निवंध।

एक पहलू को अपने जीवन की समग्रता के लिए चाहेंगे, वहाँ हमें कीर्तन का आश्रय लेना होगा। 'कीर्तन' में एक और विशिष्ट लोक तत्व समाविष्ट हो जाता है, यह है 'भावोन्माद'। यह वही भावोन्माद है जो आदिम मानव के आनुष्ठानिक 'नृत्यपरक गीतों' से मिलता है। 'कीर्तन' करने से आवेश होता है, उस आवेश में नृत्य अनिवार्य है। कीर्तन से होने वाले 'आवेश' में और उस आवेश में जो 'देवता' के आवाहन से 'स्याने' में होता है, जो आज भी आदिम अवशेष के रूप में सुरक्षित है, मूलत कोई अन्तर नहीं, अतर केवल उस आवेश की व्याख्या में है, जो मात्र व्याख्या है। कीर्तन के 'आवेश' में हम समझते हैं हमारे अपने भावो का ही आवेश हुआ है, हमारे अतर-भाव ही फूटकर हमारे ऊपर आपाद मस्तक रोम रोम में व्याप्त होकर उन्मादित कर देता है। जबकि स्याने के आवेश में कोई बाह्य (देवता) तत्व शरीर में प्रवेश कर उसे आवेशित कर देता है। प्रत्येक दशा में स्थिति का यथार्थ एक है, और वह यथार्थ उस मौलिक मनोवृत्ति का परिणाम है जो आदिम आनुष्ठानिक नृत्य-गीत से 'तत्मत्वमयी' मनोवृत्ति का अवशेष है, यदि ऐसा नहीं होता तो कीर्तन के आवेश में 'नृत्य' स्वयमेव प्रस्तुत न होता।

सूर और उनके वर्ग के कवियो ने अपने कीर्तन गीतों के साथ कथा तत्व भी सयुक्त रखा है, अत अपने प्रयोग को और भी सशक्त बना दिया है।

एक बडा चमत्कारक विश्वास इस काल में यह मिलता है कि भगवान और देवता सब कुछ कर सकते हैं। वास्तव में देवता और भगवान में कोई मौलिक मतभेद नही। दोनो अद्वैत हैं, और विकास के क्रम में 'देवता' बीज है और भगवान या ब्रह्म उससे विकसित उद्भावित फल। जो गुण देवता में आरोपित किये गये, उनकी समष्टि रूप में भगवान खडे हुए। आदिम मानव ने अपने मानस में जिस 'देवता' को सज्ञा दी उसके चमत्कारो से वह प्रभावित हुआ, साथ ही उसके साथ उसे एक रहस्य का आवरण भी प्रतीत हुआ, क्योंकि वह जितना देख सका, और जान सका वह चमत्कारक था और उसकी अनुभूति हुई कि वह इसके अतिरिक्ति भी कुछ और है जिसे वह न देख सकता है, न जान सकता है। इसी 'अज्ञात' अश के सम्बन्ध में उसने अनेको कल्पनाएँ प्रस्तुत की। इस लोक-मानस की रहस्यात्मक छाप सबधी सस्कार से "निराकारत्व" विकसित हुआ, जो 'मलेनेसियन' के "मन" नामक अस्तित्व से जुडकर सर्वव्यापकता ग्रहण कर सका और सादृश्यक टोने (Imitative magic) की पृष्ठभूमि मे खडे होते ही 'अद्वैतता' के विश्वास से अभिमडित हो उठा।

इसी लोकमानस के चमत्कारदर्शी और चमत्कार-विश्वासी पक्ष से साकार

तत्व का बीज प्रस्तुत हुआ। और साकार-निराकार को तुलसी की शब्दावली में, यों माननेवाला कि

सगुनहि अगुनहि नहि कछु भेदा
तथा
जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे ?
जल हिम उपल बिलग नहि जैसे।—ठीक उसी मानव के आदिम मानस की संधि पर होता है जहाँ 'ज्ञात और अज्ञात' दोनो से युक्त व्यक्तित्व की अनुभूति होती है और 'चमत्कार और रहस्य' से जहाँ उस अनुभूति को पूर्णता प्राप्त होती है।

वृक्ष-पूजा का भाव आदिम मानस का भाव है। और भारतीय साहित्य में विशेषत. हिन्दी के कृष्ण-साहित्य में कदम्ब और कुंज तथा विविध वनो में कृष्ण-लीला और कृष्ण-दर्शन इसी आदिम मानस के अवशेष हैं।[1] यह अव-

1—Harvard Oriental Series, Lanman, Volume 31. Religion and Philosophy of the Vedas Keith, P 39. मे यह लेख है

"On the other hand the Gods were often revered in groves, a development of primitive tree-worship which is recorded for India, Greece, Rome, Germany, Gaul, the Lithunians and the Slavs, etc" किन्तु,

"Moreover one serious charge must be brought against many of theorists and a charge which applies equally to Mannhardt, Sir J Frasesr, Ridgeway, DurKheim and S. Reinach These scholars assume that in the religious views of primitive savages are to be found the beginnings of religious belief,and that from their views must be reconstructed a scheme for the development of every form of religion The fundamental absurdity of this view is the belief that savage of the nineteenth century are primitive man, it is logically wholly impossible to deny that the defects of the religion of these races may be precisely the cause why they have failed to develop and have remained in a savage state Doubtless to prove this view is impossible though many of the practices of savages are obviously open to serious disadvantages, economic and social, in view of this fact. to set up schemes of the development of religion based on the but to disprove it is still more difficult, andpractices of the Australian ab- origines is logically in excusable, apart altogether from the fact that our knowledge

शेष सभी भारतीय आर्य जातियो की पूर्व-कालीन सस्कृति में मिलते हैं। वहाँ देवताओं को मदिर में नही स्थापित किया गया। वृक्ष-पूजा का मूल आदिम मानव की प्रकृति-पूजा का उत्तराधिकरण है।

पशु-पक्षी पूजा का सम्बन्ध साधारणत टोटेमिज्म से लगाया जाता है। लोक-वार्ता तत्व के अनुसार कुछ प्राचीन जातियां यह मानती थीं कि उनकी जाति का जन्म किसी पशु अथवा पक्षी से हुआ था किन्तु कहीं-कहीं यह पशु-पक्षी-पूजा अन्य कारणो से भी हुई। नान्दी बैल शिवजी के वाहन के रूप मे पूजा जाता है। कुछ पशु-पक्षियो की पूजा व्यवसाय के साधनो की पूजा के रूप मे होती है। ऐसे ही बैल, घोडे आदि की पूजा होती है।

देवी-पूजा—वैदिक धर्म मे पुरुष देवताओं की प्रधानता थी। देवियो की महत्ता गौण ही नही, कुछ कम ही थी। ब्राह्मण युग मे—ब्राह्मण पुरोहितो के उत्कर्ष युग मे, एक धार्मिक विवर्तन हुआ।

---

of these customs is derived from students of ethnology, who observe peoples with whom they have no tie of blood or language and whose confidence they find as hard to win as their beliefs to understand The mere controversy which has raged over the fact whether Australian tribes or the Zulus have the conception of a supreme benevolent deity is a striking proof of the almost hopeless difficulties attending the path of those who seek to attain real understanding of the aboriginal mind वही P 42 कीथ महोदय की यह आलोचना कुछ विशिष्ट बातों के लिए तो ग्राह्य हो सकती है किंतु सामन्यत नहीं। १९ वीं शती के जंगली लोग आदिम मानव तो नहीं कहे जा सकते पर उनका मानस क्या १९ वीं शताब्दी के मानव का है। उनमे जो विश्वास तथा अनुष्ठान प्रचलित हैं उनमें अवश्य ही कुछ आन्तरिक कमियां रहीं और उन्हीं के कारण वे विकास नहीं कर सके, यह सही है पर इससे क्या यह प्रकट नहीं होता कि उनके विश्वास तथा अनुष्ठान मानव के विकास के किसी पुराने चरण को प्रकट करते हैं; वे वहीं रुक गये। यदि किसी विकसित सभ्यता वाले समाज मे कोई ऐसे तत्व मिलते हैं जिनके ऐतिहासिक विकास-क्रम मे वह चरण सभव हो सकता है जो उन जगली जातियो में आज भी विद्यमान हैं, तो उसे एक प्रमाण तो माना ही जा सकता है; हाँ यह ठीक है कि उसे एकमात्र प्रमाण नहीं माना जा सकता। यह भी ठीक है कि ऐसी सामग्री का उपयोग बहुत सावधानी से करने की आवश्यकता है। दूसरे, किसी के स्वाभाविक विकास का अवरोध उन विश्वासो अथवा अनुष्ठानों के आन्तरिक दोषों के कारण ही नहीं होता। अन्य कारण भी होते हैं, जैसे मेधा की क्षमता तथा परिस्थितियो की जड़ता। जो भी हो, जगली जातियो के विश्वासो और अनुष्ठानों की नृतात्त्विक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक अध्ययनों मे उपेक्षा नहीं की जा सकती।

आर्यों के नये आक्रमण—पूर्व पश्चिम के जाति समूहो के विभाजन–मध्य-देश ब्राह्मण सस्कृति का केन्द्र वह कुरु पांचालो की सघवद्ध जातियो के अधिकार मे—चन्द्रवशी भरत इन्ही मे—भरत थे भारती पूजक। भारती=सरस्वती नदी। सरस्वती=ब्रह्मा-पत्नी।

यदि चद्रवशी 'भरत' चन्द्रमा तथा नदियो की पूजा करते थे, तो यह सभव है कि वे ब्राउन जाति के थे। जाति का लोक धर्म (Folk-Religion) जाति-जन (people) के द्वारा चलता रहता है, भले ही उनके पुरोहित उप-निषदो के अज्ञात रचयिताओ की भाँति कल्पनामानस से (Speculative) विचारक ही हो जायँ। अत यह वात ध्यान देने योग्य है कि अन्तत भारत मे भी देवियो का उतना ही अधिक प्राधान्य हो गया जितना कि मिस्र मे। ब्राह्मणवाद के पुनरुत्थान काल से पूर्व के धुधले युग मे ही यह परिवर्तन हुआ। जव बुद्ध-धर्म का प्रभाव कम हो गया तो देव-वर्ग (the pantheon) विलकुल वदला हुआ दीखता है, और वह स्वरूप (character) मे पूर्णत भूमध्यसागरीय (Mediterranean) हो गया। वैदिक देवताओ को इस वीच ग्रहण लग गया। वे अपने से अपेक्षाकृत अधिक व्यक्ति-तत्व प्रधान (Personal) देवता ब्रह्मा, विष्णु और शिव के आधीन हो गये ये तीनो देवता पत्नी सहित है। जैसा कहा जा चुका है कि ब्रह्मा ने भरतो की सरस्वती मे सम्वन्ध किया जो नदी की देवी है। पृथ्वी देवी लक्ष्मी विष्णु की पत्नी हुई। वे, किंवहुना, क्षीर के समुद्र मे से निकलती हैं। किन्तु सवसे अधिक विनाशकारिणी (Destructive) तथा उससे भी अधिक आदिम देवियो की प्रकृति से अनुकूलता रखने वाली देवी को शिव से, सहारक (The Destroyer) शिव से सयुक्त किया गया। युद्ध की देवी के रूप मे देवी दुर्गा इन्द्र से भी वढ कर हैं।

देवियो का यह अभ्युत्थान अगत द्रविड लोक-धर्म (Folk Religion) के प्रभाव का परिणाम हो सकता है। इसके, फिर भी, यह अर्थ नही कि वह सिद्धान्त इससे अमान्य हो गया जो यह प्रतिपादित करता है कि चन्द्र, जल और पृथ्वी की पूजा भारत मे ब्राउन जाति के उत्कर्ष से सम्बधित रही थी।

उत्तर वैदिक (Post-Vedic) धर्म की भारत मे लक्ष्य करने योग्य एक वात यह थी कि इसमें (पुनर्जन्म) आत्मा के सक्रमण (Doctrine of Metempsychosis) तथा विश्व के युगो अथवा कालो (ages) के भाव (conception) को प्रधानता दी जाने लगी।

ऋग्वेद मे मृतक की आत्मा तुरन्त, अन्यथा अतिम सस्कार के उपरान्त तो निश्चय ही, दूसरे लोक को प्रस्थान कर जाती है। केवल एक श्लोक मे यह

कहा गया है कि वह जलाशयो अथवा पक्षियो की ओर जाती है। प्रो० मैकडानल का सुझाव है कि पुनर्जन्म के सिद्धांत के बीज इसी मान्यता मे हो सकते है। उपनिषदो मे इस पुनर्जन्मवाद का पूर्ण प्रतिपादन है। इससे यह परिणाम नहीं निकलता कि इसका जन्म भारत मे हुआ। ब्राउन जाति की अन्य प्रतिनिधि समाजो (Communities) मे भी इस सिद्धान्त की मान्यता थी। यह सिद्धान्त उस अस्पष्ट (vague) विश्वास मे विकसित हुआ प्रतीत होता है जो एकाधिक आदिम जातियो मे मिलते हैं कि मृतक की आत्माएँ, और विशेषत मृत बालको की आत्माएँ, सदा उपयुक्त माताओ की खोज में रहती हैं।

मध्य देश (Middle country) की प्राचीन लडाइयो से जो वीर-गीत जुडते चले आरहे थे उन्हें महाभारत मे महाकाव्य (Epic) का रूप प्रदान कर दिया गया। जब कि पूर्वियो (Easterners) की परपराएँ रामायण मे प्रतिष्ठित हुई।[1]

श्री मेकेंजी ने प्रीफेस मे लिखा है —

All mythologies have animistic bases, they were to begin with systematised folk-beliefs which were carried hither and thither in various stages of development by migrating and trading people. (P III)

वेदों में लोक-धर्म ·

ऋग्वेद

कीथ की ये पक्तियाँ ध्यान देने योग्य है

The accusation, however, which is often made against the Rigveda of being purely sacredotal cannot be accepted, for it contains enough matter in its later portions to show that the compilers were perfectly familiar with the popular religion of the day. Thus we have hymns intended to act as spells against vermin (i. 191), or the desease Yaksma (X 163), to bring back the life of one apparently dead (X 58 60 7-12), to destroy enemies (X. 166), to procure children (X 183), to destroy the demon who kills offspring (X.162), to induce sleep (V. 55.), and even to oust a co-wife from a husband's affections (X 145, of X 159). Most of these hymns occur in book which preserves also the marriage hymn (X 85), piece of a priestly ingenuity,

---

१ Macdonell : Sanskrit Literature pp 120 ff.

and the funeral hymn (X. 14-18). These with four or five gnomic hymns (XI. 112 X. 35, 71, 117), some philosophic and cosmogonic speculations (X. 81, 82, 90, 121, 129, 1. 164, which, like VIII 29 is a riddle hymn), and some hymns, or portions of hymns, in praise of generous patrons of the priests relieve the monotony of the collection and help to obviate the wholly erroneous view that the early religion of India consisted merely in the invocation of high gods But the real extent of popular religion and much of the hieratic must be sought for in the later Samhitas, and above all in the Atharvaveda. (Religion and Philosophy of the Veda by Keith–Harvard Oriental Series. Lanman Vol. 31, Page 14.)

सूर साहित्य मे लौकिक देवी-देवताओ के उल्लेख के कुछ उदाहरण ये हैं

द्वार सथिया देति स्यामा, सात सीक बनाइ ।।२६।। ६४४ ।

गौरि गनेश्वर बीनऊँ ! हो, देवी सारद तोहिं ।

गावो हरि कौ सोहिलौ हो ! मन-आखर दै मोहिं ।।४०।। ६५८ ।

कवहुँक कुल देवता मनावति, चिरजीवहु मेरी कुँवर कन्हैया ।१७५।६३।

आत्म-तत्व

'आत्मा' के विपय मे ऊहापोह की एक दीर्घ दार्शनिक परम्परा है । और यह कहा जा मकता है कि यह 'आत्म-तत्व' मनीपी विचारको और दार्शनिको का ही आविष्कार है । दार्शनिक इतिहास के लेखको मे राहुल सांकृत्यायन के जैसे वर्ग लेखको का यह निष्कर्ष है कि इस 'तत्व' की उद्भावना सामन्तवादी मनीषियो द्वारा हुई । इस आत्म-तत्व की उद्भावना उन्होने की ब्राह्मणो के महत्व को कम करने के लिए । जनक के समय मे, उससे पूर्व और पीछे, तत्व-ज्ञान के उपदेशक क्षत्रिय थे । इस युग मे जैसे विचार-वैभव भी ब्राह्मणो के हाथ से निकल कर क्षत्रियो के हाथ मे चला गया । यज्ञ-प्रधान धर्म के स्थान पर ज्ञान-प्रधान धर्म सत्तारूढ हुआ । सामन्तो के जातीय तत्वो पर हमे विचार नही करना है । उन्होने ब्राह्मणो से अलग किस क्षेत्र से 'आत्मतत्व' को प्राप्त किया, यही अनुसधान की वात है आत्म-तत्व का सम्वन्ध उस आदिम विश्वास से है जो मलेनेशिया मे 'मन' (Mana) कहा जाता है । 'मन' वह तत्व है जिसे आदिम जाति के लोग समस्त 'जड-चेतन' मे व्याप्त मानते है । इसी का विकास हुआ और जड-चेतन मे काया विपयक सम्वद्धता हटते ही वह सर्वव्यापी परमात्म-तत्व की ओर वढाने वाली एक सीढी आगे चढ

गया।[1]

जड-चेतन से काया-विषयक मबद्धता के टूटने का भी क्रम हमे आदिम मानस के एक दूसरे प्रयत्न मे मिलता है। 'स्वप्न' के अनुभव से उसे अपनी द्वैत मत्ता का विश्वास हुआ। इस विश्वास के होने पर आत्मा एक शरीर से दूसरे मे प्रवेश कर सकती है, यह निश्चय हुआ। यह किमी अन्य पदार्थ मे रह सकती है, यह विश्वास भी वना।

पुनर्जन्म—इन्ही आदिम विश्वासो के वीज से विकसित होकर आत्मा, परमात्मा, जीव और पुनर्जन्म का दार्शनिक स्वरूप प्रस्तुत हुआ है।

इसी प्रकार यहाँ कुछ अन्य लोक-मानम के तत्व से युक्त विश्वाम दिये जाते हैं

१—भगवान भक्त के वश मे होते हैं।
२—शाप और वरदान।
३—पशु-पक्षी वोलते हैं, सहायता करते हैं।
४—कुछ पशु-पक्षी मनुष्य का रूप धारण कर लेते हैं।
५—सत्यक्रिया।
६—भगवान के साथ खेलना-कूदना।
७—पहुँचे हुए सिद्धो के चमत्कार।
८—नदी, पर्वत, वृक्ष आदि भी शरीर धारण कर मकते हैं।
९—शकुन-अपशकुन।
१०—वीर-पूजा और वीर मे देवत्व-विधान।
११—चरण-धूलि से तर जाना।
१२—स्याने, पुरोहित, और गुरु मे विश्वाम।
१३—जादू-टोने तथा अवतारो और देवताओं के अद्भुत चमत्कार।
१४—मत्र-शक्ति आदि।

इस प्रकार यदि गभीरतापूर्वक देखा जाय तो हिन्दी साहित्य की आंतरिक धारा हमे लोक-मानस के वहुत निकट प्रतीत होगी।

—o—

१ कीथ ने मन, मनितोउ, ब्रह्म को एक ही माना है। इस भाव को भारतीय दर्शन का आधार भी माना है, दे इसे पहले-पहल दार्शनिक नहीं मानते, यह लोकप्रिय (Popular) भाव था। साथ ही वे वॉन गेन्नेप (Van Gennep) के इस मत को मानने को तय्यार नहीं कि मन एक सर्वव्यापी तत्व के रूप मे आदिम तत्व था। उनकी आपत्ति है कि इतना विशद (wide) भाव आदिम नहीं माना जा सकता। कीथ महोदय ने जिसे आदिम होने के सम्बन्ध मे वड़ी आपत्ति माना है, वह स्वयं ही उसे आदिम सिद्ध करने का यथार्थ कारण है। किसी भाव की विशदता स्वयमेव उसका आदिम मानस से सवध सिद्ध करती हैं। अन्यथा उसकी विशद व्यापकता का और क्या रहस्य हो सकता है?

उपसंहार

इस प्रबन्ध में हिन्दी-साहित्य के मध्य युग में लोकवार्ता के तत्वों के अनुसंधान का प्रयत्न किया गया है। साहित्य में लोकवार्ता के तत्वों का ऐसा अनुसंधान सर्वथा नवीन उद्योग है। इस अनुसंधान के लिए सबसे पहली आवश्यकता यही है कि लोकवार्ता के तत्वों का समीचीन ज्ञान हो। अत पहले अध्याय में लोक-साहित्य और लोक-मानस की परिभाषा प्रस्तुत की गयी है। उसमें स्थापना है कि 'लोक' शब्द का अर्थ साहित्य के साथ सलग्न होने पर वही होता है जो अंग्रेजी में फोक का होता है। लोक के विविध अर्थों की विवेचना की गयी है और लोक-साहित्य के 'लोक' का उनसे अन्तर बताते हुए यह कहा गया है कि यह लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो आभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पाण्डित्य की चेतना अथवा अहकार से शून्य है और जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है। ऐसे लोक की अभिव्यक्ति में जो तत्व मिलते हैं वे लोक-तत्व कहलाते हैं। ऐसे लोक-तत्वों से युक्त साहित्य को लोक-साहित्य की संज्ञा दी जायगी और इस लोक-साहित्य की परिभाषा यह होगी — लोक-साहित्य के अन्तर्गत वह समस्त भाषागत अभिव्यक्ति आती है जिसमें (अ) आदिम मानस के अवशेष उपलब्ध हों। (आ) परम्परागत मौखिक क्रम में उपलब्ध भाषागत अभिव्यक्ति हो जिसे किसी की कृति न कहा जा सके, जिसे श्रुति ही माना जाता हो और जो लोक-मानस की प्रवृत्ति में समायी हुई हो। (इ) कृतित्व हो किन्तु वह लोक-मानस के सामान्य तत्वों से युक्त हो कि

उसके किसी व्यक्तित्व के साथ सम्बद्ध रहते हुए भी लोक उसे अपने ही व्यक्तित्व की कृति स्वीकार करे।

इस प्रकार लोक-साहित्य का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो जाता है। विश्व मानव की समग्र मौखिक अभिव्यक्ति इसके अन्तर्गत आ जाती है। इस अभिव्यक्ति को तीन भागो मे विभाजित कर सकते हैं शरीर-तोषिणी अर्थात् व्यवसाय प्रधान, मनस्तोषिणी अर्थात् मन को तोष देने वाली, जो मन के आश्चर्य, भय और रति के मौलिक भावो को सन्तुष्ट करने के लिए होती है और तीसरी मनोमोदिनी। इन तीनो वृत्तियो से युक्त लोक-साहित्य की ऊपरी सीमा शिष्ट साहित्य को स्पर्श करती है। निचली सीमा जगली अभिव्यक्ति को भी समाहित कर लेती है। साहित्य के धरातल पर लोक-साहित्य और शिष्ट-साहित्य के बीच जो विविध कोटियाँ हैं उनका आधार अह्-चैतन्य है। विशिष्ट मे यह अह्-चैतन्य सबसे अधिक है और जङ्गली अभिव्यक्ति मे यह नितान्त शून्य। इन दोनों छोरो के बीच मे इन कोटियो का क्रम अहम्-चैतन्य से अहम्-चैतन्य-शून्यता की ओर जाते हुए यह होता है —शिष्ट, नागरिक, नागरिक की ग्रामीण सन्धि, ग्रामीण की नागरिक सन्धि, ग्रामीण की जङ्गली सन्धि, जगली की ग्रामीण सन्धि। इस प्रकार नौ कोटियाँ बनती हैं और ये समस्त कोटियाँ किसी भी समाज मे आज भी दिखायी पडती हैं, भारत मे तो विशेष रूप से। ऐसे समाज में प्रस्तुत लोक-साहित्य के रूपो के कोटि-क्रम को एक चित्र द्वारा स्पष्ट करते हुए उनका यह क्रम प्रस्तुत किया गया है —काव्योक्तियाँ, रसोक्तियाँ—आत्मनिवेदनी गीतियाँ ज्ञान तथा वैराग्य के गीत —प्रतियोगी गीतियाँ खयाल — भिक्षार्थ गीतियाँ—मोदिनी गीति गोष्ठियाँ—उद्योग और श्रम सहवर्ती गीतध्वनियाँ—मोदिनी वार्ताए —उपयोगी वार्ताएँ—आनुष्ठानिक गीति-कहानियाँ। इस समस्त लोक-साहित्य को लोकवार्ता का अङ्ग माना जा सकता है और लोक-वार्ता का मूल आधार है—लोक-मानस।

इस प्रबन्ध मे लोक-मानस की विशद् व्याख्या प्रस्तुत की गयी है और विविध मनोवैज्ञानिक विषयक सम्प्रदायो की चर्चा करते हुए यह बताया गया है कि इनको मुख्यत छ वर्गों मे बाँट सकते हैं —१—जाति को ही मानसिक आचार और सस्कृति का स्वरूप निर्धारित करने की कसौटी मानने वाला सम्प्रदाय। २—वह जो शरीर के विन्यास के अनुरूप मानसिक स्वरूप मानता है। ३—जो सस्कारो को नही, प्रकृति द्वारा उत्तराधिकरण को मान्यता देता है। ४—जो परिस्थितियो के प्रभाव को स्वीकार करता है। ५—इनमे भी प्राणि-शास्त्रीय सास्कृतिक अन्तरो का मूल प्राकृतिक परिस्थितियो को मानता है और ६—वह जो विश्व भर मे मानव की समान स्थिति को स्वीकार करता

है और केवल ऐतिहासिक सास्कृतिक भेद स्वीकार करता है। इसी सम्प्रदाय मे वुट ने यह सिद्ध किया कि मानव-मानस की मौलिक समतन्त्रता है और यही लोक-मानस मे प्रतिफलित होता है। इससे आगे लोक-मानस की विस्तृत व्याख्या की गयी है और मौलिक विवेचन के द्वारा विद्वानो द्वारा मान्य जहाँ प्राकल्पना (फैण्टेसी थिंकिग), पथार्थात्मशीलता (ऐनीमैटिस्टिक थिंकिग), आत्मशीलता (एनिमिस्टिक थिंकिग), टोना विचारणा (मैजिकल थिंकिग) और आनुष्ठानिक विचारणा (रिचुअल थिंकिग) इन पाँच कोटियो का स्पष्टीकरण किया गया है, वही लोक-मानस के बारहलक्षण भी लेखक ने मौलिक रूप से प्रस्तुत किये हैं और चित्र द्वारा समग्र मानसिक सस्थान मे लोक-मानस की स्थिति भी स्पष्ट की गयी है।

लोक-वार्ता के इस मार्मिक आधार लोक-मानस की स्थापना करने के उपरान्त विश्व की लोकवार्ता के विविध भेद करते हुए उसमे लोकवाणी-विलास के निम्न भेद बताये गये हैं—धर्मगाथा, लोक-कहानी, दन्तकथा, तन्त्राख्यान, (फेविल) लोकगीत और साके (बैले)। इन भेदो का परस्पर विकासक्रम भी स्थिर किया गया है और इस प्रकार लोकवार्ता और लोक-साहित्य का सम्बन्ध बताया गया है।

यही लोक-साहित्य के तीन सम्प्रदायो का विकासक्रम की दृष्टि से विवेचन किया गया है। इन्हे सुविधा के लिए भारतीय सम्प्रदाय, नृवैज्ञानिक सम्प्रदाय और शुद्ध लोकसाहित्यवादी सम्प्रदाय का नाम दिया गया है।

जो लोक-साहित्य इतना व्यापक है उसका साहित्य पर प्रभाव पडता ही है यह बात प्रबन्ध मे सक्षेप मे वैदिक साहित्य से लेकर आज तक के साहित्य के उदाहरणो से सिद्ध की गयी है। लोक-साहित्य के इस प्रभाव की हिन्दी-साहित्य के जन्म के समय तक की सक्षिप्त चर्चा करने के उपरान्त हिन्दी-साहित्य के विकासक्रम की लोकवार्ता विषयक पृष्ठभूमि प्रस्तुत की गयी है। यह सर्वथा मौलिक प्रयत्न है और इसमे बतलाया गया है कि हिन्दी के जन्मकाल की परिस्थितियो मे बौद्ध, ब्राह्मण और जैन साहित्य के उच्च स्तूप धराशायी होकर लोकभूमि मे किस प्रकार लोकवार्ता-परक दार्शनिकता, धार्मिकता तथा आध्यात्मिकता का निर्माण करते मिलते हैं। हिन्दी के जन्मकाल से लेकर निर्गुण सम्प्रदाय की स्थिति तक साहित्य मे जो विविध रूप प्रस्तुत हुए उनकी और उनके स्रोतो की सप्रमाण चर्चा की गयी है। निर्गुण सम्प्रदाय से पूर्व नाथ सम्प्रदाय की लोकभूमि को ही स्पष्ट नही किया गया, उससे पूर्व के सिद्ध-सम्प्रदाय की भूमि को भी स्पष्ट किया गया है और उन तत्वो को जिन्हे सिद्ध सम्प्रदाय ने प्रवर्तित किया अर्थात् स्कन्ध, भूत, आयतन, इन्द्रिय, शून्य, चित्त, भव, निर्वाण

माया, सहज, करुणा, अद्वय साधना, समरसता, प्रज्ञोपाय, मैथुन, युगनद्ध, निरजन, समुत्पाद, अमनस्कार, रागमहाराग, गुरु, आदिकर्म, एव, बोल कल्लोल, वज्र, खसम, सुरति-निरति, एव साधना आदि की व्याख्या करते हुए उनकी लोक परिणति को सन्त सम्प्रदाय तक ले जाया गया है और तब उन तत्वो की विवेचना की गयी है जिनको कबीर ने प्रस्तुत किया है और यह सिद्ध किया गया है कि कबीर मे जो सूफी, मुसलिम, योग-विषयक, औपनिषदिक, ईसाई आदि तत्व एक साथ मिलते है वे सब लोकक्षेत्र से ग्रहीत हुए है और वस्तुत वे लोक-वार्ता और लोकमानस से युक्त है।

तीसरे अध्याय मे हिन्दी की प्रेम-गाथाओ मे लोकतत्वो का उद्घाटन करने की चेष्टा की गयी है। इसमे लेखक ने गाथाओ के जन्म और उनकी लोक-कहानियो के रूप मे परिणति को सिद्ध किया है और वैदिक वरुण कथा का उदाहरण लेकर, उसकी सत्यनारायण की वर्तमानकालीन कथा के रूप मे परिणति किस प्रकार हुई यह दिखाया गया है और यह स्पष्ट किया गया है कि ऋग्वेद मे वे बीज और बिंदु, और किसी सीमा तक उनका विकास मिलता है जो संसार की लोकवार्ता और लोक-कहानी के एक विशद् भाग का मूलाधार है। वेदो मे इस प्रकार लोकवार्ता के रूपों को दिखाकर उपनिषद-कहानियो और रामायण-महाभारत परपरा के साथ शुद्ध लोक-कथाओ के सग्रह कथा-सरित्सागर तक वृहद् कथा का परिचय दिया गया है और यह लोक परम्परा किस प्रकार बौद्ध जातको और जैन कथाओं और चरित्रो मे गयी इसे कथा-सरित्सागर और जैन ग्रन्थ पद्मावती-चरित के तुलनात्मक लोक-साहित्य विषयक विवेचन के द्वारा सिद्ध किया गया है और इसी के सहारे प्रेमगाथा के मूल तत्वो और उनके आवश्यक अभिप्रायो (कथानक रूढियों) का उद्घाटन किया गया है। इसके उपरान्त हिन्दी के उस लिखित साहित्य का इतिहास दिया गया है जो लोकवार्ता तत्वो से युक्त है और जिसको हिन्दी-साहित्य के किसी भी इतिहास मे इस समय तक ग्रहीत नही किया गया। लोक-साहित्य विषयक हिन्दी की इस समृद्ध सम्पत्ति को विस्तारपूर्वक प्रस्तुत करने के बाद लेखक ने अब तक के प्राय समस्त प्रेमगाथा विषयक काव्यों की सूची प्रस्तुत की है और इसके उपरान्त शुद्ध प्रेमगाथाओ के विविध तत्वो की लोकवार्ता परक व्याख्या की है।

चौथे अध्याय मे लेखक प्रेम-गाथाओ के आगे भक्ति काव्य की ओर अग्रसर हुआ है इसमे जहाँ उसने यह स्थापना की है कि भक्ति-तत्व मूलत लोक-तत्व है और वह जब सगुणत्व मे सम्बद्ध हो जाता है तो लोकनायको को वरण कर लेता है, उसने विस्तारपूर्वक यह विवेचन करने की चेष्टा की है कि इसकी

कृष्ण-शाखा की कथा का रूप पूर्णत लोकवार्ता की वस्तु है। बालकृष्ण की यथार्थ लोक-मानसिक भूमि का उद्घाटन किया गया है। जन्म की कथा को लेखक ने स्वय एक पूर्ण लोककथा सिद्ध किया है और यूनानी कथाओ के क्रोनस की कथा से तुलना करके इस लोक-कथा के लोक प्रचलित रूप को स्पष्ट दिखाया है। फिर यशोनन्दनीय कृष्ण के वृत्त को लोक-कथा की उस शृङ्खला का माना है जिसे जीवट के नायक की कहानियो की परम्परा कहा जा सकता है और जिसमे हरक्युलिज, नल,जगदेव अथवा पाण्डवो के कथा-चक्रो को रखा जा सकता है फिर जिन असुरो का कृष्ण ने सहार किया है वे काग, वक, धेनुक, वृषभ, केशि,शकट, तृणावर्त आदि ग्रामीण क्षेत्रो से सम्बधित है और स्पष्ट ही ग्रामीण जनता की अपनी लोक-वार्ता के क्षेत्र से लिये गये हैं। इसके साथ ही यमलार्जुन-उद्धार को वृक्षात्माओ से सबधित, वत्स-हरण को बछडो की चोरी के विश्व-प्रचलित लोक-अभिप्राय से सबधित, कालियनाग नाथने को नागो की लोक-कहानियो के क्षेत्र से सबधित बताते हुए शेष कृष्ण लीलाओ को भी लोक मानस से सबधित बताया गया है। यही यह भी बताया गया है कि किस प्रकार कृष्ण मे इन्द्र का ही चरित्र लोकतत्व के करण प्रतिबिंबित हो उठा है। एक उद्धरण से जातको मे भी कृष्ण-कथा की उपस्थिति बतायी गयी है और इस प्रकार विशद विवेचन के उपरान्त समस्त कथा को लोक-मानस की सृष्टि सप्रमाण सिद्ध कर दिया है और यह बताया गया है कि इस प्रकार यह समस्त कृष्ण-शाखा का समस्त साप्रदायिक क्षेत्र लोक-तत्वो पर खडा हुआ है, इसने लोक-भाषा को अपनाया और लोक-छदो का उपयोग किया और लोक-विश्वासो को ग्रहण करके उनकी वृहद्त्रयी के आधार पर मनीषितापूर्ण व्याख्या करके विशिष्ट और सामान्य की खाई को पाटने का महद् उद्योग लोक-साहित्य के माध्यम से किया।

पाँचवाँ अध्याय राम-साहित्य पर विचार करता है। इसमे भी सबसे पहले राम-कथा का विश्लेषण करते हुए यह बताया गया है कि समस्त राम-कथा तीन लोक-कहानियो से बनी है एक—धनुप भग के द्वारा सीता की प्राप्ति २—रावणवध के द्वारा सीता की प्राप्ति और ३—प्राप्ति के ठीक अवसर पर सीता के लुप्त हो जाने अथवा पृथ्वी मे समा जाने की कहानी। पहली उस लोक-कहानी की परपरा मे है जिसमे किसी जीवट के कार्य के लिए पुरस्कार देने का अभि-प्राय गर्भित रहता है। दूसरी उस लोक-कहानी की परपरा मे है जिसमे प्रेयसी को प्राप्त करने के लिए यात्रा की जाती है और विविध सकटो को एक साथी के साथ पार करके प्रेयसी को प्राप्त किया जाता है। तीसरी कहानी शान्तनु-गगा, पुरुरवा-उर्वशी और नलमोतिनी की लोक प्रचलित कहानियो की को टिकी

है। इन तीनों कहानियों के विकास का सपूर्ण रूप वेदों और लोक-कथाओं के उदाहरणों से तुलनापूर्वक सिद्ध किया गया है और यह बताया गया है कि राम-कथा प्रेम-गाथाओं की प्रेम-कथा तथा जाहरपीर और गोरखनाथ की अनुष्ठान कथाओं से किस प्रकार तुलनीय है। इस प्रकार मौलिक दृष्टि से समस्त रामकथा और उसके अभिप्रायों का विवेचन किया गया है। रामकथा मे आने वाली विविध प्रासगिक कथाओं के भी मूल रूप को लोक आधार पर स्पष्ट किया गया है। इस प्रकार वैष्णव, बौद्ध और जैन लोक-कथाओं की परपराओं को दिखा कर रामकथा के शाक्त रूप को भी दिखाया गया है। जानकी-विजय नामक ग्रन्थ का उल्लेख करते हुए यह बताया है कि शाक्त प्रभाव से न केवल जानकी के शौर्य को राम से बढ़कर बताया गया है वरन् इन्हीं जानकी जी को कलकत्ते मे जाकर काली बनकर काली के मन्दिर मे प्रतिष्ठित होने वाला भी बताया गया है। यह अन्तिम तत्व लोकवार्ता से मिला है जिसने शक्ति को वैष्णवी सीता मे समन्वित कर दिया है। राधाकृष्ण की कथा के तुल्य सीताराम की प्रेम-कथा वाले साम्प्रदायिक साहित्य को भी लोक-तत्वो से युक्त बताया गया है। इस प्रबन्ध मे तुलसी द्वारा गृहीत विविध देवताओ की सूची देकर यह बताया गया है कि वैदिक देवताओ की स्थिति कितनी दयनीय है और उनकी तुलना मे लौकिक देवताओ का कितना सम्मान है। रामकथा के मूल रचयिता भगवान शिव को माना गया है, यह तत्व भी इसे लोक-क्षेत्र की सिद्ध करता है क्योकि शिव-पार्वती का इस प्रकार का अभिप्राय मूलत लोक-क्षेत्र द्वारा उद्भावित अभिप्राय है फिर इस कथा की भाषा-भनिति और इसमे छद भी इसे लोकक्षेत्र की सिद्ध करते हैं। रामकथा के मूल उद्भव की चर्चा मे भी यही सिद्ध होता है कि रामकथा का भी मूल लोक-कथा मे है। इस प्रकार प्रेम-गाथाओ और सगुण भक्ति के साहित्य मे लोकवार्ता के तत्वो को सिद्ध करके हिन्दी-साहित्य के अध्ययन की एक मौलिक पृष्ठभूमि उद्घाटित की गयी है।

छठवें अध्याय मे आरभ मे प्राकृत से हिन्दी तक पहुँचने वाले भाषा-विकास की आठ अवस्थाएँ स्थापित की गयी हैं जो ये हैं —मूल प्राकृत, वैदिक प्राकृत, पालि [प्रथम प्राकृत], प्राकृत [बौद्ध प्राकृत] और जैन प्राकृत, अपभ्रंश [साहित्यिक अपभ्रंश], पुरानी हिन्दी, भाषा हिन्दी और जनपदीय हिन्दी [उच्च हिंदी खडी बोली]। और इस समस्त भाषा-विषयक अभिव्यक्ति मे दो प्रवृत्तियो, वैदिक अथवा लौकिक, सस्कृत तथा प्राकृत भाषा-विषयक अन्तर व्याप्त दिखाया गया है और उनमे उद्घाटित अन्तरो की सप्रमाण और सोदाहरण विवेचना की गयी है कि सन्तवाणी प्राकृत परम्परा का वह रूप है जो विविध प्रभावो का

परिणाम है और इसे सधुक्कडी भाषा की कोटि का रूप दिया गया है। इस सधुक्कडी प्रवृत्ति का विकास वैदिक भाषा मे, बौद्ध प्राकृतो में, सिद्धो की रचनाओ मे से होता हुआ सन्तवाणी तक दिखाया गया है और तब यह बतलाया है कि लोकवार्ता और लोकप्रभाव वाणी के भाषा रूप का ही विकास नही करता अभिव्यक्त साहित्य के रूपो का भी विकास सिद्ध करता है।

साहित्य के रूपो की चर्चा और उसका विवेचन जहाँ अत्यन्त दार्शनिक है वहाँ एक दम मौलिक भी है। वाणी की अनुभूति की अद्वैत स्थिति से साहित्य के विविध रूप किस प्रकार उपाधियुक्त होकर वैविध्य प्राप्त करते हैं, इसका विवेचन करते हुए भारत के शास्त्रीय क्षेत्र मे विवेचित ऐतिहासिक क्रम से समस्त साहित्य-रूपो का परिचय कराया गया है और यह बतलाया गया है कि भारतीय साहित्यकारो ने किस प्रकार लोक-क्षेत्र से ग्रहीत रूपो को भी साहित्य मे मान्यता दी है और तब शास्त्रो के क्षेत्र से हटकर विविध हिन्दी क्षेत्र के बयालीस नये साहित्य रूपो का उद्घाटन किया गया है और इनमे ग्यारह और रूपो को जोडकर इन रूपो के नामकरण के पाँच आधार स्वीकार किये गये हैं, जिन्हे छन्द, गीत, शैली, सख्या और विषय के अन्तर्गत रखा गया है और इनके आधार पर इन विविध साहित्य-रूपो के लोक-तत्वो की मौलिक विवेचना प्रस्तुत की गयी है। इस प्रबन्ध मे ही पहली बार हम छन्दो का ऐसा मौलिक और तात्विक विवेचन देखते है। इसी प्रकार रूपो के विवेचन की लोक-भूमि को प्रस्तुत करके लेखक ने अलकार-विधान का मौलिक और तात्विक विवेचन प्रस्तुत किया है और यह स्थापना की गयी है कि अलकार-विधान का समस्त रूप ही लोकवार्ता तत्व से सम्बन्धित है। बिना उस तत्व के अलकारो की अलकारिता ही समाप्त हो जायगी और काव्य की शोभा मे कमी आ जायगी। और इसकी वैज्ञानिक व्याख्या की व्याप्ति शब्दालकारो मे भी दिखायी गयी है। अलङ्कारो और छन्दो की लोकवार्ता विषयक तात्विक विवेचना के उपरान्त वस्तु की चर्चा करते हुए ब्लूमफील्ड के इस मत का खडन किया गया है कि लोक-कथाओ मे जो कथानक रूढियाँ अथवा कथांग मिलते हैं वे सभी मनीषी, परिनिष्ठित साहित्य से लिये गये हैं और यही निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है कि समस्त लोककथाओ का मूल लोक-वार्ता क्षेत्र मे ही है और तब साररूप मे इस अध्याय का अन्त इन शब्दो के साथ किया गया है —

"रीतिकाल से पूर्व तक का हिन्दी साहित्य लोक-क्षेत्र से घनिष्ठ रूपेण सम्बन्धित था। उस काल से पूर्व की प्राय समस्त साहित्यिक निधि लोक मे मौखिक रूप से सुरक्षित सामग्री मे से सकलित की गयी थी। और ऐसी महान् प्रतिभाओ ने उन्हे परिनिष्ठित क्षेत्र मे स्थापित करने की चेष्टा की जो स्वय

लोक-क्षेत्र के अश थे, जिनको समस्त साहित्य लोक-क्षेत्र के प्रवाह मे मे ही मिला था।

कबीर, जायसी, सूर, तुलसी सभी ऐसे थे जो मुहाविरे की दृष्टि मे ही 'मसिकागद' नही छूते थे, और जिनके व्यक्तित्व का समस्त मौलिक निर्माण लोक प्रवाह में ही हुआ था। इन और इनकी परम्परा के सभी कवियो की स्थिति लोक-कवियो की स्थिति थी। इनके काव्य के समस्त ताने बाने मूलत लोक के ताने-बाने थे। उस पर कभी कभी कही-कही मनीषी परिष्कार किया गया।

कबीर ने मासिकागद छुआ ही नही था। सूर अधे थे, वे मसिकागद छूते ही क्यो ? उनका भाषा-कोष लोक-भाषा का कोष था। उन्हे महाप्रभु वल्लभाचार्य ने वल्लभ-सम्प्रदाय मे दीक्षित किया, और तब उन्हे स्वयमेव समस्त भागवत लीला स्फुरी। कोई भी सूर का पाठक यह जान सकता है कि लीला की प्रेरणा भागवत से हो भी सकती है, पर अधिकांशत तो उसका जो लोक मे प्रचलित सूत्र था वह सूर के हाथ लगा और उसे ही उन्होंने लोकवाणी मे प्रस्तुत कर दिया।

तुलसी ने 'राम-कथा' अपने गुरु से शूकर खेत मे सुनी थी। उसी सुनी कथा के आधार को लेकर बाद मे निगमागम पुराण तथा अन्य स्रोतो से आपने उसे पल्लवित पुष्पित किया।

अत सन्त सम्प्रदाय, कृष्ण सम्प्रदाय, राम सम्प्रदाय और प्रेमगाथा प्रवृत्ति सभी का साहित्य लोक-भूमि के अत्यधिक निकट है यही कारण है कि आइने अकबरी की साहित्य की परिभाषा मे न तो इन महापुरुषो के काव्य आते थे, न इनकी कृतियो को साहित्य-ग्रन्थों मे उसने समाविष्ट किया।"

हिन्दी-साहित्य के मध्ययुग की ऐसी प्रामाणिक लोकवार्ता परक लोकतत्व-युक्त व्याख्या प्रस्तुत करने के उपरान्त एक सातवाँ अध्याय और प्रस्तुत किया गया है और उसमे इस युग मे मिलने वाले लोक-सम्प्रदाय और लोक-विश्वासो का उल्लेख किया गया है।

इस समस्त विवेचन से जहाँ हिन्दी-साहित्य मे व्याप्त लोकवार्ता भूमि के नये तत्व का उद्घाटन हुआ है और उसको वैज्ञानिक शैली मे प्रस्तुत किया गया है, वहाँ इससे यह भी स्पष्ट सिद्ध होता है कि साहित्य का शास्त्रीय दृष्टि से जो अध्ययन किया जाता है और उसकी छन्द, अलकार, रस के तत्वो से जो व्याख्या की जाती है और परिनिष्ठित साहित्य मे मिलने वाली भूमि का जो उच्च स्तर विवेचना के लिए प्रस्तुत किया जाता है, उससे इस नयी व्याख्या का कोई विरोध नही है। यह तो उस महान् साहित्यिक भूमि की नीव के मौलिक तत्वो का उद्घाटन है और इस प्रकार हिन्दी-साहित्य को ही नही, वरन् साहित्य मात्र को अध्ययन करने की एक नयी भूमि, एक नया तत्व, एक नया दृष्टिकोण और एक नया दर्शन प्रदान करता है।

परिशिष्ट—१

सिंधु-घाटी में भक्ति विकास

भक्ति के विकास के सबध मे चतुर्थ अध्याय मे पृष्ठ ३६३ से ३६६ तक प्रकाश डाला गया है। वहाँ सिंधु-घाटी का उल्लेख करते हुए श्री केदारनाथ शास्त्री के 'हडप्पा' नामक ग्रन्थो के उद्धरण भी दिये गये हैं। शास्त्री जी के उन उद्धरणो मे कुछ फलको का उल्लेख हैं, वे फलक तो शास्त्री जी के ग्रन्थ मे ही देखे जा सकते हैं, किन्तु हम सिंधु घाटी के कुछ थोडे से ही फलक यहाँ रेखाओ मे देकर भक्ति के विकास के अपने सिद्धान्त को स्पष्ट और पुष्ट करना चाहते है।

भक्ति-विकास मे पहली स्थिति यह होगी कि मानव ने आँखे खोली और विराट का दर्शन किया। सृष्टि मे प्राणी-विकास के क्रम मे अन्तिम कडी मानव था। उसने अपने चारो ओर चर (प्राणी=पशु) जगत देखा।
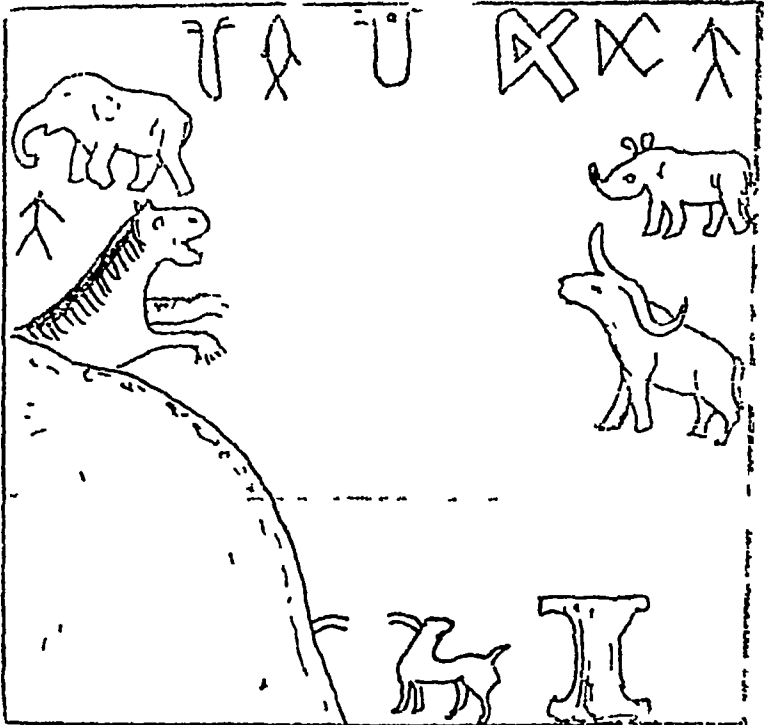
इन पशुओ को, पक्षियो को, सरी-सृप को उसने एक न समझ मे आने वाली अपरिभाषेय सत्ता से युक्त माना, प्रत्येक मे एक दिव्यता देखी या अपने निजी चेतनत्व की सभावनाओ के आरोप का प्रतिफलन देखा, पर प्रथम विराट का विस्मयाभिभूत भाव भी पृष्ठभूमि मे रहा ।

अत इन सबको अलग-अलग देवत्व प्रदान करते हुए भी वह उन्हे विराट मे एक इकाई के रूप मे ही देखने की भावना को उपलब्ध करना चाहता था । उस विराट मे चर-अचर को एक कर मानवीय चोला पहनाकर उसने परमदेव का साक्षात्कार किया ।

इस 'परमदेव' को उसने पुनः पशुपति बनाया। उस समस्त दिव्य चर सृष्टि को उसकी पृष्ठभूमि में रख दिया।

इस समस्त चेतना-विराट के परमदेव को उसने अचर से भी संवर्धित कर दिया। उसका महिष्मुण्ड प्रतीक पहले ही निश्चित हो चुका था। अब वह प्रतीक वृक्ष के पास स्थापित कर दिया गया। तथा प्रतीक के शीर्ष पर भी वृक्ष की एक शाखा लगा दी गयी। वृषभ ही अब पशुओं मे प्रतीक रह गया है।
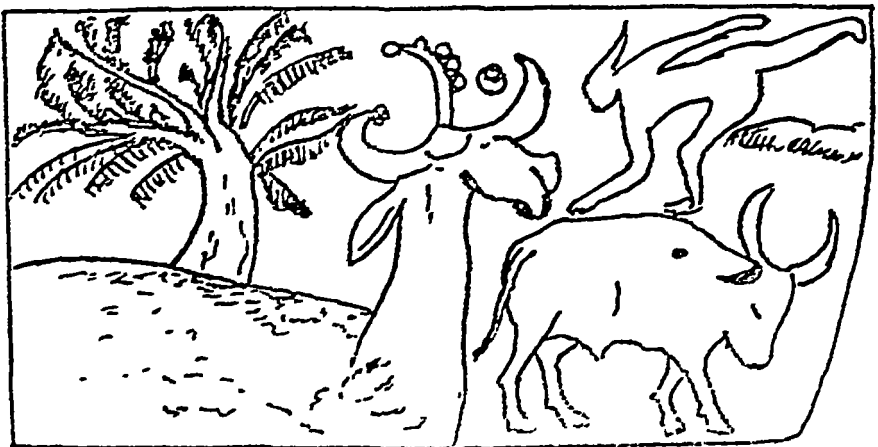
उक्त चित्र से यह भी स्पष्ट है कि देवता का साक्षात्कार प्रतीकों से ही किया जा रहा है, वह सर्वत्र विद्यमान है। वृक्ष मे से प्रकट होता है, पूजा करने पर प्रकट होता है, या प्रकट होने पर पूजित होता है।

उक्त चित्र में स्पष्ट है कि देवता वृक्ष को फाडकर प्रकट हुआ है। उसका भक्त वीरासन पर बैठा हाथ जोडे भक्ति प्रदान कर रहा है। पास ही एक चौकी पर पूजार्थ नैवेद्य या वलि-पदार्थ रखा हुआ है। ऐसा दृश्य-चित्रण भक्ति भावना के विना नही हो सकता। अत. यह निर्विवाद मानना होगा कि सिंघु-घाटी सभ्यता मे भक्ति के समस्त तत्व प्रस्तुत हो चुके थे।

—, ० ,—

परिशिष्ट (२)

टिप्पणियाँ

(इस परिशिष्ट में अंग्रेजी के उद्धरणों के अनुवाद, कुछ अन्य टिप्पणियाँ तथा कुछ अशुद्धियों के शुद्ध रूप दिये गये हैं। 'टि०' का अर्थ है कि यह उस पृष्ठ की पाद टिप्पणी है।)

पृ० २. (टि०)

यह श्लोक यों है—

महाभाष्य में—

वेदान्नो वैदिका: शब्दाः सिद्धा' लोकाच्च लौकिकाः।

प्रिय तद्धिताः दाक्षिणात्या', यथा लोके वेदे चेति प्रयोक्तव्ये यथा लौकिके वैदिके चेति प्रयुंजते। —महाभाष्य प्रत्याहाराह्निक।

भगवद्गीता में—

अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथित पुरुषोत्तम'

पृ० ४ (टि०) "Folklore... ..primitive man"

'लोकवार्ता को आदिम मानव के मानस की सच्ची और सीधी अभिव्यक्ति कहा जा सकता है।"

"As it .... sense"

"जैसे ही यह निरक्षर और उपसाहित्यिक स्तर पर पहुँचती है, मुहावरे के

लोकभाष तथा पीढियो की सचित माता-वाक् में लोकवार्त्ता हमारी मौखिक सस्कृति का आधारभूत अश हो जाती है। इसी के द्वारा मानव से मानव और जाति से जाति परंपरित मुहावरो और प्रतीको से परस्पर बँधते चले जाते हैं। समूह के अनुभवो तथा व्यक्तिगत तथा सामान्य ज्ञान की ससृष्टि मे हिस्सा बँटाने तथा उनकी सीधी प्रेरक प्रतिक्रियाओ से ही लोकवार्त्ता को यह महत्व तथा अवशेषाशी मूल्य प्राप्त होता है।

पृ० ५. (टि०) "But . page"

"किन्तु लोकवार्त्ता के लिए अनिवार्यत, मनुष्य की स्मृति में पीढी-दर-पीढी मुख-शब्दो और अनुकार्यों मे, छपे पृष्ठों में नही, वे उतरते हुए आये हों और प्रचलित हो अथवा प्रचलित होते रहे हो।

पृ० ७ (टि०) With this ····

इसके साथ ही हम उस प्रश्न पर पहुँचते हैं जो ऋजु रेखान्वित विकास के सिद्धान्त के लिए मौलिक महत्व का है . कृषि तथा वाणिज्य मे कालक्रमिक सम्बन्ध क्या है। जब हम एक मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से इस प्रश्न को लेते हैं तो यह सकट खडा होता है कि हम अब एक ही समुदाय द्वारा किये जाने वाले किसी एक ही रूप के व्यवसाय पर विचार नही कर रहे किन्तु अब हमारे सामने दो व्यवसाय हैं जिनकी विधियाँ भिन्न हैं और जो भिन्न-भिन्न समुदायो मे मिलते हैं। पशुओ को पालतू बनाने तक ले जाने वाले व्यापारो मे और उनमें जो पादपो की कृषि तक पहुँचाते हैं, कोई बात समान जैसी नहीं। इन दोनो व्यवसायो के काल-क्रमिक उन्नयन मे पारस्परिक किसी भी प्रकार के सम्बन्ध की सभावना के लिए कोई भी सूत्र नहीं। इसके अभाव का कारण यही है कि इनके काम करने वाले आदमी भी एक से नही और कि व्यवसाय भी बिल्कुल भिन्न हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से ऐसा कुछ भी नही मिलता जो हमे कृषि और वाणिज्य मे कोई सूक्ष्म तारतम्य बिठाने मे सहायक हो सके।'

पृ० १४—(टि०) १ Folklore way.... .self growth.

'लोकवार्त्ता मे उस जन-सस्कृति को समाविष्ट माना जा सकता है, जो पौरोहित्य धर्म तथा इतिहास मे परिणति नही पा सकी है, किन्तु जो स्व. सवर्द्धित है तथा सदा रही है। 'साइकालोजी एण्ड फोकलोर' लेखक आर० आर० मेरेट।'

पृ० १४ (टि०)-२, (1) Modern research into the· ·

भिन्न-भिन्न प्रणालियो से किये गये मनुष्य के आरभिक इतिहास के आधुनिक अनुसधान प्राय· अप्रतिहत शक्ति से इसी निर्णय पर पहुँचते हैं कि सभी सभ्य जातियाँ किसी न किसी युग में उस वर्वर स्थिति मे से निकल कर बाहर

आयी हैं जो स्थिति कम-बढ उस स्थिति से निकट साम्य रखती है जो आधुनिक काल तक कितनी ही पिछडी जातियो मे चलती चली आयी हैं। और किसी जाति के अधिकांश व्यक्तियो द्वारा वर्बरो जैसे विचारो और आचरणो के त्याग दिये जाने के भी बहुत समय उपरान्त उस जाति के लोगो के रीति-रिवाजो और आदतो मे जीवन और विचारणा के कितने ही पुरातन असभ्य अवशेष मिलते हैं। ऐसे ही अवशेषो को 'लोकवार्त्ता' शीर्षक के अन्तर्गत रखा जाता है, जो शब्द के व्यापक से व्यापक अर्थ को लें तो यह कहा जा सकता है कि वह 'लोकवार्त्ता' अपने अन्दर किसी जनमात्र के उन समस्त परम्परागत विश्वासो और रिवाजो को समेटे हुए है जो देखने मे समूह के सामूहिक प्रयत्न से उद्भूत प्रतीत होते हैं और जिसके निर्माण के स्रोत को किसी एक व्यक्ति या महान पुरुष तक नही खोजा जा सकता। —फ्रेजर (मैन, गाड एण्ड इम्मोरटैलिटी १९२७) पृ० ४२

२ (ii) पुरातन युगो मे समस्त मानव-जाति मे व्याप्त वर्बर स्थिति मे से ही 'धर्मगाथ' (myth) का उदय हुआ। यह उन आधुनिक अभद्र जातियो मे जो आदिम परिस्थितियो से बहुत कम विलग हुई है, अपेक्षाकृत अपरिवर्तित रहती है; जब कि उच्चतर तथा बाद की कोटियो की सभ्यता ने भी पुरखो की परम्परा के रूप मे कुछ तो इसके वास्तविक सिद्धान्तो को, कुछ इसके अधूरे परिणामो को ही अपना कर, न केवल सहिष्णुता से वरन् आदर पूर्वक इसे प्रचलित रखा है।

(टेलर, प्रिमिटिव कल्चर खड १, पृ० २१३ 'पोइट्री एण्ड मिथ' में लेखक प्रेस्कौट, द्वारा उद्धृत)

पृ० १५ (टि०) iii Folklore means······

"आरम्भिक रिवाजो, विश्वासो, कथनो तथा कला के अवशेषो के अध्ययन का ही अर्थ लोकवार्त्ता है।"—एन इंट्रोडक्शन टू माइथालौजी—लेखक लैविस स्पेंस।

१. Indeed the notion······

"वस्तुतः यह धारणा विल्कुल त्याग दी गयी है कि मनुष्य ने शुद्ध नैतिकता तथा धार्मिक भावनाओ तथा सीधी सच्ची भाषा के साथ अपना आरभ किया और शनै शनैः लोलुप कल्पनाओ से ग्रस्त होता गया और इस प्रकार मिथ्या तथा अप्रिय विचारो का निर्माण किया, अब तो उलटे हम देखते है कि उसने घोर अनगढ स्वप्नो और ऊहाओ के साथ आरभ किया, और ये एक दीर्घ, स्वाभाविक तथा (सामान्यतः) स्वस्थ सवर्द्धन से, शनै. शनै. उन्नत हुए तथा सस्कृत हुए—पोइट्री एण्ड मिथ-लेखक प्रेस्कोट।

पृ० १६ (टि०) १. Every tradition

'प्रत्येक किंवदती, धर्मगाथ या कहानी मे दो पूर्णत स्वतत्र तत्व होते हैं— वह तथ्य जिस पर उसका निर्माण हुआ है तथा उस तथ्य की व्याख्या, जिसे उसका निर्माता प्रस्तुत करता हैं'—(गोम्मे) फोकलोर एज ऐन हिस्टोरिकल साइस : ·· 'It needs . ' यह बात कहने की फिर आवश्यकता है कि कला प्रयोग के दो पक्ष होते हैं। एक विषय, तथा दूसरे वह प्रणाली जिसमे उस विषय का प्रतिपादन किया गया है।

पृ० १७ (टि०) १. The business

"इस सोसाइटी का काम लोक को, स्वय उनकी वार्त्ता मे तथा उनकी उम वार्त्ता द्वारा जानने का प्रयत्न करना है, ताकि बाहर से जो रीति-रिवाजो का एक समूह मात्र दीख पडता है, उसको साथ ही साथ, भीतर से, एक मानसिक व्यापार के रूप में भी समझा जा सके।

पृ० १८— Such lights

ऐमी झलकें, वस्तुत शब्द-बिंबो की उस अन्तर्व्याप्त स्मृति से आती हैं, जिन्हे फ्रायड मानस की चेतन-पूर्वी स्थिति कहता है, अथवा अवचेतन की इससे भी कही अधिक उस अन्तर्गभित स्थिति से आती हैं, जिसमे दमित ऐन्द्रिकोन्मेषो की स्नायविक लीकें ही निहित नही, वरन् वे उत्तराधिकारावतरित साँचे भी निहित हैं जो हमारी सहज प्रवृत्ति का निर्धारण करते हैं। (फार्म इन माडर्न पोइट्री)

पृ० १९ (टि०) १ Folk Psycho·

लोक मनोविज्ञान—जन का वह मनोविज्ञान जो जन के, विशेषत· आदिम जन के विश्वासो रिवाजो, रूढियो आदि के मनोवैज्ञानिक अध्ययन के काम आता है, और जिसमे (इनका) तुलनात्मक अध्ययन भी सम्मिलित है।

(ए डिक्शनरी ओव साइकालोजी—लेखक जेम्स ड्रेवर)

पृ० २२ (टि०) १. To a great ·

'बहुत बडी सीमा तक उस मानसिक जीवन का रूप जो हमें विविध सामाजिक समुदायो मे मिलता है, परिवेष्टनो से निर्धारित होता है, ऐतिहासिक घटनाए तथा प्राकृतिक परिस्थितियाँ आन्तरिक लक्षणो के विकास का और अधिक अवरोध करती हैं। तो भी हम निश्चय ही यह दावा कर सकते हैं कि जातिनिष्ठ उत्तराधिकारावतरित भेद होते ही हैं। मगोल, नीग्रो, मेलेनेसियन तथा अन्य जातियो के मानस के कुछ लक्षण हमारी अपनी जाति से भिन्न हैं तथा वे परस्पर भी भिन्न हैं।' (द माइंड आव प्रिमिटिव मैन)

पृ० २४ Scholars·

जिन विद्वानो ने विस्तारपूर्वक यह सिद्ध किया है कि आदिम मनुष्य की

विचारणा की शैली तर्क-पूर्वी होती है वे टोने या धार्मिक अनुष्ठानो की ओर सभवत: इगित करेंगे, पर वे यह भूल रहे होगे कि वे कैंटीय कोटियो (Categories) का उपयोग शुद्ध विवेक परिपाटी के लिए नही, वरन् अत्यधिक आवेगजन्य कृत्यो के लिए कर रहे हैं।

पृ० ३३ (टि०) २. His

"उसकी (अर्थात् मैडीसन ग्राट की) पुस्तक ने गोरे तथा सुनहले वालो वाले नीली आँखो वाले लबे सिर के श्वेत (मनुष्य) और उसकी उपलब्धि की बेतहाशा प्रशसा की है तथा वह भविष्यवाणी करता है कि मानव पर जिन बुराइयो (ills) का आक्रमण होगा उन सबका कारण होगा नीग्रो लोगो और काली आँखो वाली जातियो की विद्यमानता।"

पृ० ३४ (टि०) १. The Psychological…

"सभी जातियो मे सास्कृतिक प्रवृत्तियो का मनोवैज्ञानिक आधार एक जैसा ही होता है तथा उन सभी मे एक से रूपो का ही सवर्द्धन होता है" तथा…विश्व भर मे सस्कृति की समानताए इस धारणा को पुष्ट करती है कि जातितत्वगत सबध के बिना (regardless of race) भी मानवीय मानस मे मौलिक सादृश्य होता है।

पृ० ३६ (टि०) १. It seems…

"यह अधिक सभव प्रतीत होता है कि इस कला का भोजन-सप्राप्ति से सबध था, भोजन के लिए जिस पशु की आवश्यकता होती थी उसका चित्र बनाना किसी सीमा तक उसको पकडने मे सहायक होता होगा।

पृ० ३६ (टि०) २. These people…

"ये लोग (सस्कृति के औरिग्नेशियन अवस्था के) उन शूकरो तथा अन्य पशुओ के शिल्प-चित्रण का अभ्यास भी करते थे, जिनका वे शिकार के लिए पीछा करते थे, किन्तु साथ-ही-साथ, ये स्त्रियो का भी शिल्प चित्रण करते थे और इनमे उनके प्रमुख अङ्गो का वहुत अधिक विशदीकरण कर देते थे।"

(टि०) ५. The shells… …

ये सीपें इस वात का ज्वलत प्रमाण हैं कि वहुत दूर प्राचीन काल मे पृथ्वी के दूर-दूर भागो मे परस्पर किसी-न-किसी प्रकार का आदान-प्रदान होता था। ईलियट स्मिथ ने "द इवोल्यूशन आव ड्रैगन (The Evolution of Dragon) नामक कृति मे यह वताया है कि ये सीपें उन पुराने दिनों मे क्यो इतनी महत्वपूर्ण मानी जाती थी ? उनमे जीवन प्रदायनी शक्तियाँ मानी जाती थी।"

पृ० ४० (टि०) २ To describe

"शक्ति के उस रहस्यमय रूप के निरूपण के लिए जिसे मनुष्यो तथा प्राकृतिक पदार्थों मे रहने या सचित होने मे बहुत कुछ ऐसे ही सक्षम समझा जाता है, (बहुत कुछ ऐसे ही) जैसे एक (leyden) सग्रहक पात्र मे विद्युत ।

पृ० ४६ मैक्समूलर

ये मूलत. जर्मन थे और प्राच्यविद्या के पडित थे । बहुत समय तक ये ग्रेट-ब्रिटेन के आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय मे तुलनात्मक भाषाविज्ञान के प्रोफेसर रहे थे । यही से इन्होंने तुलनात्मक भाषा-विज्ञान के साथ तुलनात्मक धर्म-तत्व के अध्ययन को भी प्रोत्साहन दिया, कितने ही महत्वपूर्ण ग्रन्थ इन्होंने अग्रेजी में लिखे ।

पृ० ५३ (टि०) १ The Epic poem

पुराण महाकाव्य एक लोकप्रिय कथा है जिसको उच्चतम मानवी प्रतिभा ने एक अनोखा सम्मोहन प्रदान कर दिया है, और भी जो कहानियाँ सामान्य कथक्कड के क्षेत्र से कभी बाहर नहीं गयीं, उनको यही प्रतिभा ऐसी ही विधि से ऐसा रूप प्रदान कर सकती थी । अत ये सभी, लोक-परपरा के विशाल भडार की सपति ही मानी जानी चाहिये । और इसी रूप मे उनकी निरख-परख होनी चाहिये । शब्द के वास्तविक अर्थ की दृष्टि से, ये लोकवार्त्ता अर्थात् जन-विज्ञान के रूप की ही हैं और सहस्रो वर्षों से रही हैं ।"—रेव० सर जार्ज डबल्यू काक्स, बार्ट० एम० ए०, इट्रोडक्शन टू द साइस आव कम्पैरेटिव मायथालाजी एण्ड फोकलोर"—१८८१ का सस्करण पृ० ६-७

पृ० ५४ (टि०) २. Thus the···

इस प्रकार लोक की वह सौन्दर्यानुभूतिक परपरा, जो कितनी ही व्यावहारिक प्रकार की ह्रासोन्मुख प्रवृत्तियो (interests) का अन्तिम आश्रय होती है, ऐसी सामग्री प्रस्तुत कर सकती है जो साहित्यिक प्रतिभाओ के लिए लाभप्रद स्रोत का काम दे सकती है ।

Now

अब सभवत सौन्दर्य की भावना उतनी शिक्षा पर नही निर्भर करती जितनी कि अन्तर्व्याप्त पूर्व प्रवृत्ति पर निर्भर करती है—पृ० ११६

पृ० ५७-६० के लिए टिप्पणी ।

१६ वी शताब्दी मे बगाली मे रचना करने वाले भी ऐसे ही हीनभाव के शिकार थे—

१. विजय गुप्ता ने लिखा—"सहजे पाचाली गीत नाना दोसमय—"

२. कवीन्द्र (परमेश्वर) ने लिखा—"पाचालिते नहे योग्यवाद"

(Bengalı poetry ıs unsuıtable for phılosophıcal dıscussıon.)

Bengalı Lıterature by J C Ghosh page 14

पृ० ६१

यह श्रद्वय भारत मे ताड्य-ब्राह्मण मे बताया गया है.—

दूमौ वै लोकौ सहास्ता तौ वियन्तावभूता

विवाह विवहावहै सहनावस्त्विति" ताण्डय महाब्राह्मण ७.१० १

पृ० ६२ (टि०) Heaven was ...

मूलत. द्यावा पृथ्वी पर लेटा हुआ था, किन्तु दोनो पृथक कर दिये गये, तथा आकाश को ऊपर उठाकर वर्तमान स्थिति मे पहुँचा दिया गया. न्यूजीलैंड मे यह काम उनके पुत्र ने किया, मिस्र मे पवन के देवता 'शू' ने यह काम किया, यही अब पृथ्वी और आकाश के बीच मे है। और द्यावा को दोनो भुजाएँ फैलाये पृथ्वी पर झुकी हुई स्त्री के रूप मे चित्रित किया गया है जबकि नेक शू उसे साधे हुए है—बिफोर फिलासफी, पृ० २७।

An equal

स्त्री और पुरुष, जो चाहे जिस जाति या जातियो के हो तथा निकट सबधी ही क्यो न हो—पति, पत्नी, माँ, बहिन, भाई—बराबर की सख्या मे प्राय. रात को निभृत मे एकत्र होकर गोलाकार बनाकर बैठते हैं। मूर्त यत्र देवी का प्रतिनिधित्व करता है। यह यत्र वस्तुत परिधि के केन्द्र मे नौ योनियो से बना भगेन्द्रिय का रेखाङ्कन ही होता है। पूजा-विधान मे मत्र-जाप तथा पच तत्व का अर्थात् मदिरा, मास, मत्स्य, भुना अन्न तथा यौनरति का आनुष्ठानिक भोग सम्मिलित रहता है।

पृ० १०७ (टि०) These Buddhists

बौद्ध तत्र है ही, साथ ही हिंदू तन्त्र, वैष्णव तत्र और शाक्त भी है। सब मे सामान्य तत्व यही प्रतीत होता है कि वे सभी टोने और धर्माचार विपयक अनुष्ठान की एक उस प्रणाली की अभिव्यक्ति हैं जो मत्रो, तत्रो (रेखाङ्कनो), मुद्राओ तथा अन्य भौतिक रीतियो से धर्म के उच्चतम लक्ष्यो को प्राप्त करना चाहती है।

"The Tantra..."

"यही नही कि तत्र आदिम बर्बरता तथा मूढग्राहो के निम्नतम अभ्याचारो को ही मान्यता प्रदान करते हैं, वरन् वे ऐसी बातो के लिए दार्शनिक औचित्य खोजने के अपराध के भी दोपी है।

Hındu Eclectıc'

हिन्दू धर्म की सर्वग्रहणशीलता को स्थानीय पापडो को आत्मसात करने

मे तथा विविध देवी-देवताओ को देव व्यूह के प्रमुख देवताओ का उद्भास मानकर पूजने मे कोई दिक्कत नही रही । कितने ही पापडो मे भूतकालीन प्राक-धर्म की टोटेम परक अवस्था की सूचना मिलती है ।

Local cults'

स्थानीय पाषड, बहुधा वे पाषड जो प्राक्-आर्य-भारत, और कोई कोई सभवत, प्राक-द्रविड भारत के युग के हैं, हिन्दू-धर्म मे मिला लिये गये हैं। फलत एक की दूसरे पर क्रिया-प्रतिक्रिया हुई है, उनका मूल उद्गम एक दिखाया गया है, दार्शनिक युक्तियुक्तता उन्हें दी गयी है तथा वे रूपकवत् रहे हैं।

"आदिम निवासियो तथा वहिष्कृतों (outcasts) द्वारा परिपालनीय पूजा से, तान्त्रिकता, बारहवी तथा तेरहवी शती मे, बौद्ध प्रतिष्ठा का सहयोग पाकर उच्च वर्ग मे स्थान पाने लगी। (पृ० ७१)

"इसमे तो कोई सदेह नही कि एक ने दूसरे को प्रभावित किया, किन्तु समस्त क्षेत्र भर मे यथार्थत घटित होने वाली वात तो यह थी कि उसमे आदिम जातियो के विश्वासो तथा आचारों को आत्मसात किया जा रहा था तथा उनका घोल-मेल हो रहा था। (पृ० ७३)

पृ० १२६

मंत्र का अर्थ है टोने का उच्चार अथवा सिद्ध सूक्त और इस रूप मे इसे शब्द (Sound) रूपी शक्ति की परिभाषा दी गयी है। यान (शब्दार्थ मे वाहन) आवागमन के समुद्र को तरने तथा मोक्ष प्राप्त करने का साधन है। यह वह सामान्य अभिधान है जिसे बौद्ध धर्म की एक विशेष धारा को अभिहित करने के लिए उपयोग में लाया जाता है। अत मन्त्रयान वह प्रणाली है जिस के द्वारा कुछ शब्दो या मुहावरो को पढकर कोई व्यक्ति मोक्ष प्राप्त कर सकता है। इस अद्भुत विधान की जडें वहुत पीछे के अत्यन्त प्राचीन युग मे सभवत प्राक् भारत-आर्य काल तक मे ढूढी जा सकती हैं।

अथर्ववेद के कई मडलों से जैसे अभिचारकानि, शाप तथा दानवो, जादूगरो 'मायाविनों' तथा सामान्यत. शत्रुओ के विरुद्ध मन्त्रोच्चार मे टोने के श्लोको की शक्ति मे विश्वास का स्पष्ट पता चलता है। यह विश्वास भारत की प्राचीन मूलनिवासी जातियो मे विद्यमान टोने की प्रबल प्रवृत्ति से विशेषत जुडा हुआ है। इन प्राचीन धारणाओ मे से कितनो को ही भारतीय-आर्य विजेताओ ने ग्रहण कर लिया था तथा अपनी धारणाओ का घनिष्ठ अश बना लिया था। भारत के उन विविध भागो में, जो भारतीय-आर्य सस्कृति के केन्द्रों के बाहर स्थित थे, जिनमे मूलनिवासी जन अपने निजी स्वभाव की अपेक्षाकृत

अच्छी रक्षा कर सकते थे, उनमे टोने तथा जादूगरी के प्रयोग आदिकालीन रूप से बहुत अधिक मिलते जुलते रूप मे सुरक्षित रह सके।

पृ० १४०, (टि०)

इसकी अत्यधिक संभावना है कि इनमें (अर्थात् पुराणो में) पहले पहल मुख्यतः वे प्राचीन कहानिया, वशावलियाँ, पँवाडे आदि थे, जो प्राचीन साहित्य के लोक प्रचलित पक्ष के अङ्ग थे, तथा जो पूरी सभावना है कि, मूलत प्राकृत मे थे। दरअसल मुझे यह प्रतीत होता है कि ये अधिकाश किसी ऐसी प्राचीन साहित्यिक प्राकृत मे थे, जो उच्चतर वर्गों मे प्रचलित थी, किन्तु समय क्रम से राजनीतिक परिवर्तनो के कारण बोलचाल की भाषा के अधिकाधिक सस्कृत मे रूपान्तरण से यह साहित्यिक प्राकृत बोधगम्य नही रही, उधर सस्कृत ब्राह्मणीय हिन्दु धर्म की एकमात्र परिमार्जित भाषा बनी रही। अत यह स्वाभाविक ही था कि यदि इस साहित्य को रक्षित रहना था तो इसे भी सस्कृत रूप दिया जाय।" डायनैस्टीज़ आव द कलि एज, भूमिका, पृ० १७

पृ० १७८

यह आशा की जा सकती थी कि एक ऐसा मूढग्राह जो इतना फैला हुआ है आख्यानो तथा लोक-कहानियो पर प्रभाव छोडेगा ही, और ऐसा ही हुआ भी। दानाए (Danae) की वह पुरानी यूनानी कहानी जिसमे वह अपने पिता द्वारा एक भूगर्भस्थ कक्ष मे या एक धातु की मीनार मे वन्द कर दी गयी थी, और जिसे भेद कर ज़िअस उस के पास स्वर्ण की बौछार के रूप मे पहुँचा था, सभवतः इसी वर्ग की कहानियो मे से है। (गोल्डन वाउ, पृ०६००)

पृ० २३६ (टि०)

वसुदेवहिंडि नामक प्राकृत काव्य के लेखक का आग्रह था कि धर्म-कथाओ की रचना मे रोमाचक कथाओ (romantic stories) का उपयोग किया जाना चाहिये, अथवा दूसरे शब्दो मे कहे तो, धर्म कथाओ से अधिकाधिक लाभ प्राप्त करने के लिए उन्हे अच्छी तरह अच्छी प्रेम-कथाओ से मिलाकर प्रस्तुत किया जाना चाहिये। कुवलयमाला के लेखक उद्योतन सूरि ने निर्धारित किया कि कथा को नव विवाहिता वधू की तरह होना चाहिये, जो अलङ्कारो से भूषित हो शुभ हो, कलगामिनी हो, तथा हो भावुक, कोमल कंठी तथा मनुष्यो के मानस को सतत आनदप्रद (प्राक्कथन—माधवानल कामकदला प्रवन्ध, १९४२, ओरियटल इस्टीट्यूट, वडोदा)

पृ० २४४. सदेशरासक

इस पृष्ठ पर २४वी पक्ति को इस प्रकार होना चाहिये—उधर सदेश रासक जैसा प्रमुख काव्य मिलता है जिसमे षटऋतु वर्णन के माध्यम से विरह

सदेश वर्णन किया गया है, उसी प्रकार हिन्दी के आरभकाल में ऐसे काव्य भी मिलते हैं जो केवल बारहमासा ही हैं । ।

पृ० २८८ Whatever is

जो कुछ भी मन को, भावो को या सकल्पो को प्रभावित करने मे समर्थ है, वह इस प्रकार निस्सदेह अपनी यथार्थ सत्ता सिद्ध कर चुका है । (पृ० २० बिफोर फिलासफी)

ठीक जैसे कि कल्पना-रूप को यथार्थत अस्तित्ववान माना जाता है, वैसे ही मनोभाव भी मूर्त्त रूप हो सकते हैं । (पृ० २२ बिफोर धिलासफी)

अत प्रतीको का और उनके अभिप्रेत अर्थो का सम्मिश्रण हो जाता है जैसे कि दो सतुलनीय पदार्थो का समवायीकरण हो जाता है, जिसके फलस्वरूप एक दूसरे का स्थानापन्न बन सकता है (पृ० २१ बिफोर फिला सफी) ।

पृ० २८९

इस पृष्ठ पर चौदहवीं पक्ति मे 'नगर बन्धुओ' के स्थान पर 'नगर वधुओ' पढ़िये ।

पृ० ३७२ (टि०)

इस प्रकार आखिरकार यह निष्कर्ष निकलता है कि ब्रह्म अब अन्य दिव्य देवताओं का पार्श्ववर्ती मानवीय देवता नही रहा, किन्तु वह इन दिव्य देवताओ से ऊपर उठ गया है । शतपथ ब्राह्मण मे ही यह उल्लेख मिलता है कि ऋषि से अवतरित ब्रह्म वस्तुत. सर्वदेव है अर्थात् उसमे सभी देवी देवता अगभूत हैं ।

पृ० ३७९ The wood ..

'दास' तथा 'दस्यु' शब्दो का उपयोग ऋग्वेद मे आर्यों के समस्त शत्रुओ के लिए हुआ है, वह चाहे दानव हो या मनुष्य ।

(यहाँ demons शब्द demonds छप गया है ।)

पृ० ३८० The full

ऋग्वेद के जिस एक श्लोक मे इन्द्र के आरभिक दिनो का पूरा विवरण मिलता वह JAOS vi मे ६२, ६३, ६३, ६५ मे दिया गया है, उस सामग्री से ऋग्वेद मे अन्यत्र मिलने वाली कुछ अन्य सामग्री को मिलाकर सब का इद्र के जन्म और शैशव की सामान्य रूपरेखा खडी करने के प्रयत्न मे उपयोग किया गया है ।

(अग्रेजी अवतरण मे utilised शब्द uticise छप गया है ।)

Indra's mother .

(इन्द्र की माँ ने कहा) यही प्राचीन प्रथित पथ है जिससे देवतागण सभी

ऊर्ध्व दिशा में उत्पन्न हुए है, उसी से इस महावली को (ऊर्ध्व दिशि मे) उत्पन्न होने दो और उसे अपनी माँ को (नरक मे) नही गिरने देना चाहिये।

पृ० ३८० Amuya···

"अमुया ऋग्वेद में नियमत. (वहाँ) "तत्र" एक वुरे अर्थ मे आता है। यह उस स्थान के लिए आता है जहाँ कि मृत वृत्र पडा हुआ है (१ ३२८) जहाँ दानवगण पडे हुए हैं (१०।८६।१४) जहाँ यौन सभोग से टोने का अभ्यास करने वाले जायगे (१।२६–५,१०।८५।३०, सभवत. १०।१३५२ भी) जहाँ इद्र धूर्त्तों को पछाडने वाला है।) (५।३४।५) यहाँ भी इसके अर्थ हैं (आतक प्रद) स्थान।

पृ० ३८१ He saw his mother ···

उसने देखा कि उसकी माँ उसे छोड के जा रही है। नही, नही मैं उसके पीछे जाऊँगा। निश्चय ही मैं उसके साथ जाऊँगा। त्वष्ट्र के घर मे इन्द्र ने सोम का निकला हुआ रस प्यालो मे पीया।

In other·····

दूसरे उल्लेखो मे इन्द्र त्वष्ट्र को हरा कर सोम का अपहरण करता है ३।४।८।४ यह त्वष्ट्र वली पिता (किन्तु इन्द्र का पिता नही) प्रतीत होता है। रस (अथवा सोम) को पाने के लिए उसे या तो अकेले ही या तृत अप्त्य की सहायता से विश्वरूप को मारना पडता है।

पृ० ३८२ Could be now·· ···

क्या अव वह विजय (अपने शत्रुओ पर) स्थगित कर सकता था, वह जिसे उसने धारण किया (गर्भ के अर्भक की भाँति) एक सहस्र महिने और कितने ही शरत ? उसका कोई प्रतियोगी न तो उनमे है जो विद्यमान है न उनमें जो पैदा होने वाले हैं।

पृ० ३८३ Indefineteness .

अनिश्चित रूपरेखा तथा वैयक्तिकता का अभाव वैदिक देवताओ सम्वन्वी धारणा की विशेपताएँ हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि ये देवता अन्य योरोपीय लोगो के देवताओ से उन प्राकृतिक व्यापारो के अधिक निकट हैं जिनका प्रतिनिधित्व वे करते हैं।

पृथक प्रतीति का अभाव तव और अधिक वढ जाता है जव कि विविध देवी-देवता एक ही व्यापार के विविध पहलुओ से उद्भूत होते हैं। अत. प्रत्येक वैदिक देवता का चरित्र केवल कुछ ही निजी लक्षणो से वना होता है और उसके साथ वहुत से ऐसे तत्व मिले होते हैं जो सभी देवताओ मे समान होते है, जैसे तेज, शक्ति, उदात्तता और वुद्धिमानी—ऐसे समान तत्वो के कारण निजी तत्व

घु घला जाते हैं क्योंकि प्रार्थनाओ और स्तुतियों मे वे ही स्वभावत विशेप प्रमुखता प्राप्त कर लेते हैं। फिर वे देवता भले ही अलग अलग विभागो के हो, किंतु प्रमुख तत्वों की समानता के कारण, उनकी पारस्परिक अनुरूपता की सभावना है। इसी प्रकार अग्नि, जो मूलत पृथ्वी सम्वन्धी आग का देवता है, अपने प्रकाश से अन्धकार के दानवो को छिन्न-भिन्न कर देता है, उधर इन्द्र जो अन्तरिक्ष का वज्र मेघ का देवता है उन्हे वज्र से मारता है। अग्नि देवता की परिकल्पना मे अतरिक्ष के विद्युत्तेज का और समावेश हो जाता है। यह तादात्म्य तव और वढ जाता है जव ऐसे देवताओ का आवाहन युग्म मे किया जाता है, ऐसे योगो से जो एक की अपनी निजी विशेपताएँ हैं वे भी दूसरे से सलग्न हो जाती हैं, और जव वह दूसरा कभी अकेले भी होता है तव भी वे उसके साथ रहती हैं, इस प्रकार अग्नि सोमपायी, वृत्र-हन्ता, गौ और जल का विजेता, सूर्य और उपा का विजेता भी कहा जाता है। और ये सभी इन्द्र की मुख्य विशेपताएँ हैं।

पृ० ३८३ Now the taking····

अव उसका काम है रस को लेना, वृत्र का सहार करना, उसकी प्रचलित प्रशसा है इस से कि वह प्रत्येक प्रकार के वल के कार्य को सपादित करता है।

'दिव्य अग्नि दृढ व्रती मनुष्य का मार्ग दर्शक है, जैसे सूर्य ऋतुओ का नियता है वह, जो सत्य का पालक है, वृत्र का हन्ता है, ए प्राचीन, सर्वद्रष्टा अपने पुजारी को समस्त कठिनाइयो से (उवार कर) ले चल।

पृ० ३९१ Statement like

ऐसे कथन कि 'वाल अभिप्राय किसी के अपने ही वालपन की उदित स्मृति हैं' और ऐसी ही अन्य व्याख्याएँ केवल प्रश्न को दुहराते हैं। किन्तु यदि इसमे थोडी सी ही मरोड देकर हम कहे, "वाल-अभिप्राय अपने वालपन की कुछ विस्मृत वातो का ही चित्र है।" तो हम सत्य के निकट पहुँच रहे होगे। परन्तु, मूल स्थपित का सम्वन्ध क्योकि उस चित्र से होता है जो कि समस्त मानव जाति का होता है, केवल किसी एक व्यक्ति का नही, अत हम और भी ठीक-ठीक रूप मे यो रख सकते हैं "वाल-अभिप्राय सामूहिक मानसिकता के चेतन-पूर्वी वालपन की वातो का प्रतिनिधित्व करता है।

पृ० ४१४ We see

"हम देखते हैं कि तू भव्य है तेरी रश्मियाँ, तेरा तेज अत्यन्त देदीप्यमान है, तेरी किरणें, तेरा तेज स्वर्ग तक पहुँच गया है। आभूषित हो, तू अपने वक्ष को निर्वसन करती है। प्रभुत्व से दमदमाती हुई, तू प्रात की देवी।

Thy ways .....

पर्वतो पर भी तेरे मार्ग सरल हैं : तू अजेय घूमती है। जलो मे से आत्म प्रकाशवान्।

अपनी प्रभूत पगडडियो के साथ अत्यन्त उच्च देवी, द्यौ-पुत्री सपत्ति लाओ, हमे सुख देने के लिए।

पृ० ४१५

चालीसवें शरत मे पर्वतो मे निवसित शवर को किसने ढूँढ निकाला : किसने उस अहि का संहार किया जो अपने वल का मिथ्याभिमानी था, वह ऐंठने वाला दानव। वही ए मनुष्य, इन्द्र है।

Agni born .

ऋतु से उत्पन्न अग्नि, तीन तेरे भक्ष्य है, तीन तेरे निवास स्थल हैं, तीन जिह्वाएँ, संतुष्ट करने वाली (देवताओ को); सचमुच तीन ही तेरे रूप हैं, जो देवताओ को ग्राह्य हैं और उनसे (हमारी इच्छाओ के प्रति) कभी उदासीन न होकर हमारी स्तुतियो से प्रसन्न हो।

Divine Agni .....

दिव्य अग्नि समस्त अस्तित्व का ज्ञाता'' '''जो कुछ भी मायावियो की माया हैं, उनमे स्थापित किया है।

पृ० ४१६. Over powering

(यहाँ अँगरेजी का प्रथम शब्द समस्त पदरूप ठीक है Overpowering) इन दोनो का वल पछाडने वाला है ' जैसे वे दोनो एक साथ एक रथ पर आरूढ गायो के (उद्धार के) लिए तथा वृत्र के ध्वस के लिए जाते हैं, मघवन के हाथ मे दिव्य (वज्र) चमचमाता है।

पृ० ४१६ The Heroic' '

वीर अग्नि सेनाओ का सामना कर सकता है तथा उसी से देवगण अपने शत्रुओ को परास्त करते हैं।

When ...

जव (वन मे)गर्भार्भक की तरह (विद्यमान) अग्नि तनूनपात कहलाता है। जव वह पैदा किया जाता है (वह) असुरनाशी नराशस (कहलाता है) जव वह (अपनी शक्ति) पदार्थ जगत मे प्रदर्शित करता है तो मातरिश्वन्, उसी की त्वरित गति मे वायु का निर्माण है।

Day by day . .

(चिंगारी) निकालने वाले काष्ठ के अन्तरग से जन्म लेने के उपरात वह दिन-व-दिन कभी सोता नही (ऋ० III 2. 17)

Having Slain .

वृत्र को मार कर उसने कितने ही प्रान्तो और वर्षों को (जो) अन्धकार द्वारा निगले (जा चुके थे), मुक्त किया है।

In as much . .

इन्द्र जितनी पौरुषेय उर्जस्विता तैंने तत्र दिखायी है, जब तैंने उस नारी का सहार किया, जो आकाश की पुत्री थी, जब कि वह धूर्त्तता करने का विचार कर रही थी।

पृ० ४१७ Thou Indra

तू इन्द्र, तू जो कि बली है, तैंने द्यावा की पुत्री वर्चस्विनी ऊषा को समृद्ध किया है।

पृ० ४२२ The earliest

२०००-१७०० ई० पू० के समय की बची हुई इन मिस्री कहानियों में से प्राचीनतम है ध्वस्त नौका के मनुष्य की। एक मिस्री लालसागर मे नौका खे रहा था कि नौका ध्वस्त हो गयी वह एक ऐसे सुनसान मे द्वीप मे जा पडता है जिसमे आत्माओ का राजा सर्प रूप मे बसता है। वह राजा उस मनुष्य का दयालु हृदय से स्वागत करता है, और चार महिने के प्रयत्न के बाद वह वहाँ से एक जाते हुए जहाज़ के द्वारा उसे वापिस भेजने मे सफल होता है, किन्तु इसी बीच मे वह राजा अपने दुर्भाग्यो का भी हाल उसे सुना देता है और वह यह भविष्यवाणी भी करता है कि उसके जीवन का अन्त आ रहा है और यह द्वीप भी समुद्र मे समा जायेगा। बिना किसी तारतम्य के एक ऐसी पार्थिव सुन्दरी का भी उल्लेख हुआ है, जो पहले उस द्वीप मे रहती थी किन्तु जो आत्माओ के उस राजा के कुटुम्ब के साथ साथ काल कवलित हो चुकी थी। कहानी ऐसी उलझी हुई है कि यह विदित ही नही होता कि वह आदमी जिसने इसे इस वर्त्तमान रूप मे प्रस्तुत किया इस कहानी की अभिप्राय-योजना को समझ भी सका था। नायक को उस दैत्य सर्प के सामने, जो उसके प्रति अत्यन्त दयावान है अत्यन्त भयभीत बताया गया है। सुन्दरी का चरित्र तारतम्य विहीन और अविकसित ही छोड दिया है। क्या हमे दाने और उसके आधीन कुमारी के उद्धार की कहानी यहाँ मिल रही है, जैसी कि आज की लोककहानी मे है। (स्टिथ थामसन)

पृष्ठ ४६५ The notable

गेय काव्य मे और रूपको मे जिनकी परिभाषा ऊपर दी गई है उल्लेखनीय अन्तर यह है कि पहले मे कोई नियमित कथानक नही होता किन्तु उसमें भाव मुद्राओं का सहकार होता है, उधर नाटक के सभी भेदो मे नियमित कथा-

नक होता है, जो रगमंच पर अभिनीत होता है। गेय रचनाओ मे एक और तत्व होता है, वह है सगीत की प्रमुखता। शरीर के समस्त अवयवो का सचलन भी गेय रचनाओ की एक प्रमुख विशेपता है।

पृष्ठ ४७० Rhythm is·· ···

"ताल प्रकृति का एक तथ्य है। तारो मे, ऋतुओ मे तथा मनुष्य के रक्त मे एक प्रकार की ताल है। मनुष्य के मानस मे होने के कारण यह एक सहजोन्मेप भी है अतः यह दोनो बातें चाहती है नियत क्रम मे पुनरावृत्ति भी चाहती है और उसके अनुकूल प्रभावित भी होती है, और इसी कारण यह कितने ही मानवी व्यापारो मे प्रकट भी होती है, कुछ तो प्रकृति के ही कारण और कुछ प्रयत्न-श्रम को बचाने के लिए और इसी प्रकार यह भापा मे भी उद्भासित होती है—स्फुट, निश्चय ही, किन्तु अन्तर्व्यास और सौन्दर्य-साधन मे उपयोग के लिए प्रस्तुत। काव्य का ताल से सम्बन्ध प्राय यो बताया जाता है: लोग काम करते हैं और नाचते भी जाते है, अपनी तालबद्ध गतियो को तालबद्ध ध्वनियो के साथ प्रस्तुत करते है, ये ध्वनियाँ शब्दो मे और गीतो मे परिणत होती जाती हैं। तब गीत नाट्य से मुक्त होकर भी गाये जा सकते हैं, और शब्द बिना लय के पढे जा सकते हैं, इस प्रकार काव्य प्रस्तुत हो जाता है। यह सब कुछ-कुछ सैद्धान्तिक है, किन्तु अत्यन्त सभव भी और किसी सीमा तक मान्यता देने योग्य भीहै। अब केवल शब्दो को सर्वोत्तम क्रम मे व्यस्थित करने की ऐच्छिक कलात्मक प्रक्रिया की अपेक्षा है, जिससे ऐसा क्रम आ सके जो ताल-प्रिय रुचि को सतुष्ट कर सके, और तब यही से क्रमात्। शास्त्रीय सिद्धान्त (पिंगल बद्ध छन्द) का विकास होता है, जिससे विधायक कर्म को सुपास मिलता है।

(अग्रेजी उद्धरण मे जहा rhythmic source छपा है वहाँ rhythmic sense होना चाहिए।)

पृष्ठ ४७६

पन्द्रहवी पक्ति मे दो शब्द गलत छपे है, उन्हे यो ठीक कर लेना चाहिए—

मौजी·दाम के स्थान पर मोतीदाम

आडिक्क „ अरिल्ल या अडिल्ल

पृष्ठ ४७६

उन्तीसवी तथा इकत्तीसवी पक्ति मे 'अनामिका' के स्थान पर 'अन-मिल्ला' पढें।

पृ० ४७७—मगल

मगल काव्य की परपरा बङ्गाली भाषा मे एक विशेष स्थान रखती है। वगाली में 'मगल' केवल विवाह मे ही सबंधित नही। वगला के मंगल विशिष्ट लौकिक सप्रदायो के देवी-देवताओ से सबधित होते हैं। उनमे निहित भाव यही रहता है कि उस देवी-देवता की पूजा करके कृपा प्राप्त करने से ही मगल है, अन्यथा नही। धर्मठाकुर के धर्ममगल, मनसादेवी के मनसामगल, चडी देवी के चडी मगल आदि।

पृ० ४८८ (टि०)

कुछ विद्वान (वर्तमान लेखक अर्थात् जार्ज ग्रियर्सन भी उनमे सम्मिलित हैं) हैं जो यह मानते है कि सस्कृत साहित्य देशी भाषा की रचनाओ का उससे अधिक ऋणी है जितना कहीं माना जाता है, यहाँ तक कि महाभारत ने भी पहले प्राचीन प्राकृत मे एक लोक महाकाव्य के रूप मे पहले पहल जन्म लिया, और वाद मे सस्कृत में रूपान्तरित हुआ, और इस भाषा मे उसमे आगे सशोधन-परिवर्द्धन हुए और तव उसे यह अन्तिम रूप मिला।

पृ० ४६० (टि०)

सभी धर्म गाथाओं का आधार पदार्थप्राण-तत्व (ऐनिमिस्टिक) होता है, आरम्भ मे, वे व्यवस्थित लोकविश्वास ही थे जिन्हे विकास की विभिन्न अवस्थाओं पर से तत्कालीन प्रवासी तथा वाणिज्य-लग्न लोग जहाँ-तहाँ ले गये।

पृ० ४६४ (टि०)

'सहानुभूतिक टोना सादृश्य के भावो के सयोग पर बना हुआ है। सहानुभूतिक टोना उस भूल को सही मानता है जिसमे यह माना जाता है कि वे वस्तुएँ जो एक दूसरे के सदृश हैं, एक ही हैं।

पृ० ४६७ (टि० १)

दूसरी ओर देवता वहुधा कुञ्जो मे पूजे जाते थे, यह पूजा आदिम वृक्ष-पूजा का ही विकास है, जिसका उल्लेख भारत, यूनान, रोम, जर्मनी, गाल, लिथुनियनो तथा स्लेवो के सम्वन्ध मे मिलता है।

किंवहुना वहुत से सिद्धान्तवादियो पर गम्भीर आरोप लगाना होगा, और यह आरोप मनहार्ट, सर जे० फ्रेज़र, रिजवे, डरखीम तथा ऐस० रीनक पर भी समान रूप से लागू होता है। ये विद्वान यह मानकर चलते हैं कि आदिम वर्वरो के धार्मिक विचारो मे ही धार्मिक विश्वासो का आरम्भ मिलता है, तथा कि उन्ही के विचारो मे से धर्म के प्रत्येक रूप के विकास की योजना पुनर्गठित

होनी चाहिये। इस मत की मूलभूत असमीचीनता तो इसी विश्वास मे है कि उन्नीसवी शती के जगली वर्वर आदिम मानव हैं, न्याय-दृष्टि से यह अस्वीकार करना सर्वथैव असम्भव है कि इन जातियो के धर्म के दोष ही ठीक ऐसा कारण है जिससे वे विकास करने मे असफल रहे और एक वर्वर अवस्था मे बने रहे हैं। निस्सदेह इस मत को सिद्ध करना तो असभव है, भले ही वर्वरो के वहुत से आचार स्पष्टत गम्भीर अभावो के शिकार बने हुए हो, जो आर्थिक तथा सामाजिक हैं; किन्तु उसे असिद्ध करना और भी अधिक कठिन है, और इस तथ्य की दृष्टि से, आस्ट्रेलियन आदिवासियो के अनुष्ठानो के आधार पर धर्म के विकास के योजनाएँ प्रस्तुत करना न्याय दृष्टि से क्षम्य है, यह सब भी पूर्णत. इस तथ्य के अतिरिक्त है कि इन रिवाजो का ज्ञान हमे नृविज्ञान के उन विद्यार्थियो से प्राप्त हुआ है जो उन लोगो का अध्ययन करते हैं जिनके साथ उनका रक्त या भाषा विषयक कोई गठबधन नही तथा जिनका विश्वास भाजन होना उन विद्यार्थियो को उतना ही कठिन प्रतीत होता रहा है जितना कि उनके विश्वासो को हृदयगम करना। इस तथ्य को लेकर कि आस्ट्रेलियन कबीलो (Tribes) अथवा जूलू लोगो मे किसी परम उदार देव के अस्तित्व की मान्यता है या नही, जो विवाद खडा हुआ है, अकेला वही एक ऐसा उल्लेखनीय प्रमाण है जो उन आशातीत कठिनाइयो को प्रकट कर देता है जो उन लोगो के मार्ग मे पडी हुई हैं जो आदि निवासियो के मानस को यथातथ्य रूप मे हृदयगम करना चाहते है।

(कीथ महोदय का यह अवतरण पृ० ४९० पर नीचे के भाग मे बहुत गलत छप गया है। नीचे से चौथी पक्ति मे 'and social' के आगे यो होना चाहिये—but to disprove it is still more difficult, and in view of this fact, to set up schemes of the development of religion based on the practices of the Australian aborigines is loxically unegusable . .

देखिये पृ० ४९० (टि९)

पृ० ५००

फिर भी, यह आक्षेप, जो बहुधा ऋग्वेद पर किया जाता है कि वह शुद्ध धर्मानुष्ठानिक है स्वीकार नही किया जा सकता, क्योकि उसके बाद के अशो मे ऐसी पर्याप्त सामग्री है जो यह दिखाती है कि मन्त्रद्रष्टागण अपने समय के लोक-प्रचलित धर्म से पूर्णत. परिचित थे। उदाहरणार्थ, हमे ऐसे श्लोक मिलते हैं जो हानिकर कृमिकीटो के (१.१९१) अथवा यक्ष्मा

रोग के (X.१६३) निवारण के, प्रत्यक्षत मृत को पुनरुज्जीवन प्रदान के (X.58 60 7-12) शत्रु नाश के (X—१६६) सतान प्राप्त करने के लाने (X.183), बच्चो को मारने वाले दानव के नाश के (X१६२), निद्रा के (v 55) यहाँ तक कि सौत को पति के प्रेम से वहिष्कृत कराने के (X 145. Cf X.159) मत्र (Spells) के रूप मे हैं। इनमे से अधिकांश श्लोक उस ग्रन्थ मे हैं जिसमे विवाह के श्लोक (X ८५) भी सुरक्षित हैं, जो पुरोहितो के कौशल के नमूने हैं, तथा शव सस्कार के श्लोक (X-14-18) ये और इनके साथ चार या पाच नीति विषयक श्लोक (X1 112,X.35, 71,117); कुछ दार्शनिक तथा सृष्टि मूल विषयक ऊहापोह (X.81,82,90,121,129,1.164 जो V111.29 की भाँति एक प्रहेलिका श्लोक हैं), कुछ श्लोक या उनके अश ऐसे जिनमे पुरोहितो के उदार सरक्षकों की प्रशसा है, सग्रह की एकरसता से उवारते हैं और इस पूर्णत· भ्रामक मत को दूर करने मे सहायक होते है कि भारत का प्राचीन धर्म केवल उच्च देवताओ के आह्वान से सम्वन्धित था फिर भी लोक-प्रचलित धर्म की वास्तविक विस्तृति और पौरोहित्य कर्म का अधिकाश वाद की सहिताओ मे तथा सर्वोपरि अथर्ववेद मे ढूँढना होगा।

—:०:—

परिशिष्ट (३)

[कुछ पारिभाषिक शब्दों के अंग्रेजी पर्याय यहाँ दिये जा रहे है]

अ

अजेय—Unvincible
अद्वय—Union
अनाथ बालक—Orphan
अर्द्ध चेतन—Sub-conscious mind
अनुष्ठान—Ritual
अभिप्राय या कथानक रूढ़ि—Motif
अवचेतन मानस—Unconscious mind
असभ्य जाति—Uncivilised race
असगति—Paradox
अहं चैतन्य—Self Connscious

आ

आत्मा सक्रमण—Doctrine metem psychosis
आत्मवत्वाद—Animatism
आदि निवासी—Aboriginies
आदिम—Primtive
आदि मूलक सत्ता—Primal being
आदि सृष्टि मूलक—Cosmogonic

आत्मशीलता—Animistic thinking
आनुष्ठानिक विचारणा—Ritual thinking

उ

उत्तराधिकरण—Heredity
उत्पादन—Production
उपभोग—Consumption
उपार्जितावचेतन—Earned unconcsious mind
उपार्जित अवचेतन—Acquired unconscious mind
उर्वरक टोना—Fertility magic

ऊ

ऊहात्मक—Fantastic

ऐ

ऐतिहासिक उत्तराधिकार—Historical inheritance
ऐन्द्रिक भावोन्मेषमयी स्थिति—Instinctive State
ऐन्द्रिकोन्मेष—Sensation

अ

अशांशी—Contaguous magic

क

कबीले—Tribes
कल्पना मानसिक—Specunlative
कारण विज्ञान—Causality
काल कला—Time factor
कुण्ठा—Suppression-Repression
कोटि-क्रम—Degree
कोष—Dictionary

घ

घटनाएँ—Incidents

च

चित्रकाव्य—Kinemetographic
चेतन—Conscious mind
चेतन मानस—Conscious mind

छ

छन्द—Metrical Pattern

ज

जन-मानस—People's psychology
जातीय मनोविज्ञान—Racial psychology
जातीय रूढ रूप—Racial types
जाति जन —People

ट

टोना विचारणा—Magical thinking

त

तल गामी—Perpendicular

ताल—Rhythm

तुलनात्मक अध्ययन—Comparative Study

तथाख्यान—Fable

द

दन्तकथा—Tradition (oral)

दानव—demon

दाय—Heritage

दार्शनिक—Philosophic

देव वर्ग या देव व्यूह—Pantheon

देवी-देवता—deities

दैवी पुरुष—Divine Person

द्वियोनित्व—Bisexual, Hermophrodite

ध

धर्माचारिक—Sacramental

धर्मानुष्ठानिक—Sacrdotal

धर्मगाथा—Myth

धर्मगाथिक—Mythologem

धातु—roots

धार्मिक आस्था—Religious belief

धार्मिक पृष्ठभूमि—Religious back ground

न

नीति विषयक श्लोक—gnomic hymn

प

पदार्थ प्राणता—Animistic

पदार्थात्मवाद—Animism, Fetishism

पर्थाथिव भाव—Emperical idea

परा प्राकृतिकवाद—Super-naturalism

परा-प्राकृत—Super-natural

परित्यक्त बालक—Abandoned child

परिवेष्टन—Environment

परम्परा—Tradition, heredity

पौरोहित्य—hieratic

पुरोहित—Priest

प्राकल्पना—Fantacy Thinking

प्राणी-शास्त्र—Zoology

प्रतीक—Symbol

प्रयत्नज—artificial

प्राक्वंशावली काल—Pre-Dynastic Age

व

वनमानुस—Ape
वर्वरक—Savage

भ

भाव—Conception
भावांश—Concept
भीड—Crowd

म

महाकाव्य—Epic
मन—Mana (मैलेनेशियन शब्द)
मनोमूल—Psyche
मानव राशि—Multitude
मानस—Mind
मानसिकता—Psyche
मिथ्याश्रित—Mythical
मूर्त्तस्वरूप - Plastic form
मनोविश्लेषण—Psycho-analysis
मूल स्थपित—Arch type
मूर्त्त कल्पनांश }
मूर्त्तांश } Image

ल

लोक—Folk
लोक कहानी—Folktale
लोक गीत—Folk song
लोक प्रचलित, लोकप्रिय—Popular
लोक-मनोविज्ञान—Folk-psychology
लोक मानस—Folk mind
लोक-धर्म—Folk religion

व

वर्गोच्च साहित्य—Classical literature
विवेक चेतन—Rational
विवेक पूर्वीय—Prelogical
विवेक सगत—Rational
विषम योग—antithesis
विषमीकरण—Law of contradiction

श

शव-सस्कार विषयक श्लोक—Funeral hymn
श्लोक—hymn

स

सादृश्यक टोना—Imitative magic

समग्र अवचेतन—Total unconscious mind
संमग्र उत्तराधिकारी मानस–Total inherited mind
साधारणीकृत मानस—Generalised mind
सामूहिक मनोविज्ञान—Collective Psychology
सामूहिक मानस—Collective mind
सामान्य मानस धर्म—Common psychological factor

सृष्टि-आदि मूलक—Primordial
सृष्ट्यात्मक—Cosmic
सहज अवचेतन—Common unconscious mind
सहज प्रवृत्ति या सहजोन्मेष—Instinct
सघशील—gregarious
स्थानापन्न—Substitute

क्ष

क्षितिजातीय—Horizontal

— :*: —

परिशिष्ट—४

ग्रन्थानुक्रमणिका

[यहाँ इस प्रबन्ध मे उल्लिखित ग्रन्थो की सूची अकारादि क्रम से दी गयी है, इस प्रबन्ध मे उस ग्रन्थ का जिस पृष्ठ पर उल्लेख हुआ है, वह उसके सामने लिख दिया गया है ।
(पा) का अर्थ पाद टिप्पणी है]

—: ० :—

परिशिष्ट-५

ENGLISH BIBLIOGRAPHY

1. Sanskrit English Dictionary —Apte
2. Encyclopaedia Britannica
3. Russian Folklore —Sokolov
4. Standard Dictionary of Folklore etc.-Maria Leach
5- The Mind of Primitive Man —Franz Boaz
6. Psychology and Folklore —R.R Merett
7 The Mind of Primitive Man —Levy Bruhl
8 Man, God and Immortality —Frazer
9 Primitive Culture —Tylor
10 Poetry and Myth —Prescott
11. An Introduction to Mythology —Lewis Spence
12. Folklore As An Histrorical Science—Gomme
13 Famous Artists & Their Models-Thomas Craves
14 Form in Modern Poetry —Read
15 Dictionary of Psychology —James Drever
16 Before Philosophy —H. & H. A Frankfort, John A. Wilson, Thorkild Jacobsen
17 Encyclopaedia of Religions and Ethics—
18 System of Physiology —Karl Gustava Cerus

19. The Growth of Civilization —W.J. Perry
20. Introduction to The Science of Comparative Mythology and Folklore —Rev. Sir, George W. Cox
21. Studies in Islamic Mysticism
22. Popular Hinduism —O'Malley
23. Garnerd Sheaves —Frazer (J G.)
24. Matter, Myth and Spirit —Dorothia Chaplin, F. S A Scot
25. Early Belief and Their Social Influence —Edward Westermack
26. The story of Myth —Kellett, E. E.
27. Indian Serpent lore —Vogel
28. Poetry and the People —Kenneth Richmond
29. Purana Index Vol I —Dikshitor, V. R. R.
30. Pre Aryan and Pre-Dravidian in India —Levi, Sylvian
31. History, Psychology and Culture-Golden Weiser
32. Psychological Frontiers of Society —Kardiver, A,
33. Children of the Sun —Parry, W.J,
34. Epic India —Vaidya, V. C.
35. Key of power : A study of Indian Ritual and Belief—Abbot, J.
36. Totemism —Frazer
37. Totemism and Exogamy —Frazer
38. Hindu Exogamy —Karavdikar, S, V,
39. Short History of Marriage —Westerwarcy, Edward
40. History of the Gipsies —Simson, Walter
41. Curiosities of Indo-European Tradition and Folklore —Kelly, W K.
42. Stranger East Indian Guide to the Hindustanee —Gilchrist, John
43. Animism, Magic and the Divine King—Roheim, Geza

44 Omens and Superstitions of S. India —Thurston Edgar
45 Magic and Religion —Lang, Andrew
46. Geography Withchcraft —Summers, Montague
47 Legends of India —Hopkin, Washburn
48. Outline of Mythology —Spence, Lewis
49, Serpent Worship and Other Essays with a Chapter on Totemism —Wake, C. —Staniland
50. Sacred Tree —Philpot, J. H.
51, Myths of the Origin of Fire —Frazer, J. G.
52. Religions and Hindu Cults of India —MacMunn, George
53 Vedic Gods · as Figures of Biology —Rele, V.G.
54 Sahajiya Cult —Bose M. M.
55 Gorakhnath and the Kanphata Yogis Briggs George Weston
56 Naga Hills and Manipur —Assam Distt. Gazzetteer
57. History of of Aesthetics —Bousauquet
58 History of Literary Criticism in the Renaissance
59 History of Prostitution in India
60 History of Sanstkrit Literature
61. History of Sans. Litrature —Kane
62 Bhamah : Kavyalankars
93 Asianic elements in G K civilization
64 Index to Proper Names to Valmika
65 Thought and Reality
66 Brahmavaivartta Puran
67. Kavya Mimansa —Raj Shehher
68. Karpur Manjari —Shri Konow
69 Primitive Man as Philosopher
70 Primitive Religion
71. Radha Tantra

72. Res. into the Nature and Affinity of Ancient Hindu Myth, —Kennedy
73. Hindu Deities
74. Gorhhnath and Mysticism —Mohan Singh
75. Obscure Religious Cults —Das Gupa, S. S.
76. Mythology & Fables of the Ancients —Banier, Abb
77. Mythology of the Aryan Nation —Cox
78. Evolution of the Dragon —Smith, G. E.
79. View of History, Literture, Myth etc. of Hindus —Ward
80. Serpent Worship —Wake
81. Religions of India —Hopkins
82. Religions of India —Karamkar
83. Original Sans. Text. (Vols. 4) —Muir
84. Brahad Devata
85. Vedic Mythology —A. A. Macdonell
86. Outlines of India —Beams
87. Philology of Languages of India
88. Vedic Metre in Its Historical Development — Arnold
89. Prakrit Language
90. Guide to Hindustanee
91. Hindi Grammer —Greavs
92. Grammar of the Eastern Hindi—Haddon
93. Evolution of Art —Haddon
94. Primitive Art & Crafts —Sayce
95. History of Indian Art —Coomaraswamy
96. Tribal Art of Middle India
97. Tree and Serpent Worship —Ferguson
98. History of Art in Primitive Greece —Perrot
99. Prehistoric Relics in Rock Paintings —Datta